9
Fuc

2351

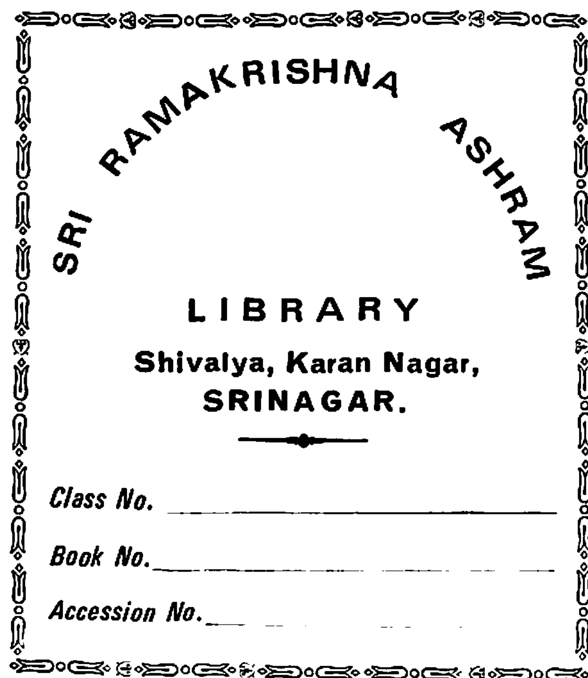
भातखंडे संगीत-शास्त्र

[हिंदुस्तानी संगीत-पद्धति]

द्वितीय भाग

वि० ना० भातखंडे

संगीत कार्यालय, हाथरस (उ० प्र०)



भातखंडे-संगीतशास्त्र

[हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति]

द्वितीय भाग

•

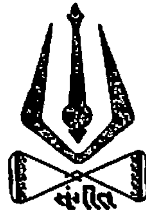
मूल लेखक
पं० विष्णुनारायण भातखंडे
(विष्णु शर्मा)

•

अनुवादक
पं० सुदामाप्रसाद
संगीताचार्य

•

सम्पादक
लक्ष्मीनारायण गर्ग



प्रकाशक
© संगीत कार्यालय, हाथरस (उ० प्र०)

चतुर्थ संस्करण
जून, १९८०

मूल्य
३५) रुपए

Publication No. 72

BHATKHANDE SANGEET SHASTRA
VOL. II

Written by
V. N. Bhatkhande

Translated by
Sudama Pd. Sangeetacharya

Edited by
L. N. Garg

4th. Edition
June, 1980

Price
Rs. 35/-

Published by
SANGEET KARYALAYA
HATHRAS (INDIA)

Printed by
SANGEET PRESS
HATHRAS (INDIA)

अपनी ओर से

हिंदुस्तानी संगीत-पद्धति, द्वितीय भाग का यह हिंदी-भाषांतर संगीत-रसिकों और जिज्ञासुओं के हाथों में पहुँच रहा है। प्रथम भाग के समान प्रश्नोत्तर-शैली से ग्रन्थकार ने इस भाग में भैरव ठाठ के समस्त रागों का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है। साथ ही आरम्भ के लगभग १५० पृष्ठों में श्रुति-स्वर-चर्चा करते हुए भरत, नारद, मंडूक, शार्ङ्गदेव, रामामात्य, सोमनाथ, पार्श्वदेव, पुण्डरीक, अहोबल, लोचन आदि पद्धति-निर्माताओं के तत्सम्बन्धी मतों का सूक्ष्म अध्ययन उपस्थित किया है। यह प्रकरण प्रत्येक संगीत-रसिक अध्येता के हेतु अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सामग्री है।

इसके साथ-साथ ग्रन्थकार ने अपनी चर्चा के बीच-बीच में जिस-जिस विषय को लिया है, उसपर मनोरंजक और महत्त्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किए हैं। कहीं ग्रन्थकार पाश्चात्य आलोचकों की मान्यताओं को तोलता है, कहीं किसी प्राचीन पद्धतिकार की सम्पूर्ण पद्धति का परिचय देने लगता है और कहीं अपने अनुभव की मनोरंजक एवं ज्ञानवर्धक घटनाओं का उल्लेख करता है। ग्रन्थकार की अगाध विद्वत्ता के अनुरूप ही इस ग्रन्थ का निर्माण हुआ है, अतः पद्धति-प्रेमी शिक्षार्थियों के लिए इस ग्रंथ के वाक्य स्मृति-वाक्य-जैसे महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं, यह कहना अतिशयोक्ति नहीं है। स्वनामधन्य पं० विष्णुनारायण भातखंडे की इस अमर कृति का यथार्थ मूल्यांकन स्वल्प शब्दों द्वारा करना असंभव है। इन्हीं महापुरुष का कृतित्व और उसकी सफलता का सबसे प्रबल एवं प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि आज उत्तर-भारत के लगभग सभी संगीत-विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में इसी पद्धति का अनुसरण करते हुए शिक्षण-कार्य संपन्न किया जा रहा है।

प्रथम भाग का अनुवाद-कार्य समाप्त होते ही 'संगीत' के संचालक माननीय प्रभूलाल गर्ग ने द्वितीय भाग का अनुवाद-कार्य-भार मेरे निर्बल कन्धों पर पुनः डाल दिया। यह श्री गर्ग जी के उत्साह और साहस का ही परिणाम है, जो संगीत-सम्बन्धी दुर्लभ सामग्री राष्ट्रभाषा के माध्यम से रसिकों को प्राप्त हो रही है। यद्यपि व्यावसायिक दृष्टि से एवं प्रकाशक के नाते लाभ-हानि के विचार से यह प्रकाशन जोखिम से खाली नहीं कहा जा सकता; फिर भी आशा है कि प्रथम भाग के अनुरूप इस द्वितीय भाग का भी संगीत-प्रेमियों एवं शिक्षार्थियों में स्वागत होगा।

प्रथम भाग के प्रकाशन के उपरांत स्नेहियों और मित्रों ने मुझे जो कुछ सुझाव प्रेषित किए थे, उनका यथाशक्ति पालन प्रस्तुत भाग में मेरे द्वारा हुआ है। मैं भविष्य में भी आशान्वित हूँ कि इसी प्रकार सुझाव देकर वे मुझे उत्साहित करते रहेंगे।

इस द्वितीय भाग के अनुवाद की प्रतिलिपि तैयार करने में साथी अध्यापक बंधुओं ने अमूल्य सहायता की है, अतः उनके प्रति कृतज्ञ हूँ। श्रीयुत नर्मदाप्रसाद दुबे, चि० हरिप्रसाद बहोरे की सहायता के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना उनके स्नेह और बंधुत्व की अवज्ञा करना होगा।

□ सुदामाप्रसाद दुबे

अनुक्रमणिका

भातखंडे संगीत-शास्त्र, भाग २

[हि० सं० प० थ्योरी मराठी भाग २ का हिंदी अनुवाद]

अध्याय १

प्रिय मित्रो ! पिछली बार मैंने तुम्हें यमन, बिलावल व खमाज, इन तीन प्रचलित रागों के विषय में आवश्यक बातें बताई थीं। ठीक है न ? मैं समझता हूँ कि वे सभी राग प्राय: सभी स्पष्ट नियमों के साथ अब तुम्हारी समझ में आ चुके होंगे। मेरी इच्छा इसी संबंध में तुम्हें और आगे ले जाने की है। एक बार तुम अपनी संगीत-पद्धति के वे डेढ़-सौ राग व्यवस्थित रीति से समझ जाओगे, तभी मुझे संतोष होगा।

पिछली चर्चा के समय एक बात की ओर तुम्हारा ध्यान पहुँचा होगा। वह बात यह थी कि यद्यपि हमारे सभी संस्कृत व देशी भाषा के संगीत-ग्रंथकर्ताओं ने श्रुतियों व स्वरों के विषय में अपने-अपने तरीकों से थोड़ी-बहुत चर्चा अवश्य की है, फिर भी मैंने तुम्हें इस चर्चा में अधिक गहराई तक नहीं जाने दिया। हमारे ग्रंथ-रचयिताओं का मत है कि श्रुति व स्वर-ज्ञान ही प्रत्येक संगीत-पद्धति की नीवँ है। यह बात नहीं कि उनका यह मत मुझे ज्ञात नहीं है, परंतु अभी तुमने संगीत-विषय में प्रवेश ही किया है, और ऐसी हालत में तुम्हें एक कठिन तथा विवादग्रस्त चर्चा में डाल देना संभवत: तुम्हारे लिए हितकर कार्य न होगा, ऐसा मेरा खयाल था। एक प्रकार से मैं समझता हूँ कि मैंने उचित ही किया है। परंतु अब परिस्थिति में बड़ी भिन्नता आ गई है। इस समय जिधर देखते हैं, उधर हमारे विद्वान् संगीतज्ञ मासिक पत्रों व सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में श्रुतियों व स्वरों के विषय में चर्चा कर रहे हैं। ऐसे समय में इस विषय पर चुप बैठे रहना उचित नहीं कहा जा सकता। साथ ही तुम्हारी दृष्टि मी अब पर्याप्त विस्तृत हो चुकी है। अत: यदि दो शब्द इस विषय पर भी मैं अपनी चर्चा चलाते हुए कह दूँ, तो अनुचित न होगा। मैं यह तो कह ही चुका हूँ कि बीच-बीच में होनेवाले तुम्हारे तर्कपूर्ण प्रश्नों से मुझे सहायता ही मिलती है। शिष्य का सुशिक्षित होना भी एक आनंददायी संयोग है। चाहे आरंभ में उसे इस विषय का प्रत्यक्ष ज्ञान कम मात्रा में प्राप्त हो, परंतु उसके विचार व तर्क करने की प्रणाली निराली ही होती हैं। जहाँ उसे गुरु ने एक बात बताई कि उसकी सुसंस्कृत बुद्धि उस एक बात के सहारे चार नवीन बातें खोज सकती है। निष्कपट गुरु और सुशिक्षित शिष्य का मिलना बड़ा अमूल्य संयोग माना है।

तुम्हें स्मरण होगा कि मैंने पिछली बार दो-तीन बातों की ओर विशेष रूप से तुम्हारा ध्यान आकर्षित किया था। वे ये बातें थीं—हमारा संगीत भिन्न-भिन्न कारणों से धीरे-धीरे परिवर्तित होता चला है, परंतु अभी भी उसका सम्बन्ध ग्रंथों से लगाने-योग्य स्थिति मौजूद है। हमारी संगीत-पद्धति के संपूर्ण मूल तत्त्व प्राचीन ही हैं। अपने संस्कृत-ग्रंथ ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण हैं और संगीत की अभीष्ट दिशा में उन्नति चाहनेवालों के लिए थोड़े-बहुत उपयोगी भी सिद्ध हो सकते हैं। तुम सहज में ही समझ सकते हो कि जैसे-भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में संगीत में परिवर्तन होता गया, वैसे-वैसे ग्रंथ लिखनेवाले ग्रंथकारों को नई-नई बातें अपने-अपने ग्रंथों में संगृहीत करना आवश्यक होता गया। और ऐसा ही हुआ भी, तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है? आगे चलकर जब संस्कृत भाषा में ग्रंथ लिखनेवाले न रहे, तब देशी भाषाओं में ग्रंथ-रचना होने लगी। ऐतिहासिक दृष्टि से यह सब स्वाभाविक ही हुआ है। यद्यपि देशी भाषाओं के ग्रंथों की दुर्बोधता भी बढ़ती गई। यह कहना भी गलत नहीं कि संगीत क्रमशः विद्वानों के हाथों से निकलकर अशिक्षितों के हाथों में चला गया व अभी तक भी अधिकांश रूप में वह ऐसी ही स्थिति में है। ऐसी दशा में ग्रंथों में वर्णित नियमों की ओर दुर्लक्ष्य होना सहज-संभव है। प्रत्यक्ष गायकों ने मनमाने ढंग से अपने गले तैयार करके समाज की रुचि में एक भ्रष्टता उत्पन्न कर दी। यह रुचि-भ्रष्टता इस समय वज्रलेप-जैसी दृढ़ होकर जम गई जान पड़ती है। निरक्षर गायक लोग आजकल 'पंडित' शब्द का उपयोग 'संगीत के संबंध में व्यर्थ बकवास करनेवाला व्यक्ति' के अर्थ में प्रयुक्त करते हैं। वास्तव में वह सुशिक्षितों की प्रशसा तो नहीं है। समाज की रुचि को उत्तम दिशा में मोड़ने का उत्तरदायित्व संगीत-व्यवसायी लोगों पर ही होता है, परंतु उस उत्तम दिशा को पहचानने के लिए किसी प्रकार का सुसंस्कार भी आवश्यक है। गायकों में यह सुसंस्कार न होने के कारण हमारे कदम संगीत में जितने आगे पड़ने चाहिए थे, उतने आगे नहीं पड़ सके। तो भी, अभी हमारी स्थिति बिलकुल निराश होने योग्य नहीं हुई। हमारे पास संस्कृत व प्राकृत (देशी भाषा) के ग्रंथों की पर्याप्त सामग्री है, और कहीं-कहीं अभी प्राचीन संस्कारों के गायक-वादक भी मौजूद हैं। यह सहायता भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। प्रायः संगीतज्ञ प्रत्येक संगीत-विद्यार्थी को अपने विषय के समस्त उपलब्ध ग्रंथों को पढ़ने व संग्रह करने की सलाह देते हैं। मेरी दृष्टि से यह उचित ही है। प्रत्येक ग्रंथ-रचयिता ने अपने समकालीन संगीत को व्यवस्थित रीति से अपनी रचना में वर्णित करने का प्रयत्न किया है, यह अध्ययन विद्यार्थियों के लिए बहुत सहायक है। प्रत्येक ग्रंथ से किसी-न-किसी प्रकार का नवीन ज्ञान विद्यार्थी को मिलना सम्भव है। यह अत्यन्त प्रसिद्ध बात है कि हमारे देशी भाषा के संपूर्ण लेखकों को प्राचीन संस्कृत-ग्रंथों के रचनाकारों व उनकी रचनाओं पर बड़ा गर्व रहा है।

पिछली बार मैंने बार-बार संस्कृत-ग्रंथों के प्रमाण तुम्हें सुनाए थे, उसका भी यही कारण था। उस समय मेरा उद्देश्य देशी भाषा में रचित ग्रंथों का तिरस्कार करना नहीं था। दूसरा, मेरा यह भी उद्देश्य था कि तुम जैसे सुशिक्षित लोगों को संगीत का थोड़ा-सा इतिहास भी समझना चाहिए। अब इस चर्चा के बीच-बीच में

मैं यथाप्रसंग देशी भाषा के संगीत-ग्रंथों के विषय में भी अवश्य बोलता जाऊँगा। अस्तु, अब मैं अपने मुख्य विषय की ओर लौटता हूँ, किंतु ऐसा करने के पूर्व एक विषय पर तुम्हारे विचार जानने की मेरी इच्छा है। पिछले समय हमने इस विषय की चर्चा प्रश्नोत्तर-पद्धति द्वारा की थी, अब आगे हमें उसी प्रश्नोत्तर-पद्धति से ही चर्चा करनी चाहिए, अथवा तुम लोग प्रश्न न करते हुए चुप बैठे रहोगे और मैं ही व्याख्यान के रूप में जानकारी देता चलूँ? मुझे याद है कि पिछले समय मैं यह कह चुका हूँ कि तुम्हारे जैसे बुद्धिमान विद्यार्थी को प्रश्न पूछने का कष्ट देने की भी आवश्यकता नहीं, साथ ही यह बात भी सत्य है कि किसी भी महत्त्वपूर्ण विषय को समझने व समझाने के लिए प्रश्नोत्तर-पद्धति ही सुविधाजनक होती है। यह भी कहना ठीक है कि हमारे कुछ प्राचीन ग्रंथकर्ताओं ने कुछ विषयों को इसी प्रकार से सीखा-सिखाया है, परंतु यह तो तुम्हारी सुविधा का प्रश्न है। तुम्हें जैसा रुचिकर हो, वैसा ही करने का मेरा निश्चय है। तुम्हारे प्रश्न करते रहने से मेरे बोलने की ओर तुम्हारा अधिक ध्यान रहेगा, और मुझे भी यह दिखाई देता रहेगा कि मेरा कथन कितने अंशों में तुम समझते जा रहे हो: यह लाभ अवश्य होगा। तुमने अपने बुद्धि-बल से मुझे पीछे छोड़ा कि मैंने अपने को धन्य समझा। 'शिष्यादिच्छेत्पराभवम्', ऐसा कहनेवाले शिक्षकों में से मैं अपने को भी एक समझता हूँ। तो फिर, अब निस्संकोच रूप से मुझे बता दो कि हमें किस पद्धति को स्वीकार करना है।

प्रश्न : जिस अभिप्राय से आपने यह बात हमारी पसंद पर निर्भर कर दी है, उस उद्देश्य को देखते हुए हमें भी यह प्रामाणिक रूप से कहना पड़ेगा कि समय-समय पर प्रश्न करते रहने से हमें उत्तम रूप से बोध होता है। अत: आप पहले-जैसी ही चर्चा चालू रखिए!

उत्तर : बहुत अच्छी बात है। तो अब भैरव ठाठ के रागों की ओर बढ़ना है न?

प्रश्न : तनिक ठहरिए। अभी आपने कहा था कि आजकल श्रुति-स्वर-चर्चा सभी ओर होती जा रही है। जबकि ऐसा हो रहा है, तब इस विषय पर इस समय थोड़ी-सी चर्चा यदि आपके द्वारा की जाए, तो कैसा रहेगा? हम तो समझते हैं कि इस प्रकार करने से चाहे इस प्रसिद्ध चर्चा में भाग लेने की सामर्थ्य हम में उत्पन्न न हो सके, परंतु हम उसे समझ तो अवश्य सकेंगे। हमें बहुत विस्तृत जानकारी अपेक्षित नहीं है, केवल इस चर्चा को समझने-योग्य व हमारे स्वत: के योग्य बातें ही बता दीजिए, जिससे हम किसी निश्चय पर पहुँच सकें। बस इतना ही पर्याप्त होगा।

उत्तर : ऐसा करने में मुझे कोई आपत्ति नहीं, परंतु एक बात तुम्हारे ध्यान में ला देना आवश्यक है कि यह स्वर-श्रुति-चर्चा, सदैव ग्रंथों के आधार पर ही की जाती है, अत: ऐसा करते हुए मुझे कदम-कदम पर ग्रंथों के उद्धरणों की सहायता लेनो आवश्यक होगी। इससे तुम्हें ऊबना न चाहिए।

प्रश्न : नहीं-नहीं, वह तो उलटे हमारे लिए आनंद-दायक बात ही होगी।

उत्तर——तो ठीक है। अब हम उसी विषय पर थोड़ी-बहुत चर्चा करेंगे। पिछली बार भी मैं उस संबंध में थोड़ा-सा बोल चुका हूँ, परंतु अब मैं उस विषय को एक क्रम से हाथ में लेता हूँ। मेरे कथन की ओर ठीक रूप से ध्यान देना! जब भी मैं अनेक लोगों के मत बताऊँगा, तब सभी विषयों व सिद्धांतों पर अपना स्वतः का मत भी बताता चलूँगा। जो तुम्हें उचित जँचे, पसंद करते जाना। यह मैं स्पष्टता से स्वीकार करूँगा कि श्रुति-स्वरों का विषय अभी भी विवाद-ग्रस्त स्थिति में है। हमें भी इस विषय में सिद्धांत बनाने की आवश्यकता नहीं है। प्रत्येक ग्रंथकार अपनी-अपनी बुद्धि-सामर्थ्य के अनुसार कल्पना करता है, अतः मतभेद होना स्वाभाविक ही है। यह सदैव होता आया है, और होता चला जाएगा, यह सृष्टि-क्रम ऐसा ही है। लोगों की कल्पना पर जिस प्रकार हम दोषान्वेषण करते हैं, उसी प्रकार क्या अपना कल्पना-छिद्रान्वेषण लोग न कर पाएँगे? प्रत्येक लेखक का हेतु अपने विचार निष्कपट रूप से समाज के सम्मुख उपस्थित करना होता है। इससे जन-साधारण के हृदय में उसके प्रति अपने आप श्रद्धा-भाव उत्पन्न हो जाते हैं। पाठकों को कोरी दांभिक प्रवृत्ति से घृणा होती है। उन्हें तो ज्ञान प्राप्त होना चाहिए। इस श्रुति-स्वर-प्रकरण में अपनी ओर से मैं कुछ नहीं कहूँगा। इस समय उपलब्ध ग्रंथों में इस विषय की जो-जो बातें हैं, वही मैं व्यवस्थित रूप से तुम्हारे सामने रखता जाऊँगा; जहाँ तुम्हें शंका उत्पन्न हो, वहाँ मुझसे प्रश्न करना चाहिए। यदि तुम्हारे मन में कोई नवीन विचार उत्पन्न हो, तो निर्भय-रूप से उसे मुझे बताना, हम उस पर भी विचार करेंगे।

प्रश्न——इस समय किन-किन ग्रंथों को उपलब्ध समझना चाहिए?

उत्तर——वे निम्न-प्रकार हैं—नारदीय शिक्षा, मांडूक्य शिक्षा, भरत-नाट्यशास्त्र, संगीत-रत्नाकर, संगीतसमयसार, संगीतदर्पण, सद्रागचंद्रोदय, रागतरंगिणी, स्वरमेल-कलानिधि, रागविबोध, पारिजात, अनूपविलास, अनूपरत्नाकर, अनूपांकुश, चतुर्दण्डि-प्रकाशिका, संगीतसारामृत इत्यादि। इस समय इतने ग्रंथ भी क्या कम हैं?

सामवेद के समय में संगीत की क्या स्थिति थी, यह मैं नहीं बता सकूँगा। क्योंकि ऐसी जानकारी देनेवाले विद्वान् से आज तक मेरी भेंट नहीं हुई। श्रुति व स्वरों के विषय में केवल किसी व्यक्ति की कोरी कल्पना मुझे ग्राह्य नहीं है, वरन् ग्रंथों के आधार पर यदि कोई सिद्धांत स्थापित करे, तो वह अधिक योग्य होगा। अस्तु, अब हम मुख्य विषय की ओर बढ़ें। यह तो तुम्हें ज्ञात ही होगा कि 'श्रुति' शब्द 'श्रु' (सुनना) धातु से निकला है। यह भी तुम्हें बता चुका हूँ कि संगीतोपयोगी नादों का विचार करते हुए इस शब्द का अर्थ भी हमें सीमित करना पड़ेगा। हमारे प्राचीन संगीत-ग्रंथकर्ता यदि किसी एक बात पर एकमत हुए हैं, तो वह यही कि संगीतोपयोगी संभव नादों या श्रुतियों की संख्या एक सप्तक में २२ मानी जाती है और इसी प्रमाण से शुद्ध स्वर ७ माने जाते हैं। यद्यपि इन नादों का स्थान सभी के मत से एक-सा नहीं है, तथापि उक्त नाद-संख्या के विषय में मतभेद नहीं है। यह मान्यता श्रुति-स्वर-चर्चा के प्रारंभ में बहुत महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। इस मान्यता

के कारण हमें इस नीरस चर्चा में पड़ने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती कि आरंभिक अवस्था में समाज में एक-दो-तीन स्वरों का गायन प्रचलित था। मैं यह नहीं कहता कि यह सब निरुपयोगी है, परंतु अफ्रीका या दक्षिण-अमेरिका के कार्य हमें घर बैठे करने की अपेक्षा उद्योगी पाश्चात्य विद्वानों को करने के लिए सौंपना क्या अधिक उचित नहीं है? आजकल सर्वत्र अँग्रेजी का प्रचार हो गया है, उसमें पाश्चात्य विद्वानों द्वारा लिखित इस विषय के ग्रंथ जिज्ञासु व्यक्ति प्राप्त कर सकते हैं। अस्तु, हमें मानव प्राणी के आदिम काल के संगीत की चर्चा नहीं करनी है। इस संबंध में अँग्रेजी भाषा के इतिहास-संबंधी ग्रंथ तुम्हें पढ़ने चाहिए। कहीं-कहीं आवश्यकता होने पर मैं भी उन ग्रंथों के उद्धरण तुम्हें आगे पढ़कर सुनाऊँगा, परंतु यह हमारा मुख्य विषय नहीं है। हमारी चर्चा का विषय तो २२ श्रुति व सप्त स्वर निश्चित होने के पश्चात् रचे हुए ग्रंथों पर विचार करना है।

एक सप्तक में २२ श्रुतियाँ होने की स्वल्प कल्पना तुम्हें पहले से है। मैं तुम्हें यह भी बता चुका हूँ कि तीन सप्तक से अधिक स्वरों में सभी व्यक्ति नहीं गा सकते। अभी हम यही मान कर आगे बढ़ें। 'एक सप्तक में २२ से अधिक संगीतोपयोगी नाद निकलना बिलकुल असल हैं', हमारे ग्रंथकारों के सन्मुख ऐसी ही कुछ धारणा रही थी। हमारे ग्रंथकार चतुर थे। उन्होंने २२ से अधिक नाद गले से निकालना असंभव मानकर और यह समझकर कि यह धारणा आगामी पीढ़ी में आदरपूर्वक स्वीकार होकर चलती रहे, अपने ग्रंथों में लिख दिया कि मानव-शरीर में नाद उत्पन्न करने की केवल २२ नाड़ियाँ ही हैं। वीणा वाद्य तो उनके पास था ही। बस, उस वाद्य के खड़े तार और आड़ी तरबें देखकर ही, संभवतः उपर्युक्त कल्पना उन्हें उत्पन्न हो गई हो। यह कल्पना बहुत प्राचीन है और हमारे संगीतज्ञ विद्वान् इस समय भी उसे दृढ़तापूर्वक पकड़े हुए हैं। यह बाईस नाड़ियाँ कहाँ और कैसी होती हैं तथा उनसे २२ नाद किस प्रकार निकलते हैं, ऐसे अविश्वाससूचक प्रश्न ये विद्वान् पूछने ही नहीं देते। मैंने देखा है कि ये लोग संगीत की इन अनेक गूढ़ताओं को छोड़ते हुए बहुत सरल और सुविधापूर्ण ऐसा उत्तर दे दिया करते हैं कि 'इस विषय में बहुत-कुछ रहस्य है' या 'यह शास्त्रों में लिखा कथन है।' प्राचीन कल्पना तथ्यपूर्ण है, इसे सिद्ध करने के लिए हमारे विद्वान् संपूर्ण शास्त्रों का अध्ययन व उसका उपयोग भी करते हैं; प्राचीन कल्पना भी भ्रमपूर्ण हो सकती है, इसे कदापि स्वीकार नहीं करते। यह बात उनकी समझ में नहीं आती कि प्राचीन ग्रंथकार भी हमारे जैसे ही सीधे-सादे व्यक्ति थे तथा हमारे जैसी उनके द्वारा भी भूलें होना संभव है। अस्तु, इन २२ नाड़ियों को खोज निकालने का कार्य हमें नहीं करना है, बल्कि यह मान्यता लेकर आगे बढ़ना उपयुक्त है कि हमारे ग्रंथकारों ने एक सप्तक में क्रमिक ध्वनि-वृद्धिवाले २२ नाद माने हैं। इन २२ नादों के उन विद्वानों ने सुन्दर-सुन्दर नाम उन्हें व्यवहार में पहचानने के लिए रख दिए हैं। परंतु मित्रो! इन सुन्दर नामों से ही हमारा कार्य पूर्ण नहीं होता। ये २२ नाद अपने कानों में प्रत्यक्ष होने आवश्यक हैं। अतः इस समय हमारे विद्वान् यह कौनसा नाद है और इस पर कौनसा स्वर स्थापित होना चाहिए, आदि प्रश्नों की चर्चा करते रहते हैं। यहाँ एक भूल न कर बैठना कि प्राचीन २२ नाद

अर्थात् बिलकुल भरत, मतंग के द्वारा गाए जानेवाले नादों की ही हमारे वर्तमान विद्वान् शोध कर रहे हैं, ऐसी भ्रमयुक्त धारणा तुम्हारी न होनी चाहिए।

प्रश्न——नहीं-नहीं, ऐसा हम क्यों समझेंगे ? उन नादों में परस्पर क्या संबंध है, यह मुख्य बात ही यहाँ हमें समझनी है।

उत्तर——तुमने ठीक कहा। एक इच्छित नाद को षड्ज मानकर ग्रहण करने पर शेष नादों के प्रमाण, ग्रंथों के बताए हुए ढंग पर कौन-कौनसे होते हैं, इस प्रश्न पर हमें विचार करना है। नादों में परस्पर संबंध स्थापित करने के लिए प्रमुख दो साधन अपने यहाँ प्रसिद्ध ही हैं।

प्रश्न——भला, वे कौन-से साधन ?

उत्तर——पहला साधन तार की लंबाई का, दूसरा साधन नाद के कंपनों का। कंपन की सहायता से नाद-संबंध स्थिर करने की कल्पना हमारे संस्कृत-ग्रंथकर्ता जानते थे, यह बात हमारे विद्वानों द्वारा समर्थित नहीं होती। तार की लंबाई से नाद-संबंध स्थिर करने की कल्पना अवश्य ही बहुत प्राचीन ज्ञात होती है। हमारे विद्वान् कहते हैं कि तार की लंबाई का व कंपन का परस्पर उत्तम संबंध होता है। कंपन जानने पर तार की लंबाई निकाली जा सकती है व तार की लंबाई ज्ञात होने पर आंदोलन (कंपन) निकाले जा सकते हैं। यह कार्य गणित का है, अतः इस में त्रुटि होना संभव नहीं है। सूक्ष्म स्वरों के आंदोलन आदि बातें बतानेवालों की अन्य सब बातों में अनुकूलता होने पर उनका मत समाज के द्वारा आदर प्राप्त करता है।

प्रश्न——अनुकूलता से क्या आपका तात्पर्य यंत्र-तंत्र (वाद्य-वादन) की अनुकूलता से है ?

उत्तर——वह तो होना ही चाहिए, परंतु और भी कुछ बातें होनी आवश्यक हैं, ऐसा मेरा मत है।

प्रश्न——वे कौनसी ?

उत्तर——प्रथम तो उसे स्वतः ही उत्तम स्वर-ज्ञान व राग-ज्ञान होना चाहिए। फिर श्रेष्ठ संगीत-संप्रदाय के अनुभवी, घरानेदार और स्वर-ज्ञानी, ऐसे गायक की संपूर्ण सहायता भी प्राप्त होनी चाहिए। प्रायः ऐसे प्रत्यक्ष गायक अशिक्षित पाए जाते हैं, इनका योग्य उपयोग करने का ज्ञान होना इतना सरल व सुविधापूर्ण नहीं होता, जितना हम समझते हैं।

प्रश्न——तो आपका कथन यह है कि ऐसे सूक्ष्म स्वरों के विषय में एक व्यक्ति स्वर लगाए, दूसरा उसे पसंद करे व परख करे, तीसरा तार की लंबाई देखे, चौथा

श्लोकों को उपस्थित करे, पाँचवाँ गणित-शास्त्र प्रयुक्त करे। यह रीति भी संपूर्ण रूप से समाधानकारक नहीं हो सकती ?

उत्तर--मेरा कथन तुम्हारे ध्यान में ठीक आ गया। ऐसी कार्य-पद्धति में विभागीय रूप से श्रम होने के कारण एकाध बार उलटा-सीधा परिणाम उत्पन्न हो सकता है, व उससे समाज में व्यर्थ की कलह व मतभेद बढ़ना संभव है। एक-दूसरे की सहायता व सहानुभूति तो आवश्यक है, परंतु ये सहायक यदि उत्तम स्वर-ज्ञानी व राग-ज्ञाता नहीं हुए, तो उनके कथन का प्रभाव नहीं हो सकता। मैं एक क्षण के लिए भी यह नहीं कहूँगा कि हमारे श्रुति-स्वर-चर्चा करनेवाले विद्वान् ऐसे नहीं हैं। जो योग्य व अधिकारी विद्वान् हैं, उनके मतभेदों को तुम्हें सदैव आदर देना है। मैंने तो यह एक सामान्य सूचना दी है, क्योंकि हमारे लेखकों में कदाचित् कोई-कोई स्वर-ज्ञान-शून्य भी दिखाई पड़ सकते हैं।

प्रश्न--फिर ऐसे लोग ग्रंथ लिखने की ओर कैसे प्रवृत्त हो जाते हैं ?

उत्तर--Rittar साहब ने कुछ पश्चिमी लेखकों के विषय में क्या कहा है, देखो :—

About none of the other arts has so much nonsense been written as about music. A person scarcely able to distinguish one tone or note from another, one air from another, will not hesitate to judge of and condemn fine musical works in a most imperative manner; nay, I have seen criticism, novels, and sketches on musical subjects written by persons who could not sing or play the simplest tune and to whom theory was a 'terra-in cognita'.

यह अनुभव जबकि पश्चिम की ओर आ सकता है, तो हमारे यहाँ क्यों नहीं आ सकता ? श्रेष्ठ अधिकारी विद्वान् को तो सम्मान मिलेगा ही। अस्तु, अब अपने विषय पर चर्चा करने के पूर्व मैं तुमसे पूछना चाहता हूँ कि तुमने सितार या वीणा वाद्यों को प्रत्यक्ष रूप से देखा है।

प्रश्न--हाँ-हाँ, हमें आजकल संगीत का चस्का लग गया है न ! मैं कई बार समय मिलते ही अपने नगर के प्रसिद्ध बीनकार वजीर खाँ के यहाँ जा बैठता हूँ। हम में से एक-दो तो सितार सीखते हुए भी पाए गए हैं। परंतु देखिए, खूब याद आई; यह चर्चा चलने से मैं एक बात पूछ रहा हूँ कि कोई-कोई कहते हैं कि गायक की अपेक्षा तंतकार (तंतु वाद्यों के वादक) श्रेष्ठ होते हैं। क्या यह कथन ठीक है ?

उत्तर--गायक की अपेक्षा तंतकार का स्वरज्ञान पर विशेष अधिकार होना संभव है, यह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा। परंतु रागों के विषय में तो मैं कहूँगा कि दोनों की अड़चन एक-सी ही रहेगी। रागों के नियम जिसे ज्ञात नहीं, वह अंधा

ही है। परसों मैंने एक सितारिए का सितार सुना। उसने अपनी अँगुलियाँ खूब तैयार कर ली थीं, परंतु उसका राग-ज्ञान बिलकुल निरुपयोगी था। 'मारवा' नामक जो एक राग है, वैसा उसने आरंभ किया; फिर दोनों मध्यम लगाए, फिर खुशी-खुशी पंचम का प्रयोग भी करने लगा। केवल उसकी तैयारी अवश्य विलक्षण थी, परंतु उसे उसके नियम कुछ भी ज्ञात नहीं थे।

प्रश्न—आपने उससे यह पूछा था क्या?

उत्तर—हाँ, उसने कहा कि इसे नियम ज्ञात नहीं है। कोई ऐसा उत्तर भी दे सकता है कि यह कोई अप्रसिद्ध राग-स्वरूप होगा, परंतु ऐसा ही उत्तर कोई गायक नहीं दे सकता क्या? सारांश यह है कि गायक की अपेक्षा तंतकार अधिक विद्वान् होता है, ऐसा कोई नियम नहीं। राग के नियम-धर्म जिसे उत्तम रूप से ज्ञात होंगे, वही आदर का पात्र होगा।

अच्छा, अब मैं अपने विषय की ओर लौटता हूँ। मुझे यह जानकर बड़ा संतोष हुआ कि तुमने सितार और वीणा को देखा है और हाथों में भी लिया है। इससे मेरा काफी परिश्रम बच गया। सितार में कितने तार होते हैं, उन्हें कैसे मिलाया जाता है, बाज का तार कौनसा है? परदा, मेरु, घोड़ी, चलठाठ, अचलठाठ आदि बातें विस्तार सहित बताने की अब बिलकुल आवश्यकता नहीं है। केवल बिलावल ठाठ इतना कह देने पर ही उस ठाठ के परदों की व्यवस्था एकदम तुम्हारे नेत्रों के सम्मुख उपस्थित हो जाएगी। मुझे स्मरण है कि एक बार मैंने अपने शिष्यों को बताया था कि सितार पर तार-सप्तक के स्वर नीचे के भाग में तथा मंद्र-सप्तक के स्वर ऊपर के भाग में बजाए जाते हैं एवं 'शारीरवीणायां दारव्यां तु विपर्ययः' इस वाक्य से ही यह बात निकाली होगी। मेरा यह कथन सुनकर मेरे शिष्यों को इतना आश्चर्य हुआ कि उस दिन का सारा व्याख्यान इसी संबंध पर होता रहा।

प्रश्न—अब ऐसा भय नहीं रहा, क्योंकि इस संबंध में हमें बहुत जानकारी मिल चुकी है, आप बेशक आगे बढ़ें।

उत्तर—अच्छी बात है। आजकल उपलब्ध संगीत-ग्रंथों में 'मांडूक्य शिक्षा' 'नारदीय शिक्षा' व 'भरतनाट्यशास्त्र', ये ग्रंथ ही अति प्राचीन मानने का व्यवहार दिखाई पड़ता है। हम भी थोड़ी देर के लिए ऐसा ही मान लेते हैं।

प्रश्न—परंतु पाश्चात्य विद्वानों और हमारे विद्वानों ने तो प्राचीन ग्रंथों की बड़ी लंबी-लंबी सूचियाँ दी हैं।

उत्तर—हाँ, परंतु वे केवल सूची-मात्र ही हैं। वे संपूर्ण ग्रंथ आज उपलब्ध भी हैं, ऐसा न समझ बैठना। मैं इस देश के बड़े-बड़े व संगीत के लिए प्रसिद्ध शहरों

में घूमा हूँ, वहाँ कौन-कौन-से ग्रंथ आज मौजूद हैं, यह मैं तुम्हें बता ही चुका हूँ। मैं ऐसा नहीं कहता कि जो ग्रंथ मुझे दिखाई नहीं दिए, वे संसार में हैं ही नहीं। परंतु तुमने कहा उसी प्रकार की कल्पना साथ लेकर मैंने प्रवास किया था, यह अवश्य कहूँगा। किसी-किसी ग्रंथ-नाम के स्थान पर संस्कृत-टीका का नाम ही सूची-निर्माताओं ने लिख दिया है। मेरे कथन का तात्पर्य यह है कि इस संगीत-ग्रंथों की प्रसिद्ध सूची के ग्रंथों का अधिकांश भाग नष्ट हो गया है। हमें अभी तो भरत, नारद, मंडूक को ही प्राचीन मानकर चलना उचित है। यदि किसी ने इससे अधिक प्राचीन जानकारी दी, तो और अच्छी बात है। भरत आदि का काल निश्चित करने का कार्य हम अपने सिर पर नहीं लेंगे; संभवतः यह कार्य कठिन भी होगा। कैसी-कैसी कठिनाई उपस्थित होंगी, उनका अनुमान तुम्हें संक्षेप में कराए देता हूँ। हमारे किसी वर्तमान विद्वान् का मत है कि भरत तीसरी शताब्दी में हुआ था और उस समय 'राग' शब्द का प्रचार ही नहीं था। इधर कल्लिनाथ की टीका में राग-स्वरूपों के वर्णन में भरत का आधार लिया हुआ दिखाई देता है। तब फिर यह भरत, पहले से भिन्न व्यक्ति होना चाहिए। कोई यह तर्क भी कर सकते हैं कि भरत नाम ही कुटुम्ब-वाचक है। 'नारदी शिक्षा' में 'ग्राम-राग' का स्पष्ट उल्लेख है। तब यह कौनसा नारद है व किस समय में हुआ, ये प्रश्न भी हमारे सामने उपस्थित होंगे। इस प्रकार की उलझनों से बिना लिखित प्रमाणों के हम कैसे सुरक्षित रूप से यथार्थ निर्णय पर पहुँच सकेंगे। मेरी समझ से हमारे लिए यही सुरक्षित मार्ग है कि जहाँ-जहाँ ऐसे ऐतिहासिक महत्त्व के प्रश्न उत्पन्न हों, वहाँ ये प्रश्न उस विषय के निष्णात विद्वानों को निर्णय के लिए सौंप दें। हमें बहुरूपियानपन का या सर्वज्ञता का दावा नहीं करना चाहिए। ग्रंथकारों ने क्या कहा, यह हमारा विषय है। मगर उन्होंने यह कब, किस काल में कहा, यह खोजना हमारा विषय नहीं है। हमें श्रुति-स्वर-प्रकरण पर उनके ग्रंथों द्वारा प्रकाश चाहिए। उसमें भी केवल उनकी कल्पना व उनका शब्द-पांडित्य ही हमारे लिए उपयोगी नहीं हो सकता।

प्रश्न : क्या ग्रंथकारों द्वारा ऐसी रचनाएँ भी हुई हैं ?

उत्तर : हाँ, 'रत्नाकर' की टीका यदि तुम देखो, तो विश्वावसु, मतंग, तुम्बरु, भरत, कोहल आदि के उल्लेख व उद्धरण प्राप्त होंगे। यदि हम अन्वेषण की दृष्टि से देखें, तो यह सारा पांडित्य बिलकुल निरुपयोगी है। शार्ङ्गदेव ने अपना श्रुति-प्रकरण बड़े ही नवीन तरीके से लिखा है और यह बहुत युक्तिसंगत भी है। कल्लिनाथ की टीका के प्रपंच में अभी मैं तुम्हें नहीं ले जाऊँगा, क्योंकि उस टीका का शब्दशः अनुवाद अपने किसी विद्वान् ने किया है, वह तुम पढ़ देखना। श्रुति व स्वर के भेद-प्रभेद कथन करते हुए संस्कृत-ग्रंथकारों ने जो पांडित्य प्रदर्शित किया है, वह देखकर हँसी आती है। उस समय यह चल गया, परंतु अब युग दूसरा हो गया है। उनके इस 'अव्यापारेषु व्यापार' का हम समर्थन नहीं करेंगे। रणन, अनुरणन तथा उसके भेद, इनसे उत्पन्न होनेवाले श्रुतित्व व स्वरत्व का अन्वेषण करने में हमें अब समय नहीं व्यय करना है। प्रत्येक श्रुति भिन्न तार पर स्थापित करने की अव्यवहारिकता का महत्त्व

शार्ङ्गदेव ने नहीं समझा, परंतु हमारे ग्रंथकारों में भी ऐसे क्वचित् ही हैं, जो परंपरागत धारणा को बदलने का साहस करें। इस प्रसंग में हमें प्रत्येक संस्कृत-ग्रंथकार द्वारा निर्धारित श्रुतियों व स्वरों के स्थान को जाँचकर देखना है। आजकल हम प्रायः अपने अशिक्षित गायकों पर हँसते हैं, जिन्हें श्रुति व स्वरों के भेद-प्रभेद व इनके संबंधों का ज्ञान नहीं है। परंतु यह विषय हमारे संपूर्ण ग्रंथकार भी समझे हुए थे, यह बात भी नहीं पाई जाती। साथ ही यह भी नहीं कहा जा सकता कि हमारे वर्तमान सुशिक्षित संगीतज्ञ विद्वानों की भी इस विषय में भ्रमपूर्ण धारणा नहीं है। मेरी समझ से ऐसा अज्ञान प्रत्येक काल में समाज में रहा है तथा रहता है। पूर्वी भारत में प्रवास करते हुए मेरी भेंट एक सुशिक्षित विद्वान् से हुई, उनसे श्रुति, मूर्च्छना, ग्राम आदि की चर्चा हुई। उनकी व मेरी इस संबंध में जो बातें हुईं, क्या तुम उन्हें सुनना चाहते हो।

प्रश्न——अवश्य बताइए, क्या-क्या बातें हुईं ?

उत्तर——उस वार्तालाप का सारांश मैंने अपनी डायरी में इस प्रकार लिखा है :—

मैं—महाराज, आप तो सुशिक्षित हैं, अतः मुझे विश्वास है कि आप इस विषय में पूर्ण रूप से युक्तिसंगत व तर्कपूर्ण चर्चा करेंगे। आप अवश्य ही संगीत के विषय को पौराणिक कथाओं से संबद्ध नहीं करेंगे, यह मुझे आशा है।

पंडित—मैं बहुत धर्मनिष्ठ मनुष्य हूँ तथा प्राचीन शास्त्रों का माननेवाला भी हूँ। मैंने तो अपने पंडितों के नाद पर विचार और 'ॐ' शब्द से सर्वसृष्टि कैसे उत्पन्न हुई, इस विषय को आगे बढ़ाया है।

मैं—महाराज, मुझे खेद है कि मैं इतने गहरे पानी में नहीं उतर पाया हूँ। मैं तो केवल संगीत-शास्त्र के ग्रंथों से ही चिपटा रहा हूँ। उसमें से भी मैं शरीर-संबंधी व नादोत्पत्ति-संबंधी विचारों का भाग अपने वार्तालाप में छोड़ने को तैयार हूँ।

पंडित—क्या तुम ब्राह्मण हो ?

मैं—जी हाँ, मैं ब्राह्मण हूँ। यह बात नहीं है कि मेरी श्रद्धा ईश्वर पर नहीं है। परंतु मैं संगीत व धर्म, इन दोनों विषयों को अलग-अलग रहने देना चाहता हूँ। मेरा विचार है कि अब इन दोनों विषयों को इस युग में परस्पर मिला देने की आवश्यकता नहीं है। ऐसा करने से संगीत की उन्नति में बाधा ही उपस्थित होगी।

पंडित—मैं तुम्हारे मत का नहीं हूँ। शरीर से षड्ज आदि स्वर कैसे पैदा होते हैं, जब तुम यह नहीं जानते, तो तुम्हें दूसरी क्या बात समझाई जाए ?

मैं—अच्छी बात है, संक्षेप में यही समझा दीजिए ?

पंडित—तुम ब्राह्मण हो, अतः तुम्हारे कुछ समझ जाने की आशा भी है। मुसलमान आदि तो इसे क्यों समझेंगे ?

मैं—जी हाँ, यह लाभ तो मुझे है ही। परंतु षड्ज के विषय में आप क्या कह रहे थे ?

पंडित—सुनो, अपनी पीठ की हड्डी के सिरे पर, अर्थात् हमारे बैठने की जगह के निकट, पाँच-छह हड्डियाँ एक में एक जुड़ी हुई हैं। यहीं से षड्ज, अर्थात् इन छह हड्डियों से उत्पन्न होनेवाला नाद निकलता है। इसी लिए इसका नाम 'षड्ज' हुआ। प्रायः लोग षड्ज का अर्थ करते हैं, 'अन्य छह स्वरों का उत्पादन करनेवाला' परंतु लोगों को यह शास्त्रीय रहस्य क्या मालूम? हमारे प्राचीन ऋषियों ने शरीर के अंदर चक्र माने हैं। क्या यह झूठ ही है? यह बात बड़ी गंभीर व रहस्यपूर्ण है। मैंने इस विषय पर घंटों तक विचार किया है।

मैं—पंडित जी, इतनी छोटी उम्र में (ये लगभग ३० वर्ष के दिखाई देते थे) ही आपने इधर बहुत समय दिया।

पंडित—यह तो मेरा शौक है। अच्छा, श्रुति आदि क्या हैं, यह तुम समझते हो? लोग कहते हैं कि ये स्वरों के छोटे-छोटे भाग हैं। कोई वर्तमान काल के विद्वान् इन्हें Quarter tons कहते हैं, यह सब झूठ है।

मैं—मैं भी ऐसे ही समझनेवालों में हूँ, परंतु शायद यह भ्रमपूर्ण धारणा होगी।

पंडित—निस्संदेह, तुमने इंद्रधनुष तो देखा ही होगा। क्या तुम इंद्रधनुष के रंगों को अलग-अलग कर सकते हो?

मैं—मुझसे यह नहीं हो सकता।

पंडित—तो बस, हो गया। यही विशेषता इन श्रुतियों में समझो; 'सा' कहा कि उसकी ४ श्रुतियाँ भी आ गईं, क्योंकि वे तो इसका अंग ही हैं, उन्हें कौन व कैसे अलग कर पाएगा? वे निराली दिखाई ही नहीं देंगी। बिना इनके एकत्रित हुए 'सा' उत्पन्न ही नहीं होगा। अजी, कोई पदार्थ दो या तीन पदार्थों का Chemical Compound (रासायनिक मिश्रण) हो, तो उस मिश्रित पदार्थ में वे पदार्थ अलग-अलग कभी भी दिखाई नहीं पड़ेंगे।

मैं—तो आपके मत से श्रुतियों का उपयोग कैसे व क्या होगा?

पंडित—उपयोग, यह तुमने क्या पूछा? तुम जिन स्वरों का उपयोग करते हो, वे कहाँ प्रयुक्त होते हैं? वे ही तो श्रुतियों के मिश्रण के परिणाम हैं। मैं अपना मत तुम्हें स्पष्ट रूप से ही बताए देता हूँ। 'श्रुति किसी को न तो कभी दिखाई दी है और न कभी दिखाई पड़ेगी ही।'

मैं—महाराज! आप मुझे इसके लिए क्षमा करेंगे कि मुझे आप-जैसे विद्वान् से ऐसा मत सुनकर कुछ आश्चर्य हो रहा है। परंतु आपके कथनानुसार अदृश्य श्रुतियों को अवयव-रहित स्वरों से अलग करते हुए उनकी ४, ३, २, ४, ४, ३, २ की व्यवस्था, कब और कैसे की होगी?

पंडित—यही तो संपूर्ण गुप्त रहस्य है! यह एक कोरी कल्पना ही है।

मैं—परंतु यह कल्पना भी किसी आधार पर की गई होगी?

पंडित—वह इस तरह तुम्हारी समझ में नहीं आएगी।

प्रश्न : यह पंडित तो विलक्षण ही दिखाई पड़ते हैं। भला, इन्होंने यह सब धारणा कहाँ से सामग्री लेकर तैयार की होगी?

उत्तर : मेरी समझ में उसका मूल यह रहा होगा :—

'श्रुतेश्चतुर्थ्यादेर्मारुताद्याहतोत्पन्नप्रथमध्वनेरनंतरंभावी; प्रथमतंत्र्यामाहतायां तद्देशावच्छेदेन प्रथमध्वनिरुत्पद्यते सा श्रुतिः। यस्तु प्रथमध्वनिव्यापको ध्वनिप्रवाहस्तदनंतरं श्रूयते तदनुरणनं, तदेवात्मा यस्य सः स्वरः। यथाऽप्सुचरतां मार्गो मीनानां नोपलभ्यते। आकाशे वा विहंगानां तद्वत् स्वरगता श्रुतिः।'

प्रश्न : इस संस्कृत-वर्णन का उस पंडित ने जो अर्थ किया, वैसा तो कोई भी कर सकता है न?

उत्तर : परंतु फिर उस संस्कृत पंडित का ही मूल्य कितना था, यह भी लोगों की समझ में आ जाएगा। अस्तु, आगे सुनो!

मैं—महाराज! मूर्च्छना का क्या अर्थ है, एक बार इसे भी समझा दीजिए?

पंडित—प्रयत्न करता हूँ। तुमने सितार पर काफी राग की गत 'दादिर दारा दारदा' सुनी है।

मैं—हाँ, यह गत मेरी सुनी हुई है।

पंडित—इसमें मैंने कौनसा अक्षर छुपाया है, यह तुम्हारी समझ में आया?

मैं—मेरी समझ से उसका अंतिम अक्षर 'दा' जो पंचम पर आता है, उसे ही आपने गुप्त रखा है।

पंडित—निस्संदेह, यही मैंने छोड़ा है। अब देखो, सा रे ग म, स्वर मैंने स्पष्ट रूप से दिखाए, परंतु पंचम को छुपा दिया, ऐसा करने पर भी तुम्हें वह दिखाई दिया। ठीक है न? वह तुम्हारी दृष्टि के सम्मुख बिना मेरे प्रयत्न के उपस्थित हो गया और ऐसा एक बार हुआ कि उसके पिछले स्वरों का कार्य पूरा हुआ। तुम्हीं देखो, पंचम स्वर मन में आते ही, पिछले सारे स्वर अपने-आप तुम्हें विस्मृत हो गए। इन स्वरों के अदृश्य हो जाने को ही हमारे प्राचीन विद्वानों ने मूर्च्छना कहा है। देखा न, कैसा अद्भुत शास्त्रीय रहस्य है? योग्य अधिकारी के बिना इसमें कुछ भी समझ में नहीं आ सकता। यह मूर्च्छना का मर्म बिना गुरु के कैसे समझ में आ सकता है?

मैं—मैं तो स्पष्ट रूप से स्वीकार करता हूँ कि यह व्याख्या मैंने आज ही पहली बार सुनी है। मेरी तो बात ही क्या, परंतु कोई यह भी कह सकते हैं कि हमारे बहुत-से संस्कृत व देशी भाषाओं के ग्रंथकर्ताओं ने यह मर्म नहीं समझा होगा। हाँ, मूर्च्छना की व्याख्या अवश्य सभी की प्रायः एक ही है।

पंडित—अजी, तुम ग्रंथों की उक्तियों का अर्थ जैसा ऊपरी-ऊपरी करते हो, मैं वैसा नहीं करता। मैं Philosophy (तत्त्व-ज्ञान) की दृष्टि से देखता हूँ। प्राचीन पंडित क्या मूर्ख थे? उनके लिखने की शैली ही भिन्न थी, अर्थात् स्वरों का आरोह-अवरोह यानी मूर्च्छना! परंतु आरोह, अवरोह करने की आवश्यकता ही क्यों पड़ी? यह भी किसी ने खोज की है? इस बात पर विचार करने में साधारण मनुष्य का तो मस्तक चकराने लगेगा। गत बजाते हुए ऐसे गुप्त स्वर सदा दिखाए जाते हैं। कभी सा, कभी प और कभी रे; इस प्रकार स्वर गुप्त हो सकते हैं।

मैं—महाराज! मूर्च्छना के संबंध में आपकी कल्पना मुझे थोड़ी-सी समझ में आ गई। अब 'ग्राम' के विषय में बताइए?

पंडित—कहता हूँ। 'ग्राम' का वास्तविक अर्थ ही कोई-कोई नहीं समझते। 'ग्राम' शब्द संस्कृत का है। वह तो स्थलवाचक स्पष्ट है ही। तब 'ग्राम' यानी एक स्थान होना चाहिए। तो वह स्थान कहाँ होगा? तुम अपने गले पर हाथ फिराते चलो, और मेरे कथन की वास्तविकता का अनुभव करते जाओ। केवल मेरे कथन पर ही विश्वास न करो। 'का' इस अक्षर का उच्चारण कहाँ से होता है? 'की' व 'कू' अक्षर कहाँ से उच्चारित होते हैं? क्या सब वर्णों में आ, ई, ऊ, ये तीन स्वर प्रधान नहीं हैं? तुम अपने गले पर हाथ लगाकर देखो कि ये तीन स्वर निर्दिष्ट स्थानों से उत्पन्न होते हैं। ये गले के तीन स्थान ही 'ग्राम' समझने चाहिए।

मैं—यह नियमित स्थान सभी को मिल सकना, एक उलझन ही है।

पंडित—वह तो है ही! कहते ही हैं कि जो खोजेगा वह पाएगा। हमारे विद्वानों ने संपूर्ण बातें इस शरीर में ही रख दी हैं; दूर जाने की जरूरत ही नहीं। दूसरी बात सुनो, तुमने संस्कृत-ग्रंथों में पढ़ा है कि अपने सप्त स्वर, सप्त द्वीपों से उत्पन्न होते हैं। इसका रहस्य तुम क्या समझे? देखें बताओ?

मैं—महाराज! मैं आपकी कल्पनाओं में पहले से ही गड़बड़ में पड़ गया हूँ। इसलिए यह बताने-योग्य धैर्य मुझमें नहीं रहा। मुझे कई वर्षों का संगीत-संबंधी अनुभव है, परंतु उसका क्या उपयोग? यह भाग समझा देनेवाला भी तो कोई चाहिए। मैं शपथपूर्वक कहने को तैयार हूँ कि यह अर्थ हमारी ओर के लोगों को अभी भी नहीं सूझा है।

पंडित—नहीं, शपथ लेने की कोई आवश्यकता नहीं। मैं तुम्हारी बात सत्य ही मानता हूँ। वह विषय ब्राह्मण के सिवाय अन्य व्यक्तियों को आसानी से समझ में नहीं आ सकता। इसी लिए मैंने आरंभ में ही तुमसे पूछा था कि तुम ब्राह्मण हो?

मैं—महाराज! मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि हमारी ओर के ब्राह्मणों द्वारा भी इस विषय की इस प्रकार सुलझी व्याख्या नहीं हो सकती। यह तो निराली ही दिशा है; परंतु हाँ, आप सप्त द्वीपों के विषय में बोलनेवाले थे?

पंडित—गले के निचले बाजू में इर्द-गिर्द सात हड्डियाँ हैं, उनके ही ये सात नाम हैं। ऐसा नहीं, हाथ लगाकर देखो। केवल मेरे कहने से गर्दन मत हिलाओ।

मैं– यह सब मैं घर जाकर जाँच करके देखूंगा। यह सब स्वस्थ मस्तिष्क से करना पड़ेगा। आपकी कल्पना निश्चय ही विकट है। साधारण स्तर के संस्कृत-पाठक को यह नहीं सूझ सकती। परंतु मुझे यह सब सुनकर उस निर्दय ग्रंथकार के लिए हृदय में रोष उत्पन्न हो रहा है। देखिए, संगीत-जैसे सार्वजनिक मनोरंजन के विषय में इतना गंभीर वेदांत छुपा रखा है। आजकल लोगों द्वारा संस्कृत-ग्रंथों की ओर झाँककर देखना बंद हो गया है। यह देखते हुए ऐसा होना बिलकुल योग्य ही है। मैं भी अपनी ओर के लोगों को यह व्याख्या कैसे सुना पाऊँगा? परंतु जरा ठहरिए, आपके सारे संगीत-ग्रंथ कोई निराले तो नहीं हैं न?

पंडित—नहीं, नहीं, ग्रंथ वे ही 'रत्नाकर', 'दर्पण' आदि हैं। केवल अर्थ मेरा स्वत: का ही किया हुआ है।

मैं—इधर आपके मत का कोई दूसरा विद्वान् भी है।

पंडित—भला मैं अपने मत को उनके मत से मिलाने जाता भी कैसे? वे सब तो आजकल के संशोधित मत की ओर झुके हुए हैं। मेरा कथन उनकी समझ में क्यों आने लगा? श्रद्धा बड़ी भारी वस्तु है, बिना इसके ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता।

मैं—वह तो मुझमें है, पर मेरे जैसे और कहाँ मिलेंगे? किंतु आपके अर्थों में ग्रंथ-राग छूट जाते होंगे?

पंडित—निस्संदेह छूट जाते हैं। ऐसा तुम क्यों पूछते हो?

मैं—एकाध उदाहरण देकर यदि आपने यह समझा दिया, तो विस्तृत रूप से समझ पाऊँगा।

पंडित—तुम्हारे श्री राग को लो। 'धैवतांश ग्रहन्यास' अथवा 'धैवतादिकमूर्च्छना' ऐसा उल्लेख है। तो लगनेवाले स्वरों में रे, ध कोमल व मध्यम तीव्र होवेगा, और ये ही स्वर हम प्रयोग में लेंगे।

मैं—श्री राग की मूर्च्छना उत्तरामंद्रा कही गई है, परंतु वहाँ मूर्च्छना का अभिप्राय प्रयुक्त कर दिखा देंगे क्या? कौनसा स्वर कैसे गुप्त किया जाएगा।

पंडित क्या बताऊँ, यह विषय बहुत लंबा है। इस विषय पर मैंने स्वयं के लिए कुछ टिप्पणी लिख रखी थीं, परंतु इस समय उनका मिलना संभव नहीं है।'

अस्तु, इस प्रकार हमारा वार्तालाप हुआ। ये सज्जन उत्तम अँग्रेजी-शिक्षा पाए हुए थे और मुझसे उसी भाषा में बातें की थीं। ये ग्रेज्युएट भी थे। कहने का तात्पर्य यही है कि यह ही नहीं मान लेना चाहिए कि चमत्कारिक पागलपन या काल्पनिकता पहले ही होती थी और इस समय नहीं होती। अत: हमें क्रमश: प्रत्येक प्राचीन ग्रंथकारों के श्रुति-स्वर-संबंधी मत देखने हैं। मेरा व्यक्तिगत मत यह है कि उन प्राचीन ग्रंथकारों के सम्मुख पहले २२ श्रुति कायम करके फिर उन पर स्वर

स्थापित करने का अवसर कभी नहीं आया। वे लोग भी हमारी तरह परंपरा से मुख्य शुद्ध स्वर व विकृत स्वर सीखते आए हैं। अमुक स्वर की अमुक श्रुति होगी, यह भी उन्होंने सुन रखा था। जब ग्रंथ लिखने का प्रसंग आया, तब जिसे जो कुछ समझ पड़ा, वह उसने लिख दिया। किसी-किसी ने तो पांडित्य में लपेटकर मुख्य विषय का ही गोल-माल कर दिया। इन प्राचीन लेखकों के संस्कृत-पांडित्य से प्रभावित होकर ही हमारे विद्वान् कहीं-कहीं इन प्राचीन-व्याख्याओं से नए-नए अर्थ निकालते हुए पाए जाते हैं। तुम स्वयं अच्छी तरह सोचकर फिर अपना मत निश्चित करना। अब मैं 'नारदीय शिक्षा' का मत सुनाता हूँ :—

सामवेदे तु वक्ष्यामि स्वराणां चरितं यथा।
अल्पग्रन्थप्रभूतार्थं श्राव्यं वेदांगमुत्तमम्॥
तानरागस्वरग्राममूर्च्छनानां तु लक्षणम्।
पवित्रं पावनं पुण्यं नारदेन प्रकीर्तितम्॥

× × ×

सप्तस्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्च्छनास्त्वेकविंशतिः।
ताना एकोनपंचाशदित्येतत्स्वरमंडलम्॥
षड्जश्च ऋषभश्चैव गांधारो मध्यमस्तथा।
पंचमो धैवतश्चैव निषादः सप्तमः स्वरः॥
षड्जमध्यमगांधारास्त्रयो ग्रामाः प्रकीर्तिताः।
भूर्लोकाज्जायते षड्जो भुवर्लोकाच्च मध्यमः॥
स्वर्गान्नान्यत्र गांधारो नारदस्य मतं यथा।
स्वररागविशेषेण ग्रामरागा इति स्मृताः॥
विंशतिर्मध्यमग्रामे षड्जग्रामे चतुर्दश।
तानान् पंचदशेच्छन्ति गांधारग्राममाश्रितान्॥

आगे मूर्च्छना के नाम व श्लोक कहे गए हैं। यह भाग हमारे लिए अनुपयोगी है। इसके पश्चात् फिर गायन के गुण-दोषों की चर्चा है। वह भी हमारा विषय नहीं है। चतुर्थ-कंडिका में :—

पद्मपत्रप्रभः षड्ज ऋषभः शुकपिंजरः।
कनकाभस्तु गांधारो मध्यमः कुंदसप्रभः॥
पंचमस्तु भवेत् कृष्णः पीतकं धैवतं विदुः।
पंचमो मध्यमः षड्ज इत्येते ब्राह्मणाः स्मृताः॥

स्वरों की यह जाति आगे बताई गई है। आगे के श्लोकों का अर्थ अभी तक

किसी ने स्पष्ट रूप से समझा-समझाया हो, यह ज्ञात नहीं होता। परंतु तुम्हें स्वर-श्रुति-प्रकरण-संबन्धी जिस विवेचन की आवश्यकता है, वह इन श्लोकों में नहीं मिलेगा। वे श्लोक इस प्रकार हैं :—

ऋषभोत्थितषड्जहतो धैवतसहितश्च पंचमो यत्र।
निपतति मध्यमरागे तं निषादं षाडवं विद्यात्॥
यदि पंचमो विरमते गांधारश्चांतरः स्वरो भवति।
ऋषभो निषादसहितस्तं पंचममीदृशं विद्यात्॥
गांधारस्याधिपत्येन निषादस्य गतागतैः।
धैवतस्य च दौर्बल्यान्मध्यमग्राम उच्यते॥
ईषत्स्पृष्टो निषादस्तु गांधारश्चाधिको भवेत्।
धैवतः कंपितो यत्र षड्जग्रामं विनिर्दिशेत्॥
अंतरस्वरसंयुक्ता काकलिर्यत्र दृश्यते।
तं तु साधारितं विद्यात् पंचमस्थं तु कैशिकम्॥
कैशिकं भावयित्वा तु स्वरैः सर्वैः समंततः।
यस्मात्तु मध्यमे न्यासस्तस्मात् कैशिकमध्यमः॥
काकलिर्दृश्यते यत्र प्राधान्यं पंचमस्य तु।
कश्यपः कैशिकं प्राह मध्यमग्रामसंभवम्॥

ऐसा ही कुछ वर्णन ग्राम रागों का है, किंतु वह अभी तक किसी के द्वारा प्रयुक्त नहीं हुए हैं। अभी तक यह भी निश्चित नहीं हुआ कि उन रागों के ठाठ कौन-कौनसे हैं। पाँचवीं कंडिका में :—

यः सामगानां प्रथमः स वेणोर्मध्यमस्वरः।
यो द्वितीयः स गांधारस्तृतीयस्त्वृषभः स्मृतः॥
चतुर्थः षड्जइत्याहुः पंचमो धैवतो भवेत्।
षष्ठो निषादो विज्ञेयः सप्तमः पंचमः स्मृतः॥

इस प्रकार कहा है, परंतु यह किसी ने सिद्ध नहीं किया कि इस व्याख्या के सप्त स्वरों की ध्वनि कौनसी है। इस पर साम-गायकों को भी कुछ कहते नहीं बनता। पश्चिमी विद्वानों को ग्रंथों में मूल शुद्ध स्वर ही ज्ञात नहीं हुए, अतः इस सम्बन्ध के उनके सिद्धान्त भी विश्वस्त नहीं हैं। मुझे मिली हुई हस्तलिखित रचनाओं में श्रुति व उसका स्वरों से सम्बन्ध, इस विषय पर कोई जानकारी नहीं मिली।

'षड्जं वदति मयूरो ...'। कंठादुत्तिष्ठते षड्जः, नासाकण्ठमुरस्तालुजिह्वादंतांश्च संस्थितः। षड्भिः संजायते यस्मात्तस्मात्षड्ज इति स्मृतः।' आदि निरुपयोगी बातें हैं। छठी कंडिका में :—

दारवी गात्रवीणा च द्वे वीणे गानजातिषु ।
सामिकी गात्रवीणा तु तस्याः श्रृणुत लक्षणम् ॥

इस प्रकार कथन है, परंतु वीणा का वर्णन आदि कुछ भी नहीं है। साम-गायकी को साम-गायन करते समय हाथ-पैर कैसे रखने चाहिए, यह बताया गया है। श्रुति की कल्पना पाठकों को इस प्रकार कराई गई है :—

यथाप्सुचरतां मार्गो मीनानां नोपलभ्यते ।
आकाशे वा विहंगानां तद्वत् स्वरगता श्रुतिः ॥

यह कल्पना तुम्हारे लिए कभी भी उपयोगी सिद्ध नहीं होगी। तुम्हें अपनी २२ श्रुतियों के शोध-कार्य में खेदपूर्वक स्वीकार करना पड़ेगा कि तुम्हें इससे योग्य जानकारी नहीं प्राप्त होगी।

दीप्तायताकरुणानां मृदुमध्यमयोस्तथा ।
श्रुतीनांयोऽविशेषज्ञो न स आचार्य उच्यते ॥
दीप्ता मंद्रे द्वितीये च प्रचतुर्थे तथैव तु ।
अतिस्वारे तृतीये च क्रुष्टे तु करुणा श्रुतिः ॥

इत्यादि कहा गया है। यह भी कुछ उपयोग में नहीं आएगा। तुम्हारी परिचित श्रुतियों के नाम 'नारदीय शिक्षा' में देखने को नहीं मिलेंगे। अंत में इस प्रकार कहा है :—

त्रिफलां लवणाख्येन भक्षयेच्छिष्यकः सदा ।
अग्निमेधाजनन्येषा स्वरवर्णकरी तथा ॥

× × ×

पंच विद्यां न गृह्णन्ति चंडाः स्तब्धाश्च ये नराः ।
अलसाश्चानरोगाश्च येषां च विस्मृतं मनः ॥
शनैर्विद्या शनैरर्थानारोहेत्पर्वतं शनैः ।
शनैरध्वसु वर्तेत योजनानि परं व्रजेत् ॥
योजनानां सहस्राणि शनैर्याति पिपीलिका ।
अगच्छन् वैनतेयोऽपि पदमेकं न गच्छति ॥
सहस्रगुणिता विद्या शतशः परिकीर्तिता ।
आगमिष्यति जिह्वाग्रे स्थलान्निम्नमिवोदकम् ॥
न शठाः प्राप्नुवंत्यर्थान्न क्लीबा न च मानिनः।
न च लोकरवाद्भीता न च श्वः श्वः प्रतीक्षकाः ॥

यथा खनन् खनित्रेण भूतले वारि विंदति ।
एवं गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति ।।

यह कौन कह सकता है कि गुरुजनों का यह अनुभव सम्मान-योग्य नहीं है ? फिर यह कहना अनुचित नहीं कि जिस विषय की खोज हम करते हैं, वह भिन्न विषय है और उस संबंध में हमारा समाधान इन विवरणों से नहीं हो सकता।

प्रश्न—यह सुनकर हमें बहुत ही आश्चर्य होता है ! एक संगीत-पाठशाला का विद्यार्थी हमें बता रहा था कि उसके गुरु बहुत सवेरे से उठकर घंटों तक 'नारदीय शिक्षा' के राग गाते रहते हैं। तो फिर गुरुजी, वे क्या गाते होंगे ?

उत्तर—यह मैं कैसे कह सकता हूँ ? मैंने अभी जिन श्लोकों को पढ़कर सुनाया है, उन्हें भी भिन्न-भिन्न रागों में खींच-तान कर गाया जा सकता है। जयदेव की अष्टपदी-गायन की आजकल जो दशा है, क्या वह दिखाई नहीं दे रही ? प्रभात के समय गाने के लिए 'नारदीय शिक्षा' ही क्यों चाहिए ? कोई यह भी कह सकता है कि इसके लिए तो 'भगवद् गीता' कहीं अधिक उपयोगी सिद्ध होगी। परंतु इतना ही क्यों ? एक बार तुम उस पाठशाला में स्वतः जाकर और सुनकर विश्वास कर आओ, तभी निर्णय हो जाएगा।

प्रश्न—तब फिर यही कहना पड़ेगा कि 'नारदीय शिक्षा' में स्वर-श्रुति-प्रकरण पर कोई स्पष्ट व्याख्या प्राप्त नहीं हो सकती।

उत्तर—स्वरों के नाम, वर्ण, जाति, कुल, वाहन आदि सामग्री है, परंतु वह पर्याप्त नहीं। यदि किसी ने व्यर्थ ही पहेलियाँ बुझाई हों, तो बिना उत्तम आधार व प्रमाणों के तुम उसे किस प्रकार स्वीकार कर सकोगे ?

प्रश्न—यह तो ठीक ही है। हम ऐसा भी सुनते हैं कि सामवेदी गायकों के लिए 'नारदीय शिक्षा' जीव या प्राण जैसी है। प्रत्येक साम-गायक को 'नारदीय शिक्षा' का ज्ञान होना ही चाहिए, अन्यथा उसे साम-गायन नहीं आ सकता।

उत्तर—इस प्रकार की बात संभवतः साम-गायकों द्वारा ही कही जाती होगी, परंतु मुझे तो अभी तक किसी ने यह नहीं बताया कि वह 'प्राण' आखिर है किस जगह पर। यह मैं तुमसे स्पष्ट कह रहा हूँ। सामवेद के लिए किन-किन बातों का स्पष्टीकरण अभी और चाहिए, यह मैं तुम्हें पिछली बार बता ही चुका हूँ।

प्रश्न—जी हाँ, वे सब बातें हमें याद हैं। अब 'मांडूक्य शिक्षा' में क्या कहा गया है, वह भी बताइए ?

उत्तर—बस, अब मैं वही करनेवाला हूँ। इन पौराणिक ग्रंथों की हमें निंदा करने की आवश्यकता नहीं है, परंतु इनकी प्रशंसा करना भी कठिन है।

जो ग्रंथ हमें अंधकार से प्रकाश में लाता हो, वह हमें स्वाभाविक ही अच्छा लगेगा। संभवतः इन शिक्षा-ग्रंथों का गूढ़ार्थ आगे चलकर कोई शोधकर प्रसिद्ध करे, पर केवल इसी आशा से हमें आज आनंद व संतोष कैसे होगा ? 'मांडूक्य शिक्षा' में किस प्रकार का विषय-वर्णन है, उसे देखो :—

षड्जो वदति मयूरो गावो रंभंति चर्षभे।
अजा वदति गांधारे क्रौंचनादस्तु मध्यमे ॥
पुष्पसाधारणे काले कोकिलः पंचमे स्वरे।
अश्वस्तु धैवते प्राहुः कुञ्जरस्तु निषादवान् ॥

यह स्पष्ट है कि इस प्रकार सप्तक-रचना की सामर्थ्य इस कलियुग में बहुत थोड़े कानों में होना संभव है। अब यह भी निश्चित नहीं किया जा सकता कि यह कर्ण-सामर्थ्य मंडूक में स्वतः थी, अथवा यह कल्पना उसने परम्परा से ग्रहण कर लिख दी थी। अस्तु, आगे देखो :—

कंठादुत्तिष्ठते षड्ज ऋषभः शिरसस्तथा।
नासिकायास्तु गांधार उरसो मध्यमस्तथा ॥
उरःशिरोभ्यां कंठाच्च पंचमः स्वर उच्यते।
धैवतश्च ललाटाग्रे निषादः सर्वरूपवान् ॥
पद्मपत्रप्रभः षड्ज ऋषभः शुक्लपिंजरः।
कनकाभस्तु गांधारो मध्यमः कुन्दसप्रभः ॥
पंचमस्तु भवेत्कृष्णः पीतवर्णस्तु धैवतः।
निषादः सर्ववर्णाभ इत्येते स्वरवर्णकाः ॥

प्रश्न—यह विवरण हमारे लिए उपयोगी नहीं है। हमें तो स्वर-श्रुति-स्थान की चर्चा चाहिए, या उन स्थानों को निश्चित करने का साधन चाहिए। यह जानवरों की सूची और स्वरों का रूप-रंग लेकर हम उनका क्या उपयोग करेंगे ?

उत्तर--परंतु ऐसा साधन यदि ग्रंथों में है ही नहीं, तो मैं कहाँ से लाकर दूँ ? इसलिए जो कुछ है, वही मैं बता रहा हूँ। यह मैं जानता हूँ कि तुम्हें इतना कहने पर संतोष नहीं होगा कि बकरा चिल्लाया और उससे उन विद्वानों ने गांधार खोज निकाला। और यह भी सच है कि ऐसा कहनेवाले भी मिलते हैं, जो कहते हैं कि इन बातों में कोई गंभीर रहस्य है। हमारे ग्रंथकर्ता पागल नहीं थे। परंतु जब तक यह रहस्य इन कहनेवालों द्वारा उद्घाटित नहीं होता, तब तक चाहे ग्रंथकर्ताओं को पागल न कहा जाए, परंतु ये ऐसा कहनेवाले अवश्य सनकी कहे जा सकते हैं। इस समय शिक्षा का यह तरीका प्रचलित नहीं है कि "वाच्यतां समयातीतः स्पष्टमग्रे भविष्यति"। यदि किसी शिक्षक ने स्पष्टतापूर्वक यह स्वीकार कर लिया कि अमुक

बात मेरी समझ में नहीं आई, यद्यपि मैंने उसे समझने के लिए अमुक रीति से प्रयत्न किया था। तो उस गुरु के प्रति उसके शिष्य वर्तमान समय में कभी अनादर या तिरस्कार का भाव मन में न लाएँगे। शिष्यों को वह शिक्षक कभी नहीं रुचेगा, जिसे आता तो कुछ नहीं, लेकिन ग्रंथ-रहस्य के नाम पर कोरी शाब्दिक प्रशंसा करता हो। अनेक बार यह पाया गया है कि ये ग्रंथ-रहस्य कहनेवाले संस्कृत भाषा ही नहीं जानते। ग्रंथ-कर्ता के विषय में मनमानी धारणा बनाए रखने से ही क्या होगा? और उसमें कुछ तथ्य नहीं, ऐसा कहने में लज्जा क्यों आनी चाहिए? मैं कहता हूँ कि इस 'मांडूक्य शिक्षा' से स्वर-श्रुति के स्थान निश्चित करने का ज्ञान हम प्राप्त कर सकें, ऐसी कोई बात इस ग्रंथ में बिलकुल नहीं है।

प्रश्न : तो फिर अब भरत के ग्रंथ की ओर बढ़िए। यहाँ पर कैसी स्थिति है?

उत्तर : ठीक है, अब मैं भरत की रचना के विषय में चर्चा करता हूँ, परंतु इसके पूर्व मैं एक बात अभी कह देना चाहता हूँ। हमें आरंभ से ही यह शर्त स्वीकार करके चलना है कि भरत के श्रुति-स्वर-प्रकरण की स्पष्टता भरत के ग्रंथ से ही होनी चाहिए। हमारे कानों में भिन्न-भिन्न प्रकार के विधान पड़ चुके हैं, उन्हें न जानते हुए हमें पुराने ग्रंथों से विधान प्राप्त करना है। भरत की श्रुति-संबन्धी कल्पना क्या थी, इसे जानने के लिए उसके पीछे सैकड़ों वर्षों के रचे हुए ग्रंथ व आजकल के पाश्चात्य लेखकों के मत उपयोग में नहीं आ सकते। भरत ने संगीत के विषय में 'नाट्य-शास्त्र' के २८-वें अध्याय में विवेचन किया है :—

द्व्यधिष्ठानाः स्वरा वैणाः शारीराश्च प्रकीर्तिताः।
उभाभ्यामपि वक्ष्यामि विधानं लक्षणान्वितम्॥
स्वरा ग्रामो मूर्च्छनाश्च नानास्थानानि वृत्तयः।
स्वरसाधारणे वर्णा ह्यलंकाराः सधातवः।
श्रुतयो जातयश्चैव विधिस्वरसमाश्रयाः।
दारव्यां समवायोऽयं वीणायां समुदाहृतः॥
स्वरा ग्रामावलंकारा वर्णाः स्थानानि जातयः।
साधारणे च शारीर्यां वीणायामेष संग्रहः॥

प्रश्न : इन श्लोकों में शारीरवीणा व दारवीवीणा के विषय में क्या-क्या कहा है, वह वर्णन-योग्य ज्ञात होता है। श्रुति, जाति, आदि दारवीवीणा में दिखाई पड़ती हैं, यह कथन विशेष रूप से कहा हुआ प्रतीत होता है। क्या इससे यह नहीं सोचा जा सकता कि यह कार्य गले द्वारा करना सुसाध्य नहीं है।

उत्तर : तुम्हारा इस तरफ ध्यान गया, यह बड़ी अच्छी बात है। यह प्रसिद्ध ही है कि भरत व शार्ङ्गदेव अपने रागों को प्राचीन प्रकार से ही वर्णित करते हैं।

उनका यही तरीका कुछ पाश्चात्य वादकों-जैसा मालूम पड़ता है। भिन्न-भिन्न स्वरों से स्वर-सप्तक बदल कर भिन्न-भिन्न रूपांतर उत्पन्न करना, गायकों की अपेक्षा वादकों द्वारा अधिक संभव है। इस समय जैसे सभी राग षड्ज से आरंभ होनेवाले सप्तक से बजाए जाते हैं, तथा वीणा के तार एक नियमित रीति से मिलाए जाते हैं, संभवतः ऐसी रीति उस समय नहीं थी। परंतु इस विषय में मुझे आगे चलकर और भी कुछ बोलने की आवश्यकता पड़ेगी। हमारे ग्रंथकार बेचारे भोलेपन से यह स्वीकार कर लेते हैं कि श्रुति उत्पन्न करने की स्थिति कठिन है। यद्यपि ऊपर मैंने उनके लिए 'बेचारे' विशेषण लगाया है, परंतु उनके प्रति मेरे हृदय में पूर्ण आदर भाव है, यह असत्य नहीं कह रहा हूँ। पं० कल्लिनाथ कहते हैं कि—"शरीरे उक्त-संख्याकनाडीसंनिवेशस्य प्रतिस्थानं तत्तच्छ्रुत्या नादस्य परोक्षत्वात्तत्सद्भावे संदेहः स्यादिति तन्निरासार्थं प्रत्यक्षतः संवादयितुं प्रतिज्ञाय निर्दिशति।" सिंहभूपाल का कथन है—तदुक्तं संगीतसमयसारे ते तु द्वाविंशतिर्नादा न कंठेनप रिस्फुटाः। शक्या दर्शयितुं तस्माद्वीणायां तन्निदर्शनम्।"

मैं समझता हूँ कि अभी भी २२ श्रुतियों का एक के पश्चात् एक नियत स्थानों पर आगे-पीछे के स्वर उच्चारण न करते हुए, आरोह-अवरोह करना साधारणतः लोग कठिन ही समझते हैं। तो भी यह सुना जाता है कि वर्तमान समय के कुछ ख्याति-प्राप्त गायक व वादक यह काम सरलतापूर्वक कर जाते हैं। आगे चलकर भरत क्या कहता है, सुनो—

षड्जश्चतुःश्रुतिर्ज्ञेय ऋषभस्त्रिश्रुतस्तथा।
द्विश्रुतिश्चैव गांधारो मध्यमश्च चतुःश्रुतिः॥
चतुःश्रुतिः पंचमः स्याद्धैवतस्त्रिश्रुतिस्तथा।
निषादो द्विश्रुतिश्चैव षड्जग्रामे भवन्ति हि॥
चतुःश्रुतिस्तु विज्ञेयो मध्यमः पंचमः पुनः।
त्रिश्रुतिर्धैवतस्तु स्याच्चतुःश्रुतिक एव च॥
निषादषड्जौ विज्ञेयौ द्विचतुःश्रुतिसंभवौ।
ऋषभस्त्रिश्रुतिश्च स्याद्गांधारो द्विश्रुतिस्तथा॥

इस प्रकार से इस विद्वान् ने अपने षड्ज व मध्यम-ग्राम का स्वरांतर बताया है। भरत के पश्चात् होनेवाले प्रत्येक ग्रंथकार ने यह स्वरांतर वैसा ही वर्णित किया है। यह भी कहा जा सकता है कि यह कल्पना हमारे संपूर्ण देश में थी, यह स्वरांतर अंकों में इस प्रकार लिखा जाएगा :—

षड्जग्राम—४, ३, २, ४, ४, ३, २ मध्यमग्राम—४, ३, ४, २, ४, ३, २ इन अंकों पर प्रथम दृष्टि डालने पर एकदम हमें यह ध्यान आ जाता है कि यह अनुक्रम हमारे बिलावल व यमन ठाठ का है। परंतु हम यह मानकर नहीं चलेंगे कि यह ग्रंथकर्ता का शुद्ध ठाठ था।

प्रश्न : भला ऐसा क्यों ?

उत्तर : वही बताता हूँ। शार्ङ्गदेव व उसके पश्चात् के सभी विद्वानों ने अपने शुद्ध ठाठ का वर्णन स्पष्ट रूप से कर दिखाया है।

प्रश्न : तब क्या आपका यह कहना है कि हमें उन विद्वानों के वर्णन के अनुसार ही शुद्ध ठाठ की रचना करनी पड़ेगी ?

उत्तर : वह तो स्पष्ट ही है। तो भी देखो, हम यह समझकर कि प्राचीन लेखकों की श्रुति-कल्पना हमारे जैसी ही थी, बिना समझे-बूझे इसी मान्यता पर ठाठ तक रचने लगे। ठीक है न ?[1] हमें प्रथम तो भरत से ही यह प्रश्न पूछना चाहिए था कि श्रुति का क्या अर्थ है ? परंतु अभी इस प्रश्न को रहने दो। हमारे संस्कृत-ग्रंथ कर्ताओं ने श्रुति का अर्थ स्वरांतर माना है या नियमित परदे की आवाज मात्र ही माना है, इसका स्पष्टीकरण पूर्ण रूप से नहीं मिलता। भरत के चार, तीन, दो श्रुतियों का अंतर बताकर आगे कहीं-कहीं अन्य ग्रंथकर्ताओं-जैसा ही किया है। प्रत्येक ग्रंथकार का कथन है कि प्रत्येक स्वर अपनी अंतिम श्रुति पर शुद्ध रूप प्राप्त करता है। इस दृष्टि से मुख्य सप्तक किस प्रकार का होगा, यह तुम्हारे ध्यान में शायद आ जाएगा। जरा ठीक तरह से सोच कर देखो।

प्रश्न : अब हम इसी पर विचार कर रहे हैं। हाथ में सितार लेकर यदि षड्ज चौथी श्रुति पर, ऋषभ का परदा सातवीं श्रुति पर, गांधार नवीं श्रुति पर, मध्यम तेरहवीं श्रुति पर यदि हम मानते गए तो शुद्ध ठाठ बिलावल रह नहीं पाता। बिलावल ठाठ का सूक्ष्म स्वरांतर ग – म तथा नि – सां होता है, और यहाँ पर यह रे – ग तथा ध – नि में हो जाता है। पर क्या कोई यहाँ यह आक्षेप तो नहीं करेगा कि श्रुतियाँ समान मान ली गई हैं ?

उत्तर : आक्षेप की बात रहने दो, परंतु उक्त विचारसारणी के स्थूल मान से कौनसा शुद्ध ठाठ आता है ?

प्रश्न : वह तो काफी ठाठ-जैसा दिखाई देता है। क्योंकि ग तथा नि, ये दोनों स्वर अर्धान्तर दिखाई पड़ते हैं। चार श्रुति के अंतर की अपेक्षा दो श्रुतियों का अंतर आधा होगा ही। और सितार पर काफी ठाठ तो वैसा ही दिखाई पड़ता है।

उत्तर : तुमने अच्छा तर्क किया। बिलकुल इसी प्रकार का तर्क अपने कुछ संस्कृत-ग्रंथकारों ने किया व प्राचीन शुद्ध ठाठ को काफी ठाठ-जैसा मान लिया। काफी ठाठ-जैसा कहने का इतना ही मतलब है कि काफी नाम आधुनिक है। आगे मैं तुम्हें बतानेवाला हूँ कि आजकल श्रुति-स्वर-चर्चा करनेवाले हमारे विद्वान् भी इसी मत को माननेवाले पाए जाते हैं। दक्षिण में शुद्ध ठाठ काफी नहीं है, वहाँ पर उसे मुखारी या कनकांगी कहते हैं।

प्रश्न——जरा ठहरिए ! मैं बीच में ही एक प्रश्न कर रहा हूँ। भरत ने तो इतना ही कहा है कि प्रत्येक स्वर की अमुक-अमुक श्रुतियाँ होती हैं। परंतु यह कहाँ कहा है कि प्रत्येक स्वर अपनी अंतिम श्रुति पर जाकर शुद्ध अवस्था प्राप्त करता है।

उत्तर——हाँ, यह प्रश्न तुम्हारे-जैसों के मन में उत्पन्न होना स्वाभाविक है। मैं समझता हूँ कि इस प्रश्न का उत्तर भरत के विकृत स्वर-वर्णनवाले प्रकरण में तुम्हें प्राप्त हो जाएगा। अंतर गांधार और काकली निषाद, ये दोनों स्वर-नाम तो तुम्हारे पहचान के ही हैं न ?

प्रश्न——जी हाँ, ये स्वर हमारी हिंदुस्तानी संगीत-पद्धति के तीव्र ग तथा तीव्र नि के रूप में हमारे ध्यान में जमे हुए हैं।

उत्तर——हो सकते हैं। भरत व शार्ङ्गदेव के विकृत स्वर कुछ भिन्न नियम पर बने हैं, ऐसा इनके ग्रंथों से पाठकों को दिखाई देता है। कोई यह भी कह सकता है कि दुर्भाग्यवश उन्होंने अपने ग्रंथों में स्पष्टतापूर्वक अपना विवरण नहीं रखा, अत: उनके विवरणों का मनचाहा अर्थ अपनी-अपनी सुविधा से आगे के पाठकों ने किया। हमने इस समय ग्रंथ-संगीत की चर्चा अपना विषय नहीं बनाया है, अत: हम अभी इस तर्क पर विचार नहीं करेंगे। हमारे अन्य ग्रंथ-कर्ताओं ने अंतर व काकली स्वरों का स्थान क्रमश: शुद्ध ग व शुद्ध म तथा शुद्ध नि व शुद्ध सा, इन स्वरों का अंतर माना है। वे कहते हैं कि शुद्ध गांधार जब मध्यम स्वर की दो श्रुतियाँ लेता है, तब उसकी संज्ञा अंतर ग होती है। इस प्रकार शुद्ध नि जब आगे षड्ज स्वर की दो श्रुतियाँ ग्रहण करता है, तब वह काकली कहलाता है। अब इस वर्णन से भरत का वर्णन मिलाकर देखो। एक स्वर जब दूसरे स्वर से श्रुति ग्रहण करता है, तब 'साधारण' कहलाता है; यह एक पारिभाषिक शब्द समझना चाहिए। भरत कहता है कि—'द्वे साधारणे स्वरसाधारणं जातिसाधारणं च, स्वरसाधारणं काकल्यंतरौ स्वरौ, तत्र द्विश्रुतिप्रकर्षणान्निषादवान् काकलीसंज्ञो निषाद:, न षड्ज:। एवं गांधारोऽप्यंतरस्वरसंज्ञो गांधारो न मध्यम:।'

प्रश्न——यह ध्यान में आ गया। स्वर अपनी अंतिम श्रुति पर शुद्ध रूप पाते हैं। यही मत भरत का भी दिखाई पड़ता है। भरत ने और कौन-से विकृत स्वर बताए हैं और उनके स्थान का वर्णन किस प्रकार किया है ?

उत्तर——उसने अधिक विकृत स्वर बताए ही नहीं।

प्रश्न——यह क्या बात है गुरुजी ? उसका शुद्ध ठाठ तो काफी है न ? इस ठाठ में अंतर व काकली स्वर मिलाने से बिलावल व खमाज ठाठ तो उत्पन्न हो जाएँगे, परंतु अन्य राग इस रीति से कैसे उत्पन्न होंगे ?

उत्तर——तुम भूल गए। भरत के ग्रंथ में राग नहीं हैं, यह कहा जाता है न ? हमारे विद्वान् कहते हैं कि उसके समय में 'जाति' संगीत गाया जाता था। तो भी

तुम्हारा प्रश्न रह जाता है। तुम कहोगे कि उस जाति में अन्य विकृत स्वर कैसे मिलते हैं? कोई-कोई कहेंगे कि वह वैसे स्वर गाते ही नहीं थे? ऐसा कहनेवाले भी मुझे मिल चुके हैं। परंतु यह सहज ही समझ में आ सकता है कि जिस ध्येय से भरत के ग्रंथ में मूर्च्छना आदि प्रपंच हैं, उसका मतलब अन्य विकृत स्वरों का गाया जाना है। मूर्च्छना के प्रयोग से स्वरांतरों की उलट-पलट अपने-आप ही हो जाती है, और इसके होने पर नए-नए ठाठ उत्पन्न होते ही हैं। 'लक्ष्य संगीत' में इसी प्रकार सुझाया गया है :—

क्रमात्स्वराणां सप्तानामारोहश्चावरोहणम्।
मूर्छनेत्युच्यते लक्ष्ये सैव स्याद्रागजन्मभूः॥
प्राक्कालीनेषु ग्रंथेषु मूर्छनाः सप्त वर्णिताः।
प्रतिग्रामसमासक्ता याभी रागाः समुत्थिताः॥
भिन्नस्वरं समारभ्य सप्तस्वरप्रकल्पनात्।
नूनं परिस्फुटा तत्र स्वरान्तरप्रभिन्नता॥

मैं समझता हूँ कि यह सिद्धांत समझने में तुम्हें कोई विशेष कठिनाई न होगी। भरत के स्वरांतर जब तुम्हें बताए जाएँ और उसके भिन्न-भिन्न अंकों से मूल क्रम सुरक्षित रखते हुए तुम यदि अपने सप्तक स्थिर करो, तो भिन्न-भिन्न ठाठ तुम्हारी दृष्टि में आ जाएँगे। ठीक है न? कोई सुविधा व सरलता से बनेगा तथा किसी-किसी में थोड़े सुधार की आवश्यकता पड़ेगी। ऐसा करने से मूल स्वरांतर को तोड़ने-मोड़ने की शायद आवश्यकता पड़ जाए, और ऐसा करना ही शुद्ध स्वरों का स्थान-भ्रष्ट होना है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि उनमें विकृति उत्पन्न होना है। 'ग्राम' की मूल श्रुति-व्यवस्था मात्र करदी गई है, जो तुम देख ही चुके हो। मुझे एक विद्वान् का कथन स्मरण है कि जहाँ तक ग्राम के स्वरांतरों की उलट-पलट होना संभव है, वहाँ तक वे सब ग्राम ठाठ ही बनेंगे और उनसे उत्पन्न होनेवाले राग नियमाश्रित ही कहे जाएंगे।

परंतु मित्रो! हमें अन्य चर्चा में अब नहीं जाना चाहिए, आगे और भी इसके संबंध में चर्चा करने का अवसर आएगा। तुम्हारा मुख्य विषय तो श्रुति-स्वर है न? प्राचीन विद्वानों की श्रुति-संबंधी क्या कल्पना है, यही हमें देखना है। मालूम होता है, उसे हम भूल गए।

प्रश्न : जी हाँ, यह ठीक है, मगर एक प्रश्न उत्पन्न हुआ है, वह पूछना चाहता हूँ। वीणा पर या सितार पर षड्ज से लेकर ऊपरी षड्ज तक के अंतर के यदि हम समान बाईस भाग कर लें तथा उतने परदे बाँध दें, तो ४, ७, ९, १३, १७, २० और २२ इन परदों पर हमारे शुद्ध स्वर बजने लगेंगे क्या?

उत्तर : तुम्हारा प्रश्न है तो मजेदार! इसका उत्तर हमारे ग्रंथकार तो स्पष्ट रूप से नहीं देते, परंतु अपने विद्वान् कहते हैं कि इस रीति से तुम्हें शुद्ध स्वर-सप्तक

नहीं मिलेगा। उनका कथन तुम्हें भी कुछ मात्रा में उचित जान पड़ेगा। अपना बिलावल ठाठ सितार पर देखो। मध्य 'सा' और तार 'सा', इन दोनों के ठीक मध्य-भाग में शुद्ध 'म' है। चाहो तो नापकर देख लो। और यह मध्यम, मध्य-षड्ज से नौ श्रुति पर व तार-षड्ज से तेरह श्रुति पर है। ठीक है न?

प्रश्न--बिलकुल ठीक है। यह हमारे ध्यान में पहले ही आना चाहिए था। वैसे ही उत्तरार्द्ध के परदे एक-दूसरे के पास-पास आते हैं, यह तो बिलकुल आँखों से देखी जाने-योग्य बात है। यह देखते हुए हम यह तो स्वीकार करेंगे कि तार की लंबाई की मदद से यदि कोई श्रुति-सप्तक कायम करना चाहे, तो तार के समान बाईस भाग करने से यह कार्य साध्य नहीं होगा। तार की लंबाई अलग-अलग ही रखनी होगी। परंतु यदि ऐसा ही किया जाए, तो फिर प्रत्येक श्रुति हमें किस आधार से कायम करनी चाहिए, यह जानकारी ग्रंथों में किस प्रकार बताई गई है, यह देखना आवश्यक है। जैसे कि षड्ज की अगली प्रथम श्रुति ही हमें कायम करनी है, तो हमें उस श्रुति का परदा कहाँ बाँधना चाहिए?

उत्तर--यहीं तो आकर सभी चुप हो जाते हैं। श्रुति अर्थात् तार की लंबाई का कोई नियत प्रमाण ग्रंथकार मानते हैं क्या? इन प्रश्नों पर अब भी हम मतभेद देखते हैं। हमारे विद्वानों से यदि किसी ने पूछा कि प्राचीन ग्रंथकारों की श्रुति का नाप-प्रमाण उनकी भाषा से ही सिद्ध करिए, तो वे बहकने लगते हैं। हमारे विद्वान् यह कहना पसंद नहीं करते कि प्राचीन लेखकों को इस प्रकार के नाप की जानकारी नहीं थी, या श्रुतियाँ अनियमित हैं, क्योंकि उन्हें तो अपनी श्रुतियाँ ग्रंथों से ही उत्पन्न करनी हैं। इन विद्वानों ने श्रुति के संबंध में पाश्चात्य ग्रंथों व विद्वानों की सहायता से बहुत पहेलियाँ बुझाई हैं। यह स्वीकार करना पड़ेगा, परंतु..........

प्रश्न--परंतु इन श्रुतियों को वे योग्य रीति से ग्रंथकारों के पल्ले बाँधते आए हैं, ऐसा ही मानना होगा; किंतु यदि कल्पनाएँ ठीक व्यवस्थित हों और शास्त्र में बाधा न आती हो, तो उन्हें स्वीकार करने में आपत्ति ही क्या है?

उत्तर--परंतु उन्हें ठीक तरह से व्यवस्थित होना चाहिए न? अभी तो हमारे विद्वानों में ही एक मत दिखाई नहीं देता। कोई लेखक अकस्मात् कहीं से आकर उपस्थित हो जाता है और वह पिछले लेखकों की सूची व कभी-कभी नाम, गाँव भी देता है और उनकी समझ को गलत ठहराकर अपने सिद्धांतों को निर्दोष बताते हुए जनता के सम्मुख रखता है। कुछ दिन पश्चात् दूसरा कोई सैद्धांतिक रंगभूमि पर आकर उसे गलत सिद्ध करते हुए आगे बढ़ता है। इसमें आश्चर्य करने-योग्य कोई बात नहीं है। सबसे मजेदार बात यह है कि प्रत्येक का आधार वे ही संस्कृत-ग्रंथ हैं।

अंगुल-भर ग्रंथोक्ति और हाथ-भर स्वतः की कल्पना, इस प्रकार जहाँ भी हुई, वहाँ तो बड़ी ही परिहासजनक बात हुई है। पाठकों का विषय पर इतना अधिकार नहीं होता, अतः प्रायः वे ऐसे स्थलों पर चुप होकर बैठ जाते हैं। मेरी भी यही समझ में आता है कि विद्वानों की विचार-प्रणाली में पाश्चात्य ग्रंथों की गंध आती है,

फिर भी ऐसी चर्चा से आगे चलकर समाज का हित ही होगा। 'वादे-वादे जायते तत्त्व बोधः' ऐसा कहा ही जाता है।

प्रश्न—परंतु यह सब तथ्य उन विद्वानों की दृष्टि में आता क्यों नहीं ?

उत्तर—यह मैं कैसे बताऊँ ? यदि तर्क से अनुमान लगाऊँ, तो कहूँगा कि किसी ने रागों की तरफ दृष्टि नहीं डाली, तो किसी को ग्रंथ ही समझ में नहीं आए, किसी के द्वारा महत्त्वपूर्ण दृष्टि-भ्रम हो गया है, तो किसी-किसी को यह साहस भी है कि वे अपनी विद्वत्ता व अधिकार से नए गायक-वादकों का निर्माण कर, प्रचलित लोकप्रिय किंतु गलत राग-रूपों को बदल देंगे। मुझे स्मरण है कि कुछ दिन पहले मैंने वर्तमान पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित रागों में से भिन्न-भिन्न श्रुति लगाने का वर्णन देखा ही था। मैं समझता हूँ कि यदि विद्वान् संगीतज्ञ व गायक में 'त्वयार्धं-मयार्धं' का मामला तय हो जाए, तो प्रयत्न कठिन भी नहीं हैं। ऐसे प्रयत्न वर्तमान पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित करने से दो लाभ होते हैं। यदि वे रूप समाज को पसंद न आए तो, गाजर का शंख' (यदि गाजर का शंख बजा, तो ठीक ही है, नहीं तो खाने में तो आएगा ही) के न्याय से वापस भी लिए जा सकते हैं। मेरा तो यह मत है कि प्रत्येक लेखक को चाहिए कि वह प्रथम प्राचीन ग्रंथों की उक्तियों का सरल अर्थ खुले हृदय से समाज के सम्मुख रख दे, व उसमें कहाँ-कहाँ पर असंगति ज्ञात होती है, यह भी लिख दे। इसके पश्चात् अपने स्वतंत्र तर्कों को बताए। अस्तु, श्रुतियों के नाप प्राचीन संगीतज्ञ किस प्रकार निकालते थे, इसी पर से यह सारी चर्चा निकली थी। है न ?

प्रश्न—आपके कथन से हमें थोड़ा-सा विस्मय ही हो रहा है। खैर, अब भरत को ही लीजिए। इन्होंने श्रुति का कुछ-न-कुछ नाप (प्रमाण) निश्चित किया ही होगा ?

उत्तर—हाँ, हाँ, वह तो उसने अपने तरीके से किया ही है। वह कहता है—'मध्यमग्रामे तु श्रुत्यपकृष्टः पंचमःकार्यः पंचमश्रुत्युत्कर्षादपकर्षाद्वा यदंतरं मार्दवादायतत्वाद्वा तत्प्रमाणश्रुतिः' कुछ समझ में आया ?

प्रश्न—हम नहीं समझ पाए। कुछ और स्पष्ट कीजिए तो अच्छा होगा ?

उत्तर—भरत कहता है कि षड्ज ग्राम में जो पंचम है, उससे एक श्रुति नीचे उतरना ही मध्यम ग्राम होता है।

प्रश्न—वह तो समझ गए, परंतु एक श्रुति अर्थात् ?

उत्तर—एक श्रुति का अर्थ है षड्ज व पंचम ग्राम का अंतर। तुम्हें यह 'Begging the question' जैसा रूप समझ पड़ेगा। अधिक स्पष्टीकरण के लिए उसने दो वीणाओं के उदाहरण भी दिए हैं। जैसे—

'द्वे वीणे तुल्यप्रमाणतन्त्र्युपवादनदण्डमूर्च्छने षड्जग्रामाश्रिते कार्ये। तयोरेकतरस्यां मध्यमग्रामकीं कृत्वा पंचमस्यापकर्षे श्रुतिं तामेव पंचमवशात् षड्जग्रामिकीं कुर्यात् इत्यादि ।।' मैं तुम्हारी उलझन समझ रहा हूँ। अब श्रुति प्रथम या स्वर, यह प्रश्न तुम्हें उलझन में डाल रहा है। ठीक है न? 'सोना कहाँ, जहाँ भोजन किया, और भोजन कहाँ करना, जहाँ सोए थे, ऐसा ही कुछ-कुछ यहाँ समझ में आ रहा होगा।

प्रश्न--जी हाँ, कुछ ऐसी ही बात है। दो ग्रामों का अंतर श्रुति कहकर बताना और एक श्रुति का क्या मतलब है, तो उत्तर मिलता है, दो ग्रामों का अंतर। यह कैसा स्पष्टीकरण गुरूजी ?

उत्तर--यह उलझन है ही। दोनों पंचम पाठकों को ज्ञात हैं। ऐसा मानकर ही संभवत: भरत ने यह विवरण लिखा है। परंतु सिंह भूपाल ने मतंग का मत किस प्रकार कहा है, उसे भी देखो—'श्रुतेःप्रमाणमुक्तं मतंगेन। ननु श्रुतेः किं मानं ? उच्यते। पंचमस्तावद्ग्रामद्वयस्थो लोके प्रसिद्धः। तस्योत्कर्षणापकर्षणाभ्यां मार्दवादायतत्वाद्वा यदंतरं तत्प्रमाणश्रुतिरिति।' यह प्रश्न भी उपयुक्त है कि आज ग्रामों की उलझन हमारे संगीत में नहीं है, तब दो पंचमों का अंतर अथवा उसका स्वरूप कैसा होता है, यह कैसे समझा जाए? परंपरा से गाए जानेवाले स्वर स्वीकार कर, उनके बीच-बीच में श्रुति-स्थापन का कार्य अलग है, और प्रत्येक नाद को नियमित प्रमाण से स्थापित कर, उन नादों को श्रुति मानकर उनपर ग्राम-रचना अलग बात है। इन दोनों पक्षों में से प्राचीन विद्वानों का कौनसा पक्ष रहा है? अधिक स्वाभाविक कौन-सा रूप है? ये प्रश्न बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। कोई यह भी कह सकता है कि श्रुति-माप के मूल में संदिग्धता होने से ही हमारे विद्वान् आजकल अपनी-अपनी कल्पना भिड़ा रहे हैं।

प्रश्न--यह तो वर्तमान विद्वानों की बात हुई, किंतु भरत के पश्चात् के ग्रंथकर्ताओं ने भी तो अपनी-अपनी कुछ श्रुति-संबंधी कल्पना लिखी होगी ?

उत्तर-- वह सब हम धीरे-धीरे देखने ही वाले हैं। हमें प्रथम न्याय-दृष्टि से देखना उचित है। शास्त्र-चर्चा का दुराग्रह उपयोगी होगा। इस समय हम भरत के ग्रंथ पर विचार कर रहे हैं। 'मेजरटोन, मायनरटोन और सेमीनोट' व इनके आंदोलन-संबंधी अपने ज्ञान को भरत के ग्रंथ में भरने का प्रयत्न करना, अर्थात् भरत व हमारे स्वरों की एकरूपता सिद्ध करता है। यह एकरूपता स्वीकार करनेवाले बहुत थोड़े व्यक्ति मिलेंगे। अभी तो हमें अपना इस संबंध का ज्ञान एक ओर रख देना चाहिए। तब फिर भरत की किस-किस लंबाई को ग्रहण करना होगा? इस प्रश्न के उत्तर में यही कहा जाएगा कि इसका उत्तर संतोषजनक रूप से नहीं दिया जा सकता।

प्राचीन वीणा-वादकों के दोनों ग्रामों के पंचम की जानकारी आगे के लोगों के लिए कितनी उपयोगी होगी? आगे चलकर ग्रामों का महत्त्व पिछड़ गया था व

ग्राम, मूर्च्छना, जाति तथा इनके उपयोग में उत्पन्न षड्ज सप्तक की भिन्न-भिन्न विकृतियों की सहायता से संपूर्ण राग उत्पन्न होने लगे थे। इसी प्रकार आज भी हमारी स्थिति है। अपने गायकों को आज मूर्च्छना, जाति की जानकारी हम दें तो क्या यह उसी प्रकार निरुपयोगी नहीं है? पहले सीढ़ी-दर-सीढ़ी परंपरा से बाईस नाद कायम किए गए, यही हमारे शास्त्रकारों का सदैव कथन रहा है। इस कथन से पाठकों के मन में यह प्रश्न उत्पन्न होना स्वाभाविक है कि यह परंपरा किस नाप या प्रमाण से स्थिर की गई थी। यदि ऐसा मान लें कि 'मेजरटोन' व 'मायनरटोन' की यह पूर्वकालीन स्थिति है, और यह सब ग्रंथकारों का दंभ-मात्र है, वस्तुतः प्रथम स्वर स्थिर किए गए हैं, व बाद में सूक्ष्म भागों का विचार हुआ है। तो सूक्ष्म भागों के कायम करने के विषय में प्रमाणिक मतभेद होना स्वाभाविक ही है। एक विद्वान् ने मुझे यह भी बताया था कि श्रुति का मान निश्चित न होते देखकर ही भिन्न-भिन्न शुद्धस्वर-सप्तक मान लिए गए हैं। यह मैं तुम्हें बता ही चुका हूँ कि दक्षिण की ओर शुद्ध 'रे ध' स्वरों को कोमल समझा जाता है। हम उन विद्वानों पर हँसते हैं और वे हम लोगों पर हँसते हैं।

प्रश्न--यहाँ एक प्रश्न पूछने की इच्छा उत्पन्न हो रही है। भरत का शास्त्र ग्रंथ, दक्षिण के विद्वान् का है या उत्तर के पंडित का?

उत्तर--यह प्रश्न वास्तव में जरा कठिन है। इसे मैंने दक्षिण के पंडितों से भी पूछा था।

प्रश्न--उन्होंने क्या उत्तर दिया?

उत्तर--उन्होंने क्या कहा, यह संक्षेप में सुना देता हूँ, सुनो—

'अजी! आजकल हम सुन रहे हैं कि आपके विद्वानों का मत है कि—भरत, शार्ङ्गदेव सिर्फ उत्तर के ग्रंथकार थे, और हमारे दक्षिण के ग्रंथकारों ने उनसे जो संबंध जोड़ रखा है, वह बिलकुल निराधार है। इस मत पर हम लोग भी आजकल विचार करने लगे हैं। तुम्हारे विद्वान् कहते हैं कि दक्षिण की ओर भरत, शार्ङ्गदेव की पद्धति नहीं है, क्योंकि दक्षिण के गायक ग्राम, मूर्च्छना, जाति से अपने राग उत्पन्न नहीं करते। परंतु वह पद्धति तुम्हारे उत्तर की ओर भी है क्या? तुम्हारे प्रसिद्ध गायक पैसा पैदा करने के लिए इधर आते रहते हैं, उन्हें हम देखते हैं कि वे उनके ग्राम, मूर्च्छना, जाति कैसे कहते हैं, परंतु वे स्वयं ही यह बात नहीं जानते। गायकों की बात जाने दो, परंतु क्या तुम्हारे किसी ग्रंथकर्ता ने शार्ङ्गदेव की पद्धति का अनुकरण किया है? तुम्हारी ओर तीव्र कोमल आदि स्वर-संज्ञा प्रयुक्त होती है, और वह अहोबल आदि के द्वारा उपयोग में लाई गई है। थोड़ी देर के लिए इन्हें ही अपने ग्रंथकार मानना तुम्हें शोभा देगा। परंतु क्या अहोबल ने भरत, शार्ङ्गदेव की ग्राम, मूर्च्छना पद्धति का वर्णन किया है? उसने यह वर्णन क्यों नहीं किया? उसे 'रत्नाकर' की जानकारी थी क्या? यदि थी, तो उसने

हमारे ग्रंथों का आधार क्यों ग्रहण किया है ? अच्छा, यदि भरत, शार्ङ्गदेव तुम्हारे थे, तो तुम्हारी ओर वे सारी परिभाषाएँ निराली क्यों हैं ? साधारण, कैशिक, अंतर, काकली आदि नाम हिंदुस्तानी गायक बिलकुल नहीं जानते। अब यदि किसी नवीन विद्वान् की सहायता से कोई एक-दो गायक स्वर-श्रुतियों की चर्चा करने लगे हों, तो आश्चर्य की बात नहीं, परंतु दिल्ली, लखनऊ, ग्वालियर, जयपुर आदि स्थानों के प्रसिद्ध गायकों को श्रुतियों के नाम भी ज्ञात नहीं हैं, ऐसा क्यों है ? 'रत्नाकर' का अर्थ जैसा तुम्हारी ओर उपयोग में लिया जाता है, वैसा ही यहाँ भी प्रयुक्त होता है। संस्कृत में हमारे यहाँ भी बड़े-बड़े पंडित हो गए हैं। हमारे यहाँ आज भी मूर्च्छना शब्द, आरोह-अवरोह के अर्थ में प्रचलित है। 'रत्नाकर' में वर्णित गमक, अलंकार, ताल, राग हमारी ओर अभी भी हैं। मूर्च्छना व जाति से उत्पन्न होनेवाले मेल (ठाठ) हमारे ग्रंथों में भी तुम्हारे यहाँ जैसे ही मिलते हैं। तुम्हारे अहोबल आदि के अनेक राग हमारे ग्रंथों के रागों से अच्छी प्रकार से मिलते हैं। 'रत्नाकर' की जिस टीका से तुम्हें ज्ञान प्राप्त होता है, उसका लेखक कल्लिनाथ हमारा ही था। 'रत्नाकर' के कुछ ग्राम राग व अनेक रागांग, उपांग, हमारे यहाँ आज भी हैं, जो तुम्हारे गायकों ने सुने भी न होंगे। रागांग, भाषांग, क्रियांग तथा उपांग, ये चार वर्ग आज भी हमारी ओर प्रचलित हैं। हमारे यहाँ संगीत-शास्त्र को भरत-शास्त्र ही कहते हैं। 'रत्नाकर' के मूर्च्छना व जाति को स्पष्ट करनेवाले ठाठ तुमने हमारे ग्रंथों से ही ले लिए हैं, क्योंकि खास हिंदुस्तानी कहा जानेवाला कौनसा शास्त्र ग्रंथ तुम्हारे पास है ? 'नारदीय शिक्षा' में ग्रामराग, ग्राम, मूर्च्छना, अंतर, काकली, आदि नाम दिखाई पड़ते हैं, इस पर भी तुम्हारे सारे देश में संगीत-संबंधी मूल पारिभाषिक शब्द एक भी नहीं है, इसका क्या कारण है ? भरत, शार्ङ्गदेव आदि विद्वानों ने अपने विकृत स्वरों का उपयोग कैसा किया है, यह तुम्हारे किस ग्रंथ में बताया गया है ? 'रत्नाकर' के रागों के ठाठ तुम्हारे कितने गायकों को ग्रहीत हुए हैं ?'

प्रश्न——उनके इन प्रश्नों का आपने क्या उत्तर दिया ?

उत्तर——मैंने कहा कि मैंने अभी भरत, शार्ङ्गदेव के संगीत का विषय अपने हाथों में नहीं लिया है, अतः आप लोगों के संदेह की निवृत्ति मुझसे कैसे हो सकेगी ? उन्होंने मुझसे और भी कुछ मजेदार प्रश्न किए थे, जो आगे बताऊँगा। यह कैसे कहा जा सकता है कि उनका कथन निरर्थक था ? मैं उन्हें यह उत्तर भी कैसे दे सकता था कि हमारे उत्तर के संपूर्ण ग्रंथ नष्ट हो चुके हैं ? परंतु मित्रो ! हम व्यर्थ ही विषयांतर की ओर जा रहे हैं। मैं तो यही कहूँगा कि 'भरत-नाट्यशास्त्र' में श्रुति-नाप के संबंध में तुम्हें संतोषजनक सामग्री नहीं मिलेगी। यह भी कहना पड़ेगा कि अभी तक उभय-पक्ष के प्रमाणों की खोज तपास कर किसी ने भी भरत व शार्ङ्गदेव के शुद्ध स्वर ठाठ का निश्चय नहीं किया है। अतः कुछ अंशों में उनका कथन सारगर्भित भी है।

प्रश्न——परंतु हमारे विद्वान् तो वर्तमान पत्र-पत्रिकाओं में दावा करते हैं कि उन ग्रंथों के संपूर्ण शुद्ध-विकृत स्वर व श्रुतियाँ छोड़ दी गई हैं।

उत्तर—यह विवेचन भी हम आगे चलकर करेंगे। सामान्यतः यह भी मेरी समझ में आता है कि इस प्रकार के ग्रंथ व लेख पाश्चात्य नाद-शास्त्र की मान्यता पर अधिक चलते हैं। ऐसा (New wine and old bottle) प्रकार सदैव सफल नहीं हो सकता। ग्रंथकारों ने बाईस श्रुति व ४, ३, २ आदि की व्यवस्था दे दी, इससे हमारा काम पूरा हुआ, यह कैसे कहा जा सकता है? हम अभी भी देखते हैं कि यह व्यवस्था संपूर्ण ग्रंथों में होने पर भी मतभेदयुक्त है। हमें प्रत्येक ग्रंथकार से संगीतोपयोगी ध्वनि का निर्णय लेना है, व उसके अन्वेषण का साधन भी उसी के ग्रंथ से निकालना है।

प्रश्न—जी हाँ, यह तो ठीक है ही, और इसी लिए हम इस दृष्टि से एक-एक ग्रंथ जाँच-जाँचकर देख रहे हैं। अभी तक जिन दो-चार ग्रंथों का विवरण आपने सुनाया है, उनमें तो उत्तम रूप से स्पष्टीकरण प्राप्त नहीं हुआ। यह तो हम देखते ही हैं कि ४, ३, २ आदि व्यवस्था हमारी आज की ही है। परंतु हमारा शुद्ध सप्तक 'रत्नाकर' का नहीं है। 'रत्नाकर' के राग हमारे उत्तरीय विद्वानों को कितनी मात्रा में ग्रहण होंगे, यह कौन जानता है। नहीं तो, एक नियम और उसमें दस अपवाद-जैसी बात होगी।

उत्तर—हाँ, तुम्हारा यह कथन ठीक है। मूर्च्छना व विकृत की सहायता से अपने प्रचलित राग उत्पन्न कर दिखाने के सिवाय लोगों का विश्वास कैसे प्राप्त किया जा सकता है? जबकि आज संपूर्ण देश में नामों की भिन्नता होने पर भी मुख्य बारह स्वर एक-से प्रचलित हैं, तब श्रुतियों के स्थान के संबंध में मनचाही धाक-धमक नहीं चल सकेगी। हमारे कथन की पुष्टि में लोग ग्रंथ-वाक्यों का प्रमाण चाहेंगे, और वह देने की तैयारी हम में उचित मात्रा में होना आवश्यक है। श्रुतियों को तोड़ने-मोड़ने से ठाठों के स्वर आगे-पीछे करने पड़ेंगे तथा प्रसिद्ध व बड़े-बड़े गायकों के गाने दोषपूर्ण ठहराने का अवसर आ जाएगा। ऐसा होने पर धींगा-धींगी का प्रसंग आ जाएगा कि 'या तो मेरा कहना मानो, या गलत सिद्ध होने को तैयार हो जाओ'। मेरी समझ से ऐसा होना किसी के लिए लाभकारक नहीं हो सकता। हमें इस दिशा में बढ़ने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि हम समाज की रुचि व प्रसिद्ध तथा प्राचीन गायकों के मत को तिरस्कृत करें।

प्रश्न—अब हमें 'रत्नाकर' की विचारधारा बतलाइए?

उत्तर—हाँ, अब हम उसी पर विचार करेंगे। यह तो तुम्हारे ध्यान में आ चुका होगा व मेरा भी ऐसा मत नहीं है कि हमारे प्राचीन ग्रंथकारों ने दंभपूर्वक चाहे जो कुछ गलत-सलत लिख दिया है। उनके समय में भी बहुत-सी बातें समाज में बिलकुल साधारण थीं। मुख्य स्वर तो परंपरा से ही लोक-प्रसिद्ध रहे हैं, परंतु श्रुतियों की स्वतंत्र कल्पना सही है या नहीं, यह प्रश्न अवश्य पैदा होता है। मैं अब तुम्हें शार्ङ्गदेव की श्रुति-व्यवस्था सुनाता हूँ। यह समझ में नहीं आता कि शार्ङ्गदेव की स्पष्ट व्याख्या का समर्थन हमारे पंडितों द्वारा क्यों नहीं किया जाता? हम शार्ङ्गदेव की भाषा में ही यह देखेंगे कि उसने श्रुतियाँ कैसी मानी हैं व उनसे शुद्ध व

विकृत स्वर किस प्रकार उत्पन्न कर स्थापित किए हैं। नाद-व्यवहार के अंतर्गत मंद्र, मध्य व तार, इन भेदों को कह देने के पश्चात् वह लिखता है :—

व्यवहारे त्वसौ त्रेधा हृदि मंद्रोभिधीयते।
कंठे मध्यो मूर्ध्नि तारो द्विगुणश्चोत्तरोत्तरः॥
तस्य द्वाविंशतिर्भेदाः श्रवणाच्छ्रुतयो मताः।
हृद्यूर्ध्वनाड़ीसंलग्ना नाड्यो द्वाविंशतिर्मताः॥
तिरश्च्यस्तासु तावत्यः श्रुतयो मारुताहताः।
उच्चोच्चतरतायुक्ताः प्रभवंत्युत्तरोत्तरम्॥
एवं कण्ठे तथा शीर्षे श्रुतिद्वाविंशतिर्मता॥

इसमें उसने शुद्ध स्वर-स्थान किस तरह स्थिर किया है, अब वह देखो [यहाँ वीणा का चित्र ध्यान में रखना चाहिए।]

अधराधरतीव्रास्तास्तज्जो नादः श्रुतिर्मतः।
वीणाद्वये स्वराः स्थाप्यास्तत्र षड्जश्चतुःश्रुतिः॥
स्थाप्यस्तंत्र्यां तुरीयायामृषभस्त्रिश्रुतिस्ततः।
पंचमीतस्तृतीयायां गांधारो द्विश्रुतिस्ततः॥
अष्टमीतो द्वितीयायां मध्यमोऽथ चतुःश्रुतिः।
दशमीतश्चतुर्थ्यां स्यात्पंचमोऽथ चतुःश्रुतिः॥
चतुर्दशीतस्तुर्यायां धैवतस्त्रिश्रुतिस्ततः।
अष्टादश्यास्तृतीयायां निषादो द्विश्रुतिस्ततः॥
एकविंश्या द्वितीयायां × × × ॥

प्रश्न—इससे यह स्पष्ट दिखाई देता है कि शार्ङ्गदेव ने प्रत्येक सप्तक में बाईस श्रुतियाँ ही मानी हैं और उसकी श्रुति-स्वर-व्यवस्था भी दूसरों-जैसी ४, ३, २ आदि के अनुपात से थी।

उत्तर--यहाँ एक तर्क संभवतः तुम्हारे लक्ष्य में नहीं आएगा। शार्ङ्गदेव की वीणा पर बाईस श्रुतियों के भिन्न-भिन्न बाईस तार नियत हैं तथा उस पर ४, ७, ९, १३, १७, २०, २२ वें तारों के नाद पर उसने शुद्ध स्वर स्थापित किए हैं। इस पर आगे चलकर कल्लिनाथ ने ठीक ही कहा—"इत्थमियत्तया निश्चिताभ्यः श्रुतिभ्यश्च स्वराणां निष्पत्तिः"

श्रुतिभ्यः स्युः स्वराः षड्जर्षभगांधारमध्यमाः।
पंचमो धैवतश्चाथ निषाद इति सप्त ते॥

श्रुति-स्वर-चार्ट

अ० नं०	श्रुति-नाम	शुद्ध स्वर	विकृत स्वर	संख्या
४	छंदोवती	सा	अच्युत षड्ज	१२
५	दयावती			
६	रंजनी			
७	रक्तिका	रे	विकृत अथवा चतुःश्रुतिक ऋषभ	१
८	रौद्री			
९	क्रोधा	ग		
१०	वज्रिका		साधारण गांधार	२
११	प्रसारिणी		अंतर गांधार	३
१२	प्रीति		च्युत मध्यम	४
१३	मार्जनी	म	अच्युत मध्यम	५
१४	क्षिती			
१५	रक्ता			
१६	संदीपनी			
१७	आलापिनी	प	कैशिक पंचम, त्रिश्रुतिक पंचम	६,७
१८	मदंती			
१९	रोहिणी			
२०	रम्या	धु	विकृत अथवा चतुःश्रुतिक धैवत	८
२१	उग्रा			
२२	क्षोभिणी	नि		
१	तीव्रा		कैशिक निषाद	९
२	कुमद्वती		काकली निषाद	१०
३	मंदा		च्युत षड्ज	११
२२		७	१२	

शार्ङ्गदेव का यह श्रुति-स्वर-चार्ट मैंने तुम्हारे लिए तैयार किया है। इस चार्ट में 'रत्नाकर' में वर्णित श्रुति-क्रम दिखाते हुए शुद्ध व विकृत स्वर यथास्थान नियत श्रुति पर बताए गए हैं। यह थोड़ा भिन्न प्रश्न है कि ये विकत स्वर शार्ङ्गदेव ने

कहाँ व कैसे उपयोग में लिए हैं। दक्षिण की ओर पारिभाषिक नाम तो ये ही हैं, परंतु जैसा कि मैं बता ही चुका हूँ, उधर ग्राम, मूर्च्छना व जाति से राग-रूप उत्पन्न नहीं किए जाते। और तुम यह जानते ही हो कि वहाँ षड्ज से षड्ज तक के स्वर-सप्तक के शुद्ध-विकृत स्वरों की सहायता से ही संपूर्ण राग-रूप उत्पन्न किए जाते हैं। यही रीति हमारे यहाँ प्रचलित है। तुम्हें यह दीख पड़ेगा कि हमारे अनेक रागों के ठाठ दक्षिण के ग्रंथों में मिल जाते हैं। इस पर हमारे विद्वान् कहते हैं कि ये ठाठ हम भरत, शार्ङ्गदेव के अनेक बताए हुए नियमों द्वारा सिद्ध कर सकते हैं। विद्वानों का कथन ठीक ही है, परंतु उससे एक मजेदार बात अपने-आप सिद्ध हो जाएगी कि दक्षिण के ग्रंथकारों ने शार्ङ्गदेव के संपूर्ण विकृत स्वर, मूल पारिभाषिक नामों के साथ या शार्ङ्गदेव द्वारा कथित श्रुतियों पर स्थापित किए हैं। इन्हें ही शुद्ध स्वर-सप्तक में प्रयुक्त करते हुए, आवश्यकतानुसार राग-मेल (ठाठ) उत्पन्न किए हैं। इस पर कोई यह भी कह सकता है कि उन पंडितों ने अपना शुद्ध स्वर-सप्तक स्थिर करने में ही सब विशेषता रखी है? परंतु बात ऐसी ही है।

प्रश्न--अब आप हमें शार्ङ्गदेव के विकृत स्वर बतानेवाले हैं न ?

उत्तर--हाँ, वही बताने वाला हूँ। सुनो :—

त एव विकृतावस्था द्वादश प्रतिपादिताः

इस विकृति के संबंध में कल्लिनाथ डंके की चोट इस प्रकार कहता है :—

'षड्जमध्यमग्रामद्वयापेक्षया, विकृतस्वरान् ग्रंथकारो लक्षयति' यह मूल ग्रंथ में भी स्पष्ट है। इसे देखकर कोई भी यह कह सकता है कि दक्षिण के पंडितों ने भी भरत, शार्ङ्गदेव की पद्धति के सिद्धान्त देखे थे। यद्यपि इससे यह ज्ञात नहीं होता कि एक ही सप्तक के भिन्न-भिन्न रागों में ये विकृत स्वर शार्ङ्गदेव ने प्रयुक्त किए थे, तो भी यह कथन दोषपूर्ण नहीं कहा जा सकता कि उसने अपने रागों की एकवाक्यता 'रत्नाकर' के जाति रागों से नहीं की, अतः उसका अच्छी प्रकार स्पष्टीकरण नहीं होता। Fox Strangways आदि लेखकों का मत है कि दक्षिण का सप्तक कुछ संगीत की अपरिणित दशा से हमारे संबंध का दर्शक है। कोई-कोई कहते हैं कि इससे (Folk Music) का आभास मिलता है। यह सब हमारा विषय है ही नहीं, अतः हम इस विषय के अपने तर्क एक ओर रख दें।

प्रश्न--(Folk Music) फोक म्यूजिक किसे कहते हैं ?

उत्तर--यह बात मैं Parry साहब के शब्दों में ही बताता हूँ :—

The basis of all Music and the very first steps in the long story of Musical development are to be found in the Musical utterances of the most undeveloped and unconscious types of humanity, such as unadulterated savages and inhabitants of lonely isolated districts well removed from any of the influences of education and culture. Such savages are in the same position

in relation to music as the remote ancestors of the race before the story of the artistic development of music began, and through the study of the ways in which they contrive their primitive fragments of tune and rhythm, and of the principles upon which they string these together, the first steps of musical dev.lopment may be traced. True Folk-music begins a step higher, when these fragments of tune as nuclei, are strung together upon any principles which give an appearance of orderliness and completeness; but the power to organise materials in such a manner does not come to human creatures till a long way above the savage stage. In such things a savage lacks the power to think consecutively or to hold the relations of different factors in his mind at once. His phrases are Necessarily very short and the order in which they are given is unsystematic. It would be quite a feat for the original brain to keep enough factors under control at once to get even two phrases to balance in an orderly manner. The standard of completeness in design depends upon the standard to intelligence of the makers of the product; and it cannot therefore be expected to be definite or systematic when it represents the intellectual standard of savages.

अब अधिक नहीं पढ़ूँगा ! तुम्हारे ध्यान में इतने से ही इसकी साधारण रूप-रेखा आ गई होगी। हम यह निश्चित करने के लिए अब नहीं रुकेंगे कि दक्षिण का स्वर-सप्तक अच्छा है या बुरा, उसे विद्वानों ने खास तौर से ऐसा ही रचा है, अथवा यह कुछ जंगलीपन लिए है। अब मैं आगे चलता हूँ :—

च्युतोऽच्युतो द्विधा षड्जो द्विश्रुतिर्विकृतो भवेत् ।
साधारणे काकलीत्वे निषादस्य च दृश्यते ।।
साधारणे श्रुतिं षाड्जीमृषभः संश्रितो यदा ।
चतुःश्रुतित्वमायाति तदैको विकृतो भवेत् ।।
साधारणे त्रिश्रुतिः स्यादंतरत्वे चतुःश्रुतिः ।
गांधार इति तद्भेदौ द्वौ निःशंकेन कीर्तितौ ।।
मध्यमः षड्जवद्द्वेधाऽन्तरसाधारणाश्रयात् ।
पंचमो मध्यमग्रामे त्रिश्रुतिः कैशिके पुनः ।
मध्यमस्य श्रुतिं प्राप्य चतुःश्रुतिरिति द्विधा ।।
धैवतो मध्यमग्रामे विकृतिःस्याच्चतुःश्रुति :
कैशिके काकलीत्वे च निषादस्त्रिचतुःश्रुतिः ।।

प्राप्नोति विकृतौ भेदौ द्वाविति द्वादश स्मृताः।
तैः शुद्धैः सप्तभिः सार्धं भवंत्येकोनविंशतिः॥

हाथ में नक्शा लेकर इन श्लोकों को देखने पर इनका अर्थ सरलता से समझ में आ जाएगा।

प्रश्न—इन श्लोकों का शाब्दिक अर्थ हम उत्तम रूप से समझ गए। परंतु शार्ङ्गदेव की श्रुति का क्या मतलब है? जैसे हमें षड्ज के आगे ऋषभ की तीन श्रुतियाँ कायम करनी हैं, तो उन्हें कैसे करेंगे? तीसरी श्रुति पर पहुँचने पर हमें शुद्ध ऋषभ मिलेगा न? यह स्पष्टीकरण ग्रंथकर्त्ता ने किया होगा।

उत्तर—हाँ, हाँ, यह तो उसने यथा-शक्ति अपनी समझ के अनुसार किया है। परंतु उसे वर्तमान पंडितों की कल्पना सूझी भी न होगी, यह दिखाई पड़ता है। उसके स्पष्टीकरण का विवरण मैं तुम्हें सुनानेवाला हूँ।

प्रश्न—तो उसे अभी बता दीजिए, क्योंकि बिना उसके हमारी गाड़ी रुक रही है।

उत्तर—पहले तो शार्ङ्गदेव ने अपने पाठकों को 'श्रुति-वीणा' समझाई है, आगे चलकर फिर वाद्याध्याय में 'स्वर वीणा' का वर्णन किया है।

प्रश्न—अच्छा, ऐसी बात है! यह आप पहले ही बता देते तो बड़ा अच्छा होता। तो फिर, क्या व्यर्थ ही प्रख्यात पंडित के नाम से प्रसिद्धि पा गया? ऐसी त्रुटि उसने अपने ग्रंथ में कैसे रखदी? चार श्रुति पर सा, तीन श्रुति पर रे, आदि। जबतक कि श्रुति क्या हैं, व उन्हें कैसे गिना जाए, आदि न समझ लिया जाए, तब तक पाठक कल्पना ही क्या कर सकेंगे? तुम्हें जो कुछ सुनने को मिले, वही स्वर-ध्वनि व मैं कहूँ उतनी ही व वैसी ही उसकी श्रुतियाँ, इस प्रकार का विधान संतोष-जनक कैसे कहा जाएगा? हमें तो यह अनुमान था कि अपनी प्रत्येक श्रुति-ध्वनि का प्रमाण उसने कहीं-न-कहीं लिख ही दिया होगा। अब आप यह कह रहे हैं कि श्रुति स्वरों की प्राथमिक स्थिति का नाम है, और वह उसने श्रुति-वीणा से यथायोग्य रूप से समझाई है। अच्छा तो फिर आगे इस संबंध में वह क्या कहता है, वह भी सुना दीजिए। इतना जान लेने पर हमें अपने इस विद्वान् की श्रुति-संबंधी योग्यता वास्तविक रूप से दिखाई देगी। ठीक है न?

उत्तर—बिलकुल ठीक! तुम्हारा उत्साह देखकर मुझे बहुत आनंद हो रहा है। किसी भी विषय के शिक्षण के लिए इस प्रकार के शिष्यों का प्राप्त होना, गुरु के लिए बड़े सौभाग्य की बात है। तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर देने के पूर्व अभी मैं एक बात और कहे देता हूँ। शार्ङ्गदेव के समय के हमें आज जो-जो साधन प्राप्त हैं—वे नहीं थे। यह कथन भी असत्य नहीं कहा जा सकता कि उसके समय की सुनी हुई,

मानी हुई व सीखी हुई बातें 'रत्नाकर' में उसने लिख दी हैं। कोई कह सकता है कि उसने अपने ग्रंथ में विषयों की व्याख्या जितनी आवश्यक थी, नहीं की तथा मूर्च्छना, जाति व अपने विकृत स्वरों का विवरण नहीं दिया। परंतु हमें यह न भूलना चाहिए कि आज हमारी चर्चा का यह विषय नहीं है। मैं तुम्हें 'श्रुति-वीणा' समझा रहा था न? इससे तुम यह न समझ लेना कि शार्ङ्गदेव ने 'श्रुति-वीणा' नामक किसी अद्‌भुत व अपूर्व वाद्य की रचना की थी। वीणा व सितार तो तुम्हारे देखे हुए वाद्य ही हैं। अब मुझे बताओ कि यदि तुम्हारे सितार पर के सारे परदे मैं निकाल डालूँ, तो फिर उसमें क्या बचेगा?

प्रश्न—फिर क्या, गुरूजी! डांडी, घोड़ी, खूँटियाँ, मेरु, तुंबा यही बचेंगे। दूसरी क्या चीज रहेगी? परंतु फिर बजाएँगे क्या?

उत्तर—जरा ठहरो, और आगे सुनो! अब तुम्हारे उस सितार पर चार तार की जगह मुझे बाईस तार लगाने हैं, तो ऐसा करना संभव है, या नहीं?

प्रश्न—क्यों नहीं? इसमें कौनसी अड़चन है? छोटी-छोटी खूँटियाँ लगाकर ऐसा सहज में किया जा सकता है; परंतु यह वाद्य बजाएगा कौन?

उत्तर—यह मैंने कब कहा कि इसे बजाना ही चाहिए? इन बाईस तारों को श्रुतियों के माप से मिलाना है। यह कैसे होगा, सुनो :—

+ + + + + + तासु चादिमा ।
कार्यामंद्रतमध्वाना द्वितीयोच्चध्वनिर्मनाक् ।।
स्यान्निरंतरता श्रुत्योर्मध्ये ध्वन्यतराश्रुतेः ।
अधराधरतीव्रास्तास्तज्जो नादः श्रुतिर्मतः ।।

सुना श्रुतियों का माप? शायद शार्ङ्गदेव को यह आशा रही होगी कि इतनी चाभी से लोग धड़ाधड़ श्रुति स्थापित करने लगेंगे। इसमें तुम कितनी समझ सके, जरा बताओ तो?

प्रश्न—हमें तो कुछ भी समझ में नहीं आया। जहाँ पहले थे, वहीं पर अभी तक हैं।

उत्तर—क्यों भाई? पं० शार्ङ्गदेव ने एक सप्तक में बाईस श्रुति मानी हैं, अर्थात् बाईस तार लगाए हैं। इतना ही नहीं, उन्होंने श्रुति की सोपान-परंपरा भी स्वीकार की है। फिर उन्होंने श्रुतियों पर कितनी स्पष्टता से स्वर स्थापित किए हैं, यह तो देखो। प्रत्येक श्रुति अर्थात् एक-एक तार की स्वतंत्र ध्वनि, इस न्याय से बाईस नाद तुमने कायम किए कि चौथे तार की आवाज षड्ज, सातवें की आवाज ऋषभ

होगी। यही क्रम उन्होंने सरल भाषा में, परंतु संक्षिप्त रूप में कह रखा है। यह भी नहीं कहा जा सकता कि इस कल्पना में उन्होंने अपनी ओर से भी कुछ मिलाया हो, क्योंकि भरत के स्वर भी श्रुतियों पर स्थित हैं। इसमें तुम्हें क्या कठिनाई आती है, वह मुझे बताओ!

प्रश्न--देखिए, केवल कागजी या शाब्दिक वर्णन संगीत-जैसे विषय में कैसे युक्ति-युक्त कहा जाएगा? सिर्फ बारहों स्वरों को पहचाने में ही हमें कितना प्रयास हुआ है। अमुक श्रुति षड्ज की तुलना में कौनसी ध्वनि है, क्या इस बात को स्पष्ट रूप से नहीं बताना चाहिए? यह कैसा श्रुतियों का नाप है कि तुम आज तक जिन ऋषभ व गांधार को घिसते चले आ रहे हो, या नहीं जानते हो, वे सातवीं व नवीं श्रुति की ध्वनि ही हैं! सातवीं से जरा-सा पीछे हटने पर छठी श्रुति बन गई, उससे थोड़ा पीछे हटने पर पाँचवीं श्रुति हो गई, यह क्या श्रुति-नाप की व्यवस्थित रीति है? 'द्वितीयाउच्चध्वनिर्मनाक्' केवल इस मंत्र से तो बाईस श्रुतियाँ मिलनेवाली हैं नहीं?

उत्तर--ऐसा क्यों कहतो हो? एक तार से दूसरा तार ऊँचा मिलाते जाना क्या असंभव है? इसमें कौनसी बात अशक्य है?

प्रश्न--तार मिलना तो संभव है, परंतु एक निम्नतम नाप अनेक वादकों को देकर तार मिलाने के लिए अलग-अलग बैठा दिया जाए, तो वे न जाने कहाँ-कहाँ मिला लाएँगे।

उत्तर--हाँ, यह कठिनाई तुमने ठीक ही बताई है। परंतु ठहरो तो, एक बात और भी है। तुम्हारी बताई गई यह कठिनाई गायकों के सामने श्रुति लगाते समय जितनी आएगी, क्या उतनी कठिनाई केवल वीणा के तार मिलानेवालों को भी आएगी? इन्हें तो केवल एक से दूसरा तार ही खींचना है, और तो कुछ नहीं। स्वर इच्छानुसार वहाँ कैसे नहीं आएँगे।

प्रश्न--ऐसा मान लें तो भी सारे वादकों की श्रुतियाँ एक ही नियत जगह पर नहीं आ सकेंगी। प्रत्येक गायक-वादक, ऊँची-नीची ध्वनि स्वतः के कानों से ही पहचानता है न? यह नाद सभी का एकसा कैसे मिल सकता है? हाँ, श्रुति का अर्थ यदि ऐसा कुछ हो कि तार की अमुक लंबाई अमुक श्रुति है, तो अलग बात है। श्रुति कायम न हुई तो स्वर भी कायम नहीं हो, सकते। आपके कथन से ज्ञात होता है कि शार्ङ्गदेव ने अपना शास्त्र इसी क्रम से प्रस्तुत किया है। हमें तो यह विधान थोड़ा लँगड़ा ही मालूम पड़ता है। हमें तो यह क्रम स्वीकार नहीं, यदि अन्य विद्वानों को योग्य दिखाई दे तथा स्वीकार हो, तो वे स्वीकार करें।

उत्तर--तो फिर पं० शार्ङ्गदेव इससे अधिक श्रुति वीणा-प्रकरण में स्पष्टी-करण करते भी नहीं हैं। हाँ, यहाँ मुझे स्पष्टतापूर्वक स्वीकार करना पड़ेगा कि यह

विधान युक्तिसंगत अथवा समाधानकारक नहीं है। यह नहीं कि यह बात कहनेवाला दूसरा और कोई है ही नहीं। एक आलोचक ने तो उसे Pedantic (दंभी) व Unnatural (अस्वाभाविक) कहा है, यह मुझे स्मरण है। इसी आलोचक ने यह भी कहा है कि प्राचीन ग्रंथकर्ता इन सूक्ष्म नादों की उलझन में पड़ते ही नहीं थे। मूर्च्छना व जाति के प्रचलन के समय भिन्न-भिन्न ठाठ बदलने में श्रुति का थोड़ा-बहुत उपयोग चाहे होता हो, परंतु प्रत्यक्ष रागों में हमारे गायक जो आज श्रुति का झगड़ा (गड़बड़) अधिक करते हैं, वैसी बात नहीं थी। मुख्य बारह या चौदह स्वरों पर ही प्राचीन ग्रंथों का संपूर्ण संगीत रहा है।

प्रश्न——ठीक है, पर क्या आपको यह बात विचित्र नहीं मालूम होती कि इतने बड़े 'रत्नाकर' ग्रंथ में दो स्वरों के मध्य में श्रुतियाँ कैसे कायम की जाती हैं। इस बात के स्पष्ट न होने से पाठकों को कितनी कठिनाई होगी, यह तथ्य शार्ङ्गदेव के ध्यान में ही नहीं आया?

उत्तर——जरा ठहरना तो, मैं कुछ भूल-सा गया था। प्रवास के समय इसी मुद्दे पर बोलते हुए एक विद्वान् ने मेरा ध्यान 'रत्नाकर' के वाद्याध्याय के आठवें व नवें श्लोक की ओर आकर्षित किया था। ये श्लोक मुझे भी महत्त्वपूर्ण ज्ञात हुए।

ततं वीणा द्विधा सा च श्रुतिस्वरविवेचनात्।
तत्र श्रीशार्ङ्गदेवेन श्रुतिवीणोदिता पुरा॥
वक्ष्यते स्वरवीणाऽत्र तस्यामपि विचक्षणाः।
अंकित्वा स्वरदेशानां भागानुद्धिंदते श्रुतीः॥

प्रश्न——क्या इससे यह स्पष्ट ज्ञात नहीं होता कि प्राचीन संगीत-विद्वान् अपनी वीणा पर प्रथम परंपरागत स्वरों के अंदाज पर ही परदे बाँधते होंगे, फिर शास्त्रोक्त श्रुतियाँ संख्या के अनुमान पर दो स्वरों के बीच में श्रुतियों की कल्पना की होगी?— टीकाकार इस विषय में क्या कहते हैं?

उत्तर——सबसे अधिक माननीय टीकाकार पं० कल्लिनाथ का मत तुम्हारे कथन जैसा ही है। यह मत प्रत्येक व्यक्ति के स्वीकार करने-योग्य है, क्योंकि वह बिलकुल सरल व सुबोध है। यह सिद्ध किया जा सकता है कि प्रत्येक दो स्वरों के मध्य के फासले पर शास्त्रोक्त संख्या के अनुसार समान भाग कर, श्रुति कायम करने का मत कल्लिनाथ व उसके बाद के सभी संस्कृत-ग्रंथकारों का रहा है। मैं तुम्हें आगे चलकर यह भी बताऊँगा कि अहोबल का 'पारिजात' ग्रंथ भी इस मत का अपवाद नहीं है।

प्रश्न—- तो फिर यही कहना पड़ेगा कि शार्ङ्गदेव की श्रुतियों का नाप किसी निश्चित प्रमाण पर स्थित नहीं है। प्रत्येक दो स्वर के मध्यांतर के समान भाग करने की प्रथा भी उसकी ही थी, परंतु उसके परंपरागत स्वर कौनसे थे, यह बात संदिग्ध ही रह जाती है।

उत्तर--यदि अभी ऐसा ही मानकर आगे चला जाए तो मुझे कोई हानि नहीं दिखाई पड़ती। अभी हम क्रमश: अगले ग्रंथों पर विचार करनेवाले हैं। चलते-चलते तुम्हें मैं Parry साहब के ग्रंथ का एक उद्धरण पढ़कर सुनाता हूँ। नए-नए विचार व कल्पना हमारे उपयोग में अवश्य आती हैं, परंतु उन्हें नवीन कहने में क्या हानि है? ये साहब लिखते हैं :—

'As int he case of the Parsian and Arabic system, the Indian scale does not come within the range of intelligible record till it is tolerably mature and complete from octave to octave. In order to get a variety of major and minor tones, and semitones, the scale was in ancient times divided into twenty-two small intervals called 'Shrutis' which were a little larger than quarter tones. A whole tone contained four Shrutis a three quarter tone three and a semitone two. By this system a fair scale was obtained in which the fourth and fifth were very nearly true, and sixth high (Pythagorean). In what order the tones and semitones were arranged seems doubtful, and in modern music the system of twenty-two Shrutis has disappeared, and a system of the most extraordinary complexity has taken its place. The actual series of notes approximates as nearly as possible to the European arrangement of twelve semitones; and the peculiarity of the system lies in the way in which it has been developed into modes. The vertue of the system of modes has already been pointed out, as has the adoption of a few diverse ones by the Greeks. The indians went so far as to devise seventy-two by grouping the various degrees of the scale differently in respect of their flats and sharps. The system can be made intelligible by a few examples out of this enormous number. Our familiar major mode forms one of them and goes by the name of Dhir Shankara Bharan. Our harmonic minor scale also appers under the name 'Kirwani, the Greek modes also make their appearance, and every combination which it is possible to get out of the semitones, but always so that each degree is represented in some way or other...........

But besides these modes the Indians have developed a further principal of restriction in the 'Ragas' which are a number of formulas regulating the order in which the notes are to succeed each other. The rule appears to be that when a

performer sings or plays a particular 'Ragas' he must conform to a particular melodic out line both in ascending and descending. He may play fast or slow or stop on any note and repeat it or vary the rhythm at his pleasure. It even appears that he may put in ornamental notes and little scale passages and interpolate here and there notes that do not belong to the system, so long as the essential notes of the tune conform the rules of progression. Just as in modern harmonic music certain discords must be resolved in a particular way, but several subordinate notes may be interpolated between the discord and resolution.

इन साहब के ग्रंथ में 'Scales' नाम का अध्याय बहुत मनोरंजक है। इसी प्रकार Blasserna साहब के ग्रंथ Theory of Music का सातवाँ अध्याय भी पढ़ने योग्य है। प्राचीन काल में श्रुतियाँ २२ क्यों मानी गईं व इस समय (अथवा मध्य-कालीन ग्रंथकारों के समय) में बारह या चौदह ही क्यों कही जाती हैं; यह प्रश्न वास्तव में बड़ा महत्त्वपूर्ण है। एक विद्वान् ने मुझे यह भी बताया था कि प्राचीन बाईस श्रुतियों का उपयोग मूर्च्छनादि में करने से जो-जो बातें प्राप्त होती हैं, वे ही बातें एक सप्तक में बारह या चौदह स्वर-स्थान मानने पर उत्पन्न हो सकती हैं। परंतु कौन जाने यह मत वर्तमान विद्वानों, गायकों को ग्राह्य होता है या नहीं ? खैर, अभी हमें इस प्रकार के प्रश्नों के पीछे नहीं जाना है, अन्यथा हमारा मुख्य विषय एक तरफ ही रखा रह जाएगा।

प्रश्न—आपका यह कथन उचित है। हम भी आपसे इस समय विवादग्रस्त और अनावश्यक विषयों पर विवेचन करने का आग्रह नहीं करेंगे।

उत्तर—बहुत अच्छी बात है। अब हम पंडित रामामात्य के ग्रंथ 'स्वरमेल-कलानिधि' पर विचार करेंगे। हमें उसका केवल स्वर-श्रुति-प्रकरण देखना है। यदि एक बार तुम इन संस्कृत-ग्रंथकारों के मत ठीक से समझ जाओ, तो तत्काल तुम्हारी समझ में आ जाएगा कि हमारे वर्तमान विद्वानों के विचारों में ग्रंथों का आधार कितनी मात्रा में विद्यमान है। यह निर्विवाद है कि पंडित रामामात्य की पद्धति दक्षिण की है। तुम जिस बात की खोज में लगे हो, वह बात इस कर्नाटकी पद्धति में शायद ही मिल सके।

स्वरमेल कलानिधि के श्रुति-स्वर-प्रकरण का नक्शा

क्रमांक	श्रुति-नाम	शुद्ध स्वर	विकृत स्वर-नाम व स्थान
४	छंदोवती	सा	
५	दयावती		

६	रंजनी		
७	रक्तिका	री	
८	रौद्री		
९	क्रोधा	ग	पंचश्रुतिक ऋषभ
१०	वज्रिका		साधारण गान्धार
११	प्रसारिणी		अन्तर गान्धार
१२	प्रीति		च्युतमध्यम गान्धार
१३	मार्जनी	म	
१४	क्षिति		
१५	रक्ता		
१६	संदीपनी		
१७	आलापिनी	प	च्युतपंचम मध्यम
१८	मदन्ती		
१९	रोहिणी		
२०	रम्या	ध	
२१	उग्रा		
२२	क्षोभिणी	नी	पंचश्रुतिक धैवत
१	तीव्रा		कैशिक निषाद
२	कुमद्वती		काकली निषाद
३	मंदा		च्युतषड्ज निषाद
४	छन्दोवती	सा	

इस नक्शे को देखने पर हमें निम्नलिखित बातें दिखाई पड़ती हैं। पंडित रामामात्य ने शार्ङ्गदेव के समान ही बाईस श्रुति मानकर उनके प्राचीन नाम देते हुए प्रत्येक शुद्ध स्वर का अपनी अंतिम श्रुति पर रहना स्वीकार किया है। रामामात्य, सोमनाथ, अहोबल आदि पंडितों की पद्धति तुम्हें अच्छी तरह ध्यान में जमा लेनी है, क्योंकि हमारे श्रुति-व्याख्या-कर्त्ता विद्वानों का मुख्य आधार ये ग्रंथकार ही दिखाई पड़ते हैं। रामामात्य ने अपनी श्रुतियाँ 'रत्नाकर' के सहारे तैयार नहीं कीं, यह बात अपने मत के समर्थन में दिए हुए उसके उद्धरण से दिखाई पड़ती है। 'श्रुति उच्चोच्चतर होती हैं व उनकी रचना सोपान-परंपरा जैसी होती है।' इतना कहने मात्र से ही भरत, शार्ङ्गदेव का आधार ग्रहण किया जाना सिद्ध नहीं होता। दक्षिण के ग्रंथकारों ने शार्ङ्गदेव की परिभाषाओं का कैसा अर्थ किया, अभी यह प्रश्न तुम्हारे सामने नहीं है। मैं तो कहूँगा कि दक्षिण के ग्रंथों पर अपने विद्वानों ने

जिस प्रकार अपनी श्रुतियाँ लाद दी हैं, उनका यह कार्य योग्य नहीं कहा जा सकता, यह भी मेरा निश्चित मत है। रामामात्य के पांच विकृत तो शार्ङ्गदेव के बताए स्थानों पर ही हैं। केवल 'रत्नाकर' के विकृत रे व ध स्वर चार श्रुतियों वाले हैं व 'कलानिधि' के पंचश्रुतिक हैं, तथा वे शुद्ध ग, नि के समान हैं। ऐसा क्यों? यह हमारा प्रश्न नहीं। मेरा तो केवल प्रचलित स्वर-श्रुति-चर्चा समझ सकने का साधन प्रस्तुत करने का कार्य है। अभी भरत, शार्ङ्गदेव को हम अलग छोड़ देते हैं। यह नहीं समझना चाहिए कि दक्षिण की पारिभाषिक शब्दावली रामामात्य ने ही प्रथम आरंभ की है। यह बात तो सरलता से सिद्ध हो सकती है कि वह कल्लिनाथ के पूर्व से चली आ रही है। अच्छा, तो अब तुम पूछोगे कि रामामात्य 'श्रुति' का अर्थ क्या बताता है!

प्रश्न—जी हाँ, यही हम पूछनेवाले थे?

उत्तर—मुझे खेद है कि इस प्रश्न का उत्तर 'कलानिधि' में प्राप्त नहीं होता। ग्रंथकार ने श्रुतियाँ स्वीकार करके आगे कहा है :—

तत्र तुर्यश्रुतौ षड्जः सप्तम्यामृषभो मतः।
ततो नवम्यां गांधारस्त्रयोदश्यां तु मध्यमः॥

प्रश्न—आगे जाने की जरूरत नहीं। जबकि श्रुति का क्या अर्थ है, यही स्पष्ट नहीं, तो श्रुतियों पर स्वर-सप्तक कैसे कायम हो सकेगा?

उत्तर—तुम्हारा यह कथन यथार्थ है। मालूम होता है कि यह ग्रंथकार कुछ ऐसी मान्यता लेकर ही चला होगा कि सारे प्रचलित स्वर पाठकों के जाने हुए हैं। अब तुम्हारे मस्तिष्क में नवीन कल्पना उत्पन्न होती है, तो तुम प्राचीन ग्रंथों में वर्तमान मान्यताओं का आधार खोजते हो। यदि यह आधार जैसा चाहिए, वैसा नहीं मिलता, तो ग्रंथकार पर रुष्ट होते हो। परंतु जब श्रुति की उलझन उन पंडितों के समय में थी ही नहीं, तब वे उसकी चर्चा अपनी रचना में कैसे करते? यह सब दोष प्रचलित स्वरों में अपने राग समझनेवाले व्यक्ति का ही होगा। वर्तमान समय में अपने पंडितों को तो श्रुति छोड़कर और अटकनेवाली कोई बात नहीं है न? इतनी शताब्दियों में भी सूक्ष्म स्वरों की उलझन में हमारे गायक-वादक कहाँ पड़े? अहोबल तो अपनी ही पद्धति का पंडित था न? उसने कितने स्वरों का उपयोग किया व श्रुति का क्या अर्थ किया, यह बात मैं तुम्हें अब आगे बतानेवाला हूँ। दक्षिण के पंडितों ने अपने ग्रंथों का स्पष्ट विवरण नहीं दिया, इसलिए उनपर रुष्ट होना तो पड़ोसी के घर अपनी आवश्यकता का सामान न मिलने पर कुपित होने-जैसी बात है। अपनी श्रुति-कल्पना को हमें उन ग्रंथों पर लादना ही क्यों चाहिए? अस्तु, पंडित रामामात्य ने सात शुद्ध स्वर व सात विकृत, ऐसे चौदह स्वर अपने सप्तक में मानकर आगे इस प्रकार लिखा है :—

ननु रत्नाकरे शार्ङ्गदेवेन विकृताः स्वराः ।
द्वादशोक्ताः कथं ते तु सप्तैव कथितास्त्वया ॥
सत्यं लक्षणतो भेदो द्वादशानामपीष्यते ।
शुद्धेभ्यस्तत्र भेदस्तु सप्तानामेव लक्षितः ॥
आधारश्रुतिसंत्यागाद् ध्वनिभेदः प्रकीर्तितः ।
पंचानां परिशिष्टानां स्वराणां विकृतात्मनाम् ॥
पूर्वस्वरश्रुतिग्राहाद्वा पूर्वश्रुतिवर्जनात् ।
अपि लक्षणतो भेदे पूर्वोक्तस्वरसंहतेः ॥
आधारश्रुतिनिष्ठत्वाल्लक्ष्यभेदो न विद्यते ।

शार्ङ्गदेव के समय अर्थात् उसके ग्रंथों में जो पद्धति बताई गई है, वह रामामात्य के समय नहीं थी, यह दोनों ग्रंथों के पाठक जान सकते हैं। इस मत में मध्यम ग्राम प्रचार में भिन्न नहीं जाना जाता। सारे राग एक ही सप्तक से उत्पन्न होते हैं। पंचम अपने स्थान से नहीं हटता। षड्ज, मध्यम व पंचम की अवस्था 'च्युत' नहीं मानी जाती।

प्रश्न--तो फिर इन तीन स्वरों की तीसरी श्रुति का स्वरत्व भी नहीं माना होगा ?

उत्तर--ऐसा नहीं है। उसने इन्हें पिछले नी, ग तथा म स्वर की विकृति मानी है। तुम्हें मालूम ही है कि निषाद स्वर की कैशिक व काकली, ये दो विकृतियाँ प्रसिद्ध हैं; इन्हीं में एक और बढ़ जाती है। निषाद ने षड्ज की तीसरी श्रुति ग्रहण की, इसी लिए रामामात्य ने इसे 'च्युत षड्ज निषाद' कहा। यह नाम शार्ङ्गदेव की परिभाषा का है, इसे किस प्रकार धीरे से कहाँ चिपका दिया है, देखा न? मध्यम की तीसरी श्रुति ग्रहण करनेवाला गांधार 'च्युत मध्यम गांधार' व पंचम की तीसरी श्रुति ग्रहण करनेवाला मध्यम 'च्युत पंचम मध्यम' स्वर हुआ। ऐतिहासिक दृष्टि से यह क्रम ध्यान में रखने योग्य है। यहाँ एक और बात तुम्हें विशेष रूप से समझ लेनी चाहिए।

प्रश्न--वह कौनसी ?

उत्तर--ग्रंथकार ने तीन श्रुति का शुद्ध ऋषभ बताया है। इसका अर्थ इतना ही समझना चाहिए कि गुरु के मुख से जो नाद शुद्ध 'री' के नाम पर सिखाया जाए, वह तीन श्रुति का है और यह सभी शिष्यों को मानकर चलना है। इस शुद्ध 'री' के आगे शुद्ध 'ग' दो श्रुति पर शास्त्र में बताया गया है, अर्थात् शुद्ध 'ग' के स्थान को ही

मंद्र म तार ४

० मंद्र सा ३

० अणुमंद्र प २

० अणुमंद्र सा तार १

मेरु

१ ला परदा

२ रा परदा

३ रा परदा

४ था परदा

५ वाँ परदा

६ ठा परदा

७ वाँ परदा

अब इन परदों पर पंडित रामामात्य ने कौन-से स्वर बताए हैं, यह मैं तुम्हें बताऊँगा। किंतु यह बताने के पूर्व मैं तुमसे पूछता हूँ कि परदों पर तुम अपनी हिंदुस्तानी संगीत-पद्धति के किन-किन स्वरों को स्थापित करोगे? तुम्हारी वीणा भी वैसी ही है और उसे तुम देख ही चुके हो।

प्रश्न--प्रथम हम अणुमंद्र 'सा' के तार को छोड़ देंगे, क्योंकि आगे तीसरा तार मंद्र 'सा' का है ही। दूसरे अणुमंद्र प के तार पर हम इस प्रकार स्वर मानेंगे। मेरु पर अणुमंद्र प है ही। आगे परदों पर क्रमशः इस प्रकार हम स्वर स्थापित करेंगे—१ कोमल ध, २ तीव्र ध, ३ कोमल नि, ४ तीव्र नि, ५ मंद्र सा, ६ कोमल रे, ७ तीव्र रे।

उत्तर--यह ठीक है! अब आगे 'तीसरे' मंद्र सा के तार को लो। उसपर कौन-से स्वर बोलेंगे?

प्रश्न—वे इस प्रकार आएँगे—१ कोमल रे, २ तीव्र रे, ३ कोमल ग, ४ तीव्र ग, ५ शुद्ध म, ६ तीव्र म, ७ शुद्ध प।

उत्तर--शाबाश! अब 'मंद्र म' के तार पर बोलनेवाले स्वर बताओ? मालूम होता है, तुम्हें बहुत जानकारी हो गई है।

प्रश्न--१ तीव्र म, २ शुद्ध प, ३ कोमल ध, ४ तीव्र ध, ५ कोमल नि, ६ तीव्र नि, ७ शुद्ध सा। मेरु पर के स्वर हमने इसलिए नहीं कहे कि वे तो तार के मुख्य स्वर ही हैं।

पंचश्रुतिक ऋषभ भी कहना है। श्रुति गिनकर नहीं देखना है। 'रत्नाकर' में रि, ध स्वरों को विकृत कहा गया है; परंतु.......

प्रश्न—वास्तव में ध्वनि-दृष्टि से यह विकृति नहीं कही जा सकती, रामामात्य ने लगभग यही कहा है।

उत्तर—तो यह सब तुम्हारे ध्यान में अच्छी तरह आ चुका। एक ही स्वर के दो-दो नाम देने का प्रचलन अब भी दक्षिण की ओर है। इस तरह करने से ठाठ आदि की रचना सुविधापूर्ण हो जाती है। दक्षिण की ओर के ७२ ठाठों की रचना में इसी प्रकार के दुहरे नामों से कितनी सुविधा हुई है, यह यदि तुम चाहो तो वहाँ देख सकते हो। साधारण गांधार व कैशिक निषाद का नाम रामामात्य ने षट्श्रुतिक रि, ध बताया है। ये नाम आज भी दक्षिण की ओर इन स्वरों को दिए जाते हैं। यह भी एक महत्त्वपूर्ण बात समझनी चाहिए। मैं तुम्हें विषयांतर में खींचना पसंद नहीं करता। मैं यह नहीं भूला हूँ कि हमारे सम्मुख विचारणीय प्रश्न सिर्फ यही है कि रामामात्य के स्वर हमारी हिंदुस्तानी पद्धति की कौनसी ध्वनियाँ हैं। यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि कोरे कागजी वर्णन से तुम्हें समाधान प्राप्त नहीं होगा। ग्रंथों की परिभाषा के धीरे-धीरे बदलते जाने से प्रचलित संगीत-पद्धति में उसका क्या रूप हो गया है, यह देखना निरुपयोगी कैसे कहा जा सकता है? रामामात्य के स्वर हमारे कौनसे स्वर होंगे? संयोगवश इस प्रश्न का उत्तर उसके 'वीणा-प्रकरण' में प्राप्त होता है। रामामात्य ने अपने स्वर वीणा पर स्थापित कर बताए हैं, यह कार्य बहुत अच्छा किया है। हमारे यहाँ 'वीणा' अत्यंत प्राचीन वाद्य माना जाता है। यह दृढ़ धारणा भी हमारे यहाँ है कि वीणा पर तार तथा परदे प्राचीन परंपरा के अनुकूल ही लगाए जाते हैं। यह भिन्न प्रश्न है कि जब ग्राम, मूर्च्छना व जाति प्रचार में थे तब वीणा के तार कैसे मिलाए जाते थे? हमारे 'श्रुतिपंडित' वर्तमान विचारों का आधार लेकर अपना श्रुतिचक्र सिद्ध करते हैं। इसलिए वीणा के मेरु पर 'साप साम' स्वर होने के पश्चात् कार्य-व्यवहार की ओर ही हमें देखना है।

प्रश्न—हमने अपने खाँ साहब की वीणा पर अणुमंद्र गांधार का तार बाएँ हाथ की ओर अंत में देखा था, ऐसा ध्यान आता है।

उत्तर—यह तुमने बहुत अच्छी तरह ध्यान में रखा, उस गांधार का इतिहास बहुत लंबा है। आज की चर्चा में उसे सुना देना आवश्यक भी नहीं है, क्योंकि उसके आधार पर किसी ने भी श्रुतियाँ कायम नहीं कीं। अपनी हिंदुस्तानी वीणा प्रायः रामामात्य की वीणा जैसी होने पर भी उसकी स्वर-ध्वनि कौनसी है, यह तथ्य तुम्हें यहीं पर समझा देना अच्छा है। तुम्हारे लिए मैंने रामामात्य की वीणा का ऊपरी पृष्ठ भाग का चित्र कागज पर लिख रखा है। देखो :—

उत्तर—यह सब तुमने सही-सही बताया। दक्षिण के स्वर तुम्हें मालूम ही हैं। वहाँ के वीणा-वादक तुम्हारे इन परदों पर उत्पन्न स्वरों को कौन-कौनसे नाम देंगे, देखें बताओ ?

प्रश्न—उधर हमारे कोमल रे, ध स्वरों को शुद्ध ग, नि व हमारे कोमल ग, नि उनके साधारण ग व कैशिक नि स्वर कहलाते हैं। हमारे तीव्र ग, नि उनके अंतर ग व काकली नि होते हैं। ऐसा होने से पंचम के तार के नीचे के सात परदों पर क्रमशः शुद्ध धैवत, शुद्ध निषाद, कैशिक निषाद, काकली निषाद, शुद्ध षड्ज, शुद्ध री, शुद्ध ग, इस प्रकार से दक्षिणी स्वर आएँगे। मंद्र सा के तार के नीचे परदे पर क्रमशः शुद्ध री, शुद्ध ग, साधारण ग, अंतर ग, शुद्ध म, प्रति म, शुद्ध प, शुद्ध ध, शुद्ध नि, कैशिक नि, काकली नि, शुद्ध सा, ये स्वर आएँगे।

उत्तर—तुमने यह भी बहुत अच्छी तरह बता दिया, अब यहाँ यह बात ध्यान में रखने की है कि 'प्रति म' नाम प्राचीन ग्रंथों का नहीं है। इस स्वर के अन्य नाम 'वराली म' मृदु, आदि हैं; यह मैं तुम्हें बता ही चुका हूँ। रामामात्य इस स्वर को 'च्युतपंचममध्यम' नाम देता है। अब रामामात्य तुम्हारे उन परदों पर के स्वरों को कौन-कौनसे नाम देता है, यह देखो। उसकी वीणा, तुम्हारी वीणा जैसी रही होगी, यह मान लेने में कोई हानि नहीं।

अथ सारीसंन्निवेशं वक्ष्ये वैणिकसंमतम् ।
आद्यानुमंद्रषड्जाख्यतंत्र्यां शुद्धर्षभो यथा ॥
स्यात्तथा सारिका स्थाप्या प्रथमाऽथ द्वितीयिका ।
तत्तन्त्र्या शुद्धगांधारसिद्ध्यै स्थाप्या च सारिका ॥
तृतीया सारिका स्थाप्या पूर्वतंत्र्या यथा स्फुटम् ।
स्यात्साधारणगांधारः स्थाप्या सारी चतुर्थिका ॥
च्युतमध्यमगांधारः पूर्वतंत्र्यां यथा भवेत् ।
शुद्धमध्यमसिद्ध्यर्थं पंचमी सारिका ततः ॥
निवेश्या पूर्वतंत्र्यैव षष्ठी स्थाप्याऽथ सारिका ।
यथा व्यक्तस्तया तंत्र्या च्युतपंचममध्यमः ॥
पंचमेनानुमंद्रेण युक्तस्तंत्र्या द्वितीयया ।
शुद्धः स्याद्धैवतः शुद्धो निषादश्च ततः परम् ॥
कैशिक्याख्यनिषादोऽथ च्युतषड्जनिषादकः ।
मंद्रमध्यमतंत्र्या तु चतुर्थ्यां स्युरमी स्वराः ॥
पूर्वासु षट्सु सारीषु च्युतपंचममध्यमः ।
शुद्धपंचमनामा च ह्युत्तरं शुद्धधैवतः ॥

ततः शुद्धनिषादाख्यः कैशिक्याख्यनिषादकः ।
च्युतषड्जनिषादाख्य एते शुद्धस्वराः कृताः ।

प्रश्न—यह विवरण सुनकर हमें अत्यंत आश्चर्ययुक्त आनंद हो रहा है।

उत्तर—ऐसा क्यों ?

प्रश्न—अब पं० रामामात्य की स्वर-ध्वनि हमारे समझने योग्य हो गई, इसलिए आनंद हो रहा है और ये स्वर व नाम हू-ब-हू दक्षिण में इस समय भी प्रचलित हैं, यह देखकर आश्चर्य भी हो रहा है।

उत्तर—हाँ, ऐसा होना ठीक ही है, परंतु इस बात से क्या यह सिद्ध नहीं होता कि यह विद्वान् दक्षिण का ही था।

प्रश्न—हमें अब इस बात में जरा भी संदेह नहीं रहा।

उत्तर—तो ठीक है, अब हम सोमनाथ की ओर चलें, सोमनाथ के लिए हमारे विद्वानों के हृदय में बहुत गर्व और आदर-भावना है, अतः इसके मत की ओर तुम्हें अधिक ध्यान से देखना होगा। मुझे भी इसके संबंध में अनेक बार भिन्न-भिन्न प्रसंगों पर बोलना पड़ेगा। 'रागविबोध' ग्रंथ 'कलानिधि' की अपेक्षा अधिक बड़ा है। सोमनाथ बहुत विद्वान् था, इस बात को कौन अस्वीकार करेगा? कुछ मार्मिक विद्वानों का मत है कि इसने अपनी जानकारी रामामात्य के ग्रंथ से प्राप्त की होगी। यदि यह सत्य हो, तो हमें इस खोज का श्रेय और रामामात्य के प्रति न्याय करने का श्रेय अपने श्रुति-विवेचक विद्वानों को देना चाहिए। जहाँ-जहाँ सोमनाथ ने रामामात्य के मत को छोड़कर स्वतंत्रता दिखाने का प्रयत्न किया है, वहीं पर भूलें भी हुई हैं। फिर भी इसके विषय में हमारे हृदय में आदर-बुद्धि अवश्य रहेगी। अस्तु, अब इसकी व्यवस्था सुनो :—

हृद्यध्वंनाडिकास्थद्वाविंशत्यणुतिरोजनाडीषु ।
तावंतः श्रुतिसंज्ञाः स्युर्नादाः परपरोच्चाः ॥
एवं गले च शीर्षे ताभ्यः सप्तस्वराः श्रुतिभ्यः स्युः ।
स्वरता तेषु निरुक्ता मनः स्वतो रंजयतीति ॥
षड्जर्षभगांधारमध्यमपंचमधैवतनिषादाः ।
इत्यभिधास्तेऽमीषां सनिगमपधनीतिसंज्ञाऽन्या ॥
तेषां श्रुतयः क्रमतो वेदा रामा दृशौ तथांबुधयः ।
निगमा दहनाः पक्षावेवं द्वाविंशतिः सर्वाः ॥
तुर्यायां सप्तम्यां तासु नवम्यां श्रुतौ त्रयोदश्याम् ।
सप्तदशीविंशीद्वाविंशीषु च ते स्फुटाः क्रमतः ॥

प्रश्न—यहाँ पर तो सब वही दिखाई पड़ता है, जो हम सुन चुके हैं।

उत्तर—तो भी सोमनाथ ने श्रुति-स्वर कायम करने की एक नई योजना निश्चित की है, जिसके लिए इसकी प्रशंसा करनी चाहिए।

प्रश्न—वह कैसी योजना है ?

उत्तर—शार्ङ्गदेव ने वीणा के दंड (डांडी) पर श्रुतिवाचक अलग-अलग बाईस तार लगाए थे। इसने इनके विपरीत सुन्दर युक्ति निकाली। इसने वीणा पर बाईस परदे तारों के नीचे बाँध दिए। मेरु पर षड्ज स्वीकार कर आगे परदों पर क्रमशः श्रुतियाँ दिखाई हैं।

प्रश्न—परन्तु षड्ज तो चौथी श्रुति की आवाज है न ? मेरु पर षड्ज मानने से षड्ज की पहली श्रुतियाँ कैसे मिलेंगी ?

उत्तर—शाबाश ! इस ओर तुम्हारा ध्यान खूब पहुँचा। इन तीन श्रुतियों के लिए भी इसने एक व्यवस्था की है। इसने अपनी श्रुति-वीणा पर चार तार लगाए हैं। इनमें पहले तीन तारों को षड्ज की तीन पिछली श्रुतियाँ समझकर ग्रहण करने का यह सुझाव देता है।

प्रश्न—यदि ऐसा है तो सोमनाथ ने श्रुति किसे कहते हैं, व श्रुतियों को किस तरह गिनना चाहिए, इन बातों का वर्णन भी किया होगा ?

उत्तर—यह तो स्पष्ट ही है, परंतु वह कितना संतोषजनक व युक्तिसंगत है, अब यह स्वयं तुम्हीं देखो :—

पृथुवक्ष्यमाणवीणामेरौ स्थाप्याश्चतस्र इति तंत्र्यः।
मन्द्रतमध्वनिराद्या त्रयं क्रमोच्चस्वनं किंचित् ॥
न्यस्याः सूक्ष्माः सार्योऽथ द्वाविंशतिरधश्चरमतंत्र्याः।
तंत्री यथेयमुच्चोच्चतररवा किमपि तासु स्यात् ॥
द्व्यंतर्नेष्टोऽन्यरवः श्रुतय इति रवा इहांत्यतंत्र्यां सः।
ऋषभस्तृतीयसार्यां गः पंचम्यां नवम्यां मः ॥
पस्तु त्रयोदशीस्थः षोडश्यष्टादशीस्थितौ च धनी।
द्वाविंशीस्थः षड्जो द्विगुणसमः पूर्वषड्जेन ॥

प्रश्न—नवीं पर म, तेरहवीं पर प, सोलहवीं पर ध तथा अठारहवीं श्रुति पर नि, इस प्रकार बताने का कारण मेरु पर चार श्रुतियों का होना है। यह तो हम समझ गए, परंतु अठारहवीं के आगे और चार परदे कौनसे हैं ?

उत्तर—षड्ज की सारी श्रुतियाँ तो मेरु के तार पर बतादी गई थीं। ये चार परदे कुंजी मिलाने के लिए ग्रंथकार के मत से रखे गए हैं। इनके लिए सूचना दी

है कि यदि इन परदों के तार मेरु पर के तारों के नाद से मिला लिए, तो समझना चाहिए कि संपूर्ण श्रुति योग्य स्थान पर लग चुकी हैं।

प्रश्न—यह विधान हमारे कानों को स्वीकार नहीं हो सकेगा, क्योंकि अब प्रथम चार तारों की श्रुतियाँ किस प्रमाण में लाई जाएँगी, यह पता कैसे लगेगा ?

उत्तर—यह तुम ठीक ही पूछ रहे हो ! अंतिम चार परदों के विषय में ग्रंथकार दावे से कहता है :—

ध्वनिशुद्धिनिश्चयार्थं विकृतन्यर्थं च सश्चतुःश्रुतिकः।
पुनरुक्त इति मतं मे श्रुतिस्वरावगमनाय लघु ॥

प्रश्न—यह सब सत्य है, परंतु इन तारों या परदों को लगाने का कोई सुनिश्चित नाप भी बताया है ?

उत्तर—इस पर ग्रंथकार ने अपनी टीका में इस प्रकार खुलासा किया है—'मेरुस्थतुर्यतंत्रीध्वने: प्रथमसारी किंचिदुच्चध्वनि: द्वितीया मेरुस्थतुर्यतंत्री ध्वनेरेव उच्चतरध्वनि:, एवं द्वितीयसार्यपेक्षया तृतीयतुर्यसार्य: उच्चोच्चतरत्वे।

प्रश्न—अर्थात् मनाक् उच्चध्वनि: ही प्रमाण मानें न ? किंतु यह कोई प्रामाणिक माप नहीं है, इसे हम नहीं मानेंगे पंडितजी ! हमारी समझ से यह प्रकार तो किसी के लिए भी समाधानकारक नहीं होगा ?

उत्तर—यह तो ठीक है, परंतु ग्रंथ में और अधिक स्पष्टीकरण नहीं मिलता तो इसके लिए मैं क्या करूँ ? आगे विकृत स्वर सुनोगे क्या ?

प्रश्न—अब उन्हें सुनकर क्या करेंगे ? वे भी प्राय: रामामात्य जैसे ही होंगे ?

उत्तर—अधिकतर स्वर-स्थान तो वही हैं, परंतु यह ग्रंथ आर्या छंद में है तथा कहीं-कहीं परिभाषाएँ अलग हैं।

प्रश्न—सुना दीजिए, परंतु परिभाषाएँ भिन्न क्यों हैं ?

उत्तर—वे परिभाषाएँ कैसी हैं, यह तो बता सकूँगा, परंतु वे ऐसी क्यों हैं, यह कैसे बता सकूँगा ? सोमनाथ ने विकृत स्वरों के पंद्रह नाम बताए हैं। शार्ङ्गदेव के बारह नामों पर उसने इस प्रकार टीका की है :—

द्वादशविकृतान् पूर्वे वदंति तत्र पृथक् पृथक् ध्वनितः।
सप्तैव स्युर्भिन्ना न पंच यदिमे समध्वनयः ॥
न पृथक् शुद्धसमाभ्यामच्युतसमकौ चतुःश्रुती च रिधौ।
शुद्धरिधाभ्यां विकृतस्त्रिश्रुतिपादपि चतुश्रुतिपः ॥

प्रश्न—रामामात्य की विचारधारा भी इसी प्रकार की थी। ठीक है न ?

उत्तर—हाँ ऐसा ही उसने कहा है। यह कथन गलत भी नहीं है। एक ही स्वर के दो-दो नाम देना कहीं-कहीं सोमनाथ ने भी पसंद किया है। वहाँ पर वह समध्वनि नियम लगाना स्वीकार करता है। आजकल 'रागविबोध प्रवेशिका' नामक एक छोटी-सी पुस्तक प्रकाशित हो गई है, उसे समय निकालकर पढ़ लेने पर तुम्हें 'रागविबोध' ग्रंथ समझने में सहायता मिलेगी।

प्रश्न—क्या आपने 'रागविबोध' के स्वर-श्रुति का चार्ट भी तैयार किया है ?

उत्तर—हाँ, यह देखो :—

श्रुति-स्वर-चार्ट

क्रमांक	श्रुति-नाम	शुद्ध स्वर	विकृत स्वर
४	छंदोवती	सा	
५	दयावती		
६	रंजनी		
७	रक्तिका	री	
८	रौद्री		तीव्र री
९	क्रोधा	ग	तीव्रतर री २
१०	वज्रिका		तीव्रतम री; साधारण गांधार ३, ४
११	प्रसारिणी		अंतर गान्धार ५
१२	प्रीति		मृदु म ६
१३	मार्जनी	म	तीव्रतम ग ७
१४	क्षिति		
१५	रक्ता		
१६	संदीपनी		तीव्रतम म ८
१७	आलापिनी	प	मृदु प ९
१८	मदन्ती		
१९	रोहिणी		
२०	रम्या	ध	
२१	उग्रा		तीव्र ध १०
२२	क्षोभिणी	नी	तीव्रतर ध ११
१	तीव्रा		तीव्रतम ध, कैशिक निषाद १२, १३
२	कुमद्वती		काकली निषाद १४
३	मंदा		मृदु सा १५
४	छंदोवती	सा	

प्रश्न—सोमनाथ ने अपने ग्रंथ में वीणा-प्रकरण कहा है या नहीं ? क्या यह प्रकरण भी रामामात्य-लिखित 'कलानिधि' के अनुसार ही है ?

उत्तर—सोमनाथ ने अपने ग्रंथ में वीणा-प्रकरण लिखा है। इस प्रकरण में एक-दो जगह उसमें भूलें भी हो गई हैं, यह अब सिद्ध हो गया है, उदाहरणार्थ शुद्ध धैवत का स्थान ही लो। इस विषय पर मुझे आगे चलकर कुछ और भी कहना है। मैंने तुम्हें 'रागविबोध प्रवेशिका' पढ़ने के लिए कहा ही है। इस पुस्तक में भी यह भूल बताई है।

प्रश्न—तो फिर अब किसी अन्य ग्रंथकर्ता को लीजिए ?

उत्तर—अब हम पार्श्वदेव-लिखित 'संगीतसमयसार' नामक ग्रंथ पर विचार करेंगे। यह ग्रंथकार 'महाजनो येन गत: स पंथा:' सिद्धांतवाला दिखाई देता है। इसने शार्ङ्गदेव के ग्रंथ 'रत्नाकर' के सिद्धांत व विधान अपनी रचना में धड़ल्ले से उद्धृत करके रख दिए हैं, यह कहता है :—

'अत्रोच्यते स्वरादीनामुत्पत्तिहेतुत्वात्। स्थानम्। त्रीणि स्थानानि। 'हृत्कंठ-शिरांसि इति समासत:।' इसके पश्चात् मंद्र, मध्य, तार इन नाम-भेदों और श्रुतियों का कंठ से स्पष्ट नहीं होना आदि उल्लेख कर कहता है :—

द्वे वीणे तुलिते कार्येऽखिलावयवतस्तथा।
एकवीणव भासेते यथा द्वे ह्यपि शृण्वताम्॥
श्रुतिराद्या मंद्रतमध्वाना कार्या (विचक्षणैः)।
द्वितीया तु ततस्तीव्रध्वनिस्तंत्री विधीयते॥
यथा तथा तयोर्मध्ये न तृतीयो ध्वनिर्भवेत्॥

प्रश्न—आगे मत जाइए। इसकी विचारधारा हम समझ गए। यह भी 'मनाक् उच्च ध्वनि' का ही भाव दिखाई देता है। किंतु इन लोगों ने क्या समझ कर इस प्रकार का उल्लेख अपने ग्रंथों में किया होगा ?

उत्तर—'सिद्धे कार्ये समं फलम्' ऐसा ही कुछ उन्होंने सोचा होगा। पार्श्वदेव ने श्रुतियों के नाम-पते भिन्न दे रखे हैं। उनका उपयोग हो तो सुनाऊँ ?

प्रश्न—खास मुद्दे पर उसने कुछ कहा हो तो सुनाइए। श्रुति क्या है, और उसकी स्थापना व गणना कैसे की जाए ?

उत्तर—ऐसा स्पष्टीकरण 'समयसार' में नहीं दिखाई पड़ेगा। स्वर व श्रुति के अंतर के संबंध में इसने मतंग आदि के कथन को ही उद्घृत कर दिया है। चाहो तो सुना दूँ ? इस विषय में थोड़ा-सा संकेत मैंने आरंभ में भी कर दिया है।

प्रश्न——ठीक है ! सुनाइए ?

उत्तर—तो सुनो :—

'अत्र पंच पक्षाः संभवंति। श्रवणैकेंद्रियग्राह्यत्वाद्विशेषस्पर्शशून्ययोः स्वरश्रुत्योर्जातिव्यक्त्योरिव तादात्म्यमिति प्रथमः। दर्पणे मुखविवर्तवच्छ्रुतिषु स्वरा विवर्तंत इति द्वितीयः। यथा घटस्य मृत्पिंडदंडकार्यत्वं तथा स्वराणां श्रुतिकार्यत्वं तृतीयः। क्षीरं दधिरूपेण श्रुतयः स्वररूपेण परिणमंते इति चतुर्थः। प्रदीपांधकारस्थितघटाद्यभिव्यक्तिवच्छ्रुतिभ्य स्वराणामभिव्यक्तिरिति पंचमः ॥'

ये पाँच मत हुए। अब इनका खंडन सुनो :—

'नाद्यः, स्वरश्रुत्योर्भिन्नबुद्धिग्राह्यत्वादाश्रयाश्रयित्वभेदाच्च जातिव्यक्त्योरपि निर्विशेषं न सामान्यमिति न्यायेन भेदस्य सिद्धत्वात्। न द्वितीयः विवर्तत्वे हि स्वराणां भ्रांतत्वं स्यात्। न च तथा। तृतीयोऽपि न परीक्षाक्षमः। स्वरव्यतिरेकेण श्रुतिसद्भावे प्रमाणाभावात् इति वक्तुं हि न युक्तम्। स्वरस्य हि श्रूयमाणमनुरणनात्मकं रणनमंतरेण नोपपद्यते इत्यर्थापत्त्या वाऽयं स्वरः रणनपूर्वकः। अनुरणनात्मकत्वात्। दंडाहतजयघंटानुरणनशब्दवदित्यनुमानेन वा तत्सिद्धेः। सत्यम्। यद्यपि स्फुटपौर्वापर्येण कार्यकारणभावप्रतीतिरस्ति तथाऽपि उपादानस्य मृत्पिंडादेर्यथाघटादिकार्यनिष्पत्तौ भेदेनानुपलब्धिर्न तथेह स्वरनिष्पत्तौ श्रुतीनामनुपलंभ इति तासामकारणत्वान्न तृतीयः। चतुर्थपंचमावदुष्टत्वे मतंगादिसंमतत्वाद्ग्राह्यौ।'

धन्य है गुरुजी, इन पंडितजी को ! यदि कोई इस शब्द-पांडित्य को देखकर घबरा जाए, तो क्या आश्चर्य है ! इस संपूर्ण प्रपंच में से हम कौन-कौनसी उपयोगी बातें सीख सकते हैं ? यदि इस विचार से हम देखें, तो उक्त प्रश्न का उत्तर दे सकते हैं। यह लेखक विद्वान् था, यह तो स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। परंतु यह सारे पक्षों के विचार न जाने किसके व किस काल के होंगे ? इतना सत्य है कि यह पहेली है मनोरंजक। हमारे नाद-शास्त्री न जाने इस विषय में क्या कहेंगे ? परंतु क्यों गुरुजी, इस प्राचीन श्रुति शब्द को सभी ने उकताकर छोड़ दिया है, क्या ऐसा नहीं दिखाई देता ? हमारे वर्तमान विद्वान् इस प्रकार चक्कर में डालने का कार्य नहीं करते, यह भी सौभाग्य की बात है।

उत्तर——हाँ, यह सत्य है। और भी एक-दो बातें चाहो तो सुन लो :—

श्रवणेंद्रियग्राह्यत्वाद्ध्वनिरेव श्रुतिर्भवेत् ।
सा चैका द्विविधा ज्ञेया स्वरांतरविभागतः ॥
नियतश्रुतिसंस्थानाद्गीयते सप्तगीतिषु ।
तस्मात् स्वरगता ज्ञेयाः श्रुतयः श्रुतिवेदिभिः ॥
अन्तरस्वरवर्तिन्यो ह्यन्तरश्रुतयो मताः ।
एतासामपि वैस्वर्यं क्रियाक्रमविभागतः ॥
द्वाविंशतिं केचिदुदाहरंति श्रुतीः श्रुतिज्ञानविचारदक्षाः ।
षट्षष्टिभिन्ना खलु केचिदासामानंत्यमेव प्रतिपादयन्ति ॥
आनंत्यं हि श्रुतीनां च सूचयंति विपश्चितः ।
यथा ध्वनिविशेषाणाममानं गगनोदरे ॥
उत्तालपवनोद्वेल्लज्जलराशिसमुद्भवाः ।
इयत्यः प्रतिपद्यन्ते न तरंगपरंपराः ॥

ऐसी ही कुछ मजेदार कल्पना हमारे प्राचीन विद्वानों की रही है। इन पंच पक्षों का अनुवाद टैगोर साहब के ग्रंथ में इस प्रकार मिलता है :—

'Great difference of opinion exists as to the relation of the Shrutis to the notes. Some think that they both being perceivable by the ear are one and the same in nature. But this opinion does not appear to be a sound one, for the Shruti is the foundation or supporter of the note and consequently the supported cannot be the supporter. Others hold that the note is reflected on the Shruti just as the human face is reflected on the looking glass. This view too does not seem to be above refutation, for unlike that of the note with reference to the Shruti, the perception of the reflected object is of an illusive nature. It is the conclusion of another class of thinkers that the Shruti is the cause of the note in the same sense that a lump of clay is the cause of an earthen pot. But this kind of reasoning is faulty too in as much as the clay may be distinguished in the presence of the earthen pot, whereas the Shruti cannot be perceived in the presence of the note. Some others make out that the Shruti is transformed into a note in the manner in which milk is transformed into curd. There seems to be some force in this simile.'

भाइयो ! आज हमारे सामने यह विचारणीय प्रश्न नहीं है कि प्राचीन पंडितों ने स्वरों व श्रुतियों में कैसा व कितना भेद माना था। यह हम देख ही चुके हैं कि शार्ङ्गदेव व उसके पश्चात् के विद्वानों ने वीणा पर बाईस श्रुतियों के लिए बाईस तार या परदे लगाने की व्यवस्था की है। इन तारों में से नियमित तारों के नाद को उन्होंने स्वर कहा है। इनके पूर्वकाल के विद्वानों की कल्पना हमें प्राप्त नहीं है। ये लोग श्रुति कैसे कायम करते थे, अब यही हमें देखना है। टैगोर साहब अपने ग्रंथ The twenty two Shrutis में इस प्रकार कहते हैं :—

'The Shrutis are as it were the life and soul of Hindu Music. It is they that form the foundation of the natural and the chromatic intervals and the fountain head of the various Rags and Raginis, which owe their origin to the different permutations of the intervals.'

यह सब ठीक है, परंतु इन्हें प्राचीन ग्रंथकर्ताओं की श्रुतियों और स्वरों का ठीक-ठीक बोध हो गया था, ऐसा इनके ग्रंथ से भी विदित नहीं होता। संस्कृत-ग्रंथकारों का शुद्ध ठाठ कौनसा था, यह तथ्य इनकी समझ में आ गया हो, ऐसा भी कोई प्रमाण इनके ग्रंथ में नहीं दीख पड़ता। परंतु मुझे इनके लेखों पर अपना मत प्रकट करने की आवश्यकता नहीं है।

प्रश्न—यह ठीक ही है। हम स्वयं इनके संपूर्ण ग्रंथ पढ़नेवाले हैं। अब आप किस ग्रंथकर्ता की श्रुति-स्वर-रचना बताएँगे ?

उत्तर—अब हम 'पुण्डरीक विट्ठल' के 'सद्रागचंद्रोदय' ग्रंथ के श्रुति-विषय की व्याख्या करनेवाले भाग को देखेंगे कि उसमें क्या कहा गया है। यह मैं नहीं कह सकता कि हमारे इस कार्य से कोई यह संदेह करे कि ४, ३, २ श्रुतियों के अंतर के Major, Minor, Semi-tone मानने के लिए ही हम ग्रंथों की जाँच-पड़ताल कर रहे हैं। हमारा उद्देश्य तो बिलकुल भिन्न है। हमारे सामने इस प्रकार की श्रुति-व्यवस्था से माने हुए भिन्न-भिन्न सप्तक हैं ही। हमें तो यह देखना है कि हमारे विद्वानों द्वारा खोजी हुई श्रुतियाँ व उनके स्थान संस्कृत-ग्रंथों के ही हैं या नहीं ? पुण्डरीक ने इस विषय में क्या कहा है, सुनो :—

हृत्कंठमूर्धाश्रयगः क्रमेण
त्रैविध्यमृच्छेद्व्यवहारतोऽयम् ॥
मंद्रश्च मध्याह्वयकश्च तारः
पूर्वात्परः स्याद्द्विगुणः क्रमेण ॥

उर्ध्वस्थितायां हृदि नाडिकायां
नाड्यस्तिरश्च्यः पवनाहतास्ताः ॥
द्वाविंशतिस्तीव्रतराः क्रमेण
नादं तु तावच्छ्रुतितां नयंति ॥
कंठप्रदेशेऽप्यथ मूर्धदेशे
द्वाविंशतिः स्युः श्रुतयस्तथैव ॥
स्वराः श्रुतिभ्यां प्रभवंति ते तु
षड्जादयः सप्त यथाक्रमेण ॥
वेदाग्निपक्षाऽब्धिपयोधिवह्नि-
पक्षांतिमश्रुत्यधिसंश्रिताः स्युः ॥
षड्जाभिधानस्त्वृषभस्ततः स्या-
द्गांधारको मध्यमपंचमौ च ॥
ततः परं धैवतको निषाद
इति स्वराः सप्त मता मुनींद्रैः ॥

प्रश्न--यह सब तो ठीक है, किंतु श्रुतियाँ निकलेंगी कैसे ?

उत्तर--श्रुतेश्च नैरंतरभाविको यः
स्निग्धोऽनुशब्दात्मक ओजसात्मा ॥
श्रोतुर्मनोरंजनकारकत्वात्
स्वतस्तु तज्ज्ञैरुदितः स्वरोऽसौ ॥

× × × ×

प्राग्घातमात्रश्रवणाच्छ्रुतिश्चा-
नुध्वानरूपः स्वर इत्यकिंचित् ॥
यैर्जातयः पंच मताः श्रुतीनां
ते तु प्रमाणं प्रवदंति तत्र ॥

यह सब प्राचीन विद्वानों की कल्पना ही पुण्डरीक ने अपने श्लोकों में अंकित की है। परंतु उसने किस प्रत्यक्ष ध्वनि का उपयोग किया, यह उसकी वीणा पर ही स्पष्ट समझा जा सकेगा। उसकी वीणा के तार रामामात्य की वीणा के तारों जैसे ही मिलाए गए हैं। इस दृष्टि से अब उसके स्वर-स्थानों को देखो :—

आद्यानुमंद्राह्वयषड्जतंत्र्या
शुद्धो यथा स्यादृषभस्तथाद्या ॥
सारी निवेश्येत तथा द्वितीया
तंत्र्या तया शुद्धगसिद्धिहेतोः ॥
सारी तृतीयापि तयैव तंत्र्या-
धीयेत साधारणगस्य सिद्ध्यै ॥
सारी चतुर्थी लघुमध्यमस्य
सिद्ध्यै तया तंत्रिकया तथैव ॥
तंत्र्या तया पंचमसारिका च
निधीयते शुद्धमसाधनाय ॥
सारी निवेश्या च तथैव षष्ठी
तंत्र्या तयैवं लघुपाह्वयाय ॥

अगले तारों पर कौन-कौनसे स्वर आएँगे, यह बताने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। परंतु दो स्वरों के बीच में श्रुतियाँ किस नाप से स्थापित की जाएँ, इस प्रश्न के उत्तर में यही कहा जा सकता है कि इसका उत्तर 'चंद्रोदय' में नहीं है। यदि हमारे पंडित इस प्रकार की आलोचना करें कि इस युक्ति से हमने ग्रंथकार के साथ कठोरता की है, तो वह शायद मानने लायक भी है। हम अपनी श्रुतियों के बारे में ग्रंथकारों पर निर्भर करते हैं, क्या यह हमारा सौजन्य नहीं है? एक बात मैं तुमसे कहना भूल गया हूँ। हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि हमारे जिस सर्वप्रथम शास्त्रकार ने श्रुतियों के नाम देकर उनकी जातियों की व्यवस्था की होगी, उसकी मूल विचारधारा क्या रही होगी, यह जान लेने का कोई साधन अभी तक हमारे पास नहीं है, तो भी यह गलत नहीं है कि हमारे मध्यकालीन लेखकों ने परंपरा से उनके समय तक चली आई हुई बातों को अपने-अपने ग्रंथों में अवश्य स्थान दिया है। उदाहरण के लिए दक्षिण का शुद्ध सप्तक देखो। यह स्वर-सप्तक सबसे पहले किसने और कैसे स्थापित

किया, यह मध्यकालीन ग्रंथकार भी नहीं जानते थे। पाश्चात्य ग्रंथकार उन्हें जो चाहे कहें, परंतु हम जब तक उनका संगीत गाते रहेंगे, तब तक उस सप्तक को शर्म के मारे जंगली सिद्ध करने का प्रयत्न नहीं करेंगे। यह तुम धीरे-धीरे आगे चलकर देखोगे कि हमारे ग्रंथकार जिस तरह कि आजकल के विद्वान् श्रुति का उपयोग करने में स्वतंत्र हैं, उसी प्रकार ही स्वतंत्र उपयोग करते थे या नहीं? यह मैं स्वीकार करता हूँ कि नारद, भरत, शार्ङ्गदेव आदि के द्वारा अपनी-अपनी वीणा के तारों व परदों की सहायता से अपने स्वर न बताने के कारण कुछ प्रामाणिक मतभेदों की गुंजाइश हो गई है। तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि पिछले ग्रंथकारों की रचनाओं पर हमें तर्क करने के बिलकुल साधन प्राप्त नहीं हैं। विद्वानों के सम्मुख यह एक बड़ी भारी समस्या है कि जिस शार्ङ्गदेव का ग्रंथ दक्षिण में बहुत प्रसिद्ध हुआ, जिस पर बड़ी-बड़ी संस्कृत-टीकाएँ सौ-दोसौ वर्षों तक होती रहीं और आगे चलकर अनेक विद्वानों ने 'रत्नाकर' की परिभाषाएँ लेकर अपने-अपने ग्रंथ लिखे तथा उसके बताए हुए अनेक राग-रूप सभी ओर प्रचलित हुए, वह 'रत्नाकर' हमारी ओर केवल नाम-मात्र को प्रचार में आया तथा उसके स्वर-नाम भी प्रचलित न हुए। पाठकों को दिखाई देगा कि 'रत्नाकर' के वाद्याध्याय में वर्णित विवरण के अनुसार उसने भी वीणा पर चौदह परदे ही बाँधे हैं। अस्तु, अब हम अपने मुख्य विषय की ओर लौटें। यह देखो! मैंने तुम्हारे लिए एक चार्ट तैयार किया है। इसमें तुम्हें दिखाई देगा कि हमारे ग्रंथकारों ने किस-किस श्रुति पर किस-किस स्वर को स्थान दिया है। यह चार्ट केवल ग्रंथकारों की परिभाषाओं के अनुमान पर तैयार किया है। इसमें भरत व शार्ङ्गदेव को विशेष रूप से सम्मिलित किया है। अहोबल और लोचन की परिभाषा और विचारधारा भिन्न-भिन्न होने से उनके श्रुति-स्वर का चार्ट अलग से तैयार करना पड़ा। यह मैं कह चुका हूँ कि हमारे वर्तमान विद्वानों ने सोमनाथ व अहोबल के आधार पर ही अपने श्रुति-सिद्धांत प्रकाशित किए। यह तुम समझ सकते हो कि इस चार्ट से इन लोगों की मानी हुई ध्वनि की कल्पना नहीं हो सकती, केवल तुम्हें स्वर-स्थान दिखाई देगा। ध्वनि जानने के लिए उन ग्रंथों के अनुयायिओं के परंपरागत प्रचलन पर निर्भर रहना पड़ेगा। केवल इतनी ही एक संतोषजनक बात दिखाई देती है कि शुद्ध षड्ज, शुद्ध मध्यम, शुद्ध पंचम के स्थान व ध्वनि विवाद-ग्रस्त नहीं माने गए हैं। संपूर्ण गड़बड़ रि, ग, ध, नी व तीव्र (विकृत) म के विषय में ही हमें दिखाई पड़ेगी। लो, अब इस चार्ट की ओर देखो :—

संस्कृत-ग्रंथकारों की श्रुति-स्वर-रचना

	श्रुति	भरत		शाङ्गर्देव		रामामात्य		सोमनाथ		पुण्डरीक		व्यंकटमखी		तुलजाधिप		भावभट्ट	
१	तीव्रा	....	....	....	कैशिक	....	कैशिक	....	कैशिक	....	कैशिक	....	कैशिक	....	कैशिक	....	कैशिक
२	कुमुद्वती	..	काकली	....	काकली	....	काकली	....	काकली	....	काकली	....	....	....	काकली	..	काकली
३	मंदा	....	....	....	च्युत सा	....	च्युत षड्ज नी	....	मृदु सा	....	लघु सा	....	काकली	....	वि० ष० नि०	....	त्रिग० नी
४	छंदोवती	सा	....	सा	अच्युत सा	सा	....	सा	....	सा	....	सा	....	सा	....	सा	....
५	दयावती	....	....	....	....	....	....	....	....	....	....	....	....	....	....	....	....
६	रंजनी	....	....	....	....	....	....	....	....	....	....	....	....	....	....	....	....
७	रक्तिका	रे	....	रे	विकृत रे	रे	....	रे	....	रे	....	रे	....	रे	....	रे	....
८	रौद्री	....	....	....	....	....	....	....	तीव्र रे	....	तीव्र रे	....	....	....	....	....	....
९	क्रोधा	ग	....	ग	....	ग	पंचश्रुति रे	ग	तीव्रतर रे	ग	....	ग	....	ग	पंचश्रुति रे	ग	....
१०	वज्रिका	..	....	....	साधारण	....	साधारण	....	तीव्रतम रे, सा०	....	साधारण	....	साधारण	....	साधारण	....	साधारण
११	प्रसारिणी	....	अंतर	....	अंतर	....	अंतर	....	अंतर	....	अंतर	....	....	....	अंतर	....	अंतर
१२	प्रीति	..	....	....	च्युत म	....	च्युत मध्यम ग	....	मृदु म	....	लघु म	....	अंतर	....	वि० म० ग०	..	त्रिग० ग
१३	मार्जनी	म	....	म	अच्युत म	म	....	म	....	म	....	म	....	म	....	म	....
१४	क्षिति	....	....	....	....	....	....	....	....	....	पंचश्रुतिक म	....	....	....	....	....	....
१५	रक्ता	....	....	....	....	....	....	....	तीव्रतम म	....	....	....	....	..	....	..	....
१६	संदीपनी	..	....	....	कैशिक प	....	च्युत पंचम म	....	मृदु प	....	लघु प	....	वराली म	....	वि० पं० म०	....	विकृत प
१७	आलापिनी	प	....	प	....	प	....	प	....	प	....	प	....	प	....	प	....
१८	मदन्ती	....	....	....	....	....	....	....	....	....	....	....	....	....	....	....	....
१९	रोहिणी	....	....	....	....	....	....	....	....	....	....	....	....	....	....	....	....
२०	रम्या	ध	....	ध	विकृत ध	ध	....	ध	....	ध	....	ध	....	ध	....	ध	....
२१	उग्रा	....	....	....	....	....	....	....	तीव्र ध	....	तीव्र ध	....	....	....	....	....	....
२२	क्षोभिणी	नी	....	नी	....	नी	पंचश्रुति ध	नी	तीव्रतर ध	नी	....	नि	....	नी	पंचश्रुति ध	नी	....

इस चार्ट में तुम्हें आठ ग्रंथकारों की श्रुति-स्वर-व्यवस्था दिखाई पड़ेगी। इनमें कितना साम्य है, यह देखो ! यदि इनसे हमारी पद्धति का संबंध हो जाए, तो हमारे गौरव और सौभाग्य का क्या ठिकाना है। नामों के छोटे-मोटे भेदों को रहने दो। तुम तो स्वर-स्थानों को ठीक से देखो। यह भी देखो कि व्यंकटमखी ने कुल बारह स्वरों के उपयोग मानकर भी अपने अंतर व काकली स्वर कैसे रखे हैं। अंतर ग व च्युत 'म' परस्पर प्रतिनिधि मानने का तो व्यवहार ही रहा है। शुद्ध स्वर-स्थानों के नाम सभी के समान ही रहे हैं। सोमनाथ का श्रुति-स्वर-वर्णन अन्य जैसा ही है। भावभट्ट के तीन ग्रंथ अनूपरत्नाकर, अनूपविलास व अनुपांकुश हैं। इस लेखक की श्रुति-स्वर-रचना दक्षिण की थी, यह मैं अब अलग से न बताकर आगे बताऊँगा। राग-रागिनी बताते समय मैं भावभट्ट की रचना का विशेष उपयोग करूँगा।

प्रश्न--तो अब आप किस ग्रंथ को ले रहे हैं ?

उत्तर--अब अहोबल, लोचन आदि उत्तर-पद्धति के माने हुए ग्रंथकारों पर विचार करेंगे। इनके श्रुति-स्वर-प्रकरण का चार्ट मैंने अलग तैयार किया है। इस नक्शे में कहीं पर मुझसे दृष्टि-दोष होना संभव है, इसके लिए मुझे क्षमा करना होगा। इस विषय में किसी को संदेह नहीं कि अहोबल एक विद्वान् और बुद्धिमान पंडित हुआ है, वह उत्तम वीणावादक भी था, उसे हम उचित सम्मान देंगे। परंतु जहाँ उसके विधान में हमें संदेह दिखाई देगा, वहाँ हम निर्भयता से काम लेकर भूल करने का दुराग्रह नहीं करेंगे, क्योंकि ऐसा करने से भूलों की संख्या बढ़ती जाएगी। जबकि अहोबल ने अपने आधार-ग्रंथ या ग्रंथकार नहीं बताए हैं, तो यह सहज ही दिखाई पड़ता है कि वह कुछ ही समय पहले, निकट वर्तमान का विद्वान् हुआ है। यह कौन मानेगा कि उसने हाहा-हूहू, रावण और कुम्भकर्ण के ग्रंथ देखे थे। यही दिखाई देता है कि उसने थोड़े-से ही प्राचीन ग्रंथ देखे थे। यह कहा जाता है कि मूलतः वह दक्षिण का पंडित था, परंतु बाद में उत्तर की ओर आ गया था। उसके ग्रंथ में वर्णित राग देखकर यह सत्य ही प्रतीत होता है। उसकी श्रुति-स्वर-रचना पर भी पाठकों को ऐसा संदेह हो सकता है। कोई यह कह सकते हैं कि यदि ऐसा नहीं था, तो इस प्रकार क्यों हुआ ? क्या पिछले ग्रंथकारों की टीका करना उसे पसंद नहीं था, या पिछला संगीत अच्छी तरह उसकी समझ में नहीं आया था, अथवा उसका विचार तत्कालीन प्रचलित संगीत व दक्षिण-संगीत का उत्तम सम्मिश्रण करने का रहा था। ये सब तर्क संभवतः कोई कर सकता है। परंतु वास्तविक स्थिति क्या थी, यह अब विश्वासपूर्वक कैसे कहा जा सकता है ? यह भी नहीं कहा जा सकता कि 'पारिजात' में अनेक आक्षेपयुक्त स्थल नहीं हैं। हम अहोबल के श्रुति-स्वर-प्रकरण पर विस्तृत विचार करेंगे, क्योंकि हमारे वर्तमान विद्वानों ने प्रथम जो श्रुति-स्थापना की, उसका मुख्य आधार 'पारिजात' ही था। कुल २२ श्रुतियाँ हैं, उनका स्वरों में विभागीकरण ४, ३, २, ४, ४, ३, २ का है। प्रत्येक स्वर अपनी अंतिम श्रुति में शुद्ध अवस्था प्राप्त करता है। इन सब बातों से अहोबल सहमत था।

अहोवल और लोचन के शुद्ध-विकृत स्वरों का नक्शा

क्रमांक	श्रुति-नाम	शुद्ध स्वर	विकृत	स्वर	उपयोग में आने वाले स्वर
४	छंदोवती	सा			
५	दयावती		पूर्व री		
६	रंजनी		कोमल री		कोमल री
७	रक्तिका	री	पूर्व ग	तीव्र री	
८	रौद्री		कोमल ग	तीव्रतर री	
९	क्रोधा	ग			
१०	वज्रिका			तीव्र ग	तीव्र ग
११	प्रसारिणी			तीव्रतर ग	
१२	प्रीति			तीव्रतम ग	
१३	मार्जनी	म		अतितीव्रतम ग	
१४	क्षिति			तीव्र म	
१५	रक्ता			तीव्रतर म	तीव्रतर म
१६	संदीपनी			तीव्रतम म	
१७	आलापिनी	प			
१८	मदन्ती		पूर्व ध		
१९	रोहिणी		कोमल ध		कोमल ध
२०	रम्या	ध	पूर्व नी		
२१	उग्रा		कोमल नी	तीव्र ध	
२२	क्षोभिणी	नी		तीव्रतर ध	
१	तीव्रा			तीव्र नी	तीव्र नी
२	कुमद्वती			तीव्रतर नी	
३	मंदा			तीव्रतम नी	
४	छंदोवती				

प्रश्न—तब तो उसकी पद्धति पिछले ग्रंथकारों-जैसी ही होनी चाहिए ?

उत्तर—परंतु ऐसी बात नहीं है, यह अभी-अभी तुम देख ही लोगे। सौभाग्य से अहोबल ने अपने स्वर, वीणा के तार की लंबाई के आधार पर बताए हैं। यह एक बात ही उसे पिछले सभी ग्रंथकारों से अधिक प्रशंसा का पात्र बना देती है। स्वरों के नादों की ठीक-ठीक कल्पना पाठकों को कराने के लिए उस समय यह एक निर्दोष मार्ग था।

प्रश्न--परंतु अहोबल के स्वर-स्थान पिछले ग्रंथकारों-जैसे नहीं थे, यह बात निश्चित होनी चाहिए न ?

उत्तर--यह बात मानी जा सकती है। हमारे विद्वानों को भी अब यह बात दिखाई दे चुकी है कि अहोबल के पारिभाषिक नाम दक्षिण के पंडितों के नहीं हैं। दक्षिण के पारिभाषिक नाम आज तक उस तरफ के ग्रंथकारों के ही प्रचलित हैं। अतः उन पारिभाषिक नामों से समझे जानेवाले स्वर आज भी स्पष्ट दिखाई दे सकते हैं। मैं समझता हूँ कि भरत, शार्ङ्गदेव के अतिरिक्त अन्य ग्रंथकारों के स्वर कौनसे रहे होंगे, यह विवाद ही आजकल समाप्त हो गया है। यह भी दिखाई पड़ता है कि हमारे विद्वान् अब सोमनाथ पर विशेष चर्चा नहीं करते, इससे हमें आश्चर्य न होना चाहिए। यदि कभी कोई बात गलत होने पर भी भूल से हमें सही प्रतीत हो जाए और कुछ समय बाद सचाई का पता लगे, तो बुद्धिमान लोग अवश्य उस गलत बात को मानना छोड़ देंगे। यदि भरत, शार्ङ्गदेव आदि अपनी वीणा के तारों व परदों के स्पष्ट व स्वतंत्र नाम तथा नाप दे जाते, तो उनकी स्वर-ध्वनि कौनसी थी, इस बात का पता तत्काल पाठकों को लग जाना संभव था। यह कौन बता सकता है कि भरत ने 'नाट्यशास्त्र' के अतिरिक्त संगीत पर और भी किसी ग्रंथ की रचना की थी, या नहीं। मुझसे अनेक बार लोगों ने इस प्रकार के प्रश्न पूछे हैं कि क्या भरत व शार्ङ्गदेव एक या दो श्रुति के रे, ध का प्रयोग करते थे ? यदि करते थे, तो इस प्रयोग के पश्चात् भी इन स्वरों को ये ही नाम क्यों दिए ? शार्ङ्गदेव ने अतिकोमल स्वरों के विषय में क्या व्यवस्था की है, आदि ?

प्रश्न--फिर आपने ऐसे प्रश्नकर्ताओं को क्या उत्तर दिया ?

उत्तर--मैंने उन्हें उत्तर दिया कि भाइयो, आप जल्दबाजी न करें। हमारे विद्वान् इन्हीं ग्रंथकारों के पीछे लगे हुए हैं और वे लोग शीघ्र ही आप लोगों के ऐसे प्रश्नों का निर्णय प्रकाशित करेंगे। अस्तु, मैं अभी अहोबल के ग्रंथ के विषय में बोल रहा था। हमारे विद्वानों को अहोबल, सोमनाथ के ग्रंथों से श्रुति ग्रहण कर उनकी सहायता से भरत, शार्ङ्गदेव के ग्रंथों को समझने का छोटा-मोटा कार्य जँचता ही नहीं। अहोबल के पूर्व एक भी ग्रंथकार अपने स्वर-स्थान तार की लंबाई के माध्यम से बताना नहीं सोच सका, यह हमारा दुर्भाग्य ही कहा जाएगा। यदि ये लोग ऐसा कर जाते, तो हमारे विद्वानों को आज कठिनाई नहीं होती। अहोबल व दक्षिण के स्वरों की तुलना करने का प्रधान साधन वीणा ही हो सकता है। अहोबल के नामों में भिन्नता होने पर भी उसने वीणा पर बारह परदे बाँधे हैं और वे परदे दक्षिण के पंडितों-जैसे ही बाँधे गए, यह सिद्ध किया जा सकता है। इतना ही नहीं, उसके अधिकांश स्वर-स्थान अपने प्रचलित ही हैं, यह भी मानना पड़ेगा। मैं विशेष कर उसके कोमल रे, ध स्वरों की ओर तुम्हारा ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। 'पारिजात' के शुद्ध स्वरों का वर्णन देखो :—

ध्वन्यवच्छिन्नवीणायां मध्ये तारकसः स्थितः ।
उभयोः षड्जयोर्मध्ये मध्यमं स्वरमाचरेत् ॥
त्रिभागात्मकवीणायां पंचमः स्यात्तदग्रिमे ।
षड्जपंचमयोर्मध्ये गांधारस्य स्थितिर्भवेत् ॥
सपयोः पूर्वभागे च स्थापनीयोऽथ रिस्वरः ।
सपयोर्मध्यदेशे तु धैवतं स्वरमाचरेत् ॥
तत्रांशद्वयसंत्यागान्निषादस्य स्थितिर्भवेत् ॥ शुद्धस्वराः ॥

आगे विकृत स्वरों को देखो :—

भागत्रयान्विते मध्ये मेरो ऋषभसंज्ञितात् ।
भागद्वयोत्तरं मेरोः कुर्यात् कोमलरिस्वरम् ॥
मेरुधैवतयोर्मध्ये तीव्रगांधारमाचरेत् ।
भागत्रयविशिष्टेऽस्मिन् तीव्रगांधारषड्जयोः ॥
पूर्वभागोत्तरं मध्ये मं तीव्रतममाचरेत् ।
भागत्रयान्विते मध्ये पंचमोत्तरषड्जयोः ॥
कोमलो धैवतः स्थाप्यः पूर्वभागे मनीषिभिः ।
तथैव धसयोर्मध्ये भागत्रयसमन्विते ।
पूर्वभागद्वयादूर्ध्वं निषादं तीव्रमाचरेत् ॥ विकृतस्वराः ॥

इस प्रकार अहोवल ने अपने बारह स्वर-स्थान बताए हैं। उसने अपने रागों की रचना में इन्हीं का प्रयोग किया है। उसके समय में सभी राग षड्ज से षड्ज-पर्यंत सप्तक से उत्पन्न किए जाते थे। ग्राम, मूर्च्छना, जाति आदि उपयोग में नहीं थे। वह कहता है :—

अथग्रामास्त्रयः प्रोक्ताः स्वरसंदोहरूपिणः ।
षड्जमध्यमगांधारसंज्ञाभिस्ते समन्विताः ॥
मूर्च्छनाधारभूतास्ते षड्जग्रामस्त्रिषूत्तमः ।
रागा ग्रामद्वयालभ्याः षड्जग्रामोद्भवा इति ॥
यथोक्तश्रुतिकाःप्रोक्ताःषड्जग्रामेऽखिलाः स्वराः॥

अस्तु, अब जबकि हम अहोबल के स्वर-स्थानों पर विचार कर रहे हैं, तुम्हें उसके प्रत्येक श्लोक को सूक्ष्म दृष्टि से देखना पड़ेगा। यह तुम स्वयं अपने-आप निश्चित करना कि उसके पारिभाषिक नामों में गड़बड़ है या नहीं। कहीं-कहीं तुम्हें

भाषा भी कुछ शिथिल प्रतीत हो, तो इसमें भी कुछ आश्चर्य नहीं। उसने ऐसा क्यों किया, इस संबंध में तर्क किए जा सकते हैं। परंतु कभी-कभी तर्क गलत भी हो सकते हैं। हमें तो न्याय-दृष्टि ही रखनी है। ग्रंथों का अर्थ करते समय ग्रंथकार के काल की परिस्थिति व उसकी व्याख्या के बाहर न जाने का नियम बना लेना चाहिए। आगे और कुछ बताने के पूर्व क्या मैं पाश्चात्य संगीत की कुछ प्रसिद्ध बातें तुम्हें बता दूं ?

प्रश्न—क्यों ? अहोबल का श्रुति-स्वर-प्रकरण समझने के लिए क्या ये बातें अनिवार्य रूप से समझनी ही पड़ती हैं ?

उत्तर—नहीं, नहीं ! यह मैं कैसे कह दूँगा कि अहोबल को पश्चिम के संगीत का ज्ञान था, या अहोबल के स्वरों की स्पष्टता पाश्चात्य ग्रंथों से करनी चाहिए ? क्या तुम भूल गए कि इस विषय को अपनी चर्चा का विषय बनाने का मुख्य कारण हमारे विद्वानों के वर्तमान लेख व उनमें की हुई चर्चा ही है। अतः तुम्हें उनका विधान भी समझना आवश्यक है। ठीक है न ? ये विद्वान् अपनी सहायता के लिए धड़ल्ले से सभी ओर के ग्रंथ-वाक्यों का उपयोग करते हैं। समाज अब अपना मत कायम करने की स्थिति में है। ऐसी दशा में यह जानना उपयोगी ही होगा कि आखिर ग्रंथों में क्या कहा गया है।

प्रश्न—अब यह हम समझ गए। कहिए, जो कुछ भी आप आवश्यक समझते हों, वह अवश्य कहिए ?

उत्तर—यह मैं तुम्हें पहले ही बता चुका हूँ कि जैसे हमारे यहाँ बिलावल-सप्तक हमारे द्वारा हिंदुस्तानी संगीत की नीवँ माना गया है, उसी प्रकार पाश्चिमात्य पद्धति में C, D, E, F, G, A, B का सप्तक बहुत महत्त्वपूर्ण माना जाता है। यह भी कहा जा सकता है कि इन दोनों में बहुत साम्य है। यूरोप के विद्वानों ने अपने स्वर तथा स्वर-संबंध आंदोलन के प्रमाण से कायम कर दिए हैं। उन्होंने अपने स्वरों की आंदोलन (कंपन)-संख्या इस प्रकार आविष्कृत की है—C २४०, D २७०, E ३००, F ३२०, G ३६०, A ४००, B ४५०, C ४८०। उन्होंने अपने सप्तक के इस प्रकार तीन वर्ग बनाए हैं—Majortone, Minortone, Semitone. यद्यपि मुझे अँग्रेजी-संगीत नहीं आता, तथापि इस विषय को समझने-योग्य कुछ जानकारी मैंने प्राप्त कर ली है। जहाँ उसमें भूलें हों, वहाँ उसे सुधारकर ही ग्रहण करना उचित होगा। अपने बिलावल सप्तक व पाश्चिमात्यों के स्वाभाविक सप्तक में इतना भेद माना जाता है कि उनके धैवत की आंदोलन-संख्या ४०० व अपने धैवत की आंदोलन-संख्या ४०५ है। यह भेद हम कैसे अस्वीकार कर सकते हैं ? जबकि हमारे सप्तक व पाश्चिमात्यों के सप्तक में इतना साम्य है, तब उधर के स्वर-संबंध व नियम अपने सप्तक में लगाने की सूझ हमारे विद्वानों को होना आश्चर्य की बात नहीं है। यह कौन कहेगा कि उनके (पाश्चिमात्यों के) नियम हमारे लिए बिलकुल निरुपयोगी हैं ? इस संबंध में मेरा तो यह मत है कि जो नियम उत्तमता से गृहीत हो सकें, उन्हें प्रसन्नता से ग्रहण करना चाहिए, परंतु जहाँ असंगत दिखाई दे,

वहाँ उनके नियम वे मानें और हमारे नियम हम मानते जाएँ। इस सिद्धांत को मानना अधिक सुरक्षित कहा जाएगा। यह सत्य है कि ग्रंथ-वाक्य का अर्थ प्रचार से मिलता हुआ ग्रहण करना है, परंतु वह प्रचार भी स्वदेशी ही समझना चाहिए। अहोबल आदि को पाश्चात्य आंदोलन-संबंध का कोई ज्ञान न था, अतः यह चीज उन लोगों पर लादने की आवश्यक्ता भी नहीं है। हमारा धैवत पाश्चात्य विद्वान् द्वारा भी यदि ४०५ आंदोलन का कहा जाता हो, तो उसे ४०० आंदोलन का कर दिखाना या हमारे यहाँ भी इस प्रकार का धैवत पहले ज्ञात हो चुका है, आदि सिद्ध करने का व्यर्थ प्रयत्न प्रतिष्ठा-वर्द्धक नहीं कहा जा सकता।

प्रश्न—परंतु जैसा कि आप कह चुके हैं कि पंडित अहोबल ने अपने स्वर तार की लंबाई बताते हुए स्पष्ट रूप से कहे हैं; फिर इस संदेह के लिए गुंजाइश ही कहाँ रहेगी ?

उत्तर—यही सब तथ्य हम धीरे-धीरे देखनेवाले हैं। हाँ, तो तुमने इस नियम को किस प्रकार समझा ?

प्रश्न—जहाँ पर भाषा का सरल अर्थ ग्रहण करते हुए अपने व पाश्चात्यों के विधानों में साम्यता हो, वहाँ तो ठीक ही है, किंतु जहाँ यह संगति नहीं बैठती हो, वहाँ अपने ग्रंथकारों को लेकर ही हमें आगे बढ़ना है।

उत्तर—बहुत अच्छी बात है। मैं यह भी कहे देता हूँ कि मैं संगीत की प्रगति में बाधा डालनेवाले व्यक्तियों में से बिलकुल नहीं हूँ। ग्रंथों के टेढ़े-तिरछे अर्थ निकालना भी मुझे पसंद नहीं है। इसका कारण यह है कि मेरी समझ में ऐसा अर्थ का अनर्थ करने से आगे चलकर हमें ही कठिनाइयाँ होने लगेंगी। उदाहरण के लिए अहोबल का ग्रंथ लो। यदि किसी प्रकार से हमने अहोबल के गले से पाश्चात्य आंदोलन-संबंध बाँध भी दिए, तो उसके रागों को छोड़ते हुए, हमें ही ऐतराज होगा। यदि ग्रहण भी किए, तो इस तरह के स्वरों से राग विकृत हो जाएँगे और यह प्रवाद फैलेगा कि वह इसी प्रकार अंट-संट राग गाता होगा। ऐसे प्रवाद से हमारे समाज में अहोबल की प्रशंसा तो होगी ही नहीं। पाश्चात्य पंडितों को इस प्रकार का कथन पट जाएगा, क्योंकि उन्हें तो हमारा संपूर्ण संगीत ही विक्षिप्ततापूर्ण ज्ञात होता है। परंतु पाश्चात्यों को केवल गणित के प्रमाण देकर खुश करने की अपेक्षा क्या अपने देशवासियों को उनके सर्वसम्मत राग-रूपों से सतुष्ट करना अधिक अच्छा नहीं है ? हमारे संगीत को पाश्चिमात्य देश स्वीकार करेंगे, इस दुराशा को पूर्ण होने में संभवतः अभी अनेक युगों का समय लगेगा। ग्रंथों की श्रुति कायम करते समय हमारे वर्तमान विद्वानों ने जो बुद्धि खर्च की है, उसे देखकर हमें इन विद्वानों की विद्वत्ता पर गर्व अवश्य होता है, परंतु बेचारे ग्रथकारों पर दया भी आती है।

प्रश्न—यह सब आप हमें दिखानेवाले हैं न ?

उत्तर——वैसा करना ही पड़ेगा, नहीं तो आजकल चलनेवाली चर्चा तुम कैसे समझ सकोगे, परंतु मैं केवल प्रसिद्ध-प्रसिद्ध मतों पर ही अपने तर्क बताऊँगा। चाहे हमें वे मत पसंद नहीं आते हों, परंतु हमें यह न भूलना चाहिए कि वह व्यक्ति जिसने अपना मत प्रकट किया है, हमारे-जैसा ही हृदय से संगीत की उन्नति चाहनेवाला सुशिक्षित व्यक्ति होगा। यदि किसी-किसी मुद्दे पर उसके और हमारे सैद्धांतिक मतभेद हैं, तो इसमें आश्चर्य करने की कोई बात नहीं है। हमें सदैव समझना चाहिए कि वह हमारा संगीत-बंधु है। अब पहले अहोबल के शुद्ध स्वरों को देखो। समझ लो कि तुम्हारे सम्मुख एक वीणा है, जिसके बाज का तार (ध्वन्यवच्छिन्न) ३६ इंच लंबा है। यह तुम जानते ही हो कि तार को छेड़ने से घोड़ी से मेरु तक की लंबाई का नाद निकलेगा। अब पंडित अहोबल कहता है कि ऐसे तार के ठीक मध्य-भाग में (यदि कोई परदा स्थापित करे, तो उस पर) तारषड्ज निकलेगा।

प्रश्न——अब अच्छी तरह समझ में आ गया। हमारे सितार पर दूसरा तार षड्ज का है, जिसे जोड़ का तार कहते हैं, इसे मध्यम के परदे पर दबाने से हमें तार-षड्ज निश्चय ही प्राप्त होगा।

उत्तर—आगे अहोबल का कथन है 'उभयोः षड्जयोर्मध्ये मध्यमं स्वरमाचरेत्'। इसका अर्थ इस प्रकार है—'मेरु व तार-सां के ठीक बीच का स्थान ही शुद्ध मध्यम का स्थान है।' उसका यह कथन बिलकुल यथार्थ है। यदि तुम अपनी वीणा पर मध्यम का स्थान जाँचकर देखो, तो तुम्हें भी यही अनुभव होगा। ये स्थान, तार की लंबाई से जांचकर देखने का प्रसंग न आने से हमारे गुणीजनों का इस तरफ लक्ष्य भी नहीं रहा था, परंतु इस तथ्य पर अहोबल का ध्यान पहुँचा, इस विषय में उसकी प्रशंसा की जानी चाहिए। मध्यम का स्थान कायम करने के बाद अहोबल पंचम की ओर बढ़ता है। वह कहता है कि 'त्रिभागात्मकवीणायां पंचमःस्यात्तदग्रिमे' पूरे तार के यदि समान भाग किए जाएँ, तो पहले भाग के अंत में शुद्ध पंचम स्वर आएगा। अहोबल का यह कथन भी बिलकुल ठीक है।

प्रश्न——तो फिर ऐसा कहना चाहिए कि अहोबल के शुद्ध सा, म, प, स्वरों के विषय में सर्वत्र एक मत है।

उत्तर—हाँ, यह कथन गलत नहीं है। और भी इसके दो स्वरों के स्थानों के विषय में समाज में मतभेद नहीं है। वे स्वर हैं—'शुद्ध ग' व 'शुद्ध नी'। इनके विषय में ग्रंथकार कहता है—'षड्जपंचमयोर्मध्ये गांधारस्य स्थितिर्भवेत्' 'षड्ज व पंचम के ठीक बीच में' 'शुद्ध गांधार' स्वर आएगा। यह हिंदुस्तानी पद्धति का कोमल ग है। यह प्रत्यक्ष प्रयोग करके तुम जान सकते हो।

प्रश्न—तो फिर मेरु से १८ इंच पर तार-सां, १२ इंच पर शुद्ध प, ९ इंच पर शुद्ध म, व ६ इंच पर शुद्ध ग, (कोमल ग) का स्थान कहा जाएगा।

उत्तर—तुम बिलकुल ठीक समझे। अब शुद्ध निषाद को देखो—'तत्र (सपयोः) अंशद्वयसंत्यागान्निषादस्य स्थितिर्भवेत्' तार-सां व शुद्ध प के बीच के अंतर के तीन भाग कर, दो भाग पंचम की ओर के छोड़ देने पर 'शुद्ध निषाद' का स्थान आता है।

प्रश्न—शुद्ध प व तार-सां का अंतर ६ इंच है। अर्थात् 'शुद्धनिषाद' पंचम से आगे ४ इंच पर आएगा, ऐसा ही है न ?

उत्तर—यह भी तुम समझ गए। इसमें इस समय हमें सां, म, प, ग, नि, स्वर-स्थान उत्तम रूप से मिल रहे हैं। अहोबल के इन स्वरों के शुद्ध स्थानों के विषय में कहीं पर भी विवाद नहीं है। यदि तुम प्रत्यक्ष प्रयोग कर देखो, तो तुम्हें ये स्वर प्राप्त होंगे। इनमें शुद्ध ग, नि स्वर तुम्हारी हिंदुस्तानी पद्धति के कोमल ग, नि, होंगे। ये ही स्वर दक्षिण के साधारण ग व कैशिक नि ठहरेंगे।

प्रश्न—अच्छा, अहोबल ने अपने स्वरों का संबंध किस नियम से कायम किया होगा ?

उत्तर—वह स्वतः अपना नियम बताता है :—

षड्जपंचमभावेन षड्जे ज्ञेयाः स्वरा बुधैः।
गनिभावेन गांधारे मसभावेन मध्यमे ॥

यह नियम समझने के पूर्व Blasserna साहब के ग्रंथ के एक-दो उद्धरण तुम्हें पढ़कर सुनाए देता हूँ। इसकी मदद से तुम शीघ्र ही समझ जाओगे :—

The Greek Musical Scale was developed by successive fifths. Raising a note to its fifth signifies multiplying its number of vibrations by $\frac{3}{2}$. This principle was rigorously maintained by the Greeks; rigorously because the fourth of which they made use from the very beginning is only the fifth below the fundamental note raised an octave. To make the tracing out these musical ideas clearer, recourse will be had to our modern nomenclature making the supposition that our scale is already known to the reader, calling the fundamental note C, and the successive notes of our scale D, E, F, G, A, B, C, with the terms sharps and flats for the intermediate notes as is done in our modern music. In this scale the first note, the C, represents the fundamental note, the others are successively the second, the third, the fourth, the fifth. the sixth, the seventh, and the

octave, according to the position which they occupy in the musical scale.

If the C be taken as a point of departure, its fifth is G, and its fifth below is F. If this last note be raised an octave, so as to bring it nearer to the other notes, and if the octave of C be added also, the following four notes are obtained :—

C, F, G, C with ratios 1, $\frac{4}{3}$-$\frac{3}{2}$-2,

Progress by fifths up and down can be further continued. The fifth of G is D, and if it be lowered an octave, its musical ratio will be $\frac{9}{8}$. The fifth below F is Bb, whence its musical ratio when raised an octave is $\frac{16}{9}$. We have thus the following scale—C, D, F, G, Bb, C which is nothing more then a succession of fifths. All transposed into the same octave in the following way—Bb, F, C, G, D.

× × ×

But the scale can be continued further by successive fifths, Omitting, as the Greeks did, the fifth below Bb. and adding instead three successive fifths upwards we shall have A as the fifth of D, and as the fifth of A; and finally B as the fifth of E. The ratios of these when brought into the same octave will be $\frac{27}{16}$·$\frac{31}{64}$-$\frac{24}{12}$-$\frac{3}{8}$ and thus the scale is C, D, E, F, G, A, B, C. with the ratios 1, $\frac{9}{8}$, $\frac{31}{64}$, $\frac{4}{3}$, $\frac{3}{2}$, $\frac{243}{123}$, 2. The first and second of the last three fifths, the A and the E, were introduced by Terpandro the last, the B, by pythagoras, whence the Greek scale still bears the name of the Pythagorean Scale.

× × ×

The Pythagorean Scale held almost exclusive sway in Greece. However, in the last century before the christian era that is to say, during the peroid of Greek decline in politics and art, many attempts at modifying it are found. Thus for example, they divided the interval between the notes corresponding to our C and D into two parts, introducing a note in the

middle. At last they went so far as to again divide these intervals in two, thus introducing the quarter tone which we look upon as discordant. Others again introduced various intervals founded for the most part rather on theoretical speculations than on artistic sentiment. All these attempts have left no trace behind them and therefore are of no importance. But the Pythagorean scale passed from Greece to Italy, where it held sovereign sway up to the sixteenth century, at which epoch began its slow and successive transformation into our two musical scales.

It ought to be added that the Greeks, in order to increase the musical resources of their scale, also formed from it several different scales, which are distinguished from the first only by the point of departure. The law of formation was very simple; in fact suppose the scale is written thus—C, D, E, F, G, A, B, C. Any note whatever may be taken as the starting point and the scale may be written, for example, thus—E, F, G, A, C, D, E; or A, B, C, D, E, F, G, A &c. It is evident that seven scales in all can be formed in this way, which were not all used by the Greeks at different epochs, but which were all possible. A musical piece founded on one or other of them must evidently have had a distinctive character; and It is this respect, in the blending of shades, that Greek melody must be considered as more rich than ours, which is subject to far more rigid rules."

प्रश्न—अब हम 'षड्ज-पंचम-भाव' अच्छी तरह समझ गए। यह उद्धरण बहुत मजेदार रहा। हमारे संगीत पर इससे कुछ-कुछ प्रकाश नहीं पड़ता है क्या ?

उत्तर—पड़ता है, इसी लिए मैंने तुम्हें यह पढ़कर सुनाया है। अस्तु, अब अहोबल के अन्य श्लोकों का अर्थ लगाने के पहले एक महत्त्वपूर्ण बात पर हम विचार करेंगे। हमारे श्रुति, स्वर स्थापित करनेवाले एक विद्वान् ने स्वतः अपने विचार लगभग दो वर्ष हुए, एक छोटी पुस्तक के रूप में प्रकाशित किए हैं। इस पुस्तक में लेखक ने संस्कृत-ग्रंथकारों की प्रसिद्ध श्रुतियों व उनके स्वरों की स्पष्टता पाश्चात्य आंदोलन-संख्या से व तार की भिन्न-भिन्न लंबाई से की है। इस प्रकार से स्पष्ट लिखने की शैली अपनी ओर कुछ नवीन ही है। अतः उस पुस्तक की बहुत प्रसिद्धि व मान हुआ, और ऐसा होना उचित भी था। कुछ उसके मत ग्राह्य नहीं हुए, परंतु उसके लिखने की पद्धति बहुत पसंद की गई, यह कोई भी कह सकता है। उस पुस्तक के लिखे जाने से संगीत में रुचि लेनेवाले विद्वानों में अपने-आप खलबली मच गई। सौभाग्य से उस विद्वान् ने अपने संपूर्ण आधार उस पुस्तक में क्रमवार बता दिए हैं।

इससे पाठकों को यह जानने का कार्य बहुत सरल हो गया है कि उसने किस ग्रंथ का कौनसा भाग ग्रहण किया है और वह भाग उसने ठीक-ठीक समझा है, या नहीं समझा।

प्रश्न—उसने श्रुति-स्वर-रचना के लिए किन ग्रंथों का आधार ग्रहण किया है ?

उत्तर—उसके मुख्य सिद्धांत 'रागविबोध' व 'पारिजात' इन्हीं दो ग्रंथों के आधार पर बने हैं। 'रत्नाकर' की श्रुति-रचना तो तुमने देखी ही है। यह स्पष्ट दिखाई देने योग्य है कि उसकी मदद से स्वर-रचना करना संभव नहीं है। यह कहना कि शार्ङ्गदेव प्रचलित स्वरों में गाता-बजाता था, इसलिए उसका सप्तक 'बिलावल' या 'काफी' अथवा 'मुखारी' का समझना चाहिए, शोभनीय नहीं होगा। इसमें आश्चर्य नहीं कि उस विद्वान् ने यही मान रखा होगा कि प्रत्येक सिद्धांत ग्रंथ की उक्ति द्वारा सिद्ध होना चाहिए। ऐसा आधार 'रत्नाकर' से प्राप्त न हो सकने के कारण उसने अपना कार्य सोमनाथ व अहोबल की मदद से पूरा किया। किंतु इसमें तुम्हें कौनसी बात विशेष ध्यान देने के योग्य दिखाई देती है, बता सकते हो ?

प्रश्न—हम ऐसा समझते हैं कि इस विद्वान् ने श्रुतियाँ व उन पर स्वरों की स्थापना शार्ङ्गदेव की सहायता से नहीं की है। यह रचना वह सोमनाथ व अहोबल के ग्रंथों की मदद से कर सका है। परंतु क्यों गुरुजी ! ये दोनों ग्रंथकार क्या भिन्न-भिन्न पद्धति के नहीं थे ? एक दक्षिण का पंडित व दूसरा उत्तर का पंडित कहा जाता है न ?

उत्तर—तुम्हारा प्रश्न बिलकुल ठीक है। अब तुम आगे देखोगे कि इन दो भिन्न-भिन्न पद्धति के ग्रंथकारों का मेल करने के प्रयत्न में अपने पंडित को बड़ी उलझन उपस्थित हुई है।

प्रश्न—तो फिर इसकी विचारधारा हमें बताइए ?

उत्तर—बताता हूँ। परंतु मैं तो उसके लेख पर संभावित तर्क ही कह सकता हूँ। हो सकता है, कहीं-कहीं ये तर्क उचित न हों। जिस तर्क से उसके प्रति अन्याय होता हो, वहाँ पर उस तर्क को मेरी भूल ही समझना चाहिए। तो अब सुनो :—

मुझे सर्वप्रथम एक संदेह यह होता है कि जिस समय इस विद्वान् ने अपनी पुस्तक लिखी, उस समय उसकी दृष्टि में यह बात नहीं आ सकी होगी कि सोमनाथ व अहोबल बिलकुल भिन्न पद्धति के ग्रंथकार थे। उन दोनों पंडितों ने तीव्र रि, ध स्वर बताए हैं; यह भी भूल का एक कारण हो सकता है। अपने बिलावल ठाठ में रि ध तीव्र माने हैं, यह तो प्रसिद्ध बात थी तथा इन दोनों स्वरों की आंदोलन-संख्या २७० तथा ४०५ क्रमशः होती है। वह भी उसे मालूम होगा ही कि पाश्चात्य संगीत में Major, Minor व Semi ये स्वरांतर प्रसिद्ध ही हैं। हमारे यहाँ भी

उसे वृहदन्तर, मध्यांतर व क्षुद्रांतर भी दिखाई दिए होंगे। इसलिए उसका यह समझ बैठना स्वाभाविक है कि हमारे तीव्र रि, ध स्वर ही उन दोनों ग्रंथों के तीव्र होंगे। ऐसा ही इस विद्वान् ने समझा है। क्योंकि तीव्र रि, ध स्वरों के आंदोलन उसने ठीक २७० व ४५० ही निश्चित किए हैं। ये स्वर अहोबल के षड्ज-पंचम-भाव से सहज ही निकाले जा सकते थे, परंतु इन तीव्र रि, ध स्वरों को अहोबल ने विकृत मानकर उनके स्थान शुद्ध स्वरों से एक श्रुति ऊँचे माने हैं, इसलिए इन शुद्ध स्वरों को तीव्र रि, ध से नीचा मानने की परंपरा है। तीव्र रि व ध स्वर चार-चार श्रुतियों के माने गए हैं व उनका (Major) माप $\frac{६}{५}$ के प्रमाण से ठीक ही मालूम होता है। तीन श्रुति का, अर्थात् **Minor** माप समझने के लिए बिलावल ठाठ के रि, ग के माप का मूल्यांकन करना आवश्यक होता है। पाश्चात्य पंडितों का यह माप $\frac{१०}{९}$ के प्रमाण का है। क्योंकि वह $\frac{३००}{१} \times \frac{१}{२७०} = \frac{१०}{९}$ इस प्रकार निकलता है। (दो स्वरों का संबंध, उनकी आंदोलन-संख्या के भागाकार के रूप में कहने का प्रचार प्रसिद्ध ही है।) $\frac{१०}{९}$ माप को प्राप्त कर इसका उपयोग षड्ज के आगे किया, तो तीन श्रुति का अर्थात् शुद्ध 'री' निकल आता है। जैसे $\frac{२४०}{१} \times \frac{१०}{९} = \frac{८००}{३} = २६६\frac{२}{३}$, इसी प्रकार पंचम के आगे $\frac{३६०}{१} \times \frac{१०}{९} = ४००$ का धैवत निकल आता है। इसलिए ऐसे दो स्वर हमारे संस्कृत-ग्रंथों से निकाले जा सके। फिर हमारे प्राचीन पंडितों की प्रशंसा होनी चाहिए, यह समझना भी उसके लिए संभव था।

प्रश्न—परंतु फिर (Minor) माप वह कैसे लाया ?

उत्तर—बताता हूँ। यह कहना पड़ेगा कि माप वह कठिन प्रयत्न से ही ला सका। वह कहता है कि 'तंबूरे का षड्ज का तार बजने पर कुशल श्रोताओं को सूक्ष्म रूप से तीव्र गांधार सुनाई देता है, तथा इसी प्रकार पंचम के तार पर ऋषभ सुनाई देता है।' यह अनुभव-सिद्ध बात है। अब इसमें तर्क लगाया कि जब यह अनुभव आज हमें होता है, तो अहोबल और सोमनाथ-जैसे महान् व्यक्तियों को क्या नहीं हुआ होगा ? प्रमाण एकत्र करने का बोझ इस बात को अस्वीकार करनेवालों पर रहेगा। तो भी इस विवाद का अंतिम निर्णय करने के लिए मैं कहता हूँ कि वे सूक्ष्म स्वर (जिन्हें योरोपीय पंडित Harmonics कहते हैं) सोमनाथ ने अवश्य सुने होंगे। इन स्वरों को उसने 'स्वयंभू स्वर' कहा है। निःसंदेह यह स्वीकार करना पड़ेगा कि उसने अपने ग्रंथ में एक अक्षर भी इस बात पर नहीं लिखा है कि षड्ज से गांधार व पंचम से ऋषभ सुनाई देता है। परंतु जिसे स्वयंभू यानी अपने-आप पैदा होनेवाले स्वर का कुछ भी बोध होगा, उसे इतने ही संकेत से अपने आप निकलने वाले स्वर Harmonics का भेद सहज में ही समझ में आ जाएगा। Harmonics के विषय में आगे मैं और भी कुछ कहनेवाला हूँ।

प्रश्न—इसकी पद्धति ध्यान में नहीं आई।

उत्तर—यह एकदम ध्यान में आएगी भी नहीं। उस 'स्वयंभू' की प्रार्थना करने की रीति ही भिन्न है।

प्रश्न—वह कौनसी ?

उत्तर—षड्ज से जो गांधार सुनाई देता है, वह तीव्र ग होता है और उसकी आंदोलन-संख्या ३०० होती है। यह तथ्य पाश्चिमात्य पंडितों ने सिद्ध कर दिया है, इसलिए यह गांधार, 'स्वयंभू' के मार्फत लाना पड़ेगा।

प्रश्न—परंतु यह होगा कैसे ? अहोबल का षड्ज-पंचम-भाव लगाकर देखना चाहिए।

उत्तर—तुम्हीं लगाकर देखो, वह कैसे आता है ?

प्रश्न—तो फिर देखिए ! तीव्र धैवत को सा मानकर षड्ज-पंचम-भाव लगाया, अर्थात् $\frac{४०५}{१} \times \frac{३}{२} = \frac{१२१५}{२} = ६०७\frac{१}{२}$ का तार आएगा, उसमें से एक सप्तक कम किया, तो ये $३०३\frac{३}{४}$ आंदोलन का ग आएगा। ठीक है न ? यह तो सचमुच कठिनाई है, फिर 'स्वयंभू' का उपयोग ?

उत्तर—यहाँ यह कल्पना की जाएगी कि सोमनाथ, अहोबल के 'स्वयंभू' की आवश्यकता हो तो Harmonics अथवा स्वयंभू ग पकड़कर $३०३\frac{३}{४}$ के ग को दुरुस्त कर लो। एक बार वह तीन सौ आंदोलन का ग लोगों को स्वीकृत हुआ कि फिर संपूर्ण स्वर-पंक्ति का मिलान हो जाएगा। मैं तो संपूर्ण तर्क बताता जा रहा हूँ। ठीक क्या है, यह भगवान् जाने।

प्रश्न—परंतु क्या यह विचारधारा लोगों को पसंद आई ?

उत्तर—नहीं ! एक दूसरे लेखक ने मासिक पत्रों में लेख लिखकर सिद्ध किया कि 'स्वयंभू' का अर्थ Harmonics नहीं, सोमनाथ व अहोबल की पद्धति भिन्न हैं, उनके शुद्ध स्वर उक्त पंडित के निश्चित स्वर नहीं हैं, आदि। इस लेखक का कथन ठीक भी था।

प्रश्न—अरे रे ! फिर उन श्रुति-पंडित ने क्या किया ?

उत्तर—वह बुद्धिमान तो था ही। कहावत है कि 'विद्वान् की परीक्षा कठिनाई में होती है।' अड़चन आते ही उसने अपना मार्ग बदल दिया। सोमनाथ और अहोबल की जो एकता थी, उसे तोड़कर अलग-अलग कर दिया। अहोबल की जिम्मेदारी एक अन्य पंडित ने ले ली तथा उसके स्वर भिन्न रूप से स्थापित कर दिए गए।

प्रश्न—और पहले जो बहुत-कुछ प्रकाशित किया था, उसका क्या हुआ ?

उत्तर—वह सब गप्प शार्ङ्गदेव के अधीन कर दी गई।

प्रश्न——आप यह क्या कहते हैं ? इस प्रकरण का शार्ङ्गदेव से तो कोई संबंध ही नहीं था न ?

उत्तर——विवश होकर ऐसा करना पड़ा। रामामात्य, सोमनाथ, व्यंकटमखी, पुण्डरीक आदि पंडित तो इसके पात्र होते ही नहीं, क्योंकि इन्होंने अपने स्वर वीणा के परदों से बताए हैं, और उनका प्रचार अब भी दक्षिण में है। अब बाकी बचा शार्ङ्गदेव, अत: उसके मत्थे इसे मढ़ना ठीक ही था।

प्रश्न——परंतु उसने तो 'स्वयंभू' स्वरों के विषय में कुछ भी नहीं लिखा ?

उत्तर——किंतु उसने 'अनुरणनात्मक: स्वर:', इस प्रकार स्वरों की व्याख्या तो अंगीकार की थी, अत: वह भी थोड़ा-बहुत उत्तरदायी हो गया। परंतु भाइयो ! इस विषय पर आगे श्रुतियों पर विचार करते समय थोड़ा और भी बोलना पड़ेगा। अत: अब यहीं ठहरकर 'पारिजात' के श्लोकों का विचार ही आगे बढ़ाएँ, क्या वह ठीक नहीं होगा ?

प्रश्न——यह हमने अपने ध्यान में रख लिया है कि अहोबल का स्पष्टीकरण अब स्वतंत्र रूप से किया जा चुका है। ऐसा ही आपने हमें सुनाया था। परंतु जरा ठहरिए ! एक शंका मन में उत्पन्न हुई है, उसका भी समाधान कर लें। इस (पूर्व चर्चा से संबंधित) पंडित ने शार्ङ्गदेव को जो स्वर-सप्तक सौंपा, उस ठाठ का क्या नाम दिया है ?

उत्तर——उसने उसे काफी ठाठ बताया है।

प्रश्न——काफी ! यह कैसे हुआ ? काफी ठाठ में रे, ध, तीव्र होते हैं न ?

उत्तर——हमारे मत से व अहोबल, लोचन आदि के मत से तीव्र ही होते हैं। इसी प्रकार उत्तर के बड़े-बड़े गायकों के मत से भी ये स्वर तीव्र ही माने जाते हैं। यह मुझे मालूम है, परंतु यह 'शार्ङ्गदेवी काफी' है। ऐसा मानने में क्या हानि है ? तुम्हारी काफी 'अहोबली काफी' होगी। तो भी यहाँ इस पंडित की एक नवीन खोज मैं स्पष्ट रूप से स्वीकार करूँगा। यह कहता है कि उसके गायक काफी राग में तीन-तीन श्रुतियों के रे, ध का ही प्रयोग करते हैं। उसका यह कथन निस्संदेह आश्चर्यजनक है, परंतु एकाध गायक ने गाने के लिए उसके ऐसे ही स्वर पसंद किए, तो वहाँ हम क्या कर सकेंगे, हमारे लिए तो अपने नियम से चलना ही पर्याप्त है।

प्रश्न——अच्छा, उसने शार्ङ्गदेव के शुद्ध ठाठ का नाम काफी कहाँ से दिया ? क्या 'रत्नाकर' में बताया गया है।

उत्तर——मैं समझता हूँ कि उसने यह नाम या तो रे–ग तथा ध–नि का अर्द्धांतर देखकर दिया होगा, या लक्ष्यसंगीतकार द्वारा एक स्थल पर संदिग्ध रूप से इस नाम

को प्रयुक्त देखकर उसने संदेह में पड़कर स्वीकार किया होगा। इसका कारण उसकी समझ है। यह सहज में दिखाई दे सकता है कि लक्ष्यसंगीतकार ने अपने काफी ठाठ के रागों में तीव्र रे–ध स्वर ही बताए हैं। उसके बीच-बीच में इस ठाठ को 'हरप्रिया' नाम से भी संबोधित किया है। हरप्रिया (दक्षिणी ठाठ) में भी रे–ध स्वर तीव्र माने गए हैं तथा उन्हीं की मदद से संपूर्ण रागों की व्यवस्था की गई है। यह सब सहज में दिखाई दे सकता है। यही पद्धति मैं तुम्हें सिखा रहा हूँ। इस पद्धति में ठाठों को मूर्च्छना से उत्पन्न नहीं किया गया।

प्रश्न—चतुर पंडित ने 'काफी' नाम का प्रयोग संदिग्ध स्थल पर किस प्रकार किया है?

उत्तर—चतुर पंडित ने अपनी सुविधा के दसों ठाठ बताकर, आगे इस प्रकार कहा है :—

शक्या नेतुं मेलसंख्या तत्रेषन्न्यूनतामसौ।
तदूनत्वं तु रचनाकाठिन्याधिक्यमावहेत्॥
सरिगमपधाख्येषु शुद्धस्वरेषु केवलम्।
प्रत्येकं षड्जभावेन कल्पितेषु यथाक्रमम्॥
बिलावली तथा काफी भैरवी यमनोऽप्यसौ।
खंमाज असावरी चेत्येते मेलाः स्युरंजसा॥
द्द्वारा ह्येतेषु स्यात् सपाटवम्।
त्तमं समावेशयितुमस्मत्संगीतमुत्तमम्॥
कदाचिदेवमेवास्मत्पंडितैः स्युः प्रकल्पिताः।
केवलं मुख्यषड्रागा येनकेनापि वर्त्मना॥

× × × ×

यह स्पष्ट ही है कि लक्ष्यसंगीतकार की रचना मुख्य छह रागों की नहीं है। बिलावल ठाठ के स्वरांतर कायम मानकर ऋषभ से ऋषभ तक जो सप्तक बनेगा, उसे छह रागों की कल्पना में 'काफी' नाम देना सुविधापूर्ण होगा; यह उसने काल्पनिक रूप सुझाया है। यही उस बेचारे पंडित ने सत्य मानकर घोषित कर दिया। ३, २, ४, ४, ३, २, ४, यह ऋषभ-से-ऋषभ तक का सप्तक कहा गया है, तो इसमें स्वरांतर ग्रंथकार के शुद्ध ठाठ के समझना ही अधिक संभव है। ऐसे सप्तक को लक्ष्यसंगीतकार ने 'काफी' नाम दिया, तो उस पंडित को पसंद आना भी संभव है। इसमें मजेदार बात तो हम यह सुनते हैं कि उस पंडित की मदद करनेवाले गायक-वादक तीन श्रुति के रि, ध, 'काफी' ठाठ के रागों में गाने को तैयार हैं। यह

अभी तक नहीं समझा जा सका कि वे तीव्र रि, ध तथा कोमल ग, नि वाले रागों के ठाठों को क्या नाम देनेवाले हैं। आज हमारा विषय 'रत्नाकर' पर विचार करना नहीं है, अतः अभी यह उलझन हमारे लिए नहीं है। हमें तो अभी इतना ही देखना था कि सोमनाथ व अहोबल के आधार पर स्थापित कही जानेवाली रचना इन दोनों में से किसी की नहीं है। अब अहोबल के स्पष्टीकरण को जिन्होंने अंगीकार किया है, उनका मत देखना है न ?

प्रश्न—जी हाँ, अब वही कहिए। 'सा, ग, म, प, नि' स्वर निर्विवाद हैं, यह आपने कहा ही था।

उत्तर—यह तुमने अच्छा ध्यान रखा। अब तुम्हें यह बात और समझनी है कि हम जिन्हें तीव्र रि-ध स्वर कहते हैं, वे अहोबल के तीव्र रि-ध नहीं थे। अहोबल अपना शुद्ध ऋषभ इस प्रकार बताता है :—

सपयोः पूर्वभागे च स्थापनीयोऽथ रिस्वरः ।

इस श्लोक-पक्ति का क्या अर्थ करोगे ? बताओ तो ?

प्रश्न—इसका सीधा अर्थ तो इस प्रकार होगा—षड्ज व पंचम स्वर के अंतर के पूर्व-भाग में ऋषभ स्वर स्थापित होगा ! पूर्व व उत्तर, ये दो भाग होंगे ?

उत्तर—ठीक है, परंतु 'पूर्व-भाग' का अर्थ 'पूर्वभागे के सिरे पर' यह तो बनेगा ही नहीं, क्योंकि इस रीति से ऋषभ स्वर मेरु से ६ इंच की दूरी पर आएगा।

प्रश्न—अर्थात् शुद्ध रे व शुद्ध ग एक ही स्वर पर आ जाते हैं। ठीक है न ? परंतु यदि 'पूर्व-भाग' का अर्थ 'पूर्व-भाग के मध्य स्थान में', ऐसा ग्रहण किया जाए तो ?

उत्तर—नहीं, इस प्रकार का अर्थ जँचता भी नहीं है। तुम्हारे कहने-जैसा अर्थ पहले भी कुछ विद्वान् ग्रहण कर चुके हैं। सन् १८९३ ई० में श्रीमंत गायकवाड़ के शिक्षा-विभाग ने सर्वप्रथम 'संगीत पारिजात' का गुजराती में अनुवाद प्रकाशित किया था। यह अनुवाद कै० वै० कृष्ण शास्त्री सूरतकर ने किया था। इस विद्वान् ने 'पूर्व भाग' का अर्थ 'पूर्व भाग का मध्य भाग' ही किया था। मेरु से तीन इंच पर ऋषभ बहुत असुविधापूर्ण होता है, यह हमारे विद्वान् कहते हैं और मुझे भी यह कथन ठीक दिखाई पड़ता है, अतः अहोबल का यह अर्थ नहीं रहा होगा।

प्रश्न—तो फिर हमारे इस विद्वान् (पूर्व आलोचित श्रुति-स्वर-आंदोलन को शास्त्रीय सिद्धकर्ता सज्जन) ने कौनसा अर्थ निकाला ?

उत्तर—उसे तो अहोबल की भाषा से ही पाश्चात्य पंडितों के समस्त स्वर उत्पन्न कर दिखाने की इच्छा थी, यह उसके पहेली बुझाने-जैसी व्याख्या के क्रम से ही ज्ञात हो

जाता है। उसने एक युक्ति इस प्रकार लगाई। 'पूर्वभागे' इस पद से यह समझना चाहिए कि अहोबल की इच्छा पूर्व-भाग, मध्य-भाग व उत्तर-भाग, इस प्रकार तीन विभाग करने की थी। पाठकों को यह स्वीकार होने पर फिर अपने आप ही 'पूर्वभागे' अर्थात् मेरु से चार इंच पर शुद्ध ऋषभ निश्चित हो जाएगा। वह ऋषभ २७० आंदोलन का ही होगा, क्योंकि वह ३२ इंच के तार की ध्वनि है। यदि इस विचारधारा का कोई आधार पूछने लगे, तो यह कहा जा सकता है कि अहोबल ने आगे चलकर अपने श्लोकों में 'त्रिभागात्मक वीणायां' 'भागत्रयान्विते मध्ये' आदि विशेषण बार-बार प्रयुक्त किए हैं। यहाँ पर भी उसके हृदय में इसी प्रकार तीन भाग करने की भावना रही थी, परंतु उसे स्पष्ट रूप से लिखना भूल गया। यहाँ उसे इस प्रकार कहना चाहिए था :—

भागत्रयान्विते मध्ये षड्जपंचमयोः पुनः।
पूर्वभागे स्वरः स्थाप्यः शुद्धरिर्मर्मवेदिभिः ॥

प्रश्न—हमें तो यह अर्थ संतोषजनक नहीं मालूम होता। जिस लेखक ने पाँच जगह 'त्रिभागात्मक' आदि विशेषण याद रखकर लगाए हैं, वह लेखक केवल पहली जगह में ही भूल गया होगा, यह कैसे कहा जा सकता है ? यह बात तो उलटे स्वाभाविक कल्पना के विपरीत हो जाती है। पाँच स्थानों पर स्पष्ट बताकर यहाँ जिस पद को उसने छोड़ा है, उसका अभीष्ट पद ही नहीं था, क्या यह कथन उचित नहीं होगा ? उसके श्लोक में हमें तो कहीं पर त्रुटि नहीं दिखाई देती।

उत्तर—तुम्हारे इस कथन का मुझे तनिक भी खेद नहीं है। पंडित की जो समझ में आया, वह उसने बताया और तुम्हारी जो समझ में आए, वह तुम बताओ। मैं कोरी काल्पनिकता का बिलकुल पक्षपाती नहीं हूँ। यह मैं कैसे कह सकता हूँ कि तुम्हारा कथन न्यायपूर्ण नहीं है ? तुम्हारे इस मत के समर्थक और भी एक विद्वान् मुझे मिल चुके हैं।

प्रश्न—तो फिर यह और भी अच्छा हुआ तथा हमें यह सुनकर बड़ा संतोष भी प्राप्त हुआ। अच्छा, इस विद्वान् ने इस बारे में क्या कहा है ?

उत्तर—उसने स्पष्ट लिखकर प्रकाशित करा दिया है कि अहोबल को शुद्ध रे, ध स्वरों का स्थान निश्चित करना ही नहीं आया। चाहे इस विद्वान् का मत हमें ग्राह्य न हो, परंतु उसका यह तर्क तो मुझे भी ठीक मालूम पड़ा। केवल इतना ही प्रश्न रह जाता है कि अहोबल को यह स्वर-स्थान कायम करना नहीं आया, अथवा उसने यह स्वर-स्थान कायम करने का कार्य खास तौर से जान-बूझकर टाल दिया। इधर हमारे इस पंडित की स्थिति फिर कुछ विचित्र हो गई। उसे हिंदुस्तानी संगीत का तीव्र ऋषभ लाना तो आवश्यक था ही, परंतु उसे वह लाता कैसे ? उसका आंदोलन आया २७० और मेरु से उसका अंतर हुआ चार इंच।

प्रश्न—उसकी कठिनाई हम ठीक से नहीं समझ पाए ? अहोबल तो स्वतः ही कह चुका है कि 'षड्ज-पंचम-भाव' से मेरे स्वर समझ लिए जाएँ।

उत्तर—यह ठीक है, परंतु इस मार्ग में उसे दूरदर्शिता से आगे आनेवाली कठिनाई दिखाई दी।

प्रश्न—कठिनाई होगी कैसे गुरुजी ! सा से प, प से री और यही एक सप्तक नीचे आने पर सुन्दर ऋषभ मिल जाता है। इससे पाँचवाँ तीव्र ध, और इस तीव्र धैवत से पाँचवाँ तीव्र ग, इसे नीचे के सप्तक में लिया कि..............परंतु ठहरिए ! दरअसल यहाँ कठिनाई आएगी ही। जो तीव्र ग यहाँ आता है, वह अहोबल का शुद्ध ग कैसे हो सकता है। यह सप्तक तो बिलावल-जैसा हो जाता है। अहोबल के शुद्ध गांधार व निषाद स्वर तो कोमल होने चाहिए। ठीक है न ?

उत्तर—लो, तुम गांधार की बात कैसे करते हो? अभी तो धैवत ही कठिनाई उपस्थित करेगा।

प्रश्न—वह कैसे ?

उत्तर—अरे भाई ! तुम्हारी रीति से आनेवाला धैवत ४०५ आंदोलन का तीव्र स्वर आएगा। यह यहाँ किसे चाहिए ? पंडितों को तो श्रेष्ठ आँख-कानवाला पाश्चात्यों को पसंद, निचला ४०० का धैवत ही चाहिए। फिर ?

प्रश्न—यहाँ तो अहोबल की व्याख्या चल रही है ?

उत्तर—अहोबल कहता है—'सपयोर्मध्यदेशे तु धैवतं स्वरमाचरेत्।' कृष्ण-शास्त्री सीधे-सादे विद्वान् थे, उन्होंने इस 'मध्यदेशे' का अर्थ फिर 'मध्यस्थान' करके भूल कर दी। मध्यस्थान के धैवत की आंदोलन-संख्या तीव्र धैवत से भी ऊपर हो जाएगी। निस्संदेह यह अर्थ गलत है।

प्रश्न—आपका यह कथन सत्य प्रतीत होता है। हमें तो ऐसा प्रतीत होता है कि शायद यह धैवत, षड्ज-पंचम-भाव के नियम का उल्लंघन करेगा ?

उत्तर—यह तो स्पष्ट ही है। यह बहुसम्मत बात है कि हमारे कल्याण, बिलावल आदि रागों का तीव्र धैवत ४०५ आंदोलन का है। यह धैवत २१$\frac{१}{३}$ लंबे तार की ध्वनि है, यह सरलता से सिद्ध किया जा सकता है। अब बताओ कि बुद्धि चकरा देनेवाला प्रसंग आया है या नहीं। तुम हमें बड़ी लंबी सड़क से चलने को कहकर 'षड्जपंचमभावेन षड्जे ज्ञेयः स्वरा बुधैः'—बताकर अपना धैवत कायम करते हो, परंतु........

प्रश्न—और यह धैवत जिनका नहीं है, वे क्या कहेंगे ?

उत्तर—यदि उन लोगों का पक्ष बलवान होगा, तो वे शायद यही कहेंगे कि 'यदि ग्रंथकार ने अपना वर्णन संदिग्ध लिख छोड़ा है तो हमारा किया हुआ अर्थ ही बिना बहस के ग्रहण कर लेना चाहिए। हम तो उसकी (ग्रंथकार) भलाई व उसके

लौकिक बचाव के लिए ही यह अर्थ करते हैं। इसमें उसे शंका करने का अधिकार ही नहीं प्राप्त होता। हमें बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ पार करनी हैं, अतः इसमें उसे विघ्न उपस्थित न करना ही श्रेयस्कर है। हम तो स्पष्ट कहते हैं कि हमें ४०० आंदोलन का धैवत चाहिए। यह हमारी सलाह है कि इसे अहोबल को चुपचाप स्वीकार कर लेना चाहिए। लिखते समय कुछ भी लिख जाना उसके लिए सरल रहा होगा, परंतु उसकी कठिनाइयाँ हल करना कितना मुश्किल होगा, यह भी उसे सोच लेना चाहिए था। 'षड्ज-पंचम-भाव लगाकर मेरे शुद्ध स्वर निकाल लो!' कहते हैं न 'उठाई जबान और तलवे से लगादी' ४०५ आंदोलन के धैवत से तीव्र ग, तीव्र नि, तीव्र म, ये स्वर हमें जैसे चाहिए वैसे कौन ला देगा? और जबकि ये स्वर हमें उस प्रकार सुविधा से प्राप्त नहीं होते, तब हम अहोबल का कथन मानेंगे ही क्यों?'

प्रश्न—परंतु इसका न्याय कैसे होगा? थोड़ी देर के लिए पूर्व भाग का तीव्र ऋषभ स्वीकार भी कर लें, तो उसका संवादी तीव्र ध ही आएगा। अब यह कहा जा सकता है कि अहोबल के गांधार, निषाद तीव्र नहीं थे, अतः उसने षड्ज-पंचम-भाव तोड़कर जान-बूझकर तार की लंबाई पर अपने शुद्ध ग व नि स्वर बताए होंगे। इन दोनों स्वरों में संवादित्व है ही। हमें तो उसका यह कार्य ठीक ही ज्ञात होता है।

उत्तर—यह तो ठीक है, परंतु इससे भी मिलान नहीं बैठता।

प्रश्न—किस चीज से मिलान करना है?

उत्तर—अरे भाई, यह देखो कि ४०५ आंदोलन का शुद्ध ध स्वीकार करने पर बिहाग, कल्याण, बिलावल आदि अहोबल के रागों के लिए पूर्ण सुविधा का स्वर हो जाता है, यह प्रत्येक व्यक्ति कह देगा। परंतु शुद्ध सप्तक में इस धैवत की स्थिति पाश्चिमात्य विद्वानों को कैसे समझ में आएगी? इसका विचार करना पड़ेगा कि इस धैवत के Siren में ऊपर लगाए हुए Beats आएँगे?

प्रश्न—यह चिंता अहोबल को क्यों होगी? उसे Siren का क्या पता? वह अपनी स्वर-संगति बजाएगा ही क्यों? और उसको Beats अड़चन देंगे कैसे?

हम तो यह कहेंगे कि हमें Beats आदि न देखकर उसके कथन का सरल अर्थ ही ग्रहण करना उत्तम होगा। अच्छा तो फिर 'मध्यदेशे' इस पद का क्या अर्थ लगाया गया?

उत्तर—बताता हूँ। वह भी एक मजेदार बात है। 'मध्यदेशे' अर्थात् पंचम व तार-षड्ज मध्य फासले में जहाँ अपनी सुविधा की जगह हो वहाँ, परंतु वह जगह हो मध्य के आस-पास ही, इस प्रकार का अर्थ पसंद किया गया।

प्रश्न--यह सुनकर तो हमें हँसी आती है। मध्य भाग के आस-पास तो उलटा ५०५ आंदोलन का ही धैवत आता है।

उत्तर--ऐसी बात है ? तो फिर इस भाग को छोड़ दो। हमारे पंडित शायद कहेंगे कि हमारा इस विषय में कोई आग्रह नहीं है, चाहो तो मानो, परंतु हमें तो हमारा ४०० आंदोलन का धैवत लाकर दो। इसी बात पर हमारी कितनी ही महत्त्वपूर्ण बातें अवलम्बित हैं। यदि यह निर्णय अकेले तुम नहीं कर सकते, तब हमें भी अपनी बुद्धि का उपयोग करना उचित है। एक बार ४०० आंदोलन का धैवत हमारे हाथ पड़ जाए, फिर हम पाश्चात्य पंडितों को तत्काल ही चकित कर देंगे। यह सब मैं उस विद्वान् के लेख पढ़कर उसके तर्क के रूप में बता रहा हूँ।

प्रश्न--परंतु यह ४०० आंदोलन का शुद्ध धैवत कानों को न मालूम कैसा लगे, कौन जाने ?

उत्तर--लगेगा, साधारणत: त्रिशंकु जैसा—यह न तो तीव्र ही है, न कोमल ही। इसमें भी यह सामान्य श्रोताओं को तो जरा तीव्र की ओर झुका हुआ ही दीख पड़ेगा। इतने पर चाहें तो गायक-वादक अपने कल्याण, बिलावल, छायानट, बिहाग में इसे चला सकते हैं। एक श्रुति का फर्क वहाँ कौन जाँचने बैठेगा, और वह क्या उसे मिलेगा भी ?

प्रश्न--परंतु गुरुजी! फिर यह कैसा शास्त्र हुआ ? यह तरीका लोग कैसे पसंद करेंगे ?

उत्तर--तो इसे रहने दो। यदि कोई युक्ति हो, तो तुम्हीं सुझाओ ?

प्रश्न--हमें तो अहोबल का वर्णन ही योग्य दिखाई देता है। यदि आपकी आज्ञा हो, तो हम मुक्त हृदय से अपना सुझाव आपके सामने रखें ?

उत्तर--अवश्य बताओ। यह आज्ञा तो मैं तुम्हें पहले ही दे चुका हूँ।

प्रश्न--हमारे मत से अहोबल का शुद्ध ठाठ, हम जिसे मानते हैं, वही काफी ठाठ है, अर्थात् इसमें रि, ध तीव्र तथा ग, नि स्वर कोमल होंगे।

उत्तर--किस प्रकार ? निराधार कल्पना कोई माननेवाला नहीं, बताओ देखें ?

प्रश्न--आपने जो अहोबल का नियम षड्ज-पंचम-भाव बताया है, उसी आधार से यह सिद्ध होता है।

उत्तर--परंतु 'पूर्वभागे' और 'मध्यदेशे' इन पदों का अर्थ तो तर्कपूर्ण होना चाहिए ?

प्रश्न—यह अर्थ इस प्रकार से ठीक हो जाता है, देखिए—षड्ज व पंचम के बीच के फासले में ही पूर्व भाग व उत्तर भाग करने का अहोबल का कथन है। अर्थात् प्रत्येक ६ इंच का होगा। आगे 'पूर्वभागे' अर्थात् प्रथम ६ इंच के भाग में षड्ज-पंचम-भाव से लाने पर शुद्ध री आएगा, यह उसने कहा ही है। उसका कथन ठीक ही है। सा का प, व प का पुनः प। जो तार ऋषभ है, वह मध्य-सप्तक में चार इंच पर आएग और यह स्थान पूर्व भाग ही होगा न? इस 'री' का संवादी तीव्र 'ध' वह भी 'प तथा सा' के मध्य-देश में ही है।

उत्तर—अर्थात् तुमने इन श्लोकों से इस प्रकार समझा है :—:

'सपयोः पूर्वभागे षड्जपंचमभावमनुल्लंघ्य यथास्यात्तथा रिस्वरो देयः। सपयोर्मध्यदेशेऽपि षड्जपंचमभावमनुल्लंघ्य यथास्यात्तथा। धैवतः स्थाप्यः॥'

इस रीति से बिना किसी अन्य कल्पना के तीव्र रि, ध स्वर हो जाते हैं, एवं 'पूर्वभागे' और 'मध्यदेशे' ये पद भी उत्तम रूप से मिल जाते हैं। यह विचारधारा बड़ी अच्छी दिखाई देती है? परंतु हमारे विद्वानों को यह कैसे पसंद आएगी? उन्हें सुन्दर तीव्र गांधार चाहिए, वह तुम्हारे ४०५ आंदोलन के धैवत से थोड़ा-सा विकृत हो जाता है।

प्रश्न—वह गांधार कैसे और कितना विकृत होगा?

उत्तर—थोड़ासा। अहोबल कहता है 'मेरुधैवतयोर्मध्ये तीव्रगांधारमाचरेत्।' ४०५ का धैवत ग्रहण करने पर मेरु से उसका फासला १४$\frac{२}{३}$ इंच का होता है। इस अंतर का अर्द्धभाग ७$\frac{१}{३}$ इंच का होगा तथा इस स्थान पर उत्पन्न होनेवाला तीव्र ग १$\frac{९}{४३}$ आंदोलन का आएगा। पाश्चिमात्यों को तो ठीक ३०० आंदोलन का 'ग' चाहिए।

प्रश्न—कैसी अद्भुत बात है। ४०० आंदोलन का धैवत ग्रहण करते हुए हम ५ आंदोलन छोड़ने को तैयार हैं, और यहाँ गांधार में एक आंदोलन हमें अड़चन में डाल देगा? एक आंदोलन से वीणा का स्वर कितना बदलेगा? केवल एक आंदोलन के लिए ग्रंथ के सरल अर्थ में परिवर्तन करना कैसे शोभा देगा? ग्रंथकार के षड्ज-पंचम-भाव का नियम एक तरफ क्यों हटाया जाए? और अहोबल को इन आंदोलनों की क्या जानकारी रही होगी?

उत्तर—परंतु फिर पाश्चात्यों को, आंदोलन या तार की लंबाई-जैसा अपने स्वरों का सुन्दर Prograssions हम किस प्रकार दिखा सकेंगे?

प्रश्न—थोड़ी देर के लिए यह मान लें कि हमारा उत्तरदायित्व बिलकुल नहीं है कि पाश्चात्यों के मत से अपना विधान व्यवस्थित किया जाए। तो फिर हमारी की हुई व्याख्या तर्कसंगत होगी या नहीं।

उत्तर—हाँ यदि ऐसा मान लें, तब तो तुम्हारी व्याख्या ही सुविधापूर्ण होगी।

यह मैं स्वीकार करने को तैयार हूँ, कि तुम्हारा उत्पन्न किया हुआ काफी ठाठ अहोबल के रागों में कोई रुकावट नहीं डालेगा। परंतु यह भी सत्य है कि इस ४०५ आंदोलन के धैवत, व तीव्र ग के एक आंदोलन से 'अहोबल' पाश्चात्य दृष्टि से उत्तम गणितज्ञ नहीं माना जा सकेगा।

प्रश्न—तो क्या उसे गणितज्ञ होना ही चाहिए ? क्या पश्चिम में हमारे संगीतज्ञों की ऐसी ख्याति है कि वे सभी गणितज्ञ थे।

उत्तर—यह तो मैंने कहीं पर नहीं पढ़ा। एक साहब तो इसके विपरीत इस प्रकार लिखते हैं :—

"In strong contrast to the persians, the inhabitants of the Great peninsula appear to have sedulously avoided applying Mathematics to their scales; and though the Indian scales are even more complicated and numerous than the Persian they have been handed down from generation to generation for ages purely by aural tradition. Unfortunately this avoidance of Mathematics has caused the subject of Indian scales to be extremly obscure, and the extraordinary highflown imagery which is used in Indian Treatises on Music renders the unravelling of their system the more difficult. The method for arriving at the actual scales used by musicians is to ascertain the exact length of the subdivisions of the strings which are indicated by the positions of the frets upon the lute-like instrument called the Vina, which has been in universal use for many hundreds of years and to test and compare the notes which are produced by sounding the strings when stopped at such points. The frets are supposed to mark the points at which the strings should be stopped with the finger to get the different notes of the scale; but in practice a native player can always modify the pitch by making his finger overlap the fret more or less and thereby regulate the fret to get the interval which tradition taught him to be the right one. In fact the frets on different instruments vary a considerable degree; even the octave is sometimes too low and sometimes too high; but through examining a number of specimens a rude average has been obtained which seems to indicate a system curiously like the modern European system of twelve notes. But it is clear that this can be only a rough approximate scheme upon which more

delicate variations of relative pitch are to be grafted, for the actual system of Indian scales is too complicated to be provided for by a mere arrangement of twelve equal semitones.

As in the case of the Persian and Arabic systems the Indian scale does not come with in the range of intelligible record till it is tolerably mature and complete from octave to octave. In order to get a variety of major and minor tones and semitones the scales were in ancient times divided into twenty-two small intervals called 'Shrutis' which were a little larger than quartertones. A whole tone contained four shrutis, a three quartertone three, and a semitone two. By this system a very fair scale has been obtained in which the fourth and fifth were very nearly true and the sixth high, the Pythagorean. In what order the tones and semitones were arranged seems to be doubtful, and in modern music the system of twenty-two shrutis has disappeared and a system of the most extraordinary complexity has taken its place.

इसके आगे इस लेखक ने दक्षिण-पद्धति के विषय में लिखा है। वह अप्रासंगिक समझकर नहीं सुना रहा हूँ।

प्रश्न——एक प्रश्न का उत्तर जानने की उत्कंठा हुई है। हमारे इस विद्वान् ने अहोबल का शुद्ध धैवत इतने प्रयास से ४०० आंदोलन का निश्चित किया। तो क्या उसने ४०५ आंदोलन के धैवत को बिलकुल निरुपयोगी समझा है ?

उत्तर——यह तुमने बड़ी अच्छी बात पूछ ली, अन्यथा बड़ा अन्याय हो जाता। उसने ४०५ आंदोलन के धैवत को अवश्य संग्रह में रखा है, परंतु उसकी गणना तीव्र धैवत की श्रुतियों में की है।

प्रश्न——कहीं पर इसका उपयोग भी किया ?

उत्तर——यह मैं नहीं कह सकूँगा। क्योंकि इस विद्वान् के राग-संबंधी विचारों की अभी प्रतीक्षा है। मुझे आशा है कि संभवतः इस तीव्र धैवत का उपयोग वह कल्याण, बिहाग, बिलावल आदि रागों में करेगा। परंतु अहोबल ने अपने ग्रंथ में आगे चलकर लिखा है कि मेरे रागों में तीव्र रे, ध कभी प्रयुक्त नहीं होते, मैंने कल्याण आदि रागों में केवल शुद्ध रे, ध का ही प्रयोग किया है।*

---

* मूल मराठी प्रति में लिखा है कि श्लोक-संख्या ४६२-४६६ में अहोबल ने यह बात लिखी है, किंतु 'संगीत-पारिजात' देखने पर इन श्लोकों में वह अर्थ दिखाई नहीं दिया, अतः मैंने श्लोक-संख्या देना उचित नहीं समझा। —अनुवादक

प्रश्न—तब, फिर कठिनाई उपस्थित होगी ?

उत्तर—४०५ आंदोलन का शुद्ध धैवत मान लेने पर सब बातें ठीक हो जाती हैं, परंतु वहाँ भी Siren की रुकावट है। सारांश यह है कि जहाँ-जहाँ अहोबल शुद्ध धैवत की आवश्यकता बताएगा, वहाँ पर यह विद्वान् ४०० आंदोलन के धैवत की व्यवस्था देता रहेगा। फिर चाहे उसके रागों का कुछ भी क्यों न हो ?

प्रश्न—मालूम होता है कि उसके शुद्ध धैवत के कई राग होंगे ?

उत्तर—हैं न ? इनमें कोई-कोई तो बहुत सामान्य व लोकप्रिय भी हैं। परंतु शास्त्र तो शास्त्र ही है। वह किसी की मुरव्वत करनेवाला नहीं। यह विद्वान् कहेगा कि यदि शास्त्र-सिद्ध कोई बात चाहते हो, तो मैं बताऊँ, उस स्वर को अंगीकार करना पड़ेगा और यदि चाहे जैसे कर्कश चीखने की इच्छा हो, तो अपने मत से चलते जाओ। अहोबल के ग्रंथ में कल्याण, बिलावल, विहाग, छायानट, सोरठ, धनाश्री, देवगिरि, कांबोदी, शंकराभरण आदि रागों में शुद्ध धैवत का प्रयोग बताया गया है। इन स्थानों पर मैं खुशी से अपना तीव्र ध स्वर ही समझता हूँ। मैं स्पष्ट रूप से कहूँगा कि ४०० आंदोलन का धैवत अहोबल के सिर थोपने की मेरी कतई इच्छा नहीं है। मैं तो उसका शुद्ध धैवत (जो ४०५ आंदोलन का होता है) ही उपयोग में लेता हूँ। मैं यह भी कह चुका हूँ कि उसके राग उपयोग में लाना मुझे अधिक पसंद है। अहोबल कहता है कि मेरा तीव्र ग, मेरु व शुद्ध ध के मध्य-भाग में स्थित है। यहाँ उसकी गलती केवल १$\frac{१७}{४३}$ आंदोलन की होती है। मैं समझता हूँ कि अहोबल का यह गांधार मेरु और शुद्ध धैवत के मध्य में ही वीणा पर दिखाई देगा ! मैं यह नहीं मानता कि आंदोलन के फर्क से ही परदे के स्थान में दिखाई देने योग्य अंतर हो जाएगा, मैं तो यह भी कहूँगा कि हमारे श्रुति-पंडित भी इतनी गलती कर सकते हैं। परंपरा से प्रचलित गांधार से सभी परिचित हैं और इसी ज्ञान की सहायता से हम तार तथा परदे स्थापित करते हैं। हमारे गायक-वादकों ने किसी जन्म में आंदोलन का नाम भी सुना है ? ३०० आंदोलन का गांधार उत्पन्न करने के लिए ४०० आंदोलन का धैवत आग्रहपूर्वक उलटा-सीधा उत्पन्न करने की प्रवृत्ति अच्छी नहीं कही जा सकती। इस धैवत से अहोबल के कुछ राग व्यर्थ ही विकृत हो जाएँगे और उनका जो कुछ उपयोग आज हम कर रहे हैं, वह भी भविष्य में न हो पाएगा। यह मेरा स्पष्ट अभिमत है, जो मैं तुम्हें पुनः बता रहा हूँ।

प्रश्न—परंतु क्यों गुरुजी ! अहोबल एक बड़ा भारी पंडित हुआ है, इस प्रकार उसकी ख्याति है, फिर भला उसने अपने ऋषभ, धैवत स्वरों में ऐसी संदिग्ध अवस्था क्यों रहने दी ? यह उसकी सरलता कैसी कही जाएगी, जब कि उसने सहस्रों श्लोक लिखे और केवल इन्हीं दो स्वरों को ऐसा डाँवाडोल रहने दिया ? संदिग्ध अवस्था का तो एक यही प्रमाण पर्याप्त है कि अब उसके उन श्लोकों का अर्थ भिन्न-भिन्न रूप में होता है।

उत्तर—इसमें संदेह नहीं कि तुम्हारी शंका मार्मिक है। मैं तुमसे पहले भी कह चुका हूँ कि कहीं-कहीं अहोबल ने अपनी भाषा कुछ शिथिल लिखी है। इतना ही क्यों, उत्तर की ओर प्रवास करते समय मेरी भेंट एक विद्वान् सज्जन से हुई थी, उसने तो अपना स्पष्ट मत मुझे यह बताया कि 'अहोबल ने अपने शुद्ध ऋषभ, धैवत स्वर विशेष रूप से संदिग्ध ही लिख छोड़े हैं।'

प्रश्न—आपने इसका कारण उस सज्जन से नहीं पूछा ?

उत्तर—वह मैंने अवश्य पूछा था, उसने क्या कहा, वह तुम्हें सुनाए देता हूँ। उसने कहा—'अहोबल को दक्षिण-संगीत का साधारण ज्ञान था, यह दिखाई पड़ता है। और उसके लेखों से यही माना जाएगा कि केवल उत्तर का संगीत ही उसने सुना था।'

प्रश्न—क्या आपको उस विद्वान् का यह कथन साहसपूर्ण नहीं जान पड़ता ? कहाँ अहोबल और कहाँ वह ? ऐसा कौनसा सूत्र उसे अहोबल की रचना में प्राप्त हुआ, जिसके आधार से उसने यह कहा कि अहोबल को दक्षिण के संगीत-ग्रंथों का अच्छा बोध नहीं था ? यदि आप उससे स्पष्ट प्रश्न पूछते तो अच्छा होता।

उत्तर—मैंने यह भी पूछा था। इसके उत्तर में उसने अहोबल-लिखित 'पारिजात' के श्लोक ७४ से ७७ मेरे सामने रख दिए, और कहा कि देखिए इस विद्वान् का दक्षिणी स्वरों का ज्ञान।

प्रश्न—उन श्लोकों में क्या कहा गया है ?

उत्तर—मैं तुम्हें वे श्लोक ही सुनाए देता हूँ :—

साधारणोरिस्तीव्रः स्यादिति सूरिविनिश्चयः ।
साधारणांरी गौ स्तस्तीव्रतीव्रतराविति ॥
तथा तीव्रतमो गोऽपि मृदुर्म इति कीर्तितः ।
मश्च तीव्रतमऽप्युक्तो मृदुप इति पंडितैः ॥
साधारणो धस्तीव्रः स्यादिति प्रोक्तं मुनीश्वरैः ।
साधारणः काकलीति तथा कैशिक इत्यपि ॥
तीव्रस्तीव्रतरस्तीव्रतमोऽप्युक्तो मनीषिभिः ।
सकल्पत्वान्मृदुर्निः स इति तीव्रतमो भवेत् ॥

इन श्लोकों को देखकर संभवतः तुम भी यह कहोगे कि इनमें अहोबल ने अपने पारिभाषिक नामों की एकसूत्रता दक्षिण के पारिभाषिक नामों से करने का प्रयत्न किया है, परंतु वह सफल नहीं हो सका ?

प्रश्न——हमें भी यह देखकर आश्चर्य हो रहा है कि दक्षिण के साधारण ग, व कैशिक नि स्वर अहोबल के तीव्र ग व तीव्र नि कैसे हो गए ?

उत्तर——कहने का तात्पर्य यह है कि यदि उस विद्वान् ने अहोबल के विषय में अपना प्रामाणिक मत विरुद्ध व्यक्त किया है, तो हमें उसपर क्रोधित होने की आवश्यकता नहीं है। हम यह भी सुनते हैं कि शार्ङ्गदेव की मूर्च्छनाओं से योग्य व प्रचलित ठाठ उत्पन्न करने में भिन्न-भिन्न विकृत स्वरों का उपयोग किया जाता है, परंतु दक्षिण के एक भी ग्रंथकार ने अपने रागों की शार्ङ्गदेव के रागों से एक-वाक्यता करने का प्रयत्न नहीं किया। इसलिए, हमारे विद्वान् क्या यह नहीं कहते हैं कि दक्षिण के ग्रंथकर्ताओं से ग्राम, मूर्च्छना आदि का स्पष्टीकरण नहीं हुआ ? परंतु वह तो होगा ही। इस विद्वान् ने अहोबल के संबंध में आगे और क्या-क्या कहा, वह भी सुनो :—

अहोबल के 'स्वर-प्रकरण' से पाठकों को यह स्पष्ट दिखाई देगा कि उसने सोमनाथ का ग्रंथ 'रागविबोध' अवश्य देखा होगा। एक बार यदि यह निश्चय हो जाता है कि उसने 'रागविबोध' देखा था, तो फिर अहोबल के शुद्ध रि, ध स्वरों की संदिग्ध अवस्था का कारण थोड़ा-बहुत हमारे ध्यान में आ सकता है। सोमनाथ ने अपने स्वर, वीणा पर परदे कायम करके बताए हैं। उसमें क्या मजेदार बात हो गई है, वह भी देखो। पहले परदे का नाम उसने दक्षिण-पद्धति के अनुसार 'शुद्ध री' ठीक ही दिया। उस परदे को हमारे यहाँ 'कोमल री' का परदा कहेंगे। इससे दक्षिण का 'शुद्ध री' उत्तर का 'कोमल री' यह साम्य अहोबल को सहज ही दिखाई देने योग्य था। उत्तर की ओर 'तीव्र री' को ही शुद्ध 'री' कहने का प्रचार था, यह भी उसे दिखाई दिया होगा। उत्तर की पद्धति का उसे कोई ग्रंथ मिला हो, इसकी कोई संभावना नहीं है। यह सत्य है कि उसने कुछ उत्तर के रागों को 'पारिजात' में स्थान दिया है, परंतु यह कोई भी कह देगा कि वे सुने हुए ही हो सकते हैं। संभवतः सोमनाथ को भी ऐसे ही प्राप्त हुए हों। शुद्ध ऋषभ के स्थान के संबंध में दोनों पद्धतियों की भिन्न-भिन्न मान्यता देखकर अहोबल दुविधा में पड़ गया। स्वराध्याय उसने उत्तर के पारिभाषिक नामों से लिखा, परंतु इसके पश्चात् ग्रंथाधार दक्षिण का था। इसमें शुद्ध 'री' कैसे लिखा जाए ? यदि उत्तर के मत से चिपका रहे, तो ग्रंथाधार नहीं मिलता, और यदि दक्षिण के प्रचार तथा ग्रंथों को आधार मानकर वर्णन करे, तो विसंगति हो जाने का भय उपस्थित होता है। इसी प्रकार 'रागविबोध' के 'शुद्ध धैवत' ने भी अहोबल को उलझन में डाल दिया होगा; क्योंकि सोमनाथ ने शुद्ध धैवत चौथे परदे को माना है, अर्थात् जहाँ तीव्र धैवत की ध्वनि हो। तीसरा परदा सोमनाथ ने बिलकुल फालतू रखा है। यह स्पष्ट ही प्रचार के विरुद्ध था। सोमनाथ की व्यवस्था में कोमल धैवत को स्थान ही नहीं है। इस उलझन को अब कैसे सुलझाया जाए ? अहोबल विद्वान् तो था ही, काल्पनिक जोड़-तोड़ मिलाने में हमारे आज के पंडित ही क्या कम हैं। उसने सुन्दर युक्ति निकाल ली 'सपयोः पूर्वभागे रिः तथा सपयोर्मध्यदेशे धः' ठीक हुआ कि नहीं ? जिसे तीव्र रि, ध, की आवश्तकता होगी, वह 'षड्जपंचम-भाव' युक्तिपूर्वक लगाकर अपना मतलब निकाल

लेगा। जिसे ये स्वर नहीं चाहिए, उसे भी यह भाव कुछ उपयोगी तो होगा ही। दूसरे शब्दों में यही कहा जाएगा कि जिसको जैसी सहूलियत होगी, वैसा श्लोक का अर्थ निकाल लेगा, और फिर श्रेय अहोबल को ही मिलता रहेगा।' उस विद्वान् ने और भी आगे कहा—"अहोबल अपने विकृत स्वरों में 'तीव्र मध्यम' नाम का उपयोग करता है। यह क्यों? इसका कारण भी सोमनाथ ही है। सोमनाथ ने मध्यम की दो विकृतियाँ, तीव्रतम म और मृदु प के नाम से बताई हैं। अहोबल की व्यवस्था में ये दोनों एक ही श्रुति के नाम हुए, क्योंकि यह पंचम की तीसरी श्रुति थी। उसे मृदु प के ठीक पीछे की श्रुति उपयोग में लानी थी। परंतु आधार-ग्रंथ में 'तीव्रतर म' नाम प्राप्त नहीं हुआ। सोमनाथ भूल गया, ऐसा तो वह कह नहीं सकता था। यहाँ उसने फिर युक्ति निकाली। स्वर-स्थान बताते हुए उसने 'तीव्रतम म' नाम का उपयोग किया, परंतु राग-वर्णन में चुपचाप उसे छोड़कर 'तीव्रतर म' अंगीकार कर लिया।" इस विद्वान् के ये विचार मनोरंजक हैं न?

प्रश्न—ये विचार वास्तव में हँसी में टाल देने योग्य तो नहीं हैं। हमें भी थोड़ा-थोड़ा ऐसा ही मालूम होने लगा है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस युक्ति से अहोबल ने सर्वत्र आदर प्राप्त करने का प्रयत्न किया है।

उत्तर—उसके हृदय की वह स्वतः जाने। हम तो केवल तर्क-मात्र कर सकते हैं। उनमें गलत तर्क भी हो सकते हैं। यह अवश्य दिखाई देता है कि उसके श्लोकों का सरल अर्थ ग्रहण करने पर किसी को भी संतोष नहीं होता। कारण मैंने बताया ही है।

प्रश्न—ठीक है, परंतु आप यह कह चुके हैं कि एक पंडित ने यह स्पष्ट रूप से प्रकट किया है कि अहोबल को शुद्ध रि, ध स्वर कायम करना नहीं आया। उस पंडित ने अपना मत भी कुछ बताया है?

उत्तर—हाँ, वह कहता है कि शुद्ध रि, ध स्वरों के आंदोलन क्रमशः २६६$\frac{२}{३}$ व ४०० मानने चाहिए।

प्रश्न—अर्थात् उसने इन दोनों स्वरों को गड़बड़ कर डाला। कल्याण, बिहाग, बिलावल आदि रागों में अहोबल को ये ही शुद्ध स्वर दिए जाएँगे?

उत्तर—यह मैं विश्वासपूर्वक नहीं बता सकूँगा। अभी तक उस विद्वान् ने रागों पर कुछ नहीं लिखा है। शायद वह तीव्र रि, ध स्वरों को मीड़ में ग्रहण करने को बताएगा, या एक प्रकार का Temperament मानकर ग्रहण करने के लिए कहेगा।

प्रश्न—Temperament किसे कहते हैं?

उत्तर—यह एक उद्धरण देखो :—

The object of Temperament literally tuning is to render possible the expression of indefinite number of intervals by means of a limited number of tones without distressing the ear too much by the imperfections of the consonance. The general practice has been from the earliest invention of the key-board of the organ to the present day to make twelve notes in the octave suffice. This number has been in a very few instances increased to 14, 16, 19 and even to 31 and 53 but such instruments have never come into general use.

यूरोप की Temperament की कल्पना अपने ग्रंथकारों के वर्णनों में प्रयुक्त करने में बड़ी दिक्कत होगी। क्योंकि तुमने देखा ही है कि हमारे ग्रंथकारों ने एक ही स्वर के भिन्न-भिन्न नाम दिए हैं। परंतु इनके स्वर-सप्तक को यूरोप के (Tempered) कृत्रिम सप्तक कहना एक विवादग्रस्त विषय होगा। तुम्हें इस उलझन में नहीं पड़ना है। अहोबल ने तीव्र ग, तीव्र नी व तीव्र म स्वर-स्थान धैवत पर अवलंबित होकर निश्चित किए हैं। यदि कोई सुविधा के लिए तीव्र गांधार ३०० आंदोलन का मानना पसंद करे, तो हमारे पास ऐतराज करने के पर्याप्त कारण नहीं हैं। परंतु ग्रंथ के वर्णन से ही यदि कोई उक्त प्रकार का स्वर निकालने का प्रयत्न करे, तो हमें स्वीकार नहीं होगा। हाँ, हम उसकी चतुराई की तारीफ चाहें तो कर सकते हैं।

अस्तु, अब कह सकते हैं कि 'पारिजात' के मुख्य बारह स्वरों का निर्णय हो गया है। हमारे विद्वान् तीव्र ग, व तीव्र नी के आंदोलन क्रमशः ३०० व ४५० स्वीकार करते हैं। ये ही यदि तुम भी स्वीकार कर लो, तो कोई विशेष आपत्तिजनक बात नहीं। ये सब आंदोलन मुख्य स्वरों के हुए। इन स्वरों के मध्यांतर में श्रुतियाँ कायम करने में हमारे विद्वानों ने कमाल ही किया है।

प्रश्न—परंतु स्वरों पर श्रुतियाँ कैसे स्थापित की जाती हैं, यह तो ग्रंथकार बता ही गए हैं न? फिर कमाल की क्या बात रह जाती है? अहोबल ने विकृत स्वरों का वर्णन करते समय स्पष्ट कहा है कि मेरु व शुद्ध ऋषभ के मध्यस्थल के तीन समान भाग कर, दूसरे भाग में कोमल ऋषभ स्थापित किया जाए। उसका कथन यथार्थ है। सा तथा री के बीच में दो भाग या परदे खाली हुए, इनमें दूसरे पर कोमल री व पहले पर पूर्व री स्वर निश्चित करने के लिए वह कहता है। शुद्ध री, तीसरी श्रुति और दो श्रुतियाँ पिछली, यह स्पष्ट समझ में आ जाता है।

उत्तर—मैं भी ऐसा ही सरल अर्थ उन श्लोकों का लगाता हूँ। और मुझे तो यह भी समझ पड़ता है कि शार्ङ्गदेव व कल्लिनाथ भी श्रुति-स्थान इसी रीति से निश्चित करते होंगे। व्यंकटमखी ने तो मेरा अनुमान और दृढ़ कर दिया, क्योंकि वह कहता है :—

मेरूपकंठगं शुद्धर्षभक्षेत्रांतरं त्रिधा।
विभज्यर्षभपर्वं तद् दृश्यमानं विनान्तरे॥

पर्वद्वयनिवेशे स्युस्तिस्रोऽपि श्रुतयः स्फुटाः ।
शुद्धर्षभाह्वयशुद्धगांधारक्षेत्रकं द्विधा ॥
विभज्याथ यथावस्थं पर्वं गांधारभासकम् ।
व्यपेक्ष्य मध्ये पर्वैकं यदा परिनिवेश्यते ॥
गांधारस्य तदानीं स्यात् श्रुतिद्वयमतिस्फुटम् ।
मध्यमस्य स्वरस्योक्ताश्चतस्रः श्रुतयः स्फुटाः ।
तत्र साधारणे स्पष्टा गांधारे श्रुतिरेकिका ॥
अंतराख्यातगांधारक्षेत्रं द्वेधा विभज्य तु ।
एकस्य पर्वणो मध्ये तयोर्यदि निवेशनम् ॥
जायतेंऽतरगांधारे श्रुतिद्वयमतिस्फुटम् ।
मध्यमे श्रुतिरेकेति स्पष्टं श्रुतिचतुष्टयम् ॥

अब आगे के श्लोक नहीं पढ़ रहा हूँ। मैंने इनका सरल अर्थ ही किया है, परंतु अब नई-नई पहेलियाँ देखकर मैं भी भ्रम में पड़ गया हूँ।

प्रश्न—नई पहेलियाँ किस-किस प्रकार की रची गई हैं ?

उत्तर—अब वही बतानेवाला हूँ। परंतु यहाँ एक बात कह देना अच्छा होगा। जिस विद्वान् ने इस समय 'पारिजात' को हाथ में लिया है, उसने अपनी श्रुतियाँ व 'पारिजात' के रागों पर अभी तक कुछ भी प्रकाशित नहीं कराया है। हम केवल अहोबल व सोमनाथ के आधार पर स्थापित श्रुतियों के संबंध में ही कुछ कह सकते हैं। श्रुतियों की ओर बढ़ने के पूर्व एक छोटी-सी बात और बता दूँ, एक विद्वान् ने ऐसा भी सुझाया है कि Ganot जैसे प्रसिद्ध विद्वान् ने इक्कीस श्रुतियाँ तो तुम्हारे द्वार पर लाकर रख दी हैं, तो उनको हम दबाएँ ही क्यों ? पाश्चात्य विद्वानों का मुँह तो बंद हो जाएगा। अब एक श्रुति तुम्हें बाईसवीं और चाहिए, वह किसी प्रकार पंचम के खाने में धकेल दी जाए।

प्रश्न—परंतु इस मत का आधार ?

उत्तर—प्रमाण का भार शायद तुम्हीं पर छोड़ दिया जाएगा। वह कहेगा कि हमारी श्रुति को तुम अयोग्य ठहराओ। ग्रंथ-विवरण कहाँ पर अड़चन उपस्थित करेगा, यह भी तुम्हीं दिखाओ।

प्रश्न—यह सिद्धांत आपको कैसा मालूम होता है ?

उत्तर—मुझे तो यह पसंद नहीं है, क्योंकि वे श्रुतियाँ ग्रंथकारों को ही सिद्ध होंगी, ऐसा मुझे ज्ञात नहीं होता। इस मत में तीव्र गांधार वही ३०० आंदोलन का तीव्र गांधार जीवभूत है। यह सभी स्वीकार करेंगे कि 'तीव्र गांधार ३०० आंदोलन का स्वर है' यह ज्ञान हमें पाश्चात्य पंडितों के कायदे से ही हुआ

है। यदि यह हमें प्राप्त न होता, तो तीव्र धैवत से निकलनेवाला गांधार हमारे कानों को इतना कष्टदायक नहीं होता। अभी भी हमारे सहस्रों प्रसिद्ध गायक अज्ञान के अंधकार में भटकते होंगे। अस्तु, अब हमारे पंडितों द्वारा सभी को लाभ देने के हेतु शोध की हुई श्रुतियों का वर्णन सुनोगे न ?

प्रश्न––यह विवरण किस ग्रंथ का मानकर समझना होगा ? आपने कहा था कि प्रथम अहोबल व सोमनाथ की सहायता से श्रुति-स्थापन-कार्य किया गया था, फिर आगे बढ़ने पर कुछ कठिनाइयाँ उपस्थित हुईं, अतः उसका संबंध शार्ङ्गदेव से जोड़ दिया गया। इसलिए हम पूछ रहे हैं ?

उत्तर––मैं समझता हूँ कि इस समय इस बात को विचाराधीन रहने दें। मेरा खयाल तो यह है कि यह व्याख्या उचित सुधार के साथ अब शार्ङ्गदेव की मान ली गई है, फिर भी इसपर हम आगे विचार करेंगे।

प्रश्न––ठीक है, अब हमें यह श्रुति-स्थापना अच्छी तरह समझा दीजिए ?

उत्तर––अब मैं वही कहता हूँ। मैं जो व्याख्या सुना रहा हूँ, उसे तुम्हें बड़ी सावधानी के साथ समझना होगा। इसके नवीन संशोधन और साधारण नियम यदि एक बार तुम्हारे ध्यान में जम गए, तो फिर तुम स्वयं सपाटे से आगे बढ़ने लगोगे, परंतु आरंभ में तनिक धीमी गति से चलना होगा। अब इन महत्त्वपूर्ण सिद्धांतों की ओर अच्छी तरह ध्यान दो।

१. 'श्रुति' को एक सूक्ष्म स्वरांतर समझना चाहिए। इसके भाग नहीं होते तथा इसका कोई नियमित माप नहीं होता।

प्रश्न––यह व्याख्या तो कुछ विचित्र-सी है ?

उत्तर––सो तो है ही, परंतु इसके सिवाय दूसरा इलाज ही नहीं है। अरे भाई ? श्रुति का संबंध कान से है न ? यह ईश्वर-प्रदत्त यंत्र है, अतः इसके नियम तो वही जान सकता है, कहीं पर यदि कान एक आंदोलन अथवा उसके खंड भाग को पकड़ सकते हैं, तो कहीं पर दस-बारह आंदोलन की ओर भी ध्यान नहीं जाता। ऐसा कैसे ? थोड़ा-सा ऊपर हो चुका है न ? अहोबल की व्याख्या से आनेवाले गांधार के १$\frac{१}{४}\frac{७}{३}$ आंदोलन कानों को कितने असह्य हुए, ठीक है न ? कानों के उस कष्ट को मिटाने के हेतु ही धैवत के पाँच आंदोलन कम कर, कर्णमधुर शुद्धधैवत उत्पन्न किया गया। नहीं तो उक्त १$\frac{१}{४}\frac{७}{३}$ आंदोलन, गायन में भयंकर अनर्थ कर देता; परंतु वह छोड़ दिया गया। श्रुतियों का यह क्रम कुछ नवीन है, इसे समझते समय आरंभ में यह बोझिल मालूम हो, तो आश्चर्य नहीं, परंतु तुम्हें सामयिक पत्रों में चलनेवाली चर्चा को समझना है। अतः कैसे भी इसको समझ लेना चाहिए। श्रुतियों की खोज का कार्य कुछ सरल नहीं है। परंतु यह जितना कठिन है, उतनी ही अधिक शोध करनेवाले की कीर्ति है। आगे बढ़ने के पूर्व मैं

एक बात बता देना चाहता हूँ कि यहाँ पर अभी मैं अपना स्वत: का श्रुति-सिद्धान्त नहीं कह रहा हूँ। हमारे विद्वानों ने इस विषय पर जो-जो बातें प्रकाशित की हैं, वे बातें और उन पर होनेवाले अपने स्पष्ट तर्क ही तुम्हें सुना रहा हूँ। मुझे तो अपने प्राचीन ग्रंथकार भी अपने-जैसे ही बिलकुल सीधे व भोले व्यक्ति जान पड़े हैं। आजकल हमारे समाज में श्रुतियों का बड़ा तमाशा हो रहा है। श्रुतियों की इतनी चीर-फाड़ संस्कृत-ग्रंथकार करते ही नहीं थे। उन्हें तो रागों का महत्त्व अधिक जान पड़ता था। वे यही जानते थे कि उत्तम राग-व्यवस्था के लिए बारह स्वर ही बहुत महत्त्वपूर्ण व सहूलियत की दृष्टि से पर्याप्त होते हैं। प्रत्येक श्रुति से राग बदलना उन्हें सूझा ही नहीं। अब तो युग ही दूसरा है। सभी स्वर बिलावल के, परंतु ऋषभ शुद्ध हुआ कि राग दूसरा। तीव्रतर ग ग्रहण किया कि राग दूसरा। एक बार शुद्ध ध तथा दूसरी बार तीव्र ध लिया, तो रागमेल ही दूसरा हो गया। इन सबको व्यवस्थित करना तो बहुत बोझिल हो जाता। हमारे पंडितों की इस समय जो समझ है, वह तो अजीब है ही, परंतु गायकों को भी ऐसी दीख पड़ेगी। यदि यह कहें कि मूर्च्छना से ठाठ बदलने के हेतु श्रुतियाँ अपेक्षित हैं, तो सोमनाथ व अहोबल ने तो ठाठ बदलने में श्रुतियों की कोई सहायता नहीं ली और इन्हीं की युक्तियों से श्रुति-व्यवस्था की जा रही है। अब तो जो भी प्रचलित है, उसे समझ लेना व अपनी धारणा तटस्थ रखना ही उचित है। जो भी हो, मैं यह नहीं मानता कि श्रुति-पंडित यह कहेंगे कि राग-पंडितों की कठिनाइयों की चिंता हम क्यों करें। उनके द्वारा स्थापित श्रुतियों पर वे रागों को भी व्यवस्थित कर देंगे, ऐसे चिह्न दिखाई पड़ते हैं। हम यह आशा रखते हैं कि वे इस सिद्धांत को सदैव स्मरण रखेंगे—श्रुतियाँ रागों के लिए हैं, राग श्रुतियों के लिए नहीं।' अच्छा, अब दूसरा महत्त्वपूर्ण नियम देखो :—

२. मुख्य १२ स्वरस्थान हमारे संगीत के 'द्वादश-प्राण' बनकर बैठे हैं। इन्हें अस्वीकृत करने पर हमारे यहाँ और पश्चिम की ओर हमारी स्थिति हास्यास्पद हो जाएगी, अत: इन्हें सुरक्षित रखना है। इन स्थानों को आधार-स्तंभ मानकर इन्हीं के आगे-पीछे श्रुतियाँ स्थापित करनी हैं। तीसरी बात नाजुक है, परंतु उसे भी ध्यान में रख लो।

३. पाश्चिमात्य ग्रंथकारों की खोज व उनके सिद्धांत जैसे—Majortone Minortone आदि के प्रमाण जहाँ-जहाँ पर जितने लग सकें, उतने अपनी पद्धति के लिए शोभनीय होंगे।

४. ग्रंथकर्ताओं के स्वरों की बताई हुई श्रुति-संख्या को सँभालकर निश्चित करना पड़ेगा। आंदोलन का तो उन्हें बोध नहीं था, अत: उसमें हमें यथेष्ट स्वतंत्रता रहेगी।

५. एक श्रुति, दो श्रुति, तीन श्रुति व चार श्रुति का साँचा या अंतर हमारे पास तैयार रहना चाहिए। इनका योग्य स्थलों पर उचित रूप में उपयोग करना पड़ेगा।

प्रश्न—यह नहीं समझ सके।

उत्तर—यह कुछ कठिन ही है। देखो बताता हूँ 'ग-म'—यह सूक्ष्मांतर है। इसका परिमाण पश्चिम की ओर $\frac{३२०}{१} \times \frac{१}{३००} = \frac{१६}{१५}$ माना जाता है, इसलिए यह दो श्रुतियों का अंतर अथवा 'कोमल' स्वरांतर समझा जाता है। 'रि-ग' इस फासले का परिमाण $\frac{३००}{२७०} = \frac{१०}{९}$ है, इसलिए तीन श्रुति का अंतरदर्शक सूत्र हुआ। चार श्रुति का मापक $\frac{२७०}{२४०} = \frac{९}{८}$ प्रसिद्ध ही है। एक श्रुति का अंतरदर्शक सूत्र $\frac{३००}{२८८} = \frac{२५}{२४}$ होगा, यह एक श्रुति का अंतर कुछ विचित्र है। प्रसंगानुसार इसका मूल्य $\frac{४०५}{४००}$—$\frac{८१}{८०}$ या और भी भिन्न प्रकार का हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। किस सूत्र को कहाँ स्थान मिलेगा, इसके न्यायकर्ता कान ही कहे जाएँगे। संक्षेप में यही कहें कि एक श्रुति के मध्यांतर का निश्चित प्रमाण नहीं है। अब इस व्याख्या के अनुसार षड्ज से आरंभ कर श्रुतियाँ स्थापित कर लो। षड्ज का आंदोलन सुविधा के लिए २४० मान लेना उचित है।

प्रश्न—तो फिर षड्ज के आगे पहली श्रुति $\frac{२४०}{१} \times \frac{२५}{२४} = २५०$ आंदोलन की होगी, यही न ?

उत्तर—ऐसा ही प्रथम व्यवस्था में पंडितों ने भी कहा था, परंतु दूसरी आवृत्ति में आंदोलन-संख्या २५२ प्रसिद्ध हो गई है। तो भी वहाँ पर एक बात ध्यान में रखनी आवश्यक है कि पहली व्यवस्था अहोबल व सोमनाथ के आधार पर रचित थी और अब दूसरी बार मात्र एक शार्ङ्गदेव का आधिपत्य है। संभवतः इस कारण ही यह अंतर आ गया हो।

प्रश्न—परंतु इससे क्या यह माना जाए कि अब कान भिन्न प्रकार की ध्वनि पहचानने लगे हैं अथवा यह नई ध्वनि पहले से अधिक मधुर है ? इस श्रुति का प्रमाण $\frac{२५२}{२४०} = \frac{२१}{२०}$ होगा। किसी श्लोक के प्रयोग में पहले गलती हो गई होगी ?

उत्तर—यह मैं कैसे बता सकता हूँ। इसका कारण प्रकाशित नहीं हुआ। इससे तुम्हारा क्या बिगड़ गया ? आगे बढ़ो !

प्रश्न—आगे $\frac{२५२}{१} \times \frac{२५}{२४}$

उत्तर—अरे, अरे यह क्या करते हो ? दो श्रुतियों के अंतर का सूत्र किस लिए निश्चित किया गया है ? ऐसा करने से तुम्हारा आधार-स्तंभ ही बिगड़ जाएगा न ? तुम तो 'मनाक् उच्चध्वनिः' के प्रमाण से शार्ङ्गदेव-जैसी श्रुति-स्थापना करने लगे।

प्रश्न—ठीक है, यह तो हम भूल ही गए थे। तो फिर दूसरी श्रुति $\frac{२४०}{१} \times \frac{१६}{१५} = २५६$ होगी। यह 'कोमल री' हुई न ?

उत्तर—निस्संदेह ! आगे चलो।

प्रश्न—परंतु अहोबल ऋषभ क्षेत्र के तीन भाग करके दूसरे पर 'कोमल री' स्थापित करता है, वह ?

उत्तर—वह यदि उस प्रकार का भ्रष्ट ऋषभ चाहता हो, तो उसे लेने दो। परंतु फिर वह तो शार्ङ्गदेव को भी छोड़ देगा।

प्रश्न—क्या अहोबल ने कहीं पर अपनी समस्त बाईस श्रुतियों का स्वतंत्र स्पष्टीकरण नहीं किया ?

उत्तर—यह तुम खूब पूछते हो ! अरे भाई, जिसने अपने शुद्ध री, ध स्वरों में ही लुका-छिपी कर डाली, वह तुम्हारे लिए श्रुतियाँ रचकर देगा ?

प्रश्न—तो फिर, यदि हमसे किसी ने यह स्पष्ट प्रश्न किया कि तुम अपनी श्रुतियाँ किस ग्रंथकार के आधार पर स्थापित कर रहे हो, तो हम क्या उत्तर देंगे ?

उत्तर—उत्तम बात तो यह है कि तुम खुद उत्तर देने की उलझन में मत पड़ो, क्योंकि अहोबल का विकृत विधान तो मैं तुम्हें सुना ही चुका हूँ। इसी प्रकार की कल्पना व्यंकटमखी की थी। दक्षिण के अन्य पंडितों ने तो इस विषय पर मौन धारण कर लिया है। किसी-किसी ने शार्ङ्गदेव की 'मनाक् उच्चध्वनिः' की कल्पना उद्धृत कर डाली है, परंतु यह संतोषजनक नहीं, यह कोई भी कह सकता है। कल्लिनाथ ने भी मेरी समझ से स्वरांतरों के शास्त्रोक्त संख्यानुसार समान भाग कर श्रुतियाँ मान ली हैं। वाद्याध्याय के श्लोक ७-८ की टीका देखने पर पाठकों को यह तथ्य अवश्य दिखाई पड़ेगा।

प्रश्न—एक प्रश्न और स्पष्ट पूछना चाहते हैं, अहोबल ने अपने स्वर, तार की लंबाई से बताए हैं, अतः उनका स्थान यथेष्ट रूप से निर्विवाद हो गया है। शार्ङ्गदेव ने इस प्रकार कुछ भी नहीं किया, इसलिए उसका शुद्ध स्वर-सप्तक अमुक ही है, यह उसके किस श्लोक के आधार पर निश्चित किया जा सकता है ?

'चतुश्चतुश्चतुश्चैव' इत्यादि रचना तो सभी ग्रंथों की है और ऐसा होने पर भी सभी के स्वर-सप्तक एकसे नहीं हैं।

उत्तर—तुम्हारे प्रश्न का मतलब मैं समझ गया। प्रचार को देखते हुए शार्ङ्गदेव का सप्तक समझा जाए, इतना कह देने से तुम्हारा समाधान नहीं होगा। मैं समझता हूँ कि अभी तक किसी ने शार्ङ्गदेव के स्वर-वर्णन को ग्रहण कर स्वर-सप्तक निश्चित करके नहीं दिखाया है। यह मैं इसके पूर्व तुम्हें बता चुका हूँ कि इस समय उसके सप्तक को 'काफी' कहने व मानने की रूढ़ि क्यों व कैसी हो गई है ? फिर भी यह सत्य है कि अब 'रत्नाकर' के 'सारणाचतुष्टय' का उपयोग होने लगा है।

प्रश्न—वह कैसे ?

उत्तर—यह भी एक मजेदार बात है। शार्ङ्गदेव ने बड़ी शान से 'मनागुच्च ध्वनि' के माप से स्वतः को समाधानकारक बाईस श्रुतियाँ सर्वप्रथम कायम कीं।

आगे उसने शरीर की तीन खड़ी नाड़ियाँ व नाद उत्पन्न करने-योग्य बाईस आड़ी नाड़ियों का वर्णन किया। उनसे इन बाईस नादों का होना बताया। इन पर फिर ४, ३, २ आदि रीति से स्वरों की स्थापना की। यह सब करने के उपरांत पाठकों को दो समान वीणाएँ लेकर आगे के इस प्रयोग को कर देखने का वह आग्रह करता है :—

स्वोपांत्यतंत्रीमानेयास्तस्यां सप्तस्वरा बुधैः ।
ध्रुववीणास्वरेभ्योऽस्यां चलायां ते स्वरास्तदा ॥
एकश्रुत्यपकृष्टाः स्युरेवमन्यापि सारणा ।
श्रुतिद्वयलयादस्यां चलवीणागतौ गनी ॥
ध्रुववीणोपगतयो रिधयोर्विशतः क्रमात् ।
तृतीयस्यां सारणायां विशतः सपयो रिधौ ॥
निगमेषु चतुर्थ्यां तु विशंति समपाः क्रमात् ।
श्रुतिद्वाविंशतावेवं सारणानां चतुष्टयम् ॥
ध्रुवाश्रुतिषु लीनायामियत्ता ज्ञायते स्फुटम् ।
अतःपरं तु रक्तिघ्नं न कार्यमपकर्षणम् ॥

शार्ङ्गदेव के स्वर-श्रुति का चार्ट हाथ में लेकर इन श्लोकों को समझा जा सकता है। अचलवीणा व चलवीणा, इस प्रकार की दोनों वीणाएँ प्रथम श्रुति-स्वर तैयार करने व बाद में सारणा करने में प्रयुक्त होती हैं।

प्रश्न—परंतु मूल प्रश्न तो अभी वैसा ही रह गया। इन श्लोकों की सहायता से श्रुति या स्वर कैसे स्थापित किए जाएँगे? यदि किसी ने कहा कि षड्ज से अगला स्वर ऋषभ इन श्लोकों से सिद्ध करो, तो उसे क्या उत्तर देंगे? बाईस नाड़ियाँ, बाईस श्रुतियाँ, उनके स्थान, स्वर-स्थान, सभी अंगीकृत समझकर चलने पर फिर इन श्लोकों की किसे आवश्यकता है? यह भी नहीं दिखाई देता कि ग्रंथकार ने इन श्लोकों में सर्वप्रथम श्रुति-स्वर-स्थान निश्चित किए हैं। केवल यही दिखाने के लिए श्रुतियों की परिमित संख्या बाईस है, यह प्रयत्न किया है। 'चतुश्चतुश्चतुश्चैव' इत्यादि रचना जिन-जिन ग्रंथकर्ताओं की रही है, उन सभी की पद्धति के लिए ये श्लोक लागू होंगे, ठीक है न? क्या दक्षिण के ग्रंथकार ४, ३, २, ४, ४, ३, २ का क्रम स्वीकार नहीं करते? यह 'सारणा' उनके ही काम आएगी। क्या अपने पास की श्रुतियाँ लगाकर शार्ङ्गदेव की 'सारणा' प्रयुक्त करके हमारा इच्छित ठाठ निकालकर दिखाया जा सकता है? यह कैसा पांडित्य है, गुरुजी?

उत्तर—तुम्हारा यह कथन उचित है। 'सारणा' का उपयोग वास्तव में तुम्हारे कथनानुसार ही होने लगा है। इसके प्रयोग से आजकल काफी ठाठ से

बिलावल ठाठ व बिलावल से काफी ठाठ निकलने लगे हैं। यह अनेकों का मत है कि सारणा का उद्देश्य सर्वप्रथम ठाठ-स्थापन बिलकुल प्रतीत नहीं होता। 'पाँचवीं सारणा क्यों नहीं' इसके उत्तर में कल्लिनाथ ने क्या कहा है, उसे भी तुम देखो। वहाँ उसने 'स्वर-स्तावच्छ्रुत्यनुरणनात्मक:' यह स्वरों की व्याख्या की है। स्वर-स्थानों की अचूक और अव्यर्थ सिद्धि किस प्रकार स्पष्ट कर दी है, यह भी देखो—'ते च षड्जादयो लोके शास्त्रे च चतुर्थ्यादिश्रुतिषु मयूरादिसंवादित्वेनाभिव्यक्ता: सिद्धा:' उस काल के लोग यदि लिखने में कुशल थे, तो उनके ग्रंथ पढ़कर ठीक-ठीक समझनेवाले भी उतने ही प्रवीण रहे होंगे, यह अनुमान सहज में किया जा सकता है। हमारे विद्वानों ने आरंभ में अहोबल व सोमनाथ को हाथ में लेकर अपना कार्य चलाया था। परंतु अधिक अनुभव होने पर जब इनकी मदद असंतोषप्रद सिद्ध हुई, तब इन्हें धीरे-से एक ओर का रास्ता बताकर अनुरणन, सारणा-जैसे—निर्जीव साधनों को अंगीकार करने को विवश होना पड़ा। इस प्रकार का तर्क भी कोई कर सकता है। वास्तविक स्थिति क्या है, यह ईश्वर जाने। हमें न तो स्वत: के मत-प्रकाशन का गर्व है और न हमने संस्कृत-ग्रंथों से कोई नवीन खोज कर दिखाने का दावा किया है। यह हमारे लिए सौभाग्य की बात कहनी चाहिए, अन्यथा हमारी भी खिल्ली उड़ाई जाती। अच्छा, अब तुम अपनी श्रुतियाँ आगे चलाओ।

प्रश्न—हाँ, $\frac{२४०}{१} \times \frac{१६}{१५} = २५६$ यह अब शार्ङ्गदेव की दूसरी श्रुति हुई। इसमें $\frac{२५}{२४}$ का गुणन किया तो $२६६\frac{२}{३}$ यह तीसरी श्रुति हो जाएगी। अथवा षड्ज से एकदम तीन श्रुति का मापक लगाने पर $\frac{२४०}{१} \times \frac{१०}{९} = \frac{८००}{३} = २६६\frac{२}{३}$ लाएँ ? 'End justifies the means' ऐसी ही रीति से मान लें, तब तो ये दोनों तरीके चल सकते हैं ?

उत्तर—जो तुम्हें पसंद आए वैसा करो। शुद्ध री $२६६\frac{२}{३}$ की होनी आवश्यक है क्योंकि तीव्र री २७० की निश्चित ही है। तीव्र री निकालने के लिए, तीसरी श्रुति में $\frac{२५}{२४}$ का गुणन लगेगा, क्योंकि यह बड़ा फासला है।

प्रश्न—समझ गए, $\frac{२४०}{१} \times \frac{९}{८} = २७०$ ऐसा ही न ? परंतु ठहरिए ! शार्ङ्गदेव के पारिभाषिक नामों में व चार्ट में चार श्रुति का तीव्र ऋषभ कहीं नहीं दिखाई पड़ता ? फिर यह क्या होगा ? अहोबल की तीसरी श्रुति २७० आंदोलन की ही हुई। सोमनाथ की तीसरी श्रुति तो २५६ आंदोलन का कोमल 'री' ही हुआ।

उत्तर—यदि तुम कदम-कदम पर इस प्रकार इधर-उधर देखने लगोगे, तो व्यर्थ की उलझनों में पड़ जाओगे। तुम्हें तो शार्ङ्गदेव के मत की ओर ही ध्यान देना है। वहाँ भी यदि सभी संदिग्ध हों, तो प्रमाण का बोझ 'नेति-नेति' कहनेवालों पर रहेगा।

प्रश्न--अच्छी बात है, २७०/१ × २५/२४ = २८१ १/४ यह पाँचवीं श्रुति होगी, यही न ?

उत्तर--चल जाएगी। परंतु यहाँ एक बात और सुना देता हूँ। शुद्ध ग व शुद्ध म, इनकी चार श्रुति हैं—अत: मापक ९/८ है। इसलिए मध्यम से उलटी तरफ गुणा कर शुद्ध ग निकालो, तो ३२०/१ × ८/९ = २८४ ४/९ होगा। इसे शुद्ध गांधार मानकर रख लो! यदि किसी ने इसे ही माँग लिया तो ?

प्रश्न--ठीक है, परंतु इनमें शार्ङ्गदेव का कौनसा रहा ?

उत्तर--यह अब कौन बता सकेगा ? अभी तो तुम २८४ ४/९ आंदोलन को प्रमुख मानकर आगे चलो।

प्रश्न--और २८१ १/४ आंदोलन के गांधार का कहाँ पर व कैसे उपयोग होगा ?

उत्तर--मैं इसके उत्तर में ऐसा कह दूँ कि इसे बड़े गुणी लोग कभी-कभी प्रयोग में लाते हैं, तो विवाद मिट गया। परंतु मैं ऐसे प्रश्नों के उत्तर नहीं देनेवाला हूँ कि यह तेइसवीं श्रुति है क्या, इसकी नाड़ी कहाँ है, इसे शार्ङ्गदेव मानेगा क्या, आदि। कान पहचान लें व गायक-वादक हाँ कर दें, तो श्रुति समझ लेनी है।

प्रश्न--ठीक है, गुरुजी ! छठी श्रुति अर्थात् साधारण गांधार यानी कोमल ग अत: Land mark आ गया। यह २७०/१ × १६/१५ = २८८ है न ? परंतु षड्ज-पचम-भाव से तीव्र री २७० का लाकर, उसे १६/१५ से गुणन करने पर भी २८८ का माप मिलता है।

उत्तर--यहाँ तुम अहोबल का नियम, शार्ङ्गदेव से लगा रहे हो। शार्ङ्गदेव को तीव्र री की क्या आवश्यकता है ? उसका श्रुति-स्वर-चार्ट देखो। शुद्ध री व शुद्ध ग के बीच में कोई स्वर ही नहीं है। उसे पंडितों ने २६६ २/३ का शुद्ध ऋषभ दे ही रखा है न ?

प्रश्न--समझ गए, समझ गए। आगे चलें ! २८८ को २५/२४ से गुणन किया कि ३०० का ग—

उत्तर--यह क्या ? ३०० का ग कैसा उत्पन्न कर रहे हो ? यह तो 'स्वयंभू स्वर' है ? और यदि नहीं मानते, तो २५/२४ का प्रमाण ही तुम कैसे ला सके ? इसके न मानने पर क्या इतनी सारी इमारत नहीं धँसक जाएगी ? 'मध्यदेश पुराण' मालूम होता है, सभी भूल गए।

प्रश्न--ठीक है ! यह ३०० का ग, स्वत:सिद्ध मानकर स्वीकार करना पड़ेगा। अब मध्यम की दूसरी श्रुति, तो फिर आगे ३०० × २५/२४ = ३१२ १/२ ऐसा करें, या २८८ × १६/१५ = ३०७ १/५ इस तरह करना होगा ?

उत्तर—पंडितों को इसमें कोई बाधा नहीं, वे कहेंगे वैसे ही स्वर कोई गाएगा। कौन गाता है, कब गाता है, कौन पहचान करता है, आदि उलझनों में तो पंडित पड़ते ही नहीं। 'भिन्नरुचिर्हि लोक:' के सिद्धांत से वे सहमत हैं। हाँ, यदि तुम्हें चाहिए तो वे ३०३ ३/४ आंदोलन के गांधार की सिफारिश कर देंगे।

प्रश्न—क्यों भला?

उत्तर—इससे ४०५ आंदोलन के धैवत पर आनेवाला षड्ज-पंचम-भाव सुरक्षित होने-जैसी स्थिति में रहता है तथा पाश्चात्यों के पास का Pythagorian Third ग्रहण करने-जैसी स्थिति हो जाती है। 'एक पंथ दो काज' की कहावत प्रसिद्ध ही है। अच्छा, अब तुम मध्यम तक पहुँच चुके। मध्यम की शुद्ध की हुई श्रुतियाँ अब २८८, ३००, ३०३ ३/४, ३२० हुईं। कोई यदि मध्य में ३०७ १/२, ३१५ भी ले आए, तो तुम्हें उदार हृदय रखते हुए उससे झगड़ना न चाहिए।

प्रश्न—और इस जोड़-तोड़ को गायक-वादकों का अनुमोदन प्राप्त है?

उत्तर—इसे प्रकाशित कराने का साहस भला कैसे होगा? प्रसंग आया, तो पंडित कह देंगे कि तुम अपना Monochord व गायक ले आओ और श्रुति स्थापित करो। एक बड़े गणितज्ञ को न्यायकर्ता बना लो, न्यायकर्ता जिसके अंकों को Progressions मध्य का बता दे, उसकी श्रुतियाँ सच्ची हैं और वे फिर शार्ङ्गदेव की ही ठहरेंगी।

प्रश्न—यह न्याय-शास्त्र कुछ जबरदस्त तो है ही, पर समझने में भी कठिन ही है।

उत्तर—होगा! तुम तो पंचम की श्रुतियों की ओर बढ़ो। इस फासले की भी थोड़ी-सी दुरुस्ती हो गई है। मैं समझता हूँ कि पंचम की श्रुतियों के विषय में स्वत: कह जाऊँ, यही अच्छा होगा। कुछ दिनों पूर्व पंचम की श्रुति ३२०, ३३७ १/२, ३४५ ३/५, ३६० के आंदोलन की प्रसिद्ध थीं। यह बात तब की है, जबकि अहोबल व सोमनाथ की सहायता से श्रुतियाँ निश्चित की गई थीं। आगे चलकर इन ग्रंथकारों की सहायता निरुपयोगी सिद्ध हुई व श्रुतियों का पुन: संशोधन करना आवश्यक हुआ। अब ये श्रुतियाँ ३२४, ३३७ १/२, ३४१ १/३, २६० आंदोलन की निश्चित की गई हैं। अब हम आशा कर सकते हैं कि इनमें अब और कोई संशोधन नहीं होगा।

प्रश्न—हमें तो इतनी ही मजेदार बात दिखाई देती है कि गायक-वादकों ने पुराना क्रम भी पसंद कर लिया और नवीन क्रम भी पसंद कर लिया है।

उत्तर—इसमें मैं क्या कर सकता हूँ? 'भूल-चूक लेनी देनी' की व्यावहारिकता हमारे यहाँ प्राचीन ही है। परंतु इस प्रकार समझो कि क्या श्रुति-स्थापना का कार्य एक व्यक्ति का है? यह प्रत्येक व्यक्ति कह सकता है कि इस कार्य में अनेकों व्यक्तियों

का हाथ होना चाहिए। गायकों की भूलों का सुधार गणितज्ञ करेंगे व गणितज्ञ की भूलों को गायक सुधारेंगे और इन दोनों की भूलों का सुधार श्लोक लगानेवाले करेंगे। जितना तुम समझते हो, उतना सरल यह कार्य नहीं है। अस्तु, पंचम के आगे श्रुति स्थापित करने का कार्य वास्तव में सरल है। यहाँ पर पूर्वार्द्ध में स्थापित श्रुतियों में षड्ज-पंचम-भाव लगाकर श्रुति-स्थान निश्चित कर लिया जाता है।

प्रश्न—अर्थात् पिछली प्रत्येक श्रुति को $\frac{3}{2}$ से गुणन किया जाए ?

उत्तर—हाँ ! तो हो गईं न अब तुम्हारी जगत-प्रसिद्ध बाईस श्रुतियाँ ?

प्रश्न—हो गईं, हो गईं, गुरुजी ! मजा यह है कि इन्हें 'रत्नाकर' की श्रुतियाँ कहकर मानना है ?

उत्तर—दूसरा कोई इलाज नहीं। दक्षिण के उस चालाक ग्रंथकार ने वीणा पर परदे बाँधकर स्वर कह बताए, उसका प्रचार आज उसी की साक्षी देगा। वहाँ के ग्रंथकारों को यह श्रुतिमंडल कैसे पट सकेगा ? सुना जाता है कि वहाँ भी अब श्रुतिपंडित श्रम कर रहे हैं। यदि वे भी इसी रचना को ग्रहण कर लें, तो उनका बहुत ही श्रम बच जाएगा। यदि शार्ङ्गदेव ने 'अनुरणनात्मकः स्वरः' 'सारणाचतुष्टय' आदि प्रसंग अधिक न कहे होते, तो वह इन श्रुतियों का स्वामी नहीं बन पाता। उसने 'अनुरणन' शब्द का प्रयोग किया, इसलिए Harmonics 'रत्नाकर' में प्रवेश कर गया। अब इसका क्या इलाज है ? मैं तो अभी भी अनुरणन का अर्थ Harmonics मानने को तैयार नहीं हूँ, यह स्पष्ट रूप से कहे देता हूँ।

प्रश्न—हम आपसे विशेष रूप से प्रार्थना करेंगे कि एक बार Harmonics व अनुरणन, इन दोनों शब्दों की स्पष्ट व्याख्या कर दीजिए ? यह दिखाई देता है कि अब ये शब्द बहुत महत्त्वपूर्ण हो गए हैं।

उत्तर—यह स्पष्टता तो मैं सामर्थ्यानुसार करने ही वाला था। खैर, अभी उसे देख लो। तुम लोगों में से जिन्होंने Physics पढ़ा है, उन्हें Harmonics किसे कहते हैं, इसका ज्ञान होगा ही। Helmholtz कहता है (Ellis) :—

'The ear when its attention has been properly directed to the effect of the vibrations which strike it, does not hear merely that one musical tone whose pitch is determined by the period of the vibrations in the manner already explained, but in addition to this it becomes aware of a whole series of higher musical tones, which we will call the harmonic upper partials of the whole musical tone or note, in contradistinction to the fundamental or prime partial tone or simply the prime, which is the lowest and generally the loudest of all the partial tones and by the

pitch of which we judge of the pitch of the whole compound musical tone itself. The series of these upper partials is precisely the same for all compound musical tones which correspond to a uniformly periodical motion of the air. It is as follows :—

The first upper partial tone (or second partial tone) is the upper octave of the prime tone, and makes double the number of vibrations in the same time. If we call the prime C this upper partial will be c. The second upper partial (or third partial tone) is the fifth of this octave or 'g', making three times as many vibrations in the same time as the prime.

The third upper partial tone (or fourth partial tone) is the second higher octave or 'C', making four times as many vibrations as the prime in the same time.

The fourth upper partial tone (or fifth partial tone) is the major third of this second higher octave or 'e' with five times as many vibratians as the prime in the same time.

And thus they go on, becoming fainter to tones making 7, 8, 9 &c. times as many vibrations in the same time as the prime tone.

दूसरा यह भी उद्धरण देखो :—

Now, it is not possible to sound the string as a whole without at the same time causing, to a greater or less extent, its subdivision; that is to say, superposed upon the vibrations of the whole string, we have always in a greater or less degree, the vibrations of its aliquot parts. The higher notes produced by these latter vibrations are called the 'Harmonics' of the string.

यह एक उद्धरण भी सुनो :—

Strings in vibrating do not only swing as a whole but have also several secondary motions, each of which produces a sound proper to itself. A string when struck vibrates first in its entire length, secondly in two segments; thirdly in three; fourthly in four and so on. All of these motions are simultaneous and the sounds proceeding from them are blended into one note. The lowet note is the loudest and is called the fundamental or

prime tone and the others are called overtones, upper partials or harmonics.

प्रश्न—अब Harmonics शब्द का अर्थ अच्छी प्रकार से हमारी समझ में आ चुका। अब इस स्वर का महत्त्व पंडितों के लिए कौनसा है, यह समझा दीजिए।

उत्तर—मैं यह प्रथम ही कह दूँ कि मैं बड़ा भारी गणितज्ञ या भौतिक विज्ञान-शास्त्री नहीं हूँ, परंतु एक साधारण व सरल विचारक व्यक्तियों में से हूँ। हमारे श्रुति-पंडित 'अनुरणन' का अर्थ Harmonics करते हैं। 'अनु' अर्थात् 'पिछला' और 'रणन' अर्थात् 'नाद', यानी 'पीछे उत्पन्न होनेवाला नाद', इस शब्द का यह अर्थ हुआ।

प्रश्न—क्या आपको यह नहीं मालूम होता कि पंडितों के इस कथन में कुछ अभिप्राय है ?

उत्तर—वही अब हम देखनेवाले हैं। 'अनुरणनात्मको नादः स्वरः' ऐसा ग्रंथ कहते हैं। यह मानने के लिए कोई प्रमाण नहीं है कि स्वरों की यह व्याख्या शार्ङ्गदेव ने ही सर्वप्रथम की है। उसने तो वीणा पर बाईस श्रुतियों के लिए 'मनाक् उच्च' के नियम से बाईस तार बाँधकर इस प्रकार स्वरों की व्याख्या की है :—

श्रुत्यनंतरभावी यः स्निग्धोऽनुरणनात्मकः ।
स्वतो रंजयति श्रोतृचित्तं स स्वर उच्यते ॥

इस श्लोक में 'अनुरणनात्मक' शब्द ही हमारे पंडितों के इस बड़े व्यापार की पूँजी है। शार्ङ्गदेव ने तो इस पद का अर्थ कुछ भी नहीं बताया है। मैं तो यह भी कह सकता हूँ कि षड्ज से गांधार व पंचम से ऋषभ दिखाई पड़ने का विधान मुझे किसी भी संस्कृत-ग्रंथ में नहीं दिखाई पड़ा। हमारे पंडितों ने इस कठिनाई को 'अनु-रणन' शब्द से उत्पन्न किया है, यह कथन मुझे कुछ मात्रा में ठीक भी ज्ञात होता है। निस्संदेह, यदि कोई चाहे, तो यह अवश्य कह सकता है कि यह प्रयत्न प्रशंसा के योग्य है, परंतु मुझे यह नहीं मालूम होता है कि इसे आधार भी प्राप्त हैं। असल में यही दिखाई पड़ता है कि अपने श्रुति-स्वर-सिद्धांत के धनुष को आरंभ में 'अनुरणन' व 'स्वयंभू' की दो डोरियाँ बाँधी गई थीं। इनमें से 'स्वयंभू' की डोर अन्य लेखकों ने तोड़कर अलग फेंक दी, अतः अब संपूर्ण तनाव केवल 'अनुरणन' शब्द की डोर पर आ पड़ा है। यद्यपि 'सारणाचतुष्टय' का संबंध भी अब इससे लगाया जा रहा है, परंतु इसका विशेष अर्थ नहीं दिखाई पड़ता। मैं यह कह चुका हूँ कि शार्ङ्गदेव अपने अनुरणन शब्द की व्याख्या नहीं करता, तो भी उसके टीकाकार ने अपना पांडित्य इस शब्द की व्याख्या में अवश्य लगाया है। यह देखना भी मनोरंजक होगा कि 'स्वर' शब्द किस मूल अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। यदि आवश्यक हो, तो यह भी देखो कि स्वर व व्यंजन में प्राचीन काल में क्या भेद माना गया था, उस समय 'अनुरणन' शब्द था या नहीं ? यदि था, तो किस प्रकार के अर्थ में प्रयुक्त होता था, आदि। संभवतः वे

सीधे-सादे प्राचीन व्यक्ति 'अनुरणनात्मक' का सरल अर्थ 'देर तक टिकनेवाला' ही ग्रहण करते होंगे। कोई-कोई टीकाकार अनुरणन का अर्थ 'प्रतिध्वनि' भी करते हैं। किसी लकड़ी या पत्थर पर आघात करने पर आवाज होगी, परंतु घंटी पर, या धातु के बर्तन पर वैसा ही आघात देर तक टिकनेवाली ध्वनि उत्पन्न करेगा। यह खोजना भी उपयोगी होगा कि क्या आघात के उपरांत नाद का देर तक बना रहना ही अनुरणन कहा जाता है। मैं तुम्हारे सामने संस्कृत-टीकाकारों के एक-दो मत रखनेवाला हूँ। इसलिए तुम्हारा ध्यान भिन्न-भिन्न तर्कों की ओर खींच रहा हूँ। एक बात मैं अवश्य विश्वासपूर्वक कहूँगा कि एक स्वर से नियमित प्रमाण की प्रतिध्वनि-पंक्ति अर्थात् (Harmonics) निकलती है, यह कल्पना 'अनुरणन' शब्द पर नहीं लादी जा सकती। यह ध्वनि-पंक्ति ग्रंथकर्ताओं को दिखाई दी थी, इसका कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं होता। मैं समझता हूँ कि यदि उन्हें यह सृष्टि-चमत्कार दिखाई दे जाता, तो उसका उल्लेख वे अवश्य कर जाते।

उन्होंने तो अपने परंपरागत स्वरों की व्याख्या ही 'अनुरणनात्मकः स्वरः' कहकर अपने ग्रंथों में प्रस्तुत की होगी। मैं यह नहीं कहता कि उस समय के गायकों को अपने तंबूरे के षड्ज में गांधार नही दीख पड़ा होगा। वह दिखाई दिया होगा, परंतु यह नहीं माना जा सकता कि इसी चमत्कार का वर्णन इन्होंने 'अनुरणन' शब्द में किया है। अब यह सोचो कि पंडित शार्ङ्गदेव ने अपनी वीणा पर भिन्न-भिन्न बाईस तार श्रुति-वाचक लगाकर चौथी, सातवीं, नवीं, तेरहवीं आदि को 'स्वर' माना है, ठीक है न? हमारे पंडितों के मत से प्रत्येक तार पर आघात होने पर उसके मध्य में पंक्ति के नियमानुसार Harmonics उत्पन्न होगी ही। शार्ङ्गदेव कहता है कि प्रथम तीन तार श्रुति व केवल चौथा तार स्वर है, क्योंकि उनकी आवाज का अनुरणन है। यहाँ 'अनुरणन' को 'श्रुति' व स्वर का भेद बताया है। यह मत भी पंडितों द्वारा स्वीकृत है या नहीं, यह भी विचारणीय है। इन पंडितों के सम्मुख तंबूरे पर षड्ज बनाकर प्रश्न करना चाहिए कि इस ध्वनि में ग्रंथ की व्याख्या लगाकर 'श्रुति' व 'स्वर' का भेद बताइए। ग्रंथ-व्याख्या इतनी ही है कि 'प्रथम आघात से जो सूक्ष्म ध्वनि आकाश में उत्पन्न हो, वह श्रुति, और वही नाद जब पूर्ण दशा प्राप्त होकर स्थिर हो जाए, तब स्वर हो जाता है।' सिंह भूपाल कहता है :—

"प्रथमतंत्र्यामाहतायां यो ध्वनिः रणनं शून्ये उत्पद्यते सा श्रुतिः। यस्तु ततोऽनंतरमनुरणनरूपः श्रूयते स स्वरः।" मतंग कहता है—"परिणामे यथा क्षीरं दधिरूपेण सर्वदा। षड्जादयः स्वराः सप्त व्यज्यंते श्रुतिभिः सदा।" यह जानना भी मनोरंजक होगा कि ये मत हमारे 'Harmonics'-वादी (हारमोनिक्सवादी) पंडितों को स्वीकृत हैं या नहीं। 'संगीत-दर्पण' की टीका में इस प्रकार कहा गया है :—

"यश्च अनुरणनात्मकः। प्रथमतंत्र्यामाहतायां तद्देशावच्छेदेन यः प्रथमनादः ध्वनिरुत्पद्यते सा श्रुतिः। यस्तु प्रथमध्वनिव्यापको ध्वनिप्रवाहस्तदनंतरं श्रूयते तदनुरणनं, तदेव आत्मा स्वरूपं यस्य स तथोक्तः। अनुरणनमेव स्वर इति भावः। स्वरूपमात्रश्रवणात् अनुरणनं विना नादः श्रुतिः। प्रथमं हि शब्दः ह्रस्वमात्रस्वरूप एव श्रूयते सैव श्रुतिः।" इतना ही नहीं, और अधिक स्पष्टीकरण सुनो :—

"स्वरारंभकावयवशब्दविशेषः श्रुतिरिति भावः। तदुक्तं--प्रथमश्रवणाच्छब्दः श्रूयते ह्रस्वमात्रकः। सा श्रुतिः संपरिज्ञेया स्वरावयवलक्षणा।। अनुरणनं विना इति स्वरस्य व्यवच्छेदः। शब्दोत्पत्तिर्वीचितरंग न्यायेनेति केचित्। तेषां मते भेरीदंडाद्यभिघातात् तद्देशावच्छेदेन प्रथमशब्दस्योत्पत्तिः, अनंतरं तद्बहिर्देश-दिशावच्छेदे प्रथमशब्दात्तद्व्यापको द्वितीयः शब्दः, ततस्तद्बहिर्देशदिगवच्छि-न्नस्तृतीयः शब्दो द्वितीयशब्दाद्भवति इत्येवं क्रमेण चतुर्थ्यादिशब्दानामप्यु-त्पत्तिर्बोध्या। प्रकृते प्रथमशब्दस्य श्रुतित्वं, तद्व्यापकद्वितीयादिशब्दानामनु-रणनत्वं ज्ञेयं, अनुरणनस्य च स्वरत्वं ज्ञेयं। इ० इ०"

अब कल्लिनाथ क्या कहता है, सुनो :—

"श्रुत्यनंतरभावी श्रुतेश्चतुर्थ्यादेर्मारुताद्याहत्युत्पन्नप्रथमध्वनेरनंतरं भावी आविर्भवनशीलः। स्निग्ध अरूक्षः संदूरश्राव्यः। अनुरणनात्मकः अनुस्वाररूपः।"

अब यह एक मनोरंजक प्रश्न है कि इन मतों में से Harmonics का समर्थक कौनसा मत विद्वानों को जान पड़ेगा। मैंने तो एक हारमोनिक्सवादी पंडित से यह पूछा भी था।

प्रश्न—फिर उन्होंने क्या उत्तर दिया ?

उत्तर—प्रथम तो उसे मेरे प्रश्न से ही आश्चर्य हुआ। उसने कहा—'अजी, षड्ज से गांधार के निकलने की बात तो हमारे अनाड़ी कारीगर लोग भी जानते हैं। इतना ही नहीं, वे तो उस हार्मोनिक्स (Harmonics) को अपने वाद्यों में भी लगाकर देखते हैं और यह तुम्हारी समझ में नहीं आया, यह आश्चर्य की बात है। चाहो तो, हमारे खाँ साहब के पास ले जाकर तुम्हें यह चमत्कार दिखा दिया जाए।'

प्रश्न—मालूम होता है कि उसे स्वतः यह करना नहीं आता था ?

उत्तर—नहीं, उसे इतना सूक्ष्म स्वर-ज्ञान कहाँ से होगा।

अस्तु, मैंने उससे कहा कि महाराज ! Harmonics सरीखी अर्वाचीन पाश्चात्य शोध मैं अस्वीकार तो कैसे कर सकता हूँ, परंतु मुझे संस्कृत-ग्रंथों के द्वारा उसे समझा दीजिए। मैंने उसके सम्मुख अनुरणन-संबंधी ग्रंथ-वाक्य रख दिए और सोचकर उत्तर देने की अवधि भी दे दी।

प्रश्न—क्या वह संस्कृत जानता था ?

उत्तर—भला यह क्या पूछते हो ? बिना संस्कृत-ज्ञान के वह संगीत-ग्रंथ कैसे समझता होगा ? तथापि उसने कुछ महत्त्वपूर्ण भाग देख रखे थे, एवं किसी के पास से थोड़े-बहुत समझ भी लिए थे। इतना भी कुछ कम नहीं है। जब मैंने बहुत आग्रह किया कि Harmonics की व्याख्या संस्कृत-ग्रंथों से करके दिखाइए, तब उसने मेरा

ध्यान 'रत्नाकर' के ३६-वें पृष्ठ पर कल्लिनाथ-लिखित टीका की ओर आकर्षित किया और कहा कि इसी में सब स्पष्ट रूप से व्याख्या की हुई है।

प्रश्न—वह सुनाइए। हमें भी सुनने की बहुत उत्कंठा है।

उत्तर—कहता हूँ। यहाँ प्रथम एक प्रश्न इस प्रकार उत्पन्न होता है कि मंद्र, मध्य और तार, इन तीनों स्थानों की श्रुतियों को भिन्न-भिन्न मानकर उन्हें स्वतंत्र नाम दिए जाएँ, अथवा आवृत्ति-पक्ष स्वीकार करते हुए यही मान लिया जाए कि निचले सप्तक की श्रुतियाँ ही ऊपर के सप्तक में पुनरावृत्ति होती हैं। दूसरे शब्दों में प्रश्न यह है कि क्या तीनों सप्तक में मिलाकर ६६ श्रुतियाँ मान लेनी चाहिए ?

सिद्धांततः इस प्रकार ६६ नहीं मानी जाएँ, बाईस ही मानना ठीक है।

द्वाविंशतिश्रुतिपक्षे षट्षष्ठिश्रुतिपक्षे च, यद्यपि श्रुतिस्वरयोर्भेदांगीकारः समानः एव, तथापि द्वाविंशतिश्रुतिपक्षे द्वाविंशतिः श्रुतयः एव मंद्रस्थाः स्थानांतरयोरपि द्विगुणद्विगुणत्वेन आवर्त्यंते। षट्षष्ठिश्रुतिपक्षे तु तावत्य एव श्रुतयः स्थानत्रयेऽपि अनावृत्ताः परस्परं भिन्ना, इति च वैषम्यम्। तत्रानावृत्तिपक्षस्वीकारे षड्जादीनामपिस्वराणामावृत्त्यभावान्मध्यतारस्थाश्चतुर्दशस्वराः पृथग्व्यपदेशभाजो भवेयुः। नैव तथा व्यवहारः।

यहाँ तक तो सब-कुछ ठीक ही हुआ है। इसका मूल अभिप्राय तो उस पंडित के ध्यान में भी नहीं आया होगा। उसने मुझे ध्यान देने के लिए जिसे आवश्यक कहा था, वह विवरण देखो :—

'अत एव मतंगादिदर्शितेषु नवसु पक्षेषु द्वाविंशतिश्रुतिपक्षमेव रणनानुरणनात्मना साक्षादनुभूयमानश्रुतिस्वरभेदानपन्हवेन आवृत्त्या सप्तानामेव स्वराणां गुणभिन्नानां व्यवहारोपयोगित्वसिद्धेश्च सारतमं निश्चित्य निःशंको वीणयोर्निदर्शितानां तासां द्वाविंशतिश्रुतीनां मध्ये चतुर्थीप्रभृतिषु शास्त्रानुसारेण पूर्वोत्तरावधिप्रदर्शनपूर्वकं षड्जादिसप्तस्वरस्थापनं विदधाति।'

प्रश्न—मगर गुरुजी ! इसमें Harmonics का संबंध कहाँ है ? यहाँ तो बाईस श्रुतियों में ही 'रणन' व 'अनुरणन' का स्पष्ट दिखाई देनेवाला श्रुति-स्वर-भेद मानने व आवृत्ति-पक्ष स्वीकार कर पसंद करने का विवरण दिखाई पड़ता है। वास्तव में हम नहीं समझ पाए कि यहाँ Harmonics का क्या संबंध है ?

उत्तर—यह समझने-योग्य बात ही नहीं। उस पंडित ने मुझे बार-बार 'साक्षादनुभूयमान' पद पढ़कर दिखाया और कहा—'सुन रहे हो, प्रथम स्वर 'रणन' प्राप्त करता है व उसमें से 'अनुरणन' निकलता है।' सुना हुआ नहीं, वरन् उस ग्रंथकार

को साक्षात् अनुभव हो गया था। अब भी क्या यह कहा जा सकता है कि हमारे ग्रंथकारों को Harmonics का ज्ञान न था।

प्रश्न—यह सुनकर तो सचमुच हमें हँसी आ रही है, धन्य हैं वे पंडित!

उत्तर—उस बेचारे पर मत हँसो। मुझसे उसने जो कहा, वही मैंने तुम्हें सुना दिया।

प्रश्न—हमारे ग्रंथकारों ने 'अनुरणन' शब्द की क्या दुर्दशा की है, यह देख रहे हैं न?

उत्तर—यह पांडित्य है! बेचारों को वास्तविक कल्पना भी न हुई और ऐसा भी किसी ने स्वीकार नहीं किया कि हमें प्राचीन वाक्य या पद समझ में नहीं आए। भिन्न-भिन्न तारों पर श्रुति के परदे बाँध लिए व उनमें से कुछ स्वर उपयोग कर लिए, अर्थात् अधिकांश विचारधारा अहोबल आदि जैसी ही, परंतु 'रणन' और 'अनुरणन' के विषय में चिंदियाँ फाड़ने लगे। उन्होंने यह किया है, तभी तो आज Harmonics पाणिनि तक पीछे जाने की तैयारी कर रहा है न?

प्रश्न—परंतु ठहरिए! पहले आपने बोलते हुए कहा था कि तंबूरे के षड्ज-तार से गांधार निकलता है। यह 'Harmonics'-वादी पंडित यही कहेंगे कि षड्ज संपूर्ण तार की प्रथम ध्वनि है व गांधार, सूक्ष्म Harmonics स्वर, तार के एक टुकड़े की ध्वनि है। यहाँ वे रणनानुरणन का नियम कैसे लगाएँगे? प्रथम रणन व बाद में अनुरणन, यह क्रम है; यथा—संपूर्ण तार की ध्वनि रणन और टुकड़े की ध्वनि अनुरणन? अर्थात् षड्ज हुई श्रुति, तथा गांधार स्वर हुआ? यह कहना तो शोभनीय नहीं होगा कि एक तार पर रणन व दूसरे तार पर अनुरणन होता है। ये दोनों तो एकत्र चाहिए ही। तो फिर षड्ज व उससे उत्पन्न गांधार, इस संयुक्त स्वर-स्वरूप में श्रुतित्व व स्वरत्व का कैसे विभाजन किया जाएगा? शार्ङ्गदेव के कुछ तार केवल श्रुति थे, स्वर नहीं, इससे क्या समझना चाहिए?

उत्तर—असुविधापूर्ण प्रश्नों के उत्तर न देने की स्वीकृति मैंने पहले ही ले रखी है। यहाँ तुम खुद क्या उत्तर दोगे?

प्रश्न—हम तो कहेंगे कि यह भ्रष्ट और गलत विधान है।

उत्तर—मैं इसे ऐसा कहूँगा कि अभी तक विद्वानों ने इसकी स्पष्ट व्याख्या नहीं की है। संभव है, यह भाग उन्होंने दैनिक अनुभव का 'पैर-तले का मार्ग'-जैसा बिलकुल सरल समझकर छोड़ दिया हो।

प्रश्न—पहले आपने कहा था कि अशिक्षित वादक Harmonics से अपने वाद्य मिलाते हैं, यह भी हमें कुछ विचित्र ही दिखाई पड़ता है। यह समझना कठिन है

कि जिनकी तैयारी Harmonics स्वर पहचानने-लायक है, उन्हें बिना सुने वाद्य मिलाना ही नहीं आएगा। जिन्हें आरंभ में ही उत्तम कोटि का स्वर-ज्ञान है, उन्हें Harmonics सुनना या न सुनना बराबर है। यह कैसा चक्कर है ? आपकी समझ में आया कि अपने पंडितों का यह कैसा तर्क-शास्त्र है ?

उत्तर—मैं तो उनके तर्कों से ही बतानेवाला हूँ। अच्छा देखो, यह विधान कानों को कैसा लगता है :—

अनुरणन अर्थात् बाद में (पीछे) उत्पन्न होनेवाला नाद। Harmonics भी पीछे उत्पन्न होनेवाला नाद है, इसलिए Harmonics याने 'अनुरणन' और अनुरणन अर्थात् Harmonics। शार्ङ्गदेव के ग्रंथ में अनुरणन शब्द आया है, इसलिए उसे Harmonics का बोध था। इस बात को वाद्य-निर्माता व सितारिए भी जानते हैं, फिर वह तो पंडित था ! तो फिर उसे Harmonic 'ग' भी दिखाई पड़ना चाहिए। Siren कहते हैं कि यह स्वर ३०० आंदोलन का है। इसमें षड्ज-पंचम-भाव से आनेवाला गांधार ३०३$\frac{३}{४}$ का होता है, उसे Harmonics 'ग' से देख-भालकर उत्तम रूप से दुरुस्त किया। वह स्वर प्राप्त होते ही $\frac{२५}{२४}$ का प्रमाण भी प्राप्त हो गया, और प्रमाण मिला कि श्रुतियों की गाड़ी सरलता से आगे बढ़ने लगी, सभी ओर प्रकाश हो गया और धन्य है वह विद्वान्, यह कहना भी सार्थक हो गया। यह देखकर पाश्चात्य पंडित दाँतों में अँगुली दबा लेंगे, वह बात तो अलग ही है।

प्रथम दृष्टि में तो यह विधान 'डूबते हुए को तिनका' जैसा लगे, तो आश्चर्य नहीं, परंतु बिना उस पंडित का स्पष्टीकरण सुने, निर्णय पर कैसे आ सकेंगे ?

प्रश्न—परंतु कोई यह भी कह सकता है कि इतनी उठा-पटक करने के लिए किसने कहा था ?

उत्तर—मैं समझता हूँ कि यह परिणाम हमारे वर्तमान हिंदुस्तानी संगीत की जागृति का हुआ है। कोई कहता है कि मुझे अति कोमल रि, ध चाहिए, कोई कहता है कि मुझे अति कोमल ग, नि चाहिए और कोई कहता है कि मुझे तीव्रतर म, नि चाहिए, ऐसी स्थिति आजकल प्राय: दिखाई पड़ती है। ग्रंथकारों को इस झंझट की आवश्यकता ही नहीं थी, अत: उनके लिखे हुए ग्रंथों से हमें योग्य सहायता नहीं मिल पाती। इसमें बाईस श्रुतियों के उद्धार करने का प्रसंग अपने-आप आ जाता है या नहीं ?

प्रश्न—पर, ऐसे झंझट से कठिनाई में नहीं पड़ जाएँगे ?

उत्तर—कठिनाई ? कोई-कोई तो कहते हैं कि इससे उनका कल्याण ही होगा। कठिनाई कैसे होगी ?

प्रश्न—कठिनाई बताता हूँ। देखिए ! समझ लीजिए कि कोई पुराना व प्रसिद्ध गायक जयपुर-जैसे प्रसिद्ध शहर से हमारे यहाँ आया और उसने कुछ उत्तम राग गाए।

यह स्पष्ट ही है कि वह अपनी परंपरा का गायन ही गानेवाला है। उसके स्वर हमारे पंडितों की व्यवस्था से नहीं मिले, तो फिर अधिक योग्यतापूर्ण मत कौनसा है, गायक किस घराने का है, पंडित का व गायक-वादक का गुरु कौन, उसे किसने व कितनी तालीम दी, तालीम किस आधार से दी, उसने किस गुरु (मत) के सूक्ष्म स्वर लगाए, उनका आधार कौनसा, उस वादक की प्रसिद्धि उत्तर-भारत में है या नहीं, किस प्रकार हुई, आदि कलहोत्पादक प्रश्न उत्पन्न हो जाते हैं। इस विवाद को फिर कोरे नाद-प्रेमी, परंतु स्वर-ज्ञान-विहीन श्रोता कैसे मिटा सकेंगे? इसका न्यायकर्ता कौन बनेगा। यदि यह कहें कि जिसने जो चाहा, वही उसने गाया, तो कोई यह कहेगा कि फिर यह 'अव्यापारेषुव्यापार' होना ही क्यों चाहिए? कोई यह भी कह देगा कि बारह स्वर ही क्या थोड़े थे।

उत्तर—मैं ऐसा नहीं मानता। हालाँकि तुम्हारी बताई हुई कठिनाई सत्य है, परंतु मैं यही कहूँगा कि हमारे पंडितों का उद्देश्य उत्तम है तथा परिश्रम भी सराहनीय है। मैं यह अवश्य कहता हूँ कि यदि हिंदुस्तान के प्रसिद्ध व सच्चे गायकों की सम्मति से वे रागों के सूक्ष्म स्वर निश्चित करें, तो उनकी अधिक प्रशंसा होगी। इस प्रकार करने पर उनके प्रयत्न के प्रति समाज की थोड़ी-बहुत सहानुभूति अवश्य रहेगी। ग्रंथों से खोजकर श्रुतियाँ निश्चित करने का उनका कष्टसाध्य प्रयत्न मुझे पसंद नहीं। इसका यही कारण है कि मुझे पाश्चात्यों के मत का इतना भय नहीं है। ग्रंथ-कारों को संकट में डालने की अपेक्षा हमारे संगीत का गौरव यदि पाश्चात्य लोगों की ओर थोड़ा कम भी हो, तो भी मुझे ग्राह्य होगा।

प्रश्न—यह हम समझ गए। यहाँ हमें एक कल्पना सूझी है, वह आपके सम्मुख रखते हैं। हमारे यहाँ शार्ङ्गदेव द्वारा प्रयुक्त पारिभाषिक नाम ही पुरातन काल में प्रचलित थे, यह मानकर शार्ङ्गदेव से संबधित सभी ग्रंथकारों व वर्तमान पंडितों का मत व्यवस्थित रूप से एक ढाँचे के रूप में नहीं बन पाएगा? यदि यह हो जाए, तो क्या इसका कोई उपयोग नहीं होगा? हम तो समझते हैं कि ऐसे आनंद-दायक व लोकप्रिय विषय पर जितने कम मत-मतांतर उत्पन्न हों, उतना ही अच्छा है।

उत्तर—तुम कैसा ढाँचा तैयार करोगे, बताओ तो?

प्रश्न—हम तो एक कल्पना-मात्र आपके सामने रखते हैं। शायद यह हमारे पंडितों को पसंद न आए, फिर भी आप देखिए :—

१. शार्ङ्गदेव के ग्रंथ के पारिभाषिक नाम, या उनके अधिकांश भाग उस समय समस्त देश में प्रचलित थे, ऐसा मानते हैं। 'नारदीय शिक्षा' में भी कुछ ऐसे नाम दिखाई देंगे।

२. भरत की अपेक्षा शार्ङ्गदेव के द्वारा अधिक स्वर-नामों का उपयोग हुआ है। इसका कारण यह समझना चाहिए कि संगीत में भिन्न-भिन्न राग सम्मिलित

होने के कारण भाषा में परिवर्तन करना आवश्यक हुआ होगा। तो भी अंतर व काकली आदि नाम शार्ङ्गदेव ने यथावत् रख छोड़े हैं।

३. शार्ङ्गदेव के पश्चात् ग्राम, मूर्च्छना, जाति का महत्त्व पिछड़ गया व समस्त राग षड्ज से षड्ज तक के सप्तक से उत्पन्न करने की प्रथा प्रचलित हो गई। इसका आरंभ कल्लिनाथ से हुआ होगा।

४. फिर दो पक्ष हो गए होंगे, एक उत्तर का और दूसरा दक्षिण का। दोनों पक्षों को शार्ङ्गदेव पर अभिमान रहा होगा। एक सप्तक से ही समस्त राग निकालना दोनों को पसंद आया होगा।

५. दक्षिण के पंडितों ने प्राचीन पारिभाषिक नाम सुरक्षित रखना पसंद किया, परंतु उत्तर के पंडितों ने तीव्र, तीव्रतर आदि संज्ञाएँ पसंद की होंगी।

६. अब समझे कि यदि हमारे विद्वानों द्वारा संशोधित श्रुतियाँ ही शार्ङ्गदेव की मानकर ग्रहण की जाएँ, तो उत्तर व दक्षिण-पद्धति की समानता करने का प्रश्न हमारे सम्मुख उपस्थित होगा। मुख्य उलझन रे ग ध नि स्वरों की ही दिखाई देती है, क्योंकि सा, म प शुद्ध स्वरों के विषय में मतभेद सुनने में नहीं आया।

७. दक्षिण व उत्तर की पद्धति में यही अंतर दिखाई देता है कि दक्षिण की ओर स्वर की प्रथम अवस्था ही शुद्ध स्वर है, सभी विकृत अवस्थाएँ शुद्ध स्वर के पश्चात् होती हैं। उत्तर की ओर स्वरों की शुद्ध अवस्था मध्य की स्थिति दिखाई पड़ती है, क्योंकि स्वर तीव्र व कोमल हो सकता है।

८. यहाँ एक सुविधाजनक कल्पना यह हो सकती है कि दक्षिण के विद्वानों ने अपने शुद्ध स्वर रे, ग, ध, नि एक-एक श्रुति जान-बूझकर उतार दिए तथा उत्तर के विद्वानों ने उन्हीं स्वरों को एक-एक श्रुति चढ़ा दिया और इसी रीति से प्राचीन रागों का वर्णन किया।

९. इस रीति से दक्षिण का शुद्ध स्वर-सप्तक २४०, २५६, २७०, ३२०, ३६०, ३८४, ४०५, ४८०, आंदोलन का हुआ व उत्तर का शुद्ध स्वर-सप्तक २४०, २७०, २८८, ३२०, ३६०, ४०५, ४३२, ४८० आंदोलन का हुआ।

१०. प्रथम सप्तक (दक्षिण का) 'मुखारी' नाम से प्रसिद्ध है एवं दूसरे को हम 'काफी' कहेंगे। शार्ङ्गदेव के राग अभी तक आपने नहीं बताए, इसलिए यह नहीं कह सकते कि उनका स्वरूप दोनों पद्धतियों के रूप से मिलता है, या नहीं। यदि वह मिल गया, तो दक्षिणी पंडितों की एक श्रुति कम की जाकर प्राचीन व्याख्या से शार्ङ्गदेव की इस मूर्च्छना आदि की उलझन युक्तिपूर्वक टाली जा सकती है, ऐसा कहा जा सकेगा। इस प्रकार की व्यवस्था से अपनी संगीत-परंपरा भी उत्कृष्ट दशा में रहेगी।

उत्तर—वाह भाई वाह! तुम तो बड़ी मनोरंजक कल्पना करने लगे हो। मैं समझता हूँ कि तुम्हारी यह कल्पना हमारे विद्वानों को पसंद नहीं आएगी। वे

इतना ही कहेंगे—'अजी महाशय ! हम बड़े कष्ट उठाकर तुम्हारे सप्तक में से गणित-प्रमाण के सुन्दर बाईस टुकड़े अपनी बुद्धि के अनुसार निश्चित कर रहे हैं। इनका उपयोग तुम्हारी तकदीर में हो, तो करो, नहीं तो छोड़ दो। भिन्न-भिन्न रागों में ग्रंथ-प्रमाण लगाकर सिद्ध करने की हमें कोई गरज नहीं। हमने तो एक अच्छा काम करके रास्ते पर डाल दिया है, अब किसी को उपभोग करना हो, तो करो।'

प्रश्न—परंतु ये टुकड़े यदि हमारे टुकड़ों से नहीं मिले तो ?

उत्तर—तो तुम्हारा तुम्हारे पास और हमारा हमारे पास। मैं समझता हूँ कि विद्वानों का कथन भी गलत नहीं है। हमारे टुकड़े ही सारे देश में ग्रहण होने चाहिए, इस बात को वे भला कैसे कह सकते हैं ? वे अपने संबंध में ही कुछ कह सकेंगे। मेरी राय में उन्हें यह कहकर दोष नहीं दिया जा सकता कि हमारे गायक-वादक अमुक सिद्धांत पसंद करते हैं और हम उनकी सलाह-मशविरे से अमुक बात मानते हैं। हमारे लिए तो श्रुति-स्थानों की उलझन है ही नहीं, क्योंकि हमारी पद्धति मुख्य बारह स्वरों की है और वह अत्यंत सुविधाजनक भी है। आगे कभी तुम्हारी इच्छा होने पर प्रत्येक राग में मैं अपने स्वर कितनी लंबाई के तार अथवा आंदोलन के प्रयोग करता हूँ, यह 'Monochord' पर सावधानी से देख-भालकर कोष्ठक के रूप में तुम्हें दे दूँगा। मैं समझता हूँ, मेरे अनेक स्वर-स्थान अपने पंडितों के स्वर-स्थानों से मिल जाएँगे। परंतु कहीं-कहीं पर वे नहीं मिलें, तो भी मैं कौन-कौनसे स्वर उपयोग में लाता हूँ, यह तथ्य तो अच्छी तरह तुम्हारी समझ में आ जाएगा, किंतु उस कोष्ठक के बिना अभी तुम्हें कोई दिक्कत होगी, ऐसा भी न समझना।

प्रश्न—इस प्रकार का कोष्ठक हमारे लिए बहुत उपयोगी होगा। जिस ध्येय से हम अपनी पद्धति से ही चलना चाहते हैं, उस उद्देश्य की सिद्धि के लिए इस प्रकार की स्पष्ट व्याख्या हमारे पास होना अच्छा है।

उत्तर—ठीक है, अब इस श्रुति-स्वर-प्रकरण की आवश्यक जानकारी तुम्हें प्राप्त हो गई है, ऐसा प्रतीत होता है, अतः इस विषय के विद्वानों द्वारा लिखित लेख अब तुम समझ सकोगे। हमारी की हुई वर्तमान चर्चा में से कोई-कोई बात तुम्हें याद रखनी आवश्यक है, उसकी ओर यदि तुम चाहो, तो एक बार संक्षिप्त रूप से तुम्हारा ध्यान पुनः आकर्षित करा दूँ। इनमें से अधिकांश बातें तो तुम्हें ज्ञात ही हैं।

प्रश्न—यह बहुत उपयोगी होगा, ऐसा अवश्य कीजिए ?

उत्तर—तो फिर सुनो !

१. 'श्रुति' का क्या अर्थ है ? श्रुति का अर्थ एक सूक्ष्म स्वरांतर समझना चाहिए। तुम्हें यह ज्ञात है कि हमारे स्वर-सप्तक के बाईस सूक्ष्म भाग करने की प्रथा रही है, यह निश्चित प्रमाण में नहीं प्राप्त होता कि एक श्रुति तार की अमुक लंबाई की ध्वनि या अमुक आंदोलन का नाद होता है। यह भी नहीं है कि एक मध्यांतर

(फासले) की श्रुतियों का माप दूसरे मध्यांतर से मिलेगा ही। सारांश यह है कि श्रुतियाँ एकसी नहीं मानी जा सकतीं। इसी लिए उनके विषय में मतभेदों की उलझन उत्पन्न हो जाती है। यह नियम समझा जाता है कि श्रुतियों में सदैव 'संगीतोपयोगित्व' व 'अभिगेयत्व' का तत्त्व रहता है। अपने प्राचीन संस्कृत-पंडित श्रुतियों के झगड़े में ही नहीं पड़े। उन्होंने प्रत्येक दो स्वरों के मध्यांतर के शास्त्रोक्त संख्या के प्रमाण से समान भाग किए और उन्हीं को श्रुति समझा। प्रत्यक्ष व्यवहार में परंपरा से चले आ रहे बारह अथवा चौदह स्वरों को ही उपयोग में लिया। पहले श्रुतियों की गणना करके फिर उनपर स्वर-स्थापना कभी नहीं हुई होगी। श्रुतियाँ बाईस ही क्यों हैं? यह विवाद उत्पन्न करने की भी हमें कोई आवश्यकता नहीं दिखाई पड़ती।

२. श्रुति व स्वर में कौनसा भेद है? इस प्रश्न के उत्तर में पंडित अहोबल की व्याख्या उचित जान पड़ती है। वह कहता है कि श्रुति व स्वर में, वास्तव में बिलकुल भेद नहीं है। हमारे पास एक सप्तक के संगीतोपयोगी बाईस नाद हैं, इनमें से ही कुछ नियत संख्या के नादों का उपयोग हम एक समय में एक राग में करते हैं, जितने नाद प्रयोग में आते हैं, वे उस राग के स्वर हो जाएँगे तथा शेष नाद श्रुति माने जाकर रह जाएँगे।

अहोबल कहता है :—

सर्वाश्च श्रुतयस्तत्तद्रागेषु स्वरतां गताः।
रागाहेतुत्व एतासां श्रुतिसंज्ञैव संमता॥

यह बात सरलता से समझ में आ जाएगी कि एक राग में श्रुति मानकर छोड़े हुए नाद, दूसरे राग में स्वर हो सकेंगे।

३. अति कोमल, तीव्रतर आदि स्वरों को हम अलंकारिक स्वर कहेंगे। हम इनकी सहायता से ठाठों की रचना भी नहीं करेंगे, क्योंकि ऐसा करना सदैव के लिए असुविधापूर्ण हो जाएगा। हमारी पद्धति 'लक्ष्य-संगीत' ग्रंथ के अनुसार है और 'लक्ष्यसंगीसंत', स्कृत-ग्रंथों के अनुसार है। भरत, शार्ङ्गदेव की पद्धति ग्राम, मूर्च्छना की होने के कारण हम उसे स्वतंत्र पद्धति मानेंगे। यह पद्धति इस समय हमारे देश में कहीं पर भी प्रचलित नहीं है। इस समय सभी ओर का संगीत एक सप्तक में ही शुद्ध-विकृत स्वर स्थापित करके माना जा रहा है। यह कभी भी नहीं कहा जा सकता कि यदि शार्ङ्गदेव के कुछ रागों को यत्नपूर्वक हम प्रचलित रूप में प्रस्तुत कर पाते, तो हम आज उसी की पद्धति स्वीकार करके चलते। उसके राग-रूप हमें अन्य ग्रंथों में भी मिल सकते हैं। हमारे गायक-वादकों को ग्राम, मूर्च्छना, जाति का बिलकुल बोध नहीं है। जहाँ तक हम अपने रागों के वर्ज्यावर्ज्य स्वरों का नियम व वादी स्वर का नियम सँभाल रखेंगे, तब तक हमारे रागों की शुद्धता भी कायम रहेगी। उदाहरणार्थ 'श्री राग' को लो। इस राग को हम पूर्वी ठाठ का औडुव-संपूर्ण स्वरूप मानते हैं। इसके आरोह में ग, ध, स्वर वर्जित मानते हैं। जब तक इन नियमों को सँभाले रखेंगे, तब तक हमारा राग 'श्री' राग ही रहेगा। यदि कोई कहे कि हम कोमल रे, ध

स्वरों के स्थान पर अति कोमल रे, ध का प्रयोग करते हैं, तो ऐसा कहने पर भी हमारे श्री राग को दूसरा नाम नहीं दिया जा सकता। इतना ही होगा कि हमें इन अति कोमल स्वरों को अलंकारिक मान लेना होगा। परंतु हमारी ठाठ-पद्धति इस प्रकार के अलंकारों के अवलंब पर स्थापित नहीं हो सकती।

४. अति कोमल रे, ध अर्थात् ५ व १८-वीं श्रुति दक्षिण के किसी भी ग्रंथकार द्वारा प्रयुक्त नहीं हैं। पंडित अहोबल भी कहता है कि मैं किसी भी राग में पूर्व री तथा पूर्व ध का प्रयोग नहीं करनेवाला हूँ। यह अभी तक स्पष्ट ज्ञात नहीं हो सका कि भरत, शार्ङ्गदेव इन श्रुतियों का क्या उपयोग करते थे। अर्थात् उनकी पद्धति में एक श्रुति के रे, ध स्वरों को क्या नाम उन्होंने दिए थे तथा किस राग में इनका प्रयोग किया था। यदि यह स्पष्टीकरण किसी ने नहीं किया, तो अति कोमल रे, ध का प्रयोग शास्त्रसम्मत नहीं, यह कोई भी कह देगा। दक्षिण के पंडित रामामात्य, सोमनाथ, पुंडरीक, व्यंकटमखी आदि दो श्रुति के रे, ध भी प्रयोग में नहीं लाते थे। इसका थोड़ा-सा कारण मैं पहले ही तुम्हें बता चुका हूँ। वे खास तौर से तीन श्रुति के रे, ध स्वरों को कोमल मानकर ग्रहण करते हैं, अथवा कोमल रे, ध स्वरों को वे त्रिश्रुतिक मानते हैं। पुंडरीक कहता है :—

पंचम्यष्टादशी षष्ठी तथा चैकोनविंशतिः ।
चतस्रः श्रुतयश्चैता रागाद्यै रप्रयोजकाः ॥
शेषा अष्टादशैव स्युः श्रुतयः स्वरबोधकः ।

यही बात 'आईने-अकबरी' में भी कही गई है, जैसा कि Francis Gladwin कहता है :—

"The air does pass through the fifth, sixth, eighteenth and nineteenth nerves, consequently they are mute &c."

इस कथन का अभिप्राय यही है कि पंडितों ने इन श्रुतियों का स्वरत्व नहीं माना है। यदि हम यह मान लें कि दक्षिण के पंडितों का स्वर-सप्तक कृत्रिम है, तो यह कहना पड़ेगा कि उन्होंने जान-बूझकर इन श्रुतियों पर स्वरत्व स्थापित नहीं किया। दक्षिण के स्वर-सप्तक का मजाक उड़ाना ठीक नहीं है, संभव है, उस सप्तक को इस प्रकार बनानेवाले की इसमें कुछ कुशलता ही हो।

५. दक्षिण व उत्तर-पद्धति का एक प्रधान भेद सहज में ही दिखाई पड़ जाता है, दक्षिण की ओर शुद्ध स्वरों का स्थान बिलकुल निम्नतम (प्रथम श्रुति पर) माना जाता है तथा उत्तर की ओर मध्य में स्वर की स्थिति मानी जाती है। इस सिद्धांत पर आगे चलकर भी मैं कारण उपस्थित होने पर तुम्हारा ध्यान आकर्षित करूँगा।

६. विकृत स्वर का क्या अर्थ है? इस प्रश्न का उत्तर तुम सहज में दे सकोगे। प्रत्येक स्वर अपने शुद्ध स्थान से हट जाने पर विकृत हो जाता है। दूसरे

शब्दों में यह कहें कि स्वर तीव्र या कोमल नाम की स्थिति पाते ही विकृत हो जाता है। स्वर विकृत हुआ, यानी उसका अगले-पिछले स्वरों से जो मूल संबंध था, वह बदल गया। अर्थात् यह स्थूल नियम मान लिया जाएगा कि स्वरों की विकृति से स्वरांतर अर्थात् फासला बदल जाता है।

७. भिन्न-भिन्न ग्रंथों के शुद्ध ठाठ कौन-कौनसे हैं ? मैं भरत व शार्ङ्गदेव के ठाठों के विषय में इस चर्चा में कुछ भी नहीं कहनेवाला हूँ। 'रागतरंगिणी' व 'पारिजात', इन दोनों ग्रंथों का शुद्ध ठाठ हम 'काफी' मानेंगे। इन ठाठों के शुद्ध स्वरों के आंदोलन २४०, २७०, २८८, ३२०, ३६०, ४०५, ४३२, ४८० मानकर तुम चलो, तो चल सकते हो। सोमनाथ, रामामात्य आदि विद्वानों का ठाठ 'मुखारी' या 'कनकांगी' है।

इन ठाठों के स्वरांदोलन, उधर के विद्वानों से ही प्राप्त किए जाएँ। वे लोग अभी अपनी श्रुतियों की शोध कर रहे हैं, अतः हमें अभी प्रतीक्षा करनी चाहिए। हिंदुस्तानी पद्धति का शुद्ध स्वर-सप्तक हम बिलावल का मानते हैं। इसमें रि, ग, ध, नि स्वरों को हमारे गायक तीव्र संज्ञा देते हैं। इसे ही इस समय अपना 'षड्ज-ग्राम' समझकर ग्रहण करना है। यद्यपि आजकल मूर्च्छना का झंझट न होने से 'ग्राम' का महत्त्व हमारे संगीत के लिए नहीं रहा, किंतु मूल शुद्ध स्वर-सप्तक को ग्राम कहने व मानने की प्रथा चल पड़े, तो बिलावल ठाठ का नाम 'षड्ज-ग्राम' उपयुक्त होगा। दक्षिण में यह नाम 'कनकांगी' ठाठ को दिया जाएगा। अहोबल अपने 'काफी' ठाठ को यही नाम देगा। हम एक सप्तक में सभी स्वर मान लेते हैं, अतः हमारे लिए दूसरा ग्राम आवश्यक नहीं है। वास्तव में यह कहना गलत नहीं होगा कि प्राचीन पद्धति नष्ट हो गई है, अतः ग्रामों का रहस्य भी लुप्त हो चुका है। अपने शुद्ध स्वर-सप्तक के आंदोलन यदि तुम, २४०, २७०, ३००, ३२०, ३६०, ४०५, ४५०, ४८० स्वीकार कर लो, तो मुझे कोई ऐतराज नहीं होगा। प्रत्यक्ष परंपरा से प्राप्त तीव्र ग, नि सभी के जाने हुए हैं और इनके आंदोलन यदि अब पश्चिम के ग्रंथों में निश्चित कर दिए हों, तो उन्हें ग्रहण कर लेने में मुझे कोई हानि नहीं जान पड़ती। मेरा कथन केवल इतना ही है कि ग्रंथों में से खींच-तानकर उन्हें निकालने व सिद्ध करने का हम पर उत्तरदायित्व नहीं है।

८. मैं यह मानने को तैयार नहीं कि 'अनुरणन' और 'स्वयंभू' शब्दों से योरोप के Harmonics का बोध होता है। इसके साथ इस कथन की जिम्मेदारी भी हम अपने सिर पर नहीं लेंगे कि हमारे प्राचीन वीणा-वादकों को षड्ज से गांधार दिखाई नहीं पड़ा होगा। हम तो इतना ही कहेंगे कि 'अनुरणन' व 'स्वयंभू' शब्दों से यह ज्ञात होना सम्भव नहीं है। इस संबंध में संस्कृत-टीकाकार पंडित का तो इतना ही आशय दिखाई पड़ता है कि श्रुति की अपेक्षा अधिक देर तक स्थिर रहनेवाला नाद 'अनुरणन' कहलाता है। मैंने तुम्हें भिन्न - भिन्न संस्कृत के मत सुनाए ही हैं। 'स्वयंभू स्वर' के लिए अन्य विद्वानों ने भी मासिक पत्रों में सिद्ध किया है कि यह Harmonics नहीं है, मैं इसी मत का हूँ। 'राग-विबोध-प्रवेशिका' नामक छोटी-सी पुस्तक इस विषय के लिए तुम्हें उपयोगी सिद्ध होगी। मैं यह नहीं कह सकता कि

हमारे विद्वानों द्वारा परिश्रमपूर्वक खोजी हुई श्रुतियाँ बुरी हैं, या बिलकुल निरुपयोगी हैं। हमें तो उनका यह दावा मान्य नहीं है कि ये सभी श्रुतियाँ ग्रंथों से ही उत्पन्न होती हैं।

प्रिय मित्रो ! हमारा यह श्रुति-स्वर-प्रकरण बहुत लंबा हो गया और हमारा मुख्य कार्य अभी वैसा ही रह गया। मेरे कथन का अभिप्राय तुम्हारे ध्यान में आ जाए, तो उद्देश्य पूरा हो जाता है। यह न समझना कि मैं किसी विशेष लेख को लक्ष्य बनाकर अभी तक बोलता रहा हूँ। इस विषय पर विचार करते हुए, इस विषय के अनेक लेखों के संबंध में बोलना स्वाभाविक ही है, तो भी जो कुछ भी मैं तुम्हें बता चुका हूँ, उसके लिए निस्संदेह यह कहूँगा कि जो बातें बिलकुल प्रामाणिक रूप से समझता हूँ, वे बातें ही बताई हैं। यह तो प्रसिद्ध ही है कि इस समय प्रचार में हम कौन-कौनसे स्वरों का उपयोग करते हैं एवं उनमें कौन-कौनसा आंदोलन-संबंध है। मैं स्वयं कहता हूँ और किसी के इस कथन पर मुझे आश्चर्य नहीं होगा कि पिछली तीन-चार शताब्दियों में इन्हीं स्वरों का प्रचार रहा होगा। मेरे कथन का तात्पर्य तुम्हारे ध्यान में आ ही गया होगा। मेरा ध्येय सदैव यह रहा है और रहता है कि जो भी सिद्धांत समाज के सम्मुख कोई निश्चित करना चाहे, उसे ग्रंथोक्तियों का सरल अर्थ करके व्यवस्थित रीति से लोगों के सम्मुख रखना चाहिए। ऐसा करने पर हमारे कथन पर श्रोताओं की अधिक श्रद्धा होना संभव है। जबकि हम यह स्वीकार कर लेते हैं कि हमारे संस्कृत-ग्रंथकारों को स्वरों के आंदोलन का ज्ञान नहीं था, फिर द्विश्रुतिक, त्रिश्रुतिक, स्वरांतरों का मापक $\frac{१०}{९}$, $\frac{१६}{१५}$ आदि बिना प्रमाण के समाज कैसे स्वीकार करेगा ? कोई उत्तर देगा कि Minortone and Semitone के प्रमाण से सरलता से समझ में आ जाएगा। परंतु यह उचित नहीं माना जा सकेगा, क्योंकि लोग प्रश्न करेंगे कि ऐसा किसी संस्कृत-पंडित को दिखाई पड़ा ? क्या सोमनाथ व अहोबल को यह मालूम था ? अहोबल का त्रिश्रुतिक ऋषभ $\frac{६}{५}$ प्रमाण का है व सोमनाथ ने 'शुद्ध री' हिंदुस्तानी पद्धति के कोमल री जैसा माना है। हमारे पंडितों के ये दोनों ही प्रधान आधार हैं। इसका यही उत्तर होगा कि इन मध्यकालीन ग्रंथकारों ने प्राचीन स्वर-स्थान बिलकुल नहीं समझे। परंतु फिर ये हमारे पंडितों के आधार कैसे हुए ? तो भी इन ग्रंथकारों को गलत ठहराने पर जब तक कि 'स्वयंभू, सारणा व अनुरणन' की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय प्रमाण उपलब्ध न होंगे, तब तक मैं समझता हूँ कि समाज को यही संदेह रहेगा कि हमारे वर्तमान पंडितों को पाश्चात्य ग्रंथों ने भ्रम में डाल दिया है। अपने ग्रंथकारों की प्रशंसा जितनी अधिक हो सके, उतनी करना मुझे स्वीकार है, परंतु इस प्रशंसा में अन्याय न होना चाहिए। शार्ङ्गदेव ने श्रुतियों की क्या कल्पना दे रखी है, यह तुम देख ही चुके। उसके उस माप से क्या बाईस श्रुतियाँ स्थापित हो सकेंगी ? पश्चिम की ओर तीन प्रकार के स्वरांतर हैं तथा हमारे यहाँ भी इतने ही हैं। केवल इतने साम्य से ही पाश्चात्यों के आंदोलन-प्रमाण हमारे ग्रंथकारों के पल्ले बाँधना कैसे संभव है ? मैं समझता हूँ कि शायद हमारे विद्वान् अब अपनी नवीन संशोधित श्रुतियों के आधार पर ठाठ-रचना व जन्य राग-व्यवस्था करना

भी पसंद करेंगे। यदि उन्होंने ऐसा किया, तो भी हम उन्हें दोष नहीं देंगे। उनसे केवल इतना कहना ही पर्याप्त है कि उनके द्वारा की जानेवाली व्यवस्था ग्रंथोक्त नहीं होगी। यदि किसी ने नवीन पद्धति में अति कोमल, अति-अति कोमल, तीव्रतर, तीव्रतम आदि स्वरों की योजना की, तो उससे हमें विरोध नहीं है। मैं यह नहीं कहता कि प्रचार में सूक्ष्म स्वर आते ही नहीं। इन स्वरों को अलंकारिक स्वर की दृष्टि से किन्हीं रागों में यदि तुमने स्वीकार कर लिया, तो मेरी ओर से कोई बड़ा भारी विरोध नहीं होगा। हम देखते हैं कि हमारे वर्तमान हिंदुस्तानी संगीत में अनेक राग-स्वरूप बहुत-कुछ परिवर्तित हो गए हैं। इन्हीं में यह भी एक प्रकार का स्वरूप मान लिया जाएगा। परंतु यदि अलंकारिक श्रुतियों के फेर में पड़कर तुम नवीन ठाठ-व्यवस्था करने का कार्य अपने सिर ले लो, तो मैं तुम्हारे कृत्य को 'अव्यापारेषु व्यापार' कहूँगा, क्योंकि तुम्हारे ऐसे प्रयत्न से संभवतः अनेक लोकप्रिय राग-स्वरूपों में व्यर्थ ही भ्रष्टता होना संभव है। यह तुम देख ही चुके हो कि हमारे विद्वानों द्वारा संशोधित श्रुतियों की नीवँ कितनी मजबूत है? फिर यह स्पष्ट ही है कि उनकी शोध की सहायता से प्राचीन शास्त्रसम्मत श्रुति-व्यवस्था नहीं हो सकेगी। हमारे विद्वानों में यह साहस भी नहीं होगा कि वे यह कह सकें कि हम यह नवीन व्यवस्था कर रहे हैं। एक पंडित ने मुझे बताया था कि अति कोमल स्वरों के उपयोग करने की प्रथा मुसलमान गायक-वादकों द्वारा चली है।

यदि यही सत्य हो, तो फिर प्राचीन ग्रंथों की खींच-तान व्यर्थ क्यों की जाए? मैं तो भाई, अपनी द्वादश स्वर-पद्धति से ही संतुष्ट हूँ। शायद शार्ङ्गदेव से पुंडरीक तक चौदह स्वरों का प्रचार रहा हो, परंतु यह निर्विवाद मत है कि व्यंकटमखी व उसके अनुयायी सारामृतकार ने अपनी पद्धति स्पष्ट रूप से बारह स्वरों पर स्थापित की है। हमारे लोचन तथा अहोबल के लिखने का क्रम भी ऐसा ही दिखाई पड़ता है। बारह स्वर निश्चित करने पर व्यंकटमखी ने जनकमेल (ठाठ) ठीक निश्चित किए हैं। उसके वे ठाठ संपूर्ण देशों की पद्धतियों के उपयोग में आने योग्य थे। हिंदुस्तानी पद्धति में उन्हीं बारह स्वरों का प्रचार कर लक्ष्यसंगीतकार ने व्यंकटमखी की पद्धति स्वीकार की; और इस प्रकार उत्तम रूप से शास्त्र-परंपरा सुरक्षित रखी है। संपूर्ण ७२ ठाठ स्वीकार करते हुए, उसने अपने संगीत के उपयोग में आनेवाले व सुविधाजनक दस जनक मेल (ठाठ) मान लिए और इनकी मदद से जन्य-राग व्यवस्थित किए। दक्षिण की ओर के भिन्न ठाठ यदि लोकप्रिय हुए, तो उनका समावेश उन ७२ ठाठों में ही होगा। हमारे यहाँ सूक्ष्म स्वरों की थोड़ी-बहुत चर्चा हुई है, यह लक्ष्यसंगीतकार के भी ध्यान में होगी, क्योंकि वह कहता है :—

सूक्ष्मस्वरप्रयोगाणां विधानं श्रूयते क्वचित्।
ग्रंथोक्तनियमाभावात् तच्चर्चा वादमूलका॥
भिन्नश्रुतिसमायोगे परिणामो भवेत् पृथक्।
विज्ञानं तु तथाप्येतच्छ्रोतृगणेऽतिदुर्लभम्॥

अस्तु, अब हम इस विषय को एक ओर रखकर 'भैरव' राग पर विचार करेंगे। ठीक है न ?

प्रश्न—ठीक है, जैसी आपकी इच्छा हो कीजिए। हमें तो बिलकुल उकताहट नहीं हुई, बल्कि हमें इस चर्चा से आनन्द व ज्ञान ही प्राप्त हुआ। हमारे हित की दृष्टि से इसी प्रकार आपको जो भी उचित जान पड़े, उसे अवश्य ही प्रसन्नतापूर्वक सुनाइएगा।

भैरव ठाठ के स्वर तो आप हमें पहले ही बता चुके हैं, अब आगे चलिए ?

उत्तर—भैरव ठाठ को 'संधिप्रकाश' ठाठ माना गया है। पिछली बार मैं तुम्हें संक्षेप में बता चुका हूँ कि संधिप्रकाश किसे कहते हैं। तुम चाहो तो एक बार पुनः उसका स्मरण करा दूँ। व्यवहार में प्रभात व संध्याकाल संधिप्रकाश समझे जाते हैं; यह मान्यता एक स्थूल रूप से चल रही है। हम रोज देखते हैं कि संधिप्रकाश सूर्योदय व सूर्यास्त के कुछ देर पहले से आरंभ होता है तथा कुछ देर बाद तक रहता है। इस समय का विशेष महत्त्व हमारे संगीत-ज्ञाता भी मानते हैं। यह मैं कह चुका हूँ कि हमारी इस प्रकार की कल्पनाओं को पाश्चात्य विद्वान् बिलकुल भ्रांति-मूलक व निराधार समझते हैं, तथापि हम इन कल्पनाओं का अकारण निरादर नहीं करेंगे। यदि किसी ने यह प्रश्न किया कि संधिप्रकाश ठाठों के स्वरों में ऐसी क्या विलक्षणता है, जो कि वे अन्य समय में मधुर नहीं लगेंगे ? तो इसका उत्तर शायद तुम पदार्थ-विज्ञान या नाद-शास्त्र की दृष्टि से नहीं दे सकोगे। परंतु इस समय गाए जानेवाले ठाठों में अमुक प्रकार के स्वर ही नियमपूर्वक पसंद किए जाते हैं, यह बात अवश्य विचारणीय है ! हमें शास्त्रीय विवाद की गहराई में नहीं जाना है। मैं सुनता हूँ कि नाद का परिणाम मनुष्य पर किस समय कैसा होता है, इस संबंध में पाश्चात्य विद्वान् भी एक मत नहीं हुए हैं ! कोई कहेगा कि आगे चलकर हमारी प्राचीन मान्यता निराधार व भ्रष्ट सिद्ध होगी ! परंतु यह चिंता हमें क्यों होनी चाहिए ? हमें तो तात्कालिक स्थिति का वर्णन करना है। इतना करने पर हमारा कर्तव्य पूरा हो जाता है।

प्रश्न—आपका यह कथन उचित है। हम तो कहेंगे कि आगे चलकर यदि पाश्चात्य विद्वानों की कृपा से हमारा संगीत कुछ भिन्न स्वरूप धारण कर ले, तो भी भविष्य के संगीत-विद्यार्थी को यह इच्छा अवश्य उत्पन्न होगी कि हम पहले क्या और कैसे गाते थे। यह तर्क हम अपने स्वतः के अनुभव के आधार पर करते हैं। प्राचीन ग्रंथ-संगीत आज उस समय के नियमों से गाया हुआ दिखाई नहीं पड़ता, इससे हमें यह जानने की कितनी तीव्र उत्कंठा होती है कि वह कैसा रहा होगा ? ऐसी ही स्थिति भविष्य के शिक्षार्थियों की होगी। साथ ही आज का अपना संगीत हम किन-किन नियमों से गाते-बजाते हैं, यह भी तो प्रत्येक विद्यार्थी को जानना चाहिए न ? 'संधिप्रकाश ठाठ' कहने मात्र से ही अब पद्धति सीखना-सिखाना सुविधापूर्ण हो जाता है।

उत्तर—हाँ, यह मैं कहने ही वाला था। भैरव, पूर्वी व मारवा इन तीन संधिप्रकाश ठाठों में तुम्हारे संगीत का लगभग तिहाई हिस्सा आ जाएगा, यह मामूली बात नहीं है।

प्रश्न—भैरव ठाठ में हमें कितने राग सिखाए जाएँगे ?

उत्तर—संभवतः मैं तुम्हें अच्छे-अच्छे चौदह-पन्द्रह राग बताऊँगा। उनके नाम यथास्मरण कहे देता हूँ। सुनो :—

१. भैरव, २. रामकली, ३. गुणक्री, ४. जोगिया, ५. सावेरी, ६. प्रभात, ७. कालिंगड़ा, ८. मेघरंजनी, ९. बंगाल-भैरव, १०. सौराष्ट्रटंक, ११. विभास, १२. शिवमत-भैरव, १३. अहीर-भैरव, १४. आनंद-भैरव और १५. ललित-पंचम। किंतु यह न समझना कि मैं इसी क्रम से ये राग बतानेवाला हूँ।

भैरव ठाठ में प्रयुक्त मध्यम को हम 'कोमल' या 'शुद्ध' कहेंगे। हमारे गायक-वादक, ये दोनों नाम एक ही नाद के समझते हैं। इस मध्यम के प्रयोग से भैरव ठाठ के रागों में प्रातर्गेयत्व माना जाता है। भैरव राग उत्तर-रागों में से एक माना गया है। प्रभात काल के संपूर्ण राग इसी वर्ग के अंतर्गत माने जाते हैं।

प्रश्न—तो फिर एक वर्ग 'पूर्व-राग' नामक भी होगा? दोनों में भेद क्या होता है ?

उत्तर—ऐसा सुना जाता है कि जिस समय प्राचीन काल में कभी मध्याह्न से मध्याह्न तक पूरा दिन मानने की परिपाटी प्रचलित थी, उस काल से इस वर्गीकरण का संबंध है। यद्यपि इस बात का कोई लिखित प्रमाण चाहे न मिले, परंतु बहुत-सी बातें ऐसी हैं, जो इस वर्गीकरण का समर्थन करेंगी।

प्रश्न—कैसे ?

उत्तर—समझाता हूँ, सुनो ! दोपहर बारह बजे से रात्रि के बारह बजे तक के भाग को यदि हम पूर्व-भाग मान लें, तो मध्य रात्रि से मध्याह्न तक के भाग को उत्तर भाग कह सकेंगे। अब ये विभाग हम भिन्न दृष्टि से करते हैं। रात्रि व दिवस के विभाग तो प्रसिद्ध ही हैं।

प्रश्न—अच्छा, अच्छा समझ गए। पूर्व-भाग में गाए जानेवाले राग 'पूर्व-राग' व उत्तर-भाग में गाए जानेवाले 'उत्तर-राग' कहे जाते होंगे ?

उत्तर—तुम्हारे ध्यान में ठीक आ गया। ऐसी ही योजना अपने प्राचीन संगीतज्ञ, विद्वानों की दिखाई देती है। यह प्रारंभ कब हुई होगी, यह मैं

कैसे बता सकता हूँ ? किंतु यह जानना तुम्हारे लिए आवश्यक भी नहीं है। मर्मज्ञों को भी यह चमत्कार अनुभव हुआ है कि पूर्व-रागों में वादी स्वर किस प्रकार क्रमश: आगे बढ़ता है और वही फिर किस खूबी से तार-षड्ज की ओर वापस जा पहुँचता है। मार्मिक व्यक्तियों को इसमें बड़ा कौतुक दिखाई देता है। भैरव राग में मध्यम की ओर अपना ध्यान तत्काल जाता है। उत्तर-रागों में उस स्वर की प्रबलता तीव्र मध्यम से अधिक होती है। एक मजे की बात देखो कि जिस राग में तीव्र मध्यम अधिक प्रयुक्त हो तथा वह राग की रंजकता अधिक बढ़ाता हो, तो ऐसे राग अधिकतर सूर्योदय से सूर्यास्त तक के समय के ही पाए जाएँगे। पिछले समय ठाठों के संबंध में बोलते हुए मैंने यह कहा भी था, ठीक है न ? इसी से हमारे गायक कहते हैं कि तीव्र मध्यम स्वर रागों का रात्रिगेयत्व-सूचक है। हमारी पद्धति के प्रमुख नियमों में से यह भी एक नियम समझना चाहिए। जैसे-जैसे तुम्हारा अनुभव बढ़ेगा, वैसे-वैसे तुम इस रहस्य को अच्छी तरह समझ सकोगे।

प्रश्न—भैरव ठाठ का आश्रय-राग भैरव ही समझा जाएगा न ?

उत्तर—मेरी राय में ऐसा मान लेने में कोई हानि नहीं है। शायद कोई सुझाए कि भैरव की अपेक्षा कालिंगड़ा राग अधिक सरल समझा जाता है तथा उसमें नियमों की भी विशेष उलझन नहीं, इसलिए उसे 'आश्रय-राग' मान लेना अधिक सुविधाजनक होगा, परंतु हम ऐसा नहीं करेंगे। भैरव हमारी पद्धति का अत्यंत प्रसिद्ध व प्राचीन राग माना जाता है, अत: इसी मान्यता के अनुसार हम चलेंगे और भैरव राग को ही आश्रय-राग का सम्मान देंगे। प्राचीन संस्कृत के सभी ग्रंथों में भैरव राग की गणना प्रमुख रागों में हुई दिखाई देती है। उत्तम रीति से राग कालिंगड़ा का गायन भी उतना सरल नहीं है, जितना समझा जाता है। इसमें भी कुछ भागों को सँभालना बड़ी कुशलता का कार्य है।

प्रश्न—थोड़ी देर के लिए यह समता झिंझोटी व खमाज-जैसी ही कही जा सकती है। झिंझोटी राग सरल व सुगम होने से खमाज ठाठ का आश्रय-राग कहा गया था। हमने तो इसके संबंध में यह स्थूल नियम ध्यान में जमा लिया कि स्थायी व अंतरा नियमित रूप से सँभालकर जिस राग की तानबाजी गायक अपने गाने में धकेल देते हैं, उस राग को थोड़ा-बहुत आश्रय-रागत्व प्राप्त हो जाता है। प्रत्येक ठाठ के जन्य रागों का 'शरीर' अथवा 'धड़' आश्रय-राग कहा जा सकेगा।

उत्तर—यह बड़ी सुविधापूर्ण मान्यता है। अस्तु, भैरव राग के गाने का समय प्रात:काल माना गया है। इसमें भी किसी का मत सूर्योदय के थोड़े पहले गाने का है तथा दूसरे मत से इसे सूर्योदय के बाद गाना चाहिए। 'लोचन' कहता है :—

ब्राह्मे मुहूर्ते गातव्यो भैरवो रागसत्तमः ।
अरुणोदयवेलायां गेया रामकली पुनः ॥

हम राग के गायन-समय-संबंधी बहुत सूक्ष्म भेद नहीं करेंगे। प्रचार में यह राग तुम्हें कहीं सूर्योदय के पूर्व व कहीं सूर्योदय के बाद में सदैव गाया हुआ मिलेगा और वह समझ में आ जाएगा। जबकि हमें प्रातःकाल के अच्छे-अच्छे दस-बीस रागों की व्यवस्था करनी है, तब सभी के लिए पूर्ण समाधानकारक व सुविधाजनक समय की व्यवस्था निश्चित करना सरल कार्य नहीं है। परंतु इतने गहरे हम जाएँ ही क्यों? हमारे संस्कृत-ग्रंथकार भी इस झंझट को पसंद नहीं करते थे। अधिकांश ग्रंथकारों ने केवल 'प्रभाते, प्रातःकाले, उषसि संगवे' यही कहा है। मैं समझता हूँ कि हमें भी उनकी जैसी व्यवस्था कर लेनी पर्याप्त होगी।

प्रश्न——परंतु रागों के भिन्न-भिन्न वादी स्वरों व अन्य लक्षणों की ओर सूक्ष्म ध्यान देते हुए यदि किसी ने गायन-समय की दृष्टि से रागों का कोई क्रम निर्धारित करने का प्रयत्न किया तो?

उत्तर——तो हम उसे 'अधिकस्य अधिकं फलम्' कहेंगे। इसके अतिरिक्त और कह ही क्या सकते हैं? खैर, रात्रि के अंतिम प्रहर में तुम्हें धीरे-धीरे आगे चलकर आभास होगा कि तार-षड्ज स्वर सारे गायन का जीवभूत स्थान हो जाता है। इस स्वर पर गायक की आवाज उत्तम रूप से चमकने लगती है और षड्ज, मध्यम व पंचम को कुछ अद्‌भुत महत्त्व प्राप्त हो जाता है। तार-षड्ज की ओर श्रोताओं के कान स्वतः लगे रहते हैं। आते-जाते गायक इसी स्वर पर विश्रांति लेता रहता है। जैसे-जैसे प्रभातकाल निकट आने लगता है, वैसे-वैसे उत्तरांग के अन्य स्वर भी अपना-अपना वैचित्र्य प्रकट करने लगते हैं, फिर विश्रांति-स्थल पंचम स्वर हो जाता है। हमारे गायक निषाद व तीव्र म को स्वतंत्र स्वर नहीं मानते, इन्हें कुछ परावलंबी स्वर माना गया है। हमें भी यह दीख पड़ेगा कि केवल निषाद या तीव्र मध्यम पर कुछ ही गीत निर्भर किए जा सकते हैं। इसमें संदेह नहीं कि ये स्वर गायक को सदैव आगे या पीछे धकेलने का प्रयत्न करते हैं। ऐसा क्यों होता है, यह खोज निकालने की हमें आवश्यकता नहीं है। उत्तर-रागों में उत्तरांग की प्रधानता होती है तथा सा, नि, ध, प, म स्वरों की ओर श्रोताओं का लक्ष्य अपने-आप जा पहुँचता है। पिछले समय मैं तुम्हें बता ही चुका हूँ कि इन रागों की सारी खूबी अवरोह में होती है। उत्कृष्ट कोटि का स्वर-ज्ञान होने पर यह बात तत्काल ध्यान में आने लगती है। उत्तर-राग में उत्तरांग का ही कोई एक स्वर वादी होता है। यह फिर से बताने की आवश्यकता नहीं है कि हम वादी, विवादी, संवादी आदि शब्दों का प्रचलित अर्थ ही स्वीकार करते हैं। एक बार मैं तुमसे यह कह भी चुका हूँ कि इन शब्दों का वास्तविक मर्म शार्ङ्गदेव ने क्या समझा था, यह अभी तक किसी ने स्पष्ट नहीं किया।

प्रश्न——भैरव राग में कौनसा स्वर वादी माना जाता है?

उत्तर——इस राग में वादी धैवत व संवादी ऋषभ माना जाता है। प्रभात के रागों में सा, म, प, ध में से कोई एक स्वर वादी होता ही है। प्रचार में भैरव को आजकल संपूर्ण राग माना जाता है।

प्रश्न—अब संपूर्ण राग माना जाता है, यानी इसका प्राचीन काल में भिन्न रूप से प्रचार रहा होगा ? यही बात है न ?

उत्तर—हाँ, किसी-किसी संस्कृत-ग्रंथ में भैरव की जाति औडुव भी दिखाई पड़ती है ?

प्रश्न—वहाँ किन-किन स्वरों को वर्ज्य बताया गया है।

उत्तर—वहाँ ऋषभ और पंचम को वर्ज्य बताया गया है। यह बात मैं आगे चलकर बताने ही वाला हूँ। हमारा प्रचार इस प्रकार का नहीं है, हम भैरव को ही मानेंगे ?

प्रश्न—तो क्या फिर भैरव ठाठ में रे, प वर्ज्य कर एक नवीन राग उत्पन्न नहीं किया जा सकता।

उत्तर—हाँ, ऐसा हो सकता है। पंचम वर्ज्य करनेवाला ऐसा दूसरा राग तुम्हारी दृष्टि में क्वचित् ही पड़ेगा। प्रातःकाल के समय पंचम एक महत्त्वपूर्ण स्थान होता है, यह मैं पहले भी थोड़ा-सा सुझा चुका हूँ। पूर्वांग में जैसे षड्ज महत्त्वपूर्ण विश्रांति-स्थान है, उसी प्रकार उत्तरांग में पंचम को मानना चाहिए। यह केवल शब्दों में वर्णन कर बताने योग्य नहीं है कि प्रातःकालीन रागों में पंचम-उपयोग का प्रभाव श्रोताओं पर कैसा होता है। तुम इस स्वर को अच्छी तरह अभ्यास कर साध लो। यह कार्य कठिन नहीं है, अवरोह में इस स्वर पर भिन्न-भिन्न प्रकार की छोटी-छोटी तानें लगाने में ही सारी खूबी है। अपने अशिक्षित गायक भी इस स्वर के चमत्कार का वर्णन अपने-अपने तरीकों से करते रहते हैं। एक मुसलमान गायक ने मुझे बताया कि 'कभी-कभी पंचम पर कायम होते समय मेरे शरीर के रोम-रोम खड़े हो जाते हैं।' यह बात नहीं है कि इस गायक का कथन बिलकुल अर्थहीन हो, पंचम स्वर का इस प्रकार महत्त्व होने से प्रभात के रागों में, विशेषकर भैरव ठाठ के रागों में यह स्वर क्वचित् ही वर्ज्य किया जाता है। यह न समझना चाहिए कि इस स्वर को छोड़ने पर राग गाते ही नहीं बनेगा, मैंने तो एक साधारण प्रचार की बात बताई है। अस्तु, मैं यह कह चुका हूँ कि भैरव एक संपूर्ण राग माना जाता है। यह भी मैंने कहा है कि कुछ ग्रंथकार भैरव में रे, प वर्ज्य करते हैं, भैरव को संपूर्ण मानने के लिए ग्रंथाधार भी प्राप्त होते हैं। इससे कोई भी कह सकता है कि देश-काल के अनुसार संगीत में परिवर्तन होकर आरंभ का औडुव स्वरूप पिछड़ गया होगा।

प्रश्न—क्या भैरव राग 'रत्नाकर' में भी बताया गया है ?

उत्तर—हाँ, यह राग उस ग्रंथ में आया अवश्य है, परंतु उस ग्रंथ के राग-वर्णन के संबंध में अभी एकमत न होने से हमारे विद्वान् 'रत्नाकर' के संगीत को कुछ विवादग्रस्त ही मानते हैं। इस ग्रंथ में रागों का वर्णन मूर्च्छना आदि के सहारे किया

गया है, यह मैं तुम्हें पहले बता ही चुका हूँ। तथापि यह सुना जाता है कि उन रागों का निर्णय अब शीघ्र ही होनेवाला है।

प्रश्न—हमारी इच्छा यह समझने की है कि 'रत्नाकर' के राग-वर्णन कहाँ व कैसे दुर्बोध हो जाते हैं। इस कठिनाई की कल्पना क्या हमें करा देंगे? अधिक विवाद में उतरने की हम आप से प्रार्थना नहीं करेंगे?

उत्तर—तुम चाहते हो, तो थोड़ीसी कल्पना कराए देता हूँ। मैं समझता हूँ कि यदि मैं यह भाग किसी उदाहरण से तुम्हें बताऊँ, तो तुम शीघ्र समझ जाओगे। तुम्हारे इस भैरव को ही लो। शार्ङ्गदेव पंडित कहता है कि भैरव राग 'भिन्नषड्ज' ग्रामराग से उत्पन्न होता है। इससे अब यह प्रश्न उत्पन्न होगा कि भैरव का ठाठ कौनसा होगा?

प्रश्न—ठाठ भिन्नषड्ज का ही होगा, यह सहज ही अनुमान किया जा सकेगा?

उत्तर—यह अनुमान से नहीं ठहराया जा सकता। शार्ङ्गदेव स्वतः कहता है, जैसे 'भैरवस्तत्समुद्भवः' अर्थात् 'भिन्नषड्जसमुद्भवः'। 'रत्नाकर' के ग्राम-रागों में जनकत्व (ठाठ-रूप) माना गया है व जन्यराग उसके विशेष लक्षण से वर्णित किए गए हैं। 'ग्रामराग' नाम के संबंध में कल्लिनाथ अपनी टीका में कहता है :—

ग्रामयोर्जातिव्यवधानेनोपपन्नानामपि भाषारागाद्यपेक्षया व्यवधानाल्पत्वादेतेषां ग्रामरागत्वव्यपदेशः। यथाऽऽह मतंगः, नन्वेते रागा ग्रामविशेषसंबंधात्कुतोऽयं विशेषलाभः। उच्यते भरतवचनादेव। तथा चाऽऽह भरतः, जातिसंभूतत्वाद्रागाणामिति। यत्किंचिद्गीयते लोके तत्सर्वं जातिषु स्थितम्।

प्रश्न—'ग्रामराग' का क्या अर्थ है, इतनी-सी बात सरलता से न बताकर भरत व मतंग के हवाले देने का क्या मतलब है? कोई निर्भीक आलोचक तो यही कहेगा कि कल्लिनाथ प्राचीन रागों की व्याख्या ठीक से समझा ही नहीं था। खैर, आगे चलिए।

उत्तर—'ग्रामराग' आदि सब प्रपंच 'जाति' से उत्पन्न किए हैं, यह शार्ङ्गदेव स्वयं बताता है :—

× × ×

दृश्यन्ते जन्यरागांशास्तज्ज्ञैर्जनकजातिषु।

× × ×

ऋचो यजूंषि सामानि क्रियन्ते नान्यथा यथा।
तथा सामसमुद्भूता जातयो वेदसंमताः॥

यह एक भिन्न प्रश्न है कि 'रत्नाकर' में शार्ङ्गदेव ने कुछ बातें सुनी-सुनाई भी सम्मिलित कर ली हैं ? हम आज इसका निर्णय नहीं करनेवाले हैं। उक्त श्लोकों पर कल्लिनाथ इस प्रकार टीका करता है :—

जन्यरागांशा ग्रामरागादयो दशविधा अपि जातीनां साक्षात् परंपरया वा जन्यरागा एव तेषामंशा अवयवाः। रागैकदेशा इत्यर्थः। तज्जनकजातिषु साक्षात् परंपरया स्वेषां जनकासु जातिषु रागभेदविद्भिर्दर्श्यंत उद्भाव्यंते इत्यर्थः। यथाऽऽह मतंगः, ग्रामरागाणामेवालापनप्रकारा भाषा वाच्याः। भाषाशब्दोऽत्र प्रकारवाची। एवं विभाषांतरभाषाशब्दावपि तत्तदनंतरोत्पन्नालापप्रकारवाचका-वित्यवगंतव्यम्।

तुम्हें अभी इतना ही ध्यान में रखना है कि 'ग्रामराग' जाति से उत्पन्न माने जाते थे और वे ही फिर अन्य रागों के उत्पादक मान लिए जाते थे। अनेकों का मत है कि शार्ङ्गदेव के समय जाति-गायन का प्रचार नहीं रहा था। कभी-कभी कोई यह भी पूछते हैं कि शार्ङ्गदेव के बताए हुए राग 'मार्ग-संगीत' हैं या 'देशी संगीत' ? प्रश्नकर्ता शायद इसी कारण यह भी पूछ लेता है कि शार्ङ्गदेव ने अपने राग ग्राम, मूर्च्छना, जाति की सहायता से वर्णित किए हैं ? विद्वानों की यह धारणा है कि शार्ङ्गदेव के समय सारा 'देशी संगीत' ही प्रचलित था। उनका यह खयाल दुरुस्त भी है। प्रबंधाध्याय में उसने 'गांधर्व' व 'गान' नामक जो भेद कहे हैं, वे मैं तुम्हें बता ही चुका हूँ। इसपर कल्लिनाथ टीका करते हुए कहता है :—

गांधर्वं मार्गः, गानं तु देशीत्यवगंतव्यम्। अनादिसम्प्रदायमित्यनेन गांधर्वस्य वेदवदपौरुषेयत्वमिति सूचितं भवति। गानं तु वाग्गेयकारादिपरतंत्रत्वा-त्पौरुषेयमेव। स्वरगतरागविवेकयोर्जात्याद्यंतरभाषांतं यदुक्तं तद्गांधर्वमित्यर्थः।

'हनुमन्मत' की यह बात प्रसिद्ध है कि 'देशी संगीत' में श्रुति, स्वर, ग्राम आदि के नियम टूट जाते हैं; जैसे :—

येषां श्रुतिस्वरग्रामजात्यादिनियमो न हि।
नानादेशगतिच्छाया देशीरागास्तु ते मताः॥

× × ×

इसपर कल्लिनाथ कहता है :—

'देशीत्वादेतेषामनियमो न दोषायेति। देशीत्वं च तत्तद्देशजनमनोरंजनैक-फलत्वेन कामचारप्रवर्तित्वम्। नियमे तु सति तेषां गीतानां मार्गत्वमेव।

इस अंतिम वाक्य पर एक बार मुझसे एक व्यक्ति नें प्रश्न किया कि यदि हम अपने आज के प्रचलित गीतों में से कोई एक 'रत्नाकर' में बताए हुए प्रमाण से गाने लगें, तो क्या वह 'मार्ग-संगीत' हो जाएगा ?

प्रश्न—हमारी राय में तो ऐसा नहीं हो सकता। यदि 'मार्ग-संगीत' ब्रह्मा आदि ने सर्वप्रथम ईश्वरोपासना के लिए ही वेदों से उत्पन्न किया हो, तो वह शब्दप्रधान भी माना जाएगा। ठीक है न ?

उत्तर—तुम्हारे कथन में भी कुछ अर्थ है। इसमें संदेह नहीं कि शार्ङ्गदेव के ग्रंथ का संगीत देशी ही था। 'जाति-गायन' के विषय में वह विद्वान् कहता है :—

ब्रह्मप्रोक्तपदैः सम्यक् प्रयुक्ताः शंकरस्तुतौ।
अपि ब्रह्महणं पापाज्जातयः प्रपुनंत्यमूः॥

इसी बात पर व्यंकटमखी इस प्रकार कहता है :—

रागास्तावद्दशविधा भरताद्यैरुदीरिताः।
ग्रामरागाश्चोपरागा रागा भाषाविभाषिकाः॥
तथैवांतरभाषाख्या रागांगाख्यास्ततः परम्।
भाषांगाणि क्रियांगाणि चोपांगानि पुनः क्रमात्॥
दशस्वेतेषु रागेषु ग्रामरागादयः पुनः।
रागास्त्वंतरभाषांता मार्गरागा भवंति षट्॥
ततो गंधर्वलोकेन प्रयोज्यास्ते व्यवस्थिताः।
तस्माद्रागांगभाषांगक्रियांगोपांगसंज्ञिकाः॥
रागाश्चत्वार एवैते देशीरागाः प्रकीर्तिताः॥

दक्षिण में सभी ओर इसी प्रकार की धारणा है, इसी लिए अर्वाचीन लेखक इस प्रकार कहता है :—

रत्नाकरः शास्त्रग्रंथेष्वाद्येष्वनुपमो मतः।
तत्राप्यंगीकृतं नूनं प्राधान्यं देशिकस्य तत्॥
लक्ष्यमार्गेऽधुना यावत्स्वरूपं परिदृश्यते।
तत्सर्वं देशिकं भूयादित्याहुर्लक्ष्यवेदिनः॥

इसे अब सभी स्वीकार करते हैं कि शार्ङ्गदेव के समय 'मार्ग संगीत' का प्रचार नहीं था। उसने 'अधुना प्रसिद्ध' शीर्षक से जिन रागों का वर्णन किया है, यदि उन रागों के स्वरूप उसके वर्णन के अनुसार कैसे थे, यह एक बार हमारे विद्वान् उचित प्रमाणों से सिद्ध कर दें, तो यह कहा जाएगा कि एक बड़ा ही महत्त्वपूर्ण कार्य पूरा हुआ। उसमें भी यदि उस संगीत का संबंध हमारे हिंदुस्तानी संगीत से मिलाना संभव हो सके, तो सोने में सुगंध हो जाए, परंतु यह काम बड़ा ही कठिन है।

प्रश्न—ये राग दक्षिण के ग्रंथों में भी प्राप्त होते होंगे ?

उत्तर—हाँ, हाँ, इनमें से अनेक राग वहाँ भी मिलते हैं। परंतु उस तरफ के ग्रंथकारों ने 'रत्नाकर' के रागाध्याय से अपना मत ठीक रूप से मिलाकर निश्चित नहीं किया, अतः इतिहासप्रिय जिज्ञासुओं को कुछ निराश होना पड़ता है, नहीं तो वे ग्रंथ भी उपयोगी हैं।

प्रश्न—मध्यकालीन हिंदी व उर्दू के ग्रंथों का न जाने कितना उपयोग होगा ?

उत्तर—मैंने इस प्रकार के दस-पाँच ग्रंथ देखे हैं, परंतु उन्हें देखकर मुझे यह नहीं सूझ पड़ा कि 'रत्नाकर' छोड़ देनेवाले के लिए उनका अधिक उपयोग हो सकेगा। वे ग्रंथ तुम आगे पढ़नेवाले हो ही। प्राचीन ग्रंथों का विवाद-ग्रस्त भाग तो श्रुति-मूर्च्छना-ग्राम व जाति ही हैं न। इनका खुलासा इन देशी भाषा के ग्रंथों में क्या किया गया है, यह देखना ही पर्याप्त है। शार्ङ्गदेव के राग किसने व कैसे छोड़ दिए हैं, यह मनन करके देख लेने से ही तुम यह भी देख सकोगे कि उस ग्रंथकार ने प्राचीन संगीत कितना समझ रखा था। यह कहने की आवश्यकता ही नहीं है कि द्वार के बाहर-बाहर, बिना अंदर प्रवेश किए भरत, शार्ङ्गदेव का कोरा गुण-गान करना उपयोग में आने-योग्य नहीं हो सकता।

प्रश्न—आपका यह कथन ठीक ही जान पड़ता है। हमें तो वास्तविक प्रकाश चाहिए। परंतु हम आपको अन्य चर्चा में डालना पसंद नहीं करेंगे। उन देशी भाषा के ग्रंथों के संबंध में आपको जहाँ योग्य मालूम हो, एवं जितना उचित जान पड़े, उतना आप हमें बताएँगे ही ?

उत्तर—तो फिर ठीक है। हाँ, तो मैं क्या कह रहा था ?

प्रश्न—आपने कहा था कि 'ग्राम-राग' जाति से उत्पन्न होकर जन्यरागों का उत्पादक हो जाता है।

उत्तर—हाँ ठीक है। अब जबकि 'भैरव' को 'भिन्नषड्जसमुद्भवः' कहा गया है, तब इन दोनों का एक ही ठाठ माना जाएगा। 'मध्यम-ग्राम' नामक

ग्राम-राग का जन्यराग 'मध्यमादि' बताते हुए पंडित कल्लिनाथ ने किस प्रकार स्पष्ट व्याख्या की है, जरा उसे देखो :—

तत्र रागांगस्य मध्यमादेर्जनकस्य मध्यमग्रामाभिधस्य ग्रामलक्षणमुक्त्वा तस्यालापकरणाक्षिप्तिकाश्च प्रस्तार्य 'तदुद्भवा मध्यमादिर्मग्रहांशा' इत्येतावदेव मध्यमादेर्लक्षणमुक्तम् । तस्य तावत एवापर्याप्तत्वादनुक्तमन्यतो ग्राह्यमिति प्रकृति-विकृतिन्यायेन स्वहेतुभूतान्मध्यमग्रामरागात्काकलीयुतमन्यासः सौवीर-मूर्च्छनः प्रसन्नाद्यवरोहिभ्यां युतः संधौ विनियोज्यः हास्यशृंगारकारको ग्रीष्मेऽह्नः प्रथमे यामे ध्रुवप्रीत्येति सर्वमपि लिंगविपरिणामेन ग्राह्यम् ।

यह सब सरलता से समझ में आने-योग्य है न ? यह प्राचीन रीति प्रसिद्ध ही है। अहोबल ने अपने रागों के स्वर बताते हुए कहा है :—

असाधारणधर्मा ये लक्षणत्वेन कीर्तिताः ।
तैरेव रागभेदाः स्युः ॥ —इत्यादि

आगे चलकर संक्षेप में इस प्रकार नियम बताया है :—

विशेषलक्षणादेव जन्यस्य जनकाद्भेदोऽवगंतव्यः ।
एवमन्येषु रागेष्वपि द्रष्टव्यम् ॥

प्रश्न—तो अब आप हमें 'रत्नाकर' में वर्णित 'भिन्न-षड्ज' व 'भैरव' के लक्षण सुना दीजिए ?

उत्तर—वे इस प्रकार हैं :—

'षड्जोदीच्यवतीजातो भिन्नषड्जो रिपोज्झितः ।
धांशग्रहो मध्यमांत उत्तरायतया युतः ॥
संचारिवर्णरुचिरः प्रसन्नान्तविभूषितः ।
काकल्यंतरसंयुक्तश्चतुराननदैवतः ॥
हेमंते प्रथमे यामे बीभत्से सभयानके ।
सार्वभौमोत्सवे गेयो भैरवस्तत्समुद्भवः ॥
धांशो मांतो रिपत्यक्तः प्रार्थनायां समस्वरः ॥

इस लक्षण में 'षड्जोदीच्यवती' जाति कही गई है। इसके लक्षण अभी तक मैंने तुम्हें नहीं बताए, वे इस प्रकार हैं :—

> अंशाः समनिधाः षड्जोदीच्यवायां प्रकीर्तिताः।
> मिथश्च संगतास्तेस्युर्मंद्रगांधारभूरिता॥
> षड्जर्षभौ भूरितारौ रिलोपात्पाडवं मतम्।
> औडुवं रिपलोपेन धैवतेंऽशे न षाडवम्॥

इसमें तुम्हें यही मुख्य बात देखने की है कि इस जाति में सा, म, नि और ध स्वर 'अंश' हो सकते हैं, औडुव-रूप में रि, प वर्ज्य होगा, षाडव-रूप में ऋषभ वर्ज्य होगा, मूर्च्छना धैवत की होगी, आदि।

प्रश्न—ये सब समझ में आ गए। 'भिन्नषड्ज' में धैवत को अंश स्वर कहा ही है। रे, प वर्ज्य बताना भी ठीक ही है, क्योंकि यह राग औडुव है। परंतु ठाठ कौनसा है? ओहो! वह उत्तरायता मूर्च्छना से समझ लेना पड़ेगा, है न? इस मूर्च्छना का आरंभ धैवत से होता है, जैसे—'ध, नि, सा, रे, ग, म, प, ध' यह तो हमारी समझ में आ गया।

उत्तर—इस रीति से स्वरांतर कैसे हो जाएँगे, बताओ तो?

प्रश्न—वे इस प्रकार होंगे—२, ४, ३, २, ४, ४, ३। परंतु यह कैसे चल सकेगा गुरु जी! धैवत पर हमने षड्ज मान लिया, तो आरंभ के 'ध, नि, सा, रे' स्वर 'सा, रे, ग, म' हो जाएँगे—परंतु इसमें गांधार षड्ज से छठी श्रुति पर आएगा और वह साधारण 'ग' (हिंदुस्तानी पद्धति का कोमल ग) होगा। आगे नवीं श्रुति पर आया हुआ 'म' चल जाएगा, परंतु पंचम बिगड़ जाएगा। क्योंकि दो श्रुति का पंचम कैसे ग्रहण किया जा सकेगा? धैवत पंद्रहवीं श्रुति पर आएगा, अर्थात् वह कोमल धैवत ठीक होगा, निषाद १९-वीं श्रुति पर आएगा, जो कैशिक 'नि' होगा। अंत में तार 'सां' ठीक ही है।

उत्तर—तो फिर इस मूर्च्छना से तुम्हारे कौन-कौन-से स्वर बिगड़ जाते हैं; देखें, बताओ तो!

प्रश्न—पंचम बिलकुल बिगड़ा हुआ आया है और गांधार व निषाद स्वर कोमल आए; ये तीव्र होते तो 'भैरव' ठाठ अच्छी तरह मिल जाता।

उत्तर—और क्या कोई यह नहीं कह सकता कि 'रागलक्षण' में 'काकल्यंतर-संयुक्तः' ठीक ही कहा है? यह भी कहा जा सकता है कि पंचम भ्रष्ट आता है, इसी लिए उसे बिलकुल वर्ज्य किया है। ऋषभ वर्ज्य कर देने से तुम्हारा ठाठ-संबंधी हिताहित क्या होगा?

प्रश्न—इस तरीके से ये लक्षण कुछ व्यवस्थित अवश्य हो जाएँगे; किंतु हम तो एक दूसरा ही तर्क कर रहे हैं।

उत्तर—वह कौनसा ?

प्रश्न—हम यह देख रहे थे कि दक्षिणी ठाठ की दृष्टि से क्या परिणाम होता है ?

उत्तर—फिर क्या दिखाई दिया ?

प्रश्न—उनका ठाठ लेकर उसमें केवल शुद्ध ग, नि के स्थान पर काकली व अंतर स्वर लगा देने का काम हो जाता है। ग्राम, जाति, मूर्च्छना का झंझट ही मिट जाता है। 'धांशो, मांतो रिपत्यक्त:' लक्षण स्वीकार करना पड़ेगा। आपने यह कहा ही था कि दक्षिण में जाति की उलझन बिलकुल नहीं है। यह स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि हम एक व्यर्थ ही पहेली बुझा रहे हैं। शायद हमारे तर्क बिलकुल गलत भी ठहरा दिए जाएँ। परंतु ठहरिए, उधर के ग्रंथकार भैरव में रि, प वर्ज्य करने के लिए कहते हैं क्या ?

उत्तर—यह बात नहीं है कि वहाँ ऐसा कहनेवाले ग्रंथकार ही न हों। अच्छा, परंतु दक्षिण-पद्धति की दृष्टि से फिर मूर्च्छना व जाति के लिए कौनसा मार्ग रहेगा ?

प्रश्न—मूर्च्छना समझ जाने से ग्रह, अंश, न्यास समझ सकेंगे। जाति से वर्ज्य स्वर निकल आएँगे। यह ठीक है कि जाति-वर्णन में अनेक अंश बताए हैं, परंतु एक ही जाति से अनेक राग निकल सकते हैं।

उत्तर—परंतु अभी भी 'षड्जोदीच्यवती' जाति का वर्णन पूरा नहीं हुआ। यह भाग रह गया है; देखो :—

> षाड्जीवद्गीतितालादि गांधारादिश्च मूर्च्छना ।
> द्वितीयप्रेक्षणे गाने ध्रुवायां विनियोजनम् ॥

प्रश्न—क्या जाति की मूर्च्छना स्वतंत्र रूप से बताई गई है? तो फिर 'विशेष-लक्षण' मानकर दी गई राग-व्याख्या की मूर्च्छना ही ग्रहण करनी होगी, ठीक है न ?

उत्तर—तुम्हारी इस विचारधारा पर अभी मत प्रकट करना मैं पसंद नहीं करूँगा। दक्षिण-प्रवास के समय इसी प्रकार के तर्क एक बार मैं सुन चुका हूँ। हम शार्ङ्गदेव के रागों से मुक्त होने का कार्य आज अपने सिर नहीं ले रहे हैं, अतः इस बात का निर्णय करने के लिए रुकना आवश्यक नहीं है। परंतु मैं यह कहे देता हूँ

कि यह भाग जितना सरल तुम्हें मालूम पड़ता है, उतना नहीं है। शार्ङ्गदेव के लक्षणों की यथावत् व संतोषप्रद स्पष्ट व्याख्या करना सर्वत्र कठिन ही समझा जाता है। अब तुममें नवीन व विचारपूर्ण तर्क करने की स्फूर्ति पैदा हो गई है, यह देखकर मुझे संतोष होता है। अनेक भूल करने के बाद मनुष्य सयाना होता है, यह उक्ति प्रसिद्ध ही है। धीरे-धीरे तुम्हारे तर्क यथार्थ होने लगेंगे। जो बात तुम्हें सिद्ध करनी है, उसे उत्तम आधारों व प्रत्यक्ष उदाहरणों के साथ लोगों के सामने रखने की आदत बना लो। यह बात ऐसी होगी, या वैसी होगी, या इन दोनों प्रकार की न होकर किसी अन्य प्रकार की होगी, इस प्रकार की व्याख्या आज के समाज को अधिक उपयोगी ज्ञात नहीं होती, वह प्रायः विवाद बढ़ाएगी एवं वह किसी को भी इष्ट नहीं होगी।

प्रश्न—आपका यह कथन उचित है। 'रत्नाकर' का भाषांतर किसी प्राचीन पंडित द्वारा किया जाता, तो ऐसी गहन बातों पर प्रकाश पड़ता। यह बात हमने इसलिए कही कि प्रायः अनेक ग्रंथों के भाषांतर होते आए हैं।

उत्तर—ऐसे एक-दो भाषांतर हिंदी में हुए हैं। इनमें से पंडित विश्वनाथ द्वारा किया हुआ भाषांतर मैंने एक बार तंजौर के प्रसिद्ध संग्रहालय में देखा था।

प्रश्न—क्या उस भाषांतर से हमें कोई सहायता नहीं मिल सकेगी?

उत्तर—मैं समझता हूँ कि तुम्हारे-जैसे सुशिक्षित विद्यार्थियों को उससे कुछ मदद नहीं मिल सकती। बिना ग्रंथ का तात्पर्य समझे, भाषांतर कैसे किया होगा, यह आश्चर्य तुम्हें अवश्य होता होगा। परंतु इस प्रकार के भाषांतर तुम्हें आज भी अनेक दिखाई पड़ेंगे। अधिक दूर क्यों; पं० विश्वनाथ के अनुवाद की नकल मैंने प्राप्त कर ली है, उसमें तुम्हारे इस भैरव का स्पष्टीकरण किस प्रकार किया गया है, वह प्रत्यक्ष ही देखो :—

भिन्नषड्ज जो राग तातें भलिभाति है, समुद्भव कहिये उत्पत्ति जाकी, ऐसो भैरवराग भिन्नषड्जराग को अंग है। ताको लच्छण कहे है। धैवत है अंश स्वर जामें, मध्यम स्वर है अंत कहिये न्यास जामें, ऋषभ पंचम स्वर तिनकरके रहित है। सम स्वर हैं जामें, सम पद को लच्छण पूर्वसूचित है, और आगे प्रबंधाध्याय में कहेंगे। ऐसो भैरव प्रार्थना समय में गाइबे योग्य है।

अब इस भाषांतर से तुम्हें किस बात का बोध हुआ? बाकी भाषांतर ठीक ही है।

प्रश्न—ठीक है गुरुजी! ऐसे भाषांतरों का प्रत्यक्ष उपयोग संस्कृत जाननेवालों के लिए तो नहीं हो सकेगा। पं० विश्वनाथ ने संस्कृत-शब्दों की जगह हिंदी-शब्द रख दिए हैं, यही कहा जा सकता है?

उत्तर—हर एक व्यक्ति को इसी प्रकार का अनुभव उसका भाषांतर देखकर होगा, परंतु हमें अभी उसके भाषांतर से क्या काम है? उसने कैसा आडंबर कर रखा है, देखा न? अब जिसे संस्कृत न आती हो, वह इस भाषांतर से इतना ही जान सकेगा कि 'रत्नाकर' में किन-किन विषयों की चर्चा है?

प्रश्न—'भिन्नषड्ज' की व्याख्या में 'समस्वर' कहा गया है। इस शब्द का क्या अर्थ होगा?

उत्तर—इस शब्द का स्पष्टीकरण यदि मैं कल्लिनाथ के शब्दों में ही करूँ, तो अच्छा होगा। 'श्रीराग' की व्याखया शार्ङ्गदेव ने इस प्रकार की है, देखो :—

षड्जे षाड्जीसमुद्भूतं श्रीरागं स्वल्पपंचमम्।
सन्यासांशग्रहं मंद्रगांधारं तारमध्यमम्॥
समशेषस्वरं वीरे शास्ति श्रीकरणाग्रणीः॥

इस श्लोक में 'सम शेषस्वरं' कहा गया है, इसका कल्लिनाथ इस प्रकार स्पष्टीकरण करता है—'समाः शेषाः स्वरा यस्मिन् सः तथोक्तः।'

अत्र स्वल्पपंचममिति पंचमस्याल्पत्वविधानात्तदितरेषां स्वराणां बहुत्वेन साम्यं विधीयते। यत्रैकस्याल्पत्वं विधायेतरेषां समत्वविधानं तत्र तदपेक्षया महत्त्वं साम्यमेव। यत्र बहुत्वविधानादितरेषां समत्वविधानं तत्राल्पत्वं साम्यमेव।

चाहे इस व्याख्या का उपयोग हमारे वर्तमान संगीत में न हो सके, परंतु इस टीका से तुम्हें यह दिखाई देगा कि संस्कृत-ग्रंथकार 'समस्वर' से क्या अर्थ ग्रहण करते थे। इस श्रीराग की व्याख्या में 'अल्पपंचमम्' कहा गया है। इसलिए कोई-कोई आज के श्रीराग में से पंचम स्वर कम करने को तैयार हो जाते हैं। परंतु यह तुम सहज में समझ सकते हो कि प्राचीन श्रीराग का ठाठ बिलकुल भिन्न रहा है, अतः इस प्रकार करना ठीक नहीं हो सकता। आगे चलकर मैं तुम्हें यह बतानेवाला हूँ कि हमारे श्रीराग का ठाठ 'पूर्वी' माना गया है और उसमें पंचम बड़ा रक्तिदायक स्वर होता है। अस्तु, मैंने तुम्हें यह बता दिया है कि भैरव में वादी स्वर धैवत मानने का प्रचार है। यह कहा जाना भी उचित ही है कि भैरव का संपूर्ण आनंद धैवत व ऋषभ स्वरों पर ही निर्भर है। ये स्वर एक विशिष्ट प्रकार का आंदोलन प्राप्त करते हैं तथा उस आंदोलन से भैरव उत्तम रीति से व्यक्त हो जाता है। यह आंदोलन अब श्रोताओं के निकट परिचय की वस्तु हो गया है। 'ध़, प, मगरे़, सा' ये स्वर बड़ी मधुर आवाज में राग के गांभीर्य को सँभालते हुए किसी ने गाए कि श्रोताओं के नेत्रों के सम्मुख तत्काल भैरव खड़ा हो जाएगा। ये स्वर विलंबित रूप से गाकर

आगे 'सा धु, सा, रे रे, सा, म ग रे सा' इस प्रकार गाए कि सुननेवालों के हृदय पर भैरव का चित्र अंकित हो जाएगा। भैरव प्रचार में तुम्हें भिन्न-भिन्न प्रकार से गाया हुआ दृष्टिगोचर होगा, परंतु ऋषभ व धैवत स्वर के वे विशेषतापूर्ण आंदोलन सभी प्रकारों में मान्य हुए हैं, इसलिए इस स्वर-भाग को भैरव का प्रसिद्ध अंग माना जाता है। एक बार एक गायक ने 'म ग रे, सा' केवल इन्हीं चार स्वरों से इस प्रकार अवरोह किया कि राग के संबंध में किसी को शंका ही उत्पन्न नहीं हुई। यह तथ्य तुम्हें प्रत्यक्ष सीखकर ग्रहण करना अच्छा होगा। भैरव का एक बिलकुल साधारण उठाव 'सा, म ग, म प, धु, प' प्रसिद्ध है, परंतु मैंने जो स्वरूप बताया है, वह अधिक कौशल-पूर्ण है। अवरोह में मध्यम खूब अच्छा रखकर वहाँ से विलंबित मीड़ से नीचे ऋषभ पर आना चाहिए। मीड़ लेते हुए तीव्र गांधार काफी दिखाई देता हुआ रखना होगा। यह बात ठीक है कि जलद तान लेने पर मीड़ की जगह नहीं रहती, परंतु मैं अभी यही समझा रहा हूँ कि भैरव राग की रचना आरंभ में कैसी करनी चाहिए। मेरे इस शाब्दिक वर्णन से चकराने की आवश्यकता नहीं, यह काम प्रत्यक्ष करना अत्यंत सरल है। प्रत्यक्ष की जानेवाली बात का शाब्दिक वर्णन प्रथम दृष्टि में जरा कठिन ही जान पड़ता है, परंतु थोड़े-से प्रत्यक्ष अनुभव से वह सरल मालूम होने लगता है। मेरे साथ दस-बीस बार 'म ग रे सा', स्वर बोलो, तो इससे मेरे कहने का संपूर्ण तात्पर्य तुम्हारे ध्यान में आ जाएगा। हम पहले मध्यम पर ठहरते हैं, फिर वहाँ से गांधार पर 'म ग, म ग' ऐसे सूक्ष्म आंदोलन लेते हुए ऋषभ पर रागवाचक माने हुए आंदोलन लेते हैं। हमारे गायक-वादक कभी-कभी यह भी कहते पाए गए हैं कि भैरव के ऋषभ व धैवत स्वर अति कोमल हैं।

प्रश्न—क्या हमारे विद्वान् इन दोनों स्वरों के आंदोलन क्रमशः २५२ व ३७८ मानते हैं?

उत्तर—ऐसा ही मानना होगा। 'मॉनोकॉर्ड' पर यदि हम भिन्न-भिन्न गायकों से भैरव के रे, ध लगाने को कहें, तो यह नहीं कहा जा सकता कि सभी के स्वर एक ही जगह आएँगे। अति कोमल रे, ध अर्थात् सा व प की अगली श्रुति हैं, इनका उपयोग संस्कृत-ग्रंथकारों ने अपने रागों में किया हो, यह तुम्हें नहीं दिखाई देगा। भरत, शार्ङ्गदेव की बात अब हम छोड़ दें। कोई यह भी कह देगा कि अति कोमल आदि स्वरों का ग्रंथकारों द्वारा स्वीकार न किया जाना उनका दुर्भाग्य ही है, परंतु हमें तो वास्तविक स्थिति देखनी पर्याप्त है। शायद प्राचीन समय में सूक्ष्म स्वर कायम करने के उचित साधन नहीं थे, या उस समय के पद्धति-प्रिय पंडितों को विवादग्रस्त सूक्ष्म स्वरों के आधार से रचना करना पसंद नहीं होगा, अथवा उनका ऐसा मत रहा होगा कि संगीत-पद्धति सदैव सरल व समझने-योग्य होनी चाहिए। प्रत्यक्ष गायकों द्वारा भिन्न प्रकार से सूक्ष्म स्वरों का प्रयोग करते रहने पर भी ग्रंथों में यह उलझन नहीं होनी चाहिए। यह हम नहीं कहेंगे कि हमारे गायकों को ऐसे स्वरों का प्रयोग करना नहीं आता, सिर्फ इतना ही है कि उनके ये प्रयोग ग्रंथों पर नहीं लादे जा सकते। अलंकारिक स्वरों के प्रयोग करने की सभी को छुट्टी है। समाज का मनो-रंजन किस प्रकार से अच्छी तरह हो सकेगा, इतना ध्यान में रखना पर्याप्त है। नवीन योजना को 'नवीन' कह देने-मात्र से ही विवाद उत्पन्न नहीं हो जाता।

प्रश्न—परंतु प्राचीन काल में वीणा-जैसा वाद्य था, जिसपर सूक्ष्म स्वर दिखाए जा सकते हैं। वीणा पर इच्छित मीड़ निकाली जा सकती थी।

उत्तर—तो भी ग्रंथकार ऐसी खट-पट में नहीं पड़े, यह बात भी ध्यान देने-योग्य है। मीड़ सदैव नियमित स्थान से आनी चाहिए, श्रोताओं को सूक्ष्म स्वर-ज्ञान होना चाहिए, श्रुतियों का स्थान शास्त्र-सम्मत व आधारयुक्त होना चाहिए, आदि कठिनाइयाँ उन्हें बहुत कम ज्ञात हुई होंगी। एक सप्तक में बाईस परदे बाँधने पर बजाने में कठिनाई उपस्थित होगी, अथवा इस प्रकार के स्वरों का उपयोग करने की प्रथा ही नहीं होगी। बाईस परदे बाँधने के लिए उनके पास कोई अच्छा माप भी होगा, यह भी नहीं दिखाई देता ! मैं समझता हूँ कि इस विषय पर अब हमें तर्क करने की आवश्यकता ही क्या है ? उस समय सारी बातें गुरु-मुख से सुनकर शिष्य सीखते थे, अतः स्वरों के उचित स्थान अपने-आप उपयोग में आते रहते होंगे, यह बात कोई भी कह सकता है। आज हमारा समय दूसरा है तथा हमारे पास भिन्न-भिन्न प्रकार के साधन भी हैं एवं हमारी विचारधारा व सिद्धांत भी भिन्न हो गए हैं, अतः यह विषय बारीकी से समझा जा सकता है। अति कोमल आदि स्वरों को अलंकार मानने के लिए मैं पहले ही कह चुका हूँ। इनका भी हम निरादर नहीं करेंगे। हम अपने गायन में किन-किन अलंकारों का उपयोग करते हैं, यह आगे-पीछे हमें देखते ही चलना है। इतना ही है कि इन अलकारिक स्वरों के आधार पर हम नई पद्धति स्थापित करने का प्रयत्न नहीं करेंगे। रागों की परस्पर भिन्नता स्पष्ट रूप से दिखाने के लिए हमारे पास वर्ज्यावर्ज्य स्वर-नियम आदि उत्तम-उत्तम लक्षण हैं ही। अस्तु, 'ध़, प म ग रे़, सा' केवल इतने स्वर तुमने कहे, तथा इनमें कोमल रे, ध का उपयोग किया कि तुम्हारा राग भैरव ही होगा। इसमें वह गंभीरता व रे़, ध़ स्वरों के आंदोलन बराबर सध गए, तो काम बन गया। अब यदि कोई यह कहे कि इन आंदोलनों में इच्छित सूक्ष्म स्वर अपने-आप आ जाते हैं, तो हम कहेंगे कि ईश्वर की लीला है। सारांश यह है कि हम अपने बारह स्वरों पर ही अपनी पद्धति स्थापित करते हैं, यही युक्तिसंगत है। इस समय किसी-किसी राग के अति कोमल आदि स्वर घोषित कर दिए हैं तथा सुना जाता है कि कुछ रागों पर और भी प्रयोग चल रहे हैं। यह कल्पना बिलकुल नवीन नहीं है। देशी भाषा के ग्रंथों में ऐसे विधान हमें हर जगह दिखाई देते हैं। हमें तो धैर्यपूर्वक प्रत्येक प्रकाशित होनेवाली बात पर आगे विचार करते जाना है।

प्रश्न—जबकि ग्रंथाधार का अभाव है, तब रागों के अति कोमल, तीव्रतर आदि स्वरों का वर्गीकरण हमारे विद्वान् देशप्रसिद्ध, अच्छे खानदानी कलावंतों की सहायता से ही करते होंगे ?

उत्तर—यह बात मैं नहीं कह सकूँगा। यह अवश्य सत्य है कि ऐसे प्रयत्नों में बड़े-बड़े गायक, वादकों की सहायता व सहानुभूति प्राप्त किए बिना समाज द्वारा आदरणीय होने-योग्य व्यवस्था करना सरल नहीं है। प्रायः ऐसे गायक-वादक लोग ऐसी उलझनों को देखकर उलटे घबरा जाते हैं, ऐसा मुझे भी अनुभव हुआ है। एक

प्राचीन गायक ने मुझे बताया कि 'पंडित जी ! हमें तो रागों के 'वर्जावर्ज' स्वर जानने की ही मुसीबत है, फिर ये 'तरतीवर' और 'अतकोमल' हम क्या समझ सकते हैं ? यह आपका 'बखेड़ा' आप ही देखो और समझो ! हमारे बुजुर्ग लोग तो बिलकुल सीधे-सादे थे ।' अस्तु, गायकों की यह उदासीनता, आगे उन्हीं को कष्टप्रद सिद्ध होगी । यदि ये प्रसिद्ध घरानेदार गायक, हमारे विद्वानों की सहायता करने के लिए प्रस्तुत नहीं होंगे, तो शायद हमारे विद्वान् इनसे समान्य कोटि के गुणी लोगों (जो कि मदद करने को खुशी से तैयार होंगे) की सहायता व योग लेकर ही अपना कार्य निपटा देंगे । अरे भाई ! श्रुति निश्चित कर देने के बाद उनका उपयोग तो बताना पड़ेगा । यह सभी जानते हैं कि अब बड़े-बड़े कुशल लोगों की खुशामद करने व उन्हें ढूँढ़ने-फिरने का समय जाता रहा ।

प्रश्न—आपका यह कथन कुछ विचित्र ही दिखाई पड़ता है । इस प्रकार से क्या यह संभव नहीं है कि सामान्य कोटि के गायक-वादक बड़े-बड़े घरानेदार गायकों के परीक्षक बन बैठें ? और फिर यदि किसी ने हमारे आजकल के श्रुति-व्यवस्थापकों से यह पूछा कि महानुभावो ! आपके कथन का आधार कौनसा है, तब ?

उत्तर—उत्तर सरल है । उन्हें यह उत्तर दिया जा सकेगा कि आधार, हमारी विद्वत्ता, नादशास्त्र के प्रसिद्ध ग्रंथ, हमारी परिष्कृत कल्पना, हमारे उदार हृदय के गायक-वादक, इनके अतिरिक्त यदि चाहो तो हमारा थोड़ा-बहुत संगीत का अनुभव समझ लो, परंतु मैं तो अनुमान से केवल अपने तर्क बता रहा हूँ । यह मैं स्पष्टता-पूर्वक स्वीकार करूँगा कि उनके सारे आधारों की प्रत्यक्ष जानकारी मुझे नहीं है । अस्तु, अब हम अपने विषय की ओर लौटें । भैरव राग गाते हुए अच्छे मँजे हुए गायक छोटे-मोटे अलंकारों का उपयोग आरंभ में कभी नहीं करते । क्योंकि ऐसा करने से राग के गांभीर्य में कमी होने का भय रहता है । यह एक उत्तर राग है, अतः इसकी संपूर्ण विचित्रता अवरोही-वर्णों की तान में होना स्वाभाविक है । 'रे̱ रे̱ सा, ध़̱ नि़ सा, रे̱ रे̱ सा; म ग रे̱, सा, प म ग रे̱, सा; ध̱ प, म ग रे̱, ग प म ग रे̱, सा' यह स्वर-समुदाय जोरदार परंतु मधुर आवाज से उत्तम मिले हुए तम्बूरे के साथ यदि तुम गाओगे, तो मैं समझता हूँ कि तुम्हारे गायन का परिणाम बहुत चमत्कारपूर्ण होगा । प्रातःकाल का समय भी इसके अनुकूल होता है । धैवत पर देर तक ठहरकर पंचम पर कायम होना बहुत सुन्दर दिखाई देगा । इसमें फिर मध्यम स्पष्ट दिखाकर अवरोह के स्वर मीड़ से 'म ग रे̱ सा' गाए गए कि श्रोताओं के हृदय पर इसका पृथक् प्रभाव अवश्य होगा । एक बार यह प्रभाव जमा कि फिर तुम्हारी जलद तानें श्रोताओं को असंगत ज्ञात नहीं होंगी । इस प्रथम प्रभाव के लिए रचना अच्छी तरह तैयार कर लेनी चाहिए । कुछ व्यक्ति विद्यार्थियों को यह राग सिखाने के पूर्व 'रे̱, ध̱' स्वरों के आंदोलन विशेष रूप से सिखाते हैं, उसका भी यही कारण है । कोई-कोई गायक यह राग धैवत से आरंभ करते हैं, परंतु इससे यह न समझ लेना चाहिए कि यह एक अटल नियम है ।

प्रश्न—नहीं, नहीं, हम ऐसा क्यों समझेंगे ? देशी संगीत में 'येषां श्रुति-स्वर-ग्रामजात्यादिनियमो न हि' आदि हनुमान मत आप पहले ही बता चुके हैं। इस संगीत में 'कामचारप्रवर्तितत्वम्' दिखाई देना सदैव संभव है।

उत्तर—ठीक है ! कोई-कोई गायक अपने ध्रुवपद 'रे रे सा; ध़ सा, ग म ग रे सा', इस प्रकार भी शुरू करते हैं। भैरव में गायक प्राय: मंद्र-धैवत तक जाते ही हैं। वास्तव में ऐसा करने से यह राग अधिक चमक जाता है। मंद्र-स्थान का उपयोग तुम भी अवश्य करते जाना। 'सा रे, सा, ध़, ध़ प़, म़ प़, ध़, रे रे सा, म ग रे, सा', यह स्वर-प्रयोग सचमुच ही विलंबित लय में आनंद देगा। इन स्थानों के स्वर तुम्हें अच्छी तरह अभ्यास कर साध लेने पड़ेंगे। यह सुनकर तुम्हें आश्चर्य होगा कि इस राग में मंद्र-स्थान के महत्त्व का अनुभव हमारे शिक्षित गायकों को भी है। यद्यपि हम इस कथन को स्वीकार नहीं करते कि भैरव के अतिरिक्त अन्य प्रभातकालीन रागों में मंद्र-स्थान के स्वर गाने से रंजकता नष्ट हो जाएगी, या शास्त्रीय दृष्टि से बड़ी गलती हो जाएगी, परंतु मेरे गुरु का मत यह था कि भैरव में इस स्थान के स्वर नहीं लगाएँ, तो कुछ रूखापन रह जाएगा। प्रसिद्ध गायकों के ध्रुवपदों में मंद्र-स्थान के स्वरों का उपयोग किया हुआ हम सदैव देखते ही हैं। अब मैं दूसरे नियम की ओर तुम्हारा ध्यान खींचता हूँ। हमारे गायक प्रात:काल के रागों में अनेक समय आरोह करते हुए ऋषभ स्वर छोड़ देते हैं। यद्यपि सभी रागों में वे ऐसा नहीं करते, परंतु कोमल ऋषभवाले रागों में ऐसे नियम का पालन करते हुए अनेक बार हमें दिखाई पड़ते हैं, यद्यपि उस राग के आरोह में यह स्वर वर्ज्य नहीं होता।

प्रश्न—वे लोग ऐसा क्यों करते होंगे ?

उत्तर—मैं समझता हूँ कि उन्हें शायद ऐसा करना ही पड़ेगा। समझो कि 'नि़ सा रे ग म' यह तान द्रुत लय में गाने के लिए तुमसे किसी ने कहा, तो इसे गाते हुए तुम्हें भी थोड़ी-बहुत कठिनाई अवश्य होगी। एक के बाद एक, ऐसे दो अर्धांतरों का उच्चारण करने में जीभ अटक जाया करती है। इसी कारण आरोह में कोमल ऋषभ के प्रयोग को गायक टालते रहते हैं। यह ठीक है कि वादकों को वैसी कठिनाई नहीं होगी, परंतु यह बात भी प्रसिद्ध है कि वादक अपने राग-नियम प्राय: गायकों द्वारा ही ग्रहण करते हैं। जो भी हो, हमारे पास इस मान्यता के लिए प्रमाण नहीं है कि हमारे संपूर्ण वर्ज्यावर्ज्य स्वरों के नियम उच्चारण की सुविधा की दृष्टि से कायम किए गए हैं। यह स्वीकार करने पर भी हम कहेंगे कि कुछ नियम वैसे भी हो सकते हैं। ये नियम कौन-कौनसे हैं, यही हमें देखना है। यह मैंने बताया ही है कि गायक लोग भैरव का आरंभ भिन्न-भिन्न प्रकार से करते हैं। तो भी दो-तीन तरीके, जो प्राय: दिखाई पड़ते हैं, वे इस प्रकार हैं :—

सा ध ध, प, म प, म ग, म ग रे, ग म ग रे, सा; सा, म ग, म प, ध, प, म ग रे, ग म प म ग रे, रे, सा; सा, रे रे, सा, ध, सा, रे, रे, सा, ग म ग रे, सा।

ये तीन टुकड़े मेरे साथ-साथ तुम लोगों ने दस-बीस बार गाए कि इनकी बारीकियाँ तुम्हारे ध्यान में आ जाएँगी और एक बार उन्हें ठीक से समझ लिया, तो यह राग तुम्हें बहुत-कुछ सध जाएगा। हमारे गायकों की अनेक ध्रुवपदें इसी प्रकार शुरू होती हुई तुम्हें प्राप्त होंगी। 'सा, म ग, म ग, म प, ध॒, प', यह टुकड़ा अब अपने यहाँ सामान्य हो गया है। इसमें 'मग, मग' ये पुनरावृत्त स्वर अच्छी तरह ध्यान में जमा लो। पहले 'म, ग' की अपेक्षा दूसरे म, ग, की जोड़ी जरा द्रुत में उच्चारित होती है।

प्रश्न—यह ध्यान में आ गया। हम समझते हैं कि धैवत पर जो एक विशेष प्रकार का आघात किया जाता है, वह इस 'म, ग' स्वरों की पुनरावृत्ति से अच्छी तरह किया जा सकता है। ठीक है न? परंतु इस राग में धैवत व ऋषभ पर जो आंदोलन हम देते हैं, उसमें क्या ऊपर के स्वरों के कण लगाए जाते हैं?

उत्तर—शाबाश! क्या वे तुम्हारे लक्ष्य में आ गए? हाँ, वे ही 'कण' लगाए जाते हैं। यह उत्तर राग है, अतः वे बहुत शोभनीय हो जाते हैं। 'ध॒, प' स्वर देर तक उच्चारित करने से प्रातःकाल का संकेत तत्काल हो जाना चाहिए। आगे 'म, ग रे॒, सा' स्वर आए कि भैरव का अंग तैयार हुआ। यह जनक राग है, अतः तुम्हें यह राग अच्छी तरह साध लेना चाहिए। एक बार सध जाने पर तुम इस ठाठ के जिस राग में चाहोगे, वहाँ यह अंग मिलाकर निकालना आ जाएगा। ग्रंथों में अनेक आरोह-अवरोह दिए हैं, यह तुम जानते ही हो।

प्रश्न—क्या यह समझ लेना चाहिए कि प्राचीन समय में भी एक राग में दूसरे राग का भाग युक्तिपूर्वक मिला देने की प्रथा थी?

उत्तर—तुम्हारे इस प्रश्न का उत्तर हाँ, कहकर ही देना पड़ेगा, क्योंकि 'रत्नाकर' के प्रकीर्णकाध्याय में जो अंश-प्रकार बताए हैं, वे इस प्रकार दिखाई पड़ते हैं।

प्रश्न—वहाँ क्या कहा गया है? अंश, यानी वादी स्वर?

उत्तर—वहाँ इस प्रकार कहा है, देखो :—

रागांतरस्यावयवो रागेंऽशः स च सप्तधा।
कारणांशश्च कार्यांशः सजातीयस्य चांशकः॥
सदृशांशो विसदृशो मध्यमस्यांशकोऽपरः।
अंशांशश्चेति यो रागे कार्येंऽशः कारणोद्भवः॥

इसमें कही हुई सभी बारीक बातों पर हम विचार नहीं करेंगे। इस श्लोक पर पंडित कल्लिनाथ ने इस प्रकार टीका की है :—

बहुलीकोलाहलादिकार्यकारणादिरागे रागांतरस्य कोलबहुल्यादिकारण-कार्यादिभूतान्यरागस्यावयवः स्वरसमुदायरूप एकदेशो रक्त्यर्थमुपादीयमानोंऽशः इति परिभाष्यते । न तु प्रसिद्धः स्वरविशेष उच्यते । ननु अन्यरागे काकोरंशस्य च को भेदः उच्यते । प्रकृतरागे समवायवृत्त्या वर्तमानैवच्छायात्यंतसादृश्याद्रागांतराश्रया सती या प्रतीयते साऽन्यरागकाकुः । अंशस्तु प्रकृतरागे ह्यविद्यमाने एव शोभातिशयाय याचितकमंडनन्यायेन रागांतरादुपादाय संयोगवृत्त्याऽत्र संबध्यते इति भेदो द्रष्टव्यः ।

प्रश्न—यह तो बड़ी मजेदार बात दिखाई पड़ती है। इसमें 'काकु' व 'अंश' का भेद बड़ी खूबी से बताया गया है। 'राग काकु' समझने के लिए अभी हमें अधिक अनुभव की आवश्यकता होगी। ठीक है न ?

उत्तर—ठीक है ! मैं कहता था कि भैरव का अंग अच्छी तरह रट डालो, क्योंकि अन्य रागों में भी तुम्हें वह दिखाई देगा।

प्रश्न—यदि वह अंग अन्य रागों में भी दिखाई दे, तो भी उन रागों के अन्य स्वतंत्र लक्षण तो होंगे न ?

उत्तर—हाँ, हाँ, वे राग भैरव से बिलकुल स्पष्ट रूप से भिन्न हो जाते हैं। यह मत भूलो कि भैरव को हमने आश्रयराग माना है।

प्रश्न—तब हमें इसका आरोह-अवरोह सरल व संपूर्ण समझना चाहिए न ?

उत्तर—ऐसा कहने में भी कोई आपत्ति नहीं है, परंतु इस नियम में अपवाद भी हो सकता है।

प्रश्न—ऐसा क्यों कहते हैं ? हमारे ठाठ-वाचक राग तो संपूर्ण ही हैं न ?

उत्तर—तुम्हारे 'मारवा' ठाठ पर ऐतराज कोई भी कर देगा ! प्रचार में हम जिसे मारवा राग कहते हैं, वह षाडव है और उसमें पंचम वर्ज्य है। यहाँ तुम प्रश्न करोगे कि फिर से ऐसे राग का नाम उस ठाठ को क्यों दिया गया ? उत्तर सरल है। ठाठों का नाम उससे उत्पन्न होनेवाले रागों के नाम पर रखने का पुराना रिवाज है। ऐसे नाम देने में प्राचीन ग्रंथकारों ने भी कुछ षाडव व औडुव रागों का उपयोग किया है। इसमें कोई बड़ी भारी हानि नहीं होती। हिंदुस्तानी संगीत के

मारवा ठाठ के अंतर्गत कौनसा प्रसिद्ध राग संपूर्ण है, इस प्रश्न पर ही पहले विवाद उत्पन्न होगा। लक्ष्यसंगीतकार ने मारवा ठाठ कहते हुए दक्षिणी ग्रंथों में प्रसिद्ध 'गमनश्रम' नाम बाधा न पड़ने की दृष्टि से बता दिया है। मारवा ठाठ हमारे यहाँ गायक-वादकों में प्रसिद्ध भी है। जैत, पूर्व्या, वसंत आदि नाम इस ठाठ को देना कुछ विवादग्रस्त भी था।

प्रश्न—कोई बात नहीं। कोरे नाम से हमें क्या करना है? ठाठ के स्वर ज्ञात होना ही प्रधान बात है। आप भैरव का वर्णन आगे बढ़ाइए!

उत्तर—ठीक है। 'सा रे॒ रे॒, सा' इतने ही स्वर गाकर रुक जाने पर निकटवर्ती श्रीराग का अंग आँखों के सम्मुख आ जाएगा, इस संबंध में मैं आगे बताऊँगा। इस प्रकार हो जाना ठीक ही है। भैरव राग में यह पूर्वांग-प्रधानता कैसे शोभा देगी? यह बात नहीं कि ये स्वर महत्त्वपूर्ण नहीं हैं, परंतु ये भैरव के मुख्य अंग नहीं हो सकते। ऋषभ स्वर संवादी है, अतः यह समुदाय केवल रंजकता-निर्वाहक हो सकेगा। श्रेष्ठ गायक 'सा ध॒, सा' इन तीन स्वरों में से ही भैरव का संकेत कर देंगे। इसमें यदि 'म, ग रे॒, सा' स्वर और लगा दिए, तो फिर शंका ही नहीं रह सकती। इसे अच्छी तरह सुनकर हृदय में बैठा लेना चाहिए। आगे 'ग, मप, ध॒, प' तो सार्वजनिक तान है। कोई-कोई गायक भैरव में मीड़ से कोमल नि स्वर भी ग्रहण करते हैं।

प्रश्न—वह कैसे ग्रहण करते हैं? 'सां नि॒ ध॒, प' ऐसा अवरोह करते हैं? परंतु क्या ये स्वर भैरवी या आसावरी ठाठ के नहीं हो जाएँगे?

उत्तर—तुमने ठीक ही शंका की है। 'सां नि॒ ध॒ प' ऐसे खुले स्वर गाते-गाते 'आसावरी' अवश्य उत्पन्न हो जाएगी, परंतु यहाँ इस प्रकार कोमल निषाद नहीं लेते। वह तो बड़े कलात्मक रूप से लिया जाता है। तार-षड्ज पर सुन्दर विश्रांति कर फिर गायक कोमल धैवत पर आता है और धीरे से 'ध॒ नि॒ प' ऐसी मीड़ या 'ध॒ नि॒ ध॒ प', ऐसी मीड़ लेता है। इसमें संदेह नहीं कि यह काम बहुत ही आनंददायक हो जाता है। भैरव के अवरोह में प्रथम जो निषाद लिया जाता है, वह कानों को कुछ उतरा हुआ ज्ञात होता है, यह अनुभव मर्मज्ञ लोग बताते हैं व आगे चलकर तुम्हें भी होगा। अब मैं तुम्हारे आगे यह स्वर-समुदाय गाता हूँ। इसे सुनो व देखो कि इसमें तुम्हें किंचित् वैसा ही प्रकार दिखाई देता है या नहीं—'म, प प, ध॒, नि सां, सां, ध॒, नि सां, रें॒ रें॒ सां नि॒ ध॒, सां ध॒ नि॒ प।' यह न समझना कि भैरव का अवरोह बिना मीड़ के होता ही नहीं। यह तो तीव्र 'नि' लेकर भी किया जा सकता है। परंतु मैं यही दिखा रहा था कि गायक लोग कोमल नि दिखाकर राग में कैसी रंजकता उत्पन्न करते हैं।

प्रश्न—यदि हम यही ध्यान में रखें कि यह स्वर विवादी के रूप में ही ग्रहण किया जाता है, तो?

उत्तर—यह भी चल जाएगा। कुछ ग्रंथकारों ने भैरव में 'कैशिक' नि भी बताई है। उदाहरणार्थ सोमनाथ का 'रागविबोध' देखो। तो भी यदि उसकी शुद्ध धैवत-संबंधी भूल हमारी दृष्टि में आ गई और उसका 'कैशिक नि' हम 'काकली नि' को समझ जाएँ तो कोई विशेष दोष नहीं होगा। भिन्न-भिन्न ग्रंथकारों का मत हम देखनेवाले ही हैं। भैरव में 'म ग म <u>रे</u> <u>रे</u> सा' यह भाग राग की गंभीरता को उत्तम रूप से सँभालता है। यह भाग मैं कैसे गाता हूँ, इसे सावधानी से समझ लिया कि काम बन गया। इसमें मैं मध्यम स्वर से मंदगति से मीड़ द्वारा अवरोह करते हुए ऋषभ पर कैसा आंदोलन लेता हूँ, यह देखते हो न? विभिन्न रागों में ऐसे महत्त्व-पूर्ण स्थल ध्यान में रखने-योग्य होते हैं। गायक लोग ऐसे कृत्य को 'उच्चार' कहते हैं। यह कृत्य शब्दों में कहने या कागज पर लिखने में सरल नहीं होता। यह बात कुछ ठीक है; परंतु इसका वर्णन जितना संभव हो, उतना करने में कोई हानि नहीं है। कुछ दिन पहले महाराष्ट्र में ख्यातिप्राप्त एक प्रसिद्ध गायक मेरे पास आए थे। बोलते-बोलते वे कहने लगे—"पंडितजी, आजकल तो जो उठता है, वह संगीत पर 'गिरंथ' लिख डालता है। यह देखकर मुझे आश्चर्य होता है। अपने रागों का क्या कागज पर लिखा जाना संभव है? प्रत्येक राग में भिन्न-भिन्न खूबियाँ होती हैं। यह कोई 'अँग्रेजी' खड़े स्वरों का गाना तो है नहीं? अपने यहाँ कुछ स्वर 'सीधे' व कुछ 'झूलते' (आंदोलित) सदैव लगते हैं। इनके लिए मनुष्य कितने चिह्न बनाएगा व उन्हें पढ़कर कौन-कौन व्यक्ति गायक बन सकेगा? मैंने तो इस तरह से तैयार होनेवाले लोग अभी तक नहीं देखे।" उनके इस कथन का कोई अर्थ नहीं, यह हम नहीं कहेंगे; परंतु यह कहना भी ठीक नहीं है कि लेखन-पद्धति बिलकुल निरुपयोगी है। फिर उस गायक से मेरी बहुत बातें हुईं। अंत में उन्होंने इतना स्वीकार किया कि रागों के स्वर, वादी-विवादी, मुख्य लक्षण, आरोह-अवरोह के नियम, मुख्य अंग, राग पहचानने की खूबियाँ आदि बातें लिखी जा सकती हैं और वे उपयोगी भी होंगी। अस्तु, अब हम आगे बढ़ें। भैरव की ये मीड़ें, इस ठाठ के अन्य किसी भी राग में तुमने लगाईं कि तत्काल वहाँ भैरव का भाग उत्पन्न हो जाएगा। ऐसे महत्त्वपूर्ण व ध्यान में रखने-योग्य भाग गुरु के निकट अच्छी तरह सीखने पड़ते हैं। तोता-रटंत-जैसा गाना कभी मीठा ही नहीं लगता, यह बात तो नहीं है; परंतु इसमें संदेह नहीं कि रागों के नियम जानकर व उनका उपयोग करते हुए राग-रचना करना अधिक योग्यता की वस्तु है। संगीत की उन्नति उच्च स्तर के स्वर-ज्ञान व राग-ज्ञान हुए बिना नहीं हो सकती। भैरव के आरोह में निषाद स्वर थोड़ी गौणता प्राप्त करता है, क्योंकि वह धैवत के तेज से अपने-आप आच्छादित हो जाता है। भैरव को प्रचार में कोई-कोई 'आदि राग' भी कहते हैं, परंतु इस कथन में कोई विशेष अर्थ इस समय नहीं दिखाई पड़ता। मैं रागों का संबंध देवताओं से जोड़ना अथवा पौराणिक कथाएँ सुनना पसंद नहीं करता।

प्रश्न—हमें भी ऐसा ही अच्छा लगता है। इस समय तो जो बात प्रत्यक्ष उपयोगी होगी, उसका विवेचन करना सभी को पसंद आएगा। आदि राग अर्थात् प्रथम उत्पन्न होनेवाला राग, यह सिद्ध करना कठिन हो जाएगा। ठीक है न?

उत्तर—हाँ, ठीक है। केवल इतना कह देने से कैसे काम चलेगा कि महादेव जी के मुख से जो प्रथम राग उत्पन्न हुआ, वह भैरव है। परंतु ऐसा भी चलता ही है। भैरव के मार्मिक स्वर-समुदाय जो मैंने तुम्हें बताए हैं, वे तुमने ध्यान में जमा ही लिए होंगे। अब यह भाग और देखो—'प, प ध, निसां, सां रें सां, सां ध, नि सां, रें रें सां, ध, नि ध प, म म प ध, रें सां नि ध प, म ग रे, प म ग रे सा', इस स्वर-समुदाय के उचित स्थलों पर ठहरते हुए मेरे साथ गाओ। अब यह कहा जा सकेगा कि भैरव का सब स्वरूप तुम्हारी समझ में आ चुका है। इस राग के लिए प्रातःकाल का समय बहुत ही योग्य है, यह तथ्य स्वतः ही तुम्हारी समझ में आ जाएगा। उस पवित्र समय में इस राग का परिणाम श्रोताओं पर कुछ अवर्णनीय होता है। इस गंभीर राग को गाने के लिए आवाज अवश्य ही बड़ी मधुर व कसी हुई होनी चाहिए तथा गायक को विलंबित लय में गाने की आदत होनी चाहिए।

प्रश्न—ऐसी आदत खास तौर पर बनानी पड़ती है!

उत्तर—हाँ, विलंबित लय में गाना सरल नहीं होता। कुछ रागों की प्रकृति द्रुत लय में गाने के अनुकूल होती है, उनमें द्रुत लय अधिक शोभा देगी। परंतु गांभीर्य-परिप्लुत रागों को यदि भाग-दौड़ में गाया जाए तो इच्छित प्रभाव नहीं हो पाता। यह बात हमारे अशिक्षित गायक भी बहुत-कुछ समझते हैं। मुझे याद है कि मैं एक बार एक जलसे में गया था। गायक मुसलमान जाति के व्यक्ति थे। इसमें संदेह नहीं कि गायक का गला बहुत तैयार था। प्रायः मेरा अनुभव यह है कि तैयार गले के गायकों को तानबाजी में लग जाने का प्रबल मोह होता है। इन खाँ साहब को तो अपनी स्थायी भी दो-चार बार कहने का धैर्य नहीं रहा। इन्होंने एक गंभीर राग का 'खयाल' शुरू किया। सौभाग्य से श्रोताओं में एक हिंदुस्तान-प्रसिद्ध बीनकार भी थे। खयाल बहुत प्राचीन व प्रसिद्ध था, परंतु अनावश्यक तानबाजी से उसकी ऐसी दशा हो गई तथा इतना रूपांतर हो गया कि गाने का प्रभाव जैसा चाहिए, वैसा न हो पाया। गायक को यह देखकर रोष उत्पन्न हुआ कि वे बीनकार मेरी तैयारी की प्रशंसा नहीं कर रहे हैं। उसने बार-बार बीनकार से कहना शुरू किया :—

"खाँ साहब, ये आपके देखने की बातें हैं। आप नामी लोग कहलाते हो, मगर इसके तरफ भी जरा देखो। ये बातें मुश्किल हैं। कैसे-कैसे पेंच और बल लग रहे हैं, सोभी गौर करके देखना चाहिए। ये काम ऐसे-वैसे से हो नहीं सकता। इसके समझनेवाले भी अब बहुत कम हैंगे।"

यह सुनकर बीनकार को भी क्रोध आ गया, उसने कहा :—

"भाई, ये अस्ताई तुमको किन्ने बतलाई! अपनी तालीम तो गाओ। आपका घराना तो जरा मैं देखूँ। राग के वक्त को देखो, उसके दिमाग को देखो, और तुम क्या कर रहे हो, वो भी देखो। तुम अपना मूँ चारों ओर

फिराओ मगर अपने चीज को तो सीधा रखो। तान के जगे तान रक्खो। ये ख्याल किस लय का है, सो भी तो सोचो।

उसका यह कथन अनेक श्रोताओं को बहुत मार्मिक ज्ञात हुआ। अस्तु, हम आगे चलें।

संस्कृत-ग्रंथकार भैरव राग का वर्णन सदैव महादेव के वर्णन-जैसा करते हैं। इसका कारण कोई यह बताते हैं कि यह राग महादेव जी को बहुत पसंद है और यह प्रथम उत्पन्न किया हुआ है। दूसरे यह भी कहते हैं कि 'महादेव' नाम सूर्य का है व भैरव सूर्योदय के समय गाया जानेवाला राग होने से यह वर्णन-साम्य हो गया होगा। रागों के चित्रों का गुण-गान करनेवाले लोग भी अनेक बार हमें मिल जाते हैं। यह नहीं कि वे सभी बड़े-बड़े विद्वान् होते हैं। कोरी देव-कथाओं पर चचा करनेवालों पर कभी विश्वास नहीं करना चाहिए। कुछ अर्द्धशिक्षित विद्वान् भी इस प्रकार के मिल जाएँगे। मुझे याद है कि एक बार हमारे 'गायन-समाज' में एक विद्वान् व्याख्यान देने आए थे। उन्होंने कहा कि वसंत राग से स्वर लगाकर मैं केशरिया रंग उत्पन्न कर देता हूँ। उस बेचारे को यह भी ज्ञात नहीं था कि वसंत राग किन स्वरों में गाया जाता है। परंतु यह सुना गया था कि उसने रसायन-शास्त्र अवश्य देखा था।

प्रश्न—केशरिया रंग ही क्यों उत्पन्न किया जानेवाला था ? यह भी कैसे ?

उत्तर—ऐसे यह बात एकदम समझ में नहीं आएगी। ग्रंथों में प्रत्येक स्वरों के रंग बताए गए हैं न ? ये रंग लेकर फिर राग के स्वर-वर्णन की रीति-नीति के अनुसार मिश्रण करना पड़ेगा। केशरिया रंग उत्पन्न करने का कारण इतना ही है कि वसंत ऋतु में केशर, कस्तूरी, अबीर, गुलाल आदि वस्तुएँ अपने देश में बहुत चलती हैं। यहाँ बताना यह है कि केशरिया रंग का मिश्रण हुआ कि वसंत राग के स्वर निश्चित हुए।

प्रश्न—भई वाह ! कल्पना अवश्य ही विचित्र है। उस बेचारे को इस बात का पता नहीं होगा कि अब हम निरे स्वरों से संतुष्ट न होकर बाईस श्रुतियों के पीछे पड़े हुए हैं। अब ग्रंथों की बाईस श्रुतियों के रंग भी ठहराने पड़ेंगे। परंतु पहले यह विवाद तो मिटाना चाहिए कि ग्रंथों के स्वर कौनसे हैं ? नहीं तो अपने रागों के इन रँगरेजों की मेहनत व्यर्थ ही चली जाएगी। षड्ज का रंग कमल-जैसा कहा गया है। परंतु कमल भिन्न-भिन्न रंगों के कहे गए हैं। जान पड़ता है कि यह रंग-शास्त्र शिक्षार्थियों के लिए नाद-शास्त्र की अपेक्षा कठिन साबित होगा।

उत्तर—तुम्हारा यह कथन अनुचित नहीं है। यह विषय सरल तो हरगिज नहीं कहा जा सकता। हम यह कभी नहीं कहेंगे कि स्वरों के रंग बताने में प्राचीन पंडितों ने अपना पागलपन व्यक्त किया है। हम तो यही कहेंगे कि उन ग्रंथोक्त रंगों का यथायोग्य स्पष्टीकरण अभी तक किसी ने नहीं किया। यह भी कहा जा सकता है कि हमारे मध्यकालीन ग्रंथकारों को भी इस विषय में कुछ नहीं जान पड़ा था।

उन्होंने अपनी सदैव की प्रथा के अनुसार जो कुछ भी हाथ लगा, उसे संगृहीत करके रख दिया था। पंडित अहोबल की समझ में 'नारदीय शिक्षा' का संगीत बिलकुल नहीं आया होगा, परंतु वहाँ के स्वर के वर्ण (रंग) तो उसे नकल करके रखने ही चाहिए! अस्तु, हमारे उन पंडितों ने इस प्रकार प्राचीन दुर्बोध बातों का संग्रह नहीं किया होता, तो हमें प्राचीन काल की मान्यताओं की आज कैसे कल्पना हो सकती थी? यह हम जानते ही हैं कि इस समय पाश्चात्य विद्वान् नाद व रंग के संबंध में प्रयोग कर रहे हैं। पाश्चात्य कल्पना हमारे यहाँ बहुत शीघ्रता से स्वीकार कर ली जाती है। परसों एक विद्वान् ने अपना इस प्रकार का मत व्यक्त किया था कि कोमल ग, नि लगनेवाले राग प्रायः दुःख-प्रदर्शक होते हैं। मैंने उनसे उनका आधार नहीं पूछा। कौन जाने उनकी कल्पना यूरोप के Minor mode से संबंधित हो। मैं यह स्वीकार करूँगा कि रंगों के संबंध में मुझे कहने का कुछ भी अधिकार नहीं है।

प्रश्न—कोई बात नहीं! यदि यह जानकारी आज हमें नहीं भी मिले, तो भी आज हमारा कार्य रुकनेवाला नहीं है। जो बातें आप हमें इस समय बताते जा रहे हैं, इतने से ही हमारा काम फिलहाल चलता रहेगा, अब आगे चलिए?

उत्तर—अच्छा यही करता हूँ। भैरव राग प्रसिद्ध होने से यह अधिकांश गायकों को अपने-अपने तरीकों से आता है। इस राग का स्वरूप कुछ ऐसा स्वतंत्र है कि गायकों व श्रोताओं के ध्यान में तत्काल जम जाता है। बड़े-बड़े जलसों में प्रातःकाल के समय भैरव या रामकली में से कोई एक राग गायक गाते हैं। भैरव का जो बिलकुल साधारण रूप हमें दिखाई पड़ता है, वह इस प्रकार है :—

'सा, म ग, म प, धृ, धृ, प, म ग रे॒, ग म प म ग, रे॒ सा; सा रे॒, सा ध़ृ, सा, ग म ग रे॒, प म ग रे॒, सा।'

चाहे यह रूप साधारण हो, परंतु अशुद्ध नहीं है। इसे भी तुम्हें अवश्य ध्यान में रखना है। भैरव में गांधार व निषाद स्वर ऋषभ व धैवत की समीपता से आच्छादित हो जाते हैं। गांधार की अपेक्षा निषाद अधिक गौणता प्राप्त करता है। ये ही दोनों स्वर सायंकाल के समय कितने अधिक रंजक हो जाते हैं। प्रभात के रागों में 'नि़ रे॒ ग, रे॒ ग, नि़ रे॒ ग मं प' ऐसे स्वरसमुदाय प्रायः गायक टालते रहते हैं, क्योंकि ये सायंकाल का संकेत करते हैं। यह संपूर्ण चर्चा पद्धति की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। 'धृ प' इस प्रकार लंबाई लेकर स्वरों का उच्चारण करते ही प्रातःकाल के कुछ नियमित रागों का चित्र आँखों के आगे खड़ा हो जाता है, परंतु सायंकाल के रागस्वरूप इस प्रकार मन में नहीं आ पाते, यह मर्म अब तुम स्वयं समझने लगे हो। भैरव में मंद्र-सप्तक में बहुत अधिक नीचे नहीं उतरा जाता। हरएक गायक 'सा ध़ृ प़, म़ प़, ध़ृ, सा, रे॒ रे॒ सा' इतने ही नीचे जाते हैं तथा राग की अच्छी छाप जमा देते हैं। कई प्रातःकालीन रागों में 'अवरोही वर्ण वैचित्र्य' होने से कुछ स्वरों में ऊपर के स्वरों के कण अपने आप लग जाया करते हैं, यह तथ्य तुम्हारे लक्ष्य में आ ही चुका है। यह कणों का भाग बहुत सूक्ष्म है और स्वरलिपिकारों को बहुत उलझन में डाल देता है। इसे ठीक से समझने में तुम्हें अभी कुछ समय लगेगा।

प्रश्न—भैरव का अन्तरा प्राय: कैसे शुरू होता है ?

उत्तर—अधिकतर वह इस प्रकार उठाया जाता है :—

'प, प धु, नि सां, अथवा म प प, धु, नि सां, सां, धु, नि सां, रें, रें सां धु, प' यह टुकड़ा ध्यान में रखना पर्याप्त होगा। धैवत पर होनेवाले आन्दोलन में 'धु प, धु प, धु प,' स्वर बहुत मनोहर रूप से कंपित होते हैं, इसी प्रकार ऋषभ के आन्दोलन में 'रे सा, रे सा रे सा' ये स्वर आवश्यक रूप से हिलते हैं। ये दोनों आन्दोलन साध लेना एक प्रकार से भैरव राग साध लेना ही समझना चाहिए, इसलिए कहा जाता है :—

भैरवस्य रिधौ यस्माद्विशेषेणातिरक्तिदौ।
प्रसाधनुवंति तावेव प्रथमं मर्मवेदिनः॥

'धु, प' स्वर आन्दोलन-रहित उच्चारित करने पर हृदय पर तत्काल विभास राग की छाया उत्पन्न हो जाएगी। यह राग आगे आएगा ही। मध्यम पर से मैं ऋषभ पर मीड़ लेता हूँ, तब इसमें गान्धार स्वर किस प्रकार 'मसल' (मिश्रित) दिया जाता है। यहाँ मैं तुम्हें भैरव के रागवाचक अंग स्पष्ट दिखा रहा हूँ। यह राग सम्पूर्ण है, अतः इसके समस्त स्वर अलग-अलग लगाना अशुद्ध नहीं होता। तार-सप्तक में तुम्हें अधिक ऊँचा जाने की आवश्यकता नहीं। वहाँ पर ऋषभ अवश्य ही लेना पड़ता है। 'प धु, नि सां, सां, रें, सां धु' ये स्वर एक बार श्रोताओं को सुनाई दिए कि फिर उन्हें वे कभी नहीं भूल सकेंगे। इस राग में गायक अधिक तानबाजी नहीं करते। यह सत्य है कि जब तक श्रोताओं पर इस राग का प्रभाव अच्छी तरह न छा जाए, इसमें तानें नहीं ली जातीं। इस राग में ठुमरी-जैसे क्षुद्र गीत अच्छे घरानेदार गायक नहीं गाते। यदि किसी ने कभी उनसे इस प्रकार गाने की फरमाइश की तो, कभी-कभी वे लोग क्रोधित भी हो जाते हैं। परन्तु यह स्वीकार करना पड़ेगा कि वे भी आजकल बहुत सामान्य स्तर पर आ गए हैं। परसों श्रोताओं में बात चल रही थी, उसमें मेरे मित्र एक प्रसिद्ध व वृद्ध गायक ने कहा—'पंडित जी! अब वे कदरदान सुनने वाले भी कहाँ हैं? कदरदान हमारे गुलाम और बेकदर के हम गुलाम।" आजकल गायक अपने संग्रह में आँख, नाक के डाक्टर के समान सब-कुछ रख छोड़ते हैं। अस्तु, अब यह देखें कि हमारे ग्रन्थकारों ने भैरव का वर्णन किस-किस प्रकार किया है।

प्रश्न—जी हाँ, यह सुनाइए ?

उत्तर—पंडित रामामात्य ने अपने 'स्वरमेलकलानिधि' में यह राग बताया ही नहीं। भिन्नषड्ज' राग उसने अपने बिलावल ठाठ के स्वरों में बताया है। ऐसा ही रामामात्य के अनुयायी संगीतलक्षणकार ने भी कहा है। अब पंडित सोमनाथ क्या कहता है, वह सुनो :—

रागविबोधे :—

भैरवमेले शुद्धाः सरिमपधा अंतरश्च कैशिकनिः ।
भैरवपौरविकाद्या रागा मेलादतस्तु स्युः ॥
धांशग्रहसन्यासः संपूर्णो भैरवः प्रातः ॥

यहाँ तुम्हें सर्वप्रथम एक बात यह दिखाई देगी कि इस ग्रन्थकार के समय अर्थात् शाके १५३१ के लगभग भैरव राग सम्पूर्ण माना जाने लगा था। सोमनाथ ने भी इस राग में धैवत को अंश व ग्रह स्वर माना है। यहाँ निषाद की उलझन शायद पड़ेगी, परन्तु इसके सम्बन्ध में मैं पहले भी कुछ कह चुका हूँ। यह अफसोस की बात है कि सोमनाथ ने शुद्ध धैवत वीणा के चौथे परदे पर स्थापित कर, स्वयं को तथा पाठकों को व्यर्थ की धांधली में पटक दिया है। 'मालवगौड़' एक अति प्रसिद्ध व लोकप्रिय ठाठ रहा है। इसमें तीव्र ध शामिल करने से इसके विषय में किसी को भी सम्मान का अनुभव न होगा। उसके तीव्र धैवत की दृष्टि से कैशिक नी, तीव्र नी ही हो सकेगी। यहाँ एक बात अवश्य स्पष्ट रूप से स्वीकार करनी पड़ेगी कि सोमनाथ ने भैरव मेल मालवगौड़ से भिन्न माना है तथा दक्षिण के कुछ ग्रन्थकार भैरव में तीव्र धैवत भी बताते हैं, परन्तु गलती तो गलती ही है। शुद्ध ध को तीव्र ध मानने का विधान ही गलत है। खास मालवगौड़ ठाठ के लिए तो सोमनाथ का धैवत वही बताया जाएगा। हमारे पंडित उसकी भूल को आगे नहीं चलाते हैं, यह बात मुझे भी पसन्द है।

सद्रागचन्द्रोदये :—

शुद्धौ सरी मध्यमपंचमौ च विशुद्धधो मो लघुशब्दपूर्वः ।
निः कैशिकी चाऽपि यदा भवेत्तु हिजेजरागस्य हि मेलकः स्यात् ।
धांशग्रहन्याससयुतश्च पूर्णः प्रातः प्रयुज्येत स भैरवाख्यः ॥

देख रहे हो न कि लक्षण सोमनाथ के लक्षणों से कितने मिलते-जुलते हैं? यह ग्रन्थकार भैरव में कैशिक निषाद ग्रहण करने को स्पष्ट रूप से कहता है। सोमनाथ ने भी ऐसा ही कहा था। 'हिजेज' के विषय में आगे चलकर बताऊँगा।

प्रश्न—क्या इस पुण्डरीक का काल-निर्णय हो गया है?

उत्तर—अभी तक नहीं हुआ। परन्तु यह पंडित अपने ग्रन्थ के आरम्भ में कहता है कि 'फरकी' खानदान के बुरहानखान नामक राजा के पास रहता हूँ। विद्वान् कहते हैं कि यह घराना खानदेश में प्रसिद्ध हुआ था। बुरहानखान की राजधानी पुण्डरीक ने आनन्दवल्ली बताई है, परन्तु मैं अभी तक यह नहीं समझ पाया कि वह हमारा कौनसा शहर हो सकता है। वह राजधानी 'दक्षिणदिङ् मुखस्य तिलके' इस प्रकार बताई गई है। यह खोज आगे तुम खुद करना। इस पुण्डरीक ने दूसरे तीन ग्रन्थ और लिखे हैं। उनमें 'रागमाला' बहुत सुन्दर रचना है। 'रागमाला' में पुण्डरीक ने इस प्रकार कहा है :—

शुद्धभैरवहिन्दोलदेशिकारास्ततः परम् ।
श्रीरागः शुद्धनाटश्च नट्टनारायणश्च षट् ॥

प्रश्न—यह क्या ? यहाँ तो मुख्य छह राग आदि की प्रपंचपूर्ण व्यवस्था दिखाई देती है। 'चन्द्रोदय' में तो ऐसा स्वरूप नहीं मिलता। वह भी तो इसी पंडित का ग्रन्थ है न ?

उत्तर—हाँ, यह अवश्य आश्चर्य की बात है कि एक ही ग्रन्थकार ने इस प्रकार दो रूप क्यों प्रस्तुत किए ? हम सदैव सुनते हैं कि राग व रागिनी की रचना उत्तर-भारत की देन है। यह भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि इस प्रकार की रचना करना बहुत विद्वत्ता का कार्य है। प्रत्येक व्यक्ति यह कह सकेगा कि भिन्न-भिन्न मतों के प्रमाण से भिन्न-भिन्न वर्गीकरण किए गए होंगे, परन्तु ऐसे वर्गीकरण संगीत की बहुत ऊँची सीढ़ी रही होगी। हमारे देश में आज जो शांति है, यदि ऐसी शांति बादशाही शासन-काल में रही होती, तो भारतीय संगीत की ऐसी शोचनीय स्थिति न होती। यदि ईश्वर की कृपा से इस प्रकार की शान्ति दीर्घकालीन बनी रहे तो शायद हमारे विद्वान् भी आज के सम्पूर्ण हिन्दुस्तानी संगीत को यथासम्बन्ध नियम-बद्ध रीति से 'राग-रागिनी-पुत्र-पौत्रादि' के तरीके से भी लिख छोड़ेंगे; केवल समाज की सहानुभूति प्राप्त होनी चाहिए। अस्तु ! चाहो तो कह सकते हो कि 'रागमाला' ग्रन्थ यह सिद्ध करता है कि पुण्डरीक उत्तर की ओर आया था। यह मैं कह चुका हूँ कि रागों की कुटुम्ब-व्यवस्था उत्तर की ओर रही है। पंडित पुण्डरीक ने शुद्ध भैरव राग अपने छह पुरुष रागों में प्रथम माना है। मजा यह है कि शुद्ध भैरव का रूप 'चन्द्रोदय' के भैरव के रूप से भिन्न है।

प्रश्न—यह भला कैसे हो सकेगा ? एक ही ग्रन्थकार ऐसा असंगत मत कैसे दे सकता है ? शायद 'शुद्ध' उपपद लगने से तो यह भेद उत्पन्न नहीं हो गया ?

उत्तर—तुम्हारा तर्क बिल्कुल दुरुस्त है। इस शब्द के प्रयोग-भेद हमें अनेक स्थलों पर दिखाई पड़ते हैं; जैसे—शुद्धमल्हार, शुद्धकल्याण, शुद्धसारंग, शुद्धधनाश्री इत्यादि।

प्रश्न—शुद्धभैरव का स्वरूप, 'पुण्डरीक' ने 'रागमाला' में किस प्रकार बताया है ?

उत्तर—वह इस प्रकार है :—

सद्योजातोद्भवोऽयं प्रथमगतिगनिः सत्रिकोऽरिः कपर्दी ।
रक्तः श्यामस्त्रिशूली सिततरवसनो भस्मदेहस्त्रिनेत्रः ॥

कण्ठे शृंगं दधानः श्रवणयुगलतो मुद्रिके चंद्रजूटो ।
हैमंतेऽपि प्रभाते विलसति वृषपो भैरवः शुद्धपूर्वः ।

प्रश्न—यह तो महादेवजी का वर्णन हुआ। परन्तु इससे हमारे-जैसों को क्या बोध होगा ?

उत्तर—ठहरो ! पुण्डरीक इतर ग्रन्थकारों-जैसा पागल नहीं था। उसने अपने वर्णन में महादेव का चित्र अवश्य मिला दिया है, परन्तु ऐसा करने के साथ-साथ उसने स्वरों का इशारा भी कर दिया है। मालूम होता है, इस तथ्य पर अभी तुम्हारा ध्यान नहीं पहुँचा।

प्रश्न—नहीं, वह कैसा किया है ? क्या श्लोक में श्लेष-प्रयोग है ?

उत्तर—कोई बड़ा भारी श्लेष-वेष तो नहीं है, परन्तु स्वरबोधक विशेषण अवश्य उसमें खींच-तानकर वर्णन में सम्मिलित किए हैं। ऐसा करने में कोई बड़ी हानि भी नहीं है। संगीत के ग्रन्थ सदैव अर्थप्रधान होने से पाठकों को इनमें उच्चस्तर का बिलकुल निर्दोष काव्य अपेक्षित भी नहीं होता। उनके लिए तो इतना ही पर्याप्त है कि यथायोग्य जानकारी संक्षिप्त किन्तु व्यवस्थित मिल सके। यह तुम जानते हो कि इस प्रकार की जानकारी संस्कृत-श्लोकों की मदद से अच्छी तरह दी जा सकती है।

प्रश्न—यह तो ध्यान में आ गया। परन्तु श्लोक का महत्त्वपूर्ण भाग हमें अच्छी तरह समझा दीजिए। हम अपने स्वतः के तर्क एक ओर रख देते हैं। हमें ठीक से समझा दिया जाएगा, तो बार-बार शंकाएँ उत्पन्न न होंगी।

उत्तर—ठीक है, देखो 'प्रथमगतिगनिः सत्रिको, अरिः हैमन्ते, प्रभाते', इन विशेषणों में तुम्हारी इच्छित, अधिकांश जानकारी मिल जाएगी।

प्रश्न—इसमें से अन्तिम चार विशेषण तो स्पष्ट ही हैं, परन्तु पहले का स्पष्टीकरण अच्छी तरह होना आवश्यक है। पिछली बार भी आपने इस प्रकार के विशेषणों के सम्बन्ध में कुछ कहा था, परन्त हमारे मन में इस सम्बन्ध में बड़ी शंका रह गई। इस सम्बन्ध में यदि अब स्पष्ट व्याख्या कर दें, तो अच्छा होगा।

उत्तर—यह मैं करने ही वाला हूँ। प्रथम हम उन दो-तीन श्लोकों को देख जाएं, जिनमें पुण्डरीक ने अपने शुद्ध व विकृत स्वर बताए हैं :—

हेतवो नादभेदस्य तिर्यक्सच्छिद्रनाडिकाः ।
द्वाविंशतिः प्रतिस्थानं सोपानाकारवत्क्रमात् ॥

वायुपूरणतस्तारस्तत्तारस्तूत्तरोत्तरम्‌ ।
प्रभवंत्युच्चोच्चतराः श्रुतयः श्राव्यमात्रतः ॥
रागादिव्यवहाराय तासु सप्तस्वराः स्थिताः ।
षड्जश्च ऋषभश्चैव गांधारो मध्यमस्तथा ॥
पंचमो धैवतश्चाऽथ निषादश्चेत्यनुक्रमात्‌ ।
तेषां संज्ञाः सरिगमपधनीत्यपरा मताः ॥
वेदाचलांकश्रुतिषु त्रयोदश्यां श्रुतौ ततः ।
सप्तादश्यां च विंश्यां च द्वाविंश्यां च श्रुतौ क्रमात्‌ ॥

इतना भाग तो तुम्हारा पहचाना हुआ ही है। अब पुण्डरीक के विकृत स्वर भी हम देख लें :—

षड्जादीनां स्थितिः प्रोक्ता प्रथमा भरतादिभिः ।
असपाः पूर्वपूर्वातः संचरंत्युत्तरोत्तरम्‌ ॥
त्रिस्त्रिर्गतीस्ते प्रत्येकं यांति गश्च चतुर्गतीः ।
यद्यद्रागोपयोगः स्यात्तत्तदिच्छागतिर्भवेत्‌ ॥
गन्योर्गती द्वितीये चांतरकाकलिनी स्मृती ।
पंचम्यष्टादशी षष्ठी तथा चैकोनविंशतिः ॥
चतस्रः श्रुतयश्चैता रागाद्यैरप्रयोजकाः ।
शेषा अष्टादशैव स्युः श्रुतयः स्वरबोधकाः ॥

प्रश्न—यह भाग कोरे संस्कृत-भाषा-ज्ञान से अच्छी तरह समझ में आने-योग्य नहीं दिखाई पड़ता। अब हमें इसका भावार्थ समझा दें तो बहुत अच्छा होगा। थोड़े-बहुत तर्क तो हम आपकी पहले दी हुई जानकारी से कर सकते हैं, परन्तु यथोचित समाधान नहीं हो सकेगा।

उत्तर—कहता हूँ, सुनो! पुण्डरीक ने अपने शुद्ध स्वर 'वेद, अचल, अंक, त्रयोदशी, सप्तदशी, विंशी व द्वाविंशी' इन श्रुतियों पर स्थापित किए हैं। यह तो स्पष्ट ही है न?

प्रश्न—जी हाँ, यह तो सम्पूर्ण प्राचीन व्यवस्था ही है। इसमें हमें आश्चर्य करने-योग्य कुछ भी नहीं दिखाई देता।

उत्तर—ठीक ! अब आगे पुण्डरीक कहता है कि इस प्राचीन व्यवस्था के अनुसार जब अपने-अपने नियत स्थानों पर स्वर होते हैं, तब वे 'प्रथम' या 'मूल' अवस्था में होते हैं, यह समझना चाहिए। वहाँ से उनके हट जाने पर उनमें विकृति उत्पन्न होती है। उसका यह कथन भी योग्य दिखाई पड़ता है। अब कौनसे स्वर विकृत हो सकते हैं, यह उसमें 'असपा:' पद में बताया है। 'असपा:' अर्थात् स और प को छोड़कर पाँच स्वर यानी रि, ग म, ध, नी, विकृत हो सकते हैं। हम भी आजकल स व प को अचल मानते हैं। ठीक है न ?

प्रश्न—यह तो ठीक है। आगे ?

उत्तर—आगे रि, ग, म, ध, नी की विकृति की एक महत्त्वपूर्ण शर्त बताई है 'संचरंत्युत्तरोत्तरम्'। मैं समझता हूँ कि यह भाग भी तुम्हारे लिए बिलकुल नवीन नहीं है। मैं इस विषय पर भी पहले कुछ बोल चुका हूँ। परन्तु जिस उद्देश्य से हम 'रागमाला' की परिभाषा व व्यवस्था देख रहे हैं, उसे देखते हुए फिर से इस भाग को दुहराना हानिप्रद नहीं है। ऊपर बताई हुई इस शर्त में यह निश्चित किया गया है कि स्वर अपने प्रथम व नियत स्थान से विकृत होने पर नीचे नहीं उतरता, वह केवल ऊपर ही चढ़ेगा। तुम्हें इस बात से चकराना नहीं चाहिए। पुण्डरीक को तो तुम दक्षिण का ही पंडित मानते हो न ? उसके शुद्ध रि, ध ठीक ही होते हैं। 'पारिजात' व दक्षिण-ग्रन्थों का यह अन्तर तुम्हारे ध्यान में पहले ही आ चुका है। दक्षिण में स्वरों की शुद्ध अवस्था सबसे निम्न ध्वनि मानते हैं। वे स्वरों को विकृत करने का अर्थ चढ़ाना मानते हैं। यह महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त कभी मत भूलना। इसी सिद्धान्त के सहारे हम यह निश्चित कर सकते हैं कि अमुक पद्धति उत्तर की है, या दक्षिण की।

प्रश्न—यह सब हमें ध्यान है। इस विचारधारा से हमने 'रत्नाकर' की पद्धति कहाँ की है, यह तथ्य निश्चित करने का प्रयत्न किया था। शार्ङ्गदेव पंडित की परिभाषाओं में 'कोमल' शब्द नहीं पाया जाता तथा उसकी व्यवस्था में भी स्वरों को ऊपर चढ़ाकर विकृत करने की योजना है। यह सब हमने अच्छी तरह देखा था। इतना ही क्यों, हमें तो आपका यह कथन भी स्मरण है कि शार्ङ्गदेव को दक्षिण के ग्रन्थकार अपने-जैसा ही एक दक्षिणी पंडित मानते हैं। हमने आपके कथन से यह भी निश्चित कर लिया है कि यदि कोई 'रत्नाकर' की पद्धति को दक्षिण की ठहराने का विधान निश्चित करे, तो हमें एकदम उसका मजाक नहीं उड़ाना है। अस्तु, आप जो 'रागमाला' की भाषा का स्पष्टीकरण कर रहे थे, उसे ही आगे चलने दीजिए !

उत्तर—ठीक है। स्वर की प्राथमिक स्थिति तो तुम देख ही चुके हो। पंडित पुण्डरीक कहता है कि भरत की कल्पना भी ऐसी ही थी। उसका यह कथन भी सत्य है। रि, ग, म, ध, नी स्वर विकृत होने पर तीन-तीन गति चढ़ सकते हैं। 'गति' शब्द तो तुम समझ ही जाओगे ?

प्रश्न—हमें अपनी कल्पनाओं पर विश्वास करना पसंद नहीं। आप तो स्पष्ट बता दीजिए !

उत्तर—ऐसा ! अच्छा तो कहता हूँ। शुद्ध गान्धार स्वर षड्ज से आगे पाँचवीं श्रुति पर होता है, तब इसकी स्थिति प्रथम होगी। इसे एक-एक 'गति' चढ़ाकर विकृति दी जा सकेगी। भिन्न-भिन्न रागों में भिन्न-भिन्न विकृतियों का उपयोग होता है, यह तुम सहज में समझ सकते हो। शुद्ध गान्धार एक श्रुति चढ़ने पर 'साधारण ग', दो श्रुति चढ़ने पर 'अन्तर ग', तीन श्रुति चढ़ने पर 'मृदु म' या 'लघु म' तथा चार श्रुति चढ़ने पर 'अति तीव्रतम ग', इस प्रकार के भिन्न-भिन्न नाम प्राप्त करता है। यह सब तुम जानते ही हो।

प्रश्न—इसी विचारधारा से निषाद की विकृतियाँ, 'कैशिक नी' 'काकली नी' व 'लघु सा' 'मृदु सा' होंगी। यह तो हम ठीक-ठीक समझ गए। परन्तु 'गति' शब्द का अर्थ श्रुति कैसे ! यदि यह किसी ने पूछा तो ?

उत्तर—ऐसा अर्थ करने का आधार स्वयं पुण्डरीक ने आगे चलकर प्रस्तुत किया है। वह कहता है—'गन्योर्गतौ द्वितीये चान्तरकाकलिनौ स्मृतौ'। शुद्ध गान्धार व शुद्ध नी, दो श्रुति ऊपर चढ़े कि क्रमशः अन्तर ग व काकली नी हो जाएँगे।

प्रश्न—तो फिर ठीक है। 'गति' याने पुण्डरीक की श्रुति। अब फिर आगे चलिए ?

उत्तर—मैं शुद्ध भैरव की व्याख्या कर रहा था। यह राग प्रथमगतिक गान्धार व निषाद, ग्रहणकर्ता होने से, इसमें गान्धार व निषाद कोमल होते हैं। दक्षिण के ये साधारण ग व कैशिक नी होंगे। यह स्वरूप देखकर हमें थोड़ा आश्चर्य होगा, परन्तु शुद्ध भैरव व भैरव राग अलग-अलग हैं, तो आश्चर्य क्यों होना चाहिए ?

प्रश्न—परन्तु 'प्रथम गति गनिः' इस विशेषण में 'प्रथम' शब्द आता है, इसमें कोई शुद्ध स्थिति तो नहीं समझ लेंगे ?

उत्तर—ऐसा नहीं हो सकता। 'प्रथम गति' व 'प्रथम स्थिति' में क्या कोई भेद नहीं ? गति कहने पर स्वर का चलित होना ध्वनित होगा। 'गति' स्थिति का अन्तर व्यक्त करनेवाला शब्द है। स्वर को हटाना, याने ऊपर चढ़ाना, ग्रन्थकार ने पहले ही कह रखा है। निषाद कोमल है, यह भी हमारे लिए आश्चर्यजनक नहीं है, क्योंकि 'चन्द्रोदय' में खास भैरव में यही स्वर बताया गया था।

प्रश्न—आपका कथन उचित है। हमें भी यही ज्ञात होता है कि 'प्रथम गति' का अर्थ शुद्ध अवस्था नहीं हो सकता, क्योंकि यह मान लेने पर शुद्ध भैरव का ठाठ दक्षिण का शुद्ध ठाठ ही हो जाएगा तथा उसमें दोनों प्रकार के रि, ध आ जाएँगे। ऐसा रूप सचमुच समाधानकारक नहीं हो सकेगा।

उत्तर—ठीक है। अच्छा, अब अपनी व्याख्या के अनुसार शुद्ध भैरव के स्वर कैसे हुए ?

प्रश्न—वे इस प्रकार होंगे। सा, कोमल री (वर्ज्य स्वर), कोमल ग, म, प, कोमल ध व कोमल नी। इस ठाठ को दक्षिण में क्या कहा जाएगा ?

उत्तर—कोई भूपाल, कोई भिन्नषड्ज तथा कोई तोड़ी कहेंगे। परन्तु अभी हम उनके नामों पर ध्यान नहीं देंगे।

प्रश्न—क्या पुण्डरीक ने 'रागमाला' में केवल 'भैरव' ऐसा राग अलग से और बताया है ?

उत्तर—यह तुमने ठीक पूछ लिया। इस प्रकार एक स्वरूप और बताया है। इसमें भी 'शुद्ध' पद की आवश्यकता स्पष्ट दिखाई देगी। इस भैरव का भी वर्णन सुनाता हूँ, सुनो :—

भस्मांगः कंठशृंगी श्रवणयुगलतः शंखमुद्रे दधानः।
पादत्राणे प्रवाले फणिपतिसुजटाबद्धमौलिः प्रमत्तः॥
उज्झालस्यानुयायी पटुतरवचनः किन्नरीवाद्यमानः।
पूर्णो धाद्यंतमध्यस्त्वनलविधुगनिर्भैरवः पूर्वयामे ॥

यह वर्णन समझने में अधिक कठिन नहीं है। इसकी अन्तिम पंक्ति में रागलक्षण संक्षेप में परन्तु स्पष्ट बताए हैं। यहाँ यह बताया है कि भैरव राग सम्पूर्ण है तथा उसमें धैवत स्वर ग्रह, अंश व न्यास है तथा वह प्रथम प्रहर में गाया जाता है। 'अनल-विधुगनिः' इस पद का अर्थ इस प्रकार किया जाए—'अनल' याने तीसरी सीढ़ी पर चढ़ा हुआ गान्धार, व 'विधु' याने एक 'गति' का निषाद।

प्रश्न—तो फिर इसे 'चन्द्रोदय' में कहा हुआ रूप ही कहिए न ? सोमनाथ का धैवत योग्य स्थान पर माना गया, तो उसके लक्षण भी इन लक्षणों से मिल जाएँगे, परन्तु ठहरिए ! सोमनाथ 'अन्तर ग' कहता है, तो यह जगह 'अनिल ग' से एक श्रुति नीची हो जाएगी ?

उत्तर—तुम्हारी शंका ठीक है, परन्तु मैं तुम्हें यह बता चुका हूँ कि 'अनिल गतिक' ग व अन्तर ग परस्पर प्रतिनिधि माने गए हैं। इस दृष्टि से देखने पर सोमनाथ व पुण्डरीक में कुछ हद तक समानता हो सकेगी। इतना ही क्यों, पुण्डरीक ने 'रागमंजरी' नामक ग्रन्थ में स्पष्ट कहा है :—

काकल्यंतरयोः स्थाने तृतीयगतिकौ निगौ।
प्रयोगे च प्रतिनिधी क्रियेते सांप्रदायिकैः॥
स्वल्पप्रयोगः सर्वत्र काकली चांतरस्वरः।

हमारे अधिकांश मध्यकालीन ग्रन्थकार ऐसा ही मानते हैं। 'रत्नाकर' के 'स्वल्पप्रयोगः सर्वत्र' इत्यादि वाक्यों का वे ऐसा ही अर्थ करते हैं, कोई-कोई विद्वान्

कहते हैं कि शार्ङ्गदेव का आशय यह नहीं था। परन्तु वह कौनसा आशय था, जबतक यह प्रसिद्ध नहीं किया जाता, तब तक उनके मतभेद से तुम्हें बड़ा भारी लाभ होना सम्भव नहीं दिखाई देता। यह कहना गलत नहीं है कि शार्ङ्गदेव के साधारण प्रकरण का मर्म अभी तक समाधानकारक रीति से कोई नहीं समझा पाया है। इस भाग पर हाल ही में कुछ तर्क आरम्भ हुए हैं।

प्रश्न—इसमें किस बात का स्पष्टीकरण होना चाहिए ?

उत्तर—शार्ङ्गदेव इस प्रकरण में कहता है :—

साधारणं भवेद्द्वेधा स्वरजातिविशेषणात् ।
स्वरसाधारणं तत्र चतुर्धा परिकीर्तितम् ॥
काकल्यन्तरषड्जैश्च मध्यमेन विशेषणात् ।

इस श्लोक का वाच्यार्थ तो दिखाई देता ही है, भाषा भी बिलकुल सरल है। 'साधारण जाति' का विचार तो अब हमें चाहिए ही नहीं। साधारण स्वर चार प्रकार के बताकर यह पंडित कहता है :—

निषादो यदि षड्जस्य श्रुतिमाद्यां समाश्रयेत् ।
ऋषभस्त्वंतिमां प्रोक्तं षड्जसाधारणं तदा ॥
मध्यमस्याऽपि गपयोरेवं साधारणं मतम् ।
साधारणं मध्यमस्य मध्यमग्रामगं ध्रुवम् ॥

यह वर्णन कैशिक निषाद व साधारण गान्धार में लगाने-योग्य है। परन्तु साधारण का उपयोग कहाँ व किस प्रकार, कितनी मात्रा में किया जाए, यह भी शार्ङ्गदेव को स्पष्ट कहना चाहिए था न ? इस श्लोक पर टीकाकार ने भी कुछ स्पष्ट व्याख्या की होगी न ?

उत्तर—यह नहीं कहा जा सकता कि शार्ङ्गदेव ने यथायोग्य स्पष्टीकरण किया है। इसी लिए हमारे पंडित डरते-डरते भी यह होगा, या वह होगा, कहने के परे जा सकेंगे, यह नहीं दिखाई पड़ता। कल्लिनाथ अपनी टीका में इस प्रकार कहता है—

स्वरसाधारणचतुष्टयस्यापि ग्रामद्वये प्रसक्तौ विकृतत्वेऽपि स्वराणां पंचश्रुतित्वमनिष्टमिति मत्वा मध्यमसाधारणं मध्यमग्राम एव नियमयति ।

इस टिप्पणी को पढ़कर पाठकों की कठिनाई दूर हो गई हो, अब यह नहीं दिखाई पड़ता। यह कहना ही ठीक है कि अभी तक इस भाग का सम्पूर्ण समझदारीपूर्ण स्पष्टीकरण नहीं हो पाया। जिस उद्देश्य से 'रत्नाकार' के राग आज हम छोड़ना

चाहते, उस हेतु के लिए हमें इस साधारण प्रकरण पर तर्क करने की आवश्यकता नहीं है। शार्ङ्गदेव इस प्रकार कहता है—'स्वल्पप्रयोगः सर्वत्र काकली चांतरस्वरः।' साथ ही वह स्वयं के अनेक रागों में इन स्वरों का प्रयोग भी करता है। परन्तु यथार्थ रहस्य इनका अभी तक कहीं पर प्रकट नहीं हो पाया। पिछले ग्रन्थकारों ने इस वाक्य का कैसा अर्थ ग्रहण किया, यह तुम्हें ज्ञात ही है। शार्ङ्गदेव ने मृदु सा, मृदु म, च्युत सा, च्युत म, आदि नामों का प्रयोग रागाध्याय में स्पष्ट रूप से नहीं किया, इसका कारण पाठकों को ठीक रूप से जानना चाहिए। मैं समझता हूँ कि कुछ दिन और प्रतीक्षा करने से इस विषय पर हमारे विद्वानों से थोड़ी-बहुत जानकारी और मिल सकेगी, धैर्य रखो!

प्रश्न—बहुत अच्छी बात है, ऐसा ही करेंगे। अच्छा तो अब आगे चलिए?

उत्तर—रागमाला में भैरव का वर्णन कैसा किया गया है, यह अभी तुम देख ही चुके हो। पुण्डरीक ने केवल ऋषभ वर्ज्य करने को कहा है, उसे पंचम स्वर छोड़ना पसन्द नहीं आया। प्रभातकाल में हिंदोल के सिवाय अन्य रागों में पंचम वर्ज्य नहीं किया जाता। प्रातःकाल के समय पंचम का महत्त्व कितना होता है, यह तुम्हें अनुभव से अधिक ज्ञात हो सकेगा। मैं तुम्हें यह सुझा चुका हूँ कि आते-जाते, जब गायक इस स्वर पर विश्रांति लेते हैं, तब कितना मजा आता है, यह देखने-सुनने की चीज है।

संगीतदर्पणे :—

धैवतांशग्रहन्यासो रिपहीनत्वमागतः।
भैरवः स तु विज्ञेयो धैवतादिकमूर्छनः॥
विकृतो धैवतो यत्र औडवः परिकीर्तितः।

इस पंडित दामोदर के सम्बन्ध में मैं पहले भी बोल चुका हूँ। इसने अपने स्वराध्याय की सारी सामग्री 'रत्नाकर' से ग्रहण की है, यह बात भी मैं तुम्हें बता चुका हूँ। यह तुम्हारे लक्ष्य में आ ही गया होगा कि इस व्याख्या में इसने रे, प वर्ज्य करने का निर्देश किया है। धैवत स्वर अंश, ग्रह व न्यास बताया है और मूर्च्छना भी धैवत की बताई है। यह पाठकों को पूर्ण संतोषजनक ज्ञात नहीं होती।

प्रश्न—यहाँ गान्धार, निषाद शुद्ध ग्रहण करने पड़ेंगे, क्योंकि इस विषय पर ग्रन्थकार कुछ नहीं कहता। परन्तु इसके शुद्ध ग, नि हिन्दुस्तानी संगीत के कौनसे स्वर होंगे, यह प्रश्न उपस्थित होगा। इतना ही नहीं, यह भी समझना पड़ेगा कि धैवत विकृत को कौनसा नाद माना जाए?

उत्तर—तुम्हारा कथन ठीक है! ये प्रश्न वास्तव में महत्त्वपूर्ण हैं। मैंने प्रवास करते समय अनेक व्यक्तियों से पूछा था कि 'दर्पण' का शुद्ध ठाठ कौनसा है, परन्तु संतोषजनक उत्तर कहीं पर प्राप्त नहीं हुआ। दक्षिण के पंडितों ने कहा कि इसके स्वराध्याय की स्वर-रचना अक्षरशः हमारी है, अतः शुद्ध ठाठ भी हमारा होगा।

उत्तर के विद्वानों ने कहा कि सारे राग हमारे हैं, अतः शुद्ध स्वर भी हमारे होंगे। क्या यह एक मनोरंजक स्थिति नहीं है ?

प्रश्न—परन्तु उत्तर के स्वर कौनसे, काफी ठाठ के या बिलावल ठाठ के ?

उत्तर—यह प्रश्न भी ठीक ही है। 'दर्पण' का जो ठाठ निश्चित होगा, वही शार्ङ्गदेव का होना चाहिए, क्योंकि दामोदर पंडित ने स्वराध्याय 'रत्नाकर' का ही स्वीकार किया है। अनेक विद्वान् भिन्न-भिन्न तर्क लड़ाते रहते हैं। ग्वालियर के एक पंडित ने मुझे बताया कि उसके गुरु ने उसे एक ध्रुवपद भैरव का बताया, जो बिलकुल मालकोश-जैसा था। शायद उसके गुरु ने रे, प वर्ज्य करने का विधान पढ़कर ऐसी एकाध रचना कर ली होगी।

प्रश्न—शायद यह शुद्ध भैरव ही होगा। परन्तु क्या 'रागमाला' में शुद्ध भैरव का स्वरूप इस प्रकार नहीं बताया है ?

उत्तर—सत्य है ! तुमने सही तर्क किया है। पंडित दामोदर ने इस 'शुद्ध भैरव' नाम का उपयोग नहीं किया। उसने अपना ग्रंथ सत्रहवीं शताब्दी में लिखा है, फिर भी रागों में ग्राम, मूर्च्छना का झंझट है ही। उसके राग उसी के स्वरों से हल करने चाहिए। अब उसका विकृत धैवत कौनसा है ? यह भी देख लो। स्वराध्याय में वह कहता है—'धैवतो मध्यमग्रामे विकृतः स्यात् चतुःश्रुतिः' यह वाक्य उसने 'रत्नाकर' का ही ले लिया है। यदि धैवत केवल मध्यम ग्राम में विकृत होता है, तो क्या भैरव मध्यम ग्राम का राग होगा ? प्रत्येक यह प्रश्न कर सकेगा। 'रत्नाकर' में यद्यपि रि, प, स्वरों का वर्ज्य होना बताया है, परन्तु मूर्च्छना उत्तरायता बताई है, जो षड्ज ग्राम की है। सारांश यह है कि यह व्याख्या देखकर पाठक अवश्य उलझन में पड़ जाएगा। देशी भाषा के ग्रंथकार तो ऐसे विषयों पर प्रकाश डालते ही नहीं। मैं समझता हूँ कि उन्हें ऐसी बातों पर लिखना सम्भव भी नहीं है। भैरव की व्याख्या हनुमत-मत की है, ऐसा ग्रंथकार कहता है। परन्तु इससे क्या स्पष्टता हो सकेगी ? दक्षिण का शुद्ध ठाठ लेकर यदि राग-रचना करें, तो भी तुम्हारा इच्छित रूप प्राप्त नहीं होता और उत्तर की ओर का ठाठ भी अच्छा-सा नहीं लग पाता। सारांश में यह कहने में कोई आपत्ति नहीं कि अभी तक किसी ने 'दर्पण' में वर्णित भैरव के लक्षणों की उत्तम रूप से स्पष्टता नहीं की। राजा टैगोर द्वारा प्रकाशित 'दर्पण' की प्रति में भैरव पर इस प्रकार टीका प्राप्त होती है; देखो :—

रिपहीनोऽथ मातंगः। औडवः पंचभिः स्वरैः गीतः। सम्पूर्णोऽयं राग इति संगीतनारायणसोमेश्वरयोर्मतम्। ऋषभमात्रवर्जितोऽयमिति संगीत-निर्णयकारः, यदुक्तं 'भिन्नषड्जसमुत्पन्नो भैरवोऽपि रिवर्जितः' इति।

प्रश्न—परन्तु बिना यह समझे कि शुद्ध स्वर कौनसे हैं, यह जानकारी किस उपयोग की है ?

उत्तर—तुम ठीक समझ गए। यह तो मुख्य दोष है। अस्तु, दामोदर ने आगे भैरव का वर्णन इस प्रकार किया है :—

गंगाधरः शशिकलातिलकस्त्रिनेत्रः ।
सर्पैर्विभूषिततनुर्गजकृत्तिवासाः ॥
भास्वत्त्रिशूलकर एष नृमुण्डधारी ।
शुभ्रांबरो जयति भैरव आदिरागः ॥

यहाँ भैरव को 'आदि राग' कहा गया है। सारांश में मैं समझता हूँ कि यदि तुमने किसी से भैरव का स्वरूप 'दर्पण' के लक्षणों से सिद्ध करने को कहा, तो संतोष-जनक स्पष्टीकरण मिलना कठिन होगा। मजा यह है कि जहाँ देखो, वहाँ 'दर्पण' यानी एक प्रधान आधारग्रन्थ ! 'रागमाला' में भैरव का पुत्र माना है। इस पिता-पुत्र के सम्बन्ध में हमें आलोचना करने की आवश्यकता नहीं है, परन्तु यह दिखाई देता है कि धीरे-धीरे पुण्डरीक आदि को यह बोध होने लगा होगा कि जन्य-जनक का सम्बन्ध कुछ अधिक व्यवस्थित आधार रखता है।

प्रश्न—यह कैसे ? शुद्ध भैरव का ठाठ तो उसने हिन्दुस्तानी भैरवी-जैसा माना है। उसका पुत्र तीव्र गान्धार कैसे ग्रहण कर लेगा ?

उत्तर—तुम्हारा प्रश्न ठीक है, परन्तु सुनो, मैं बताता हूँ। शुद्ध भैरव की पाँच भार्याएँ पुण्डरीक ने बताई हैं। वे इस प्रकार हैं—१. धनाश्री, २. सैंधवी, ३. मारवी, ४. भैरवी, और ५. आसावरी। आगे पाँच पुत्र माने हैं—१. भैरवी, २. शुद्ध ललित, ३. पंचम, ४. परज और ५. बंगाल। इस नवीन रचना की ओर देखने से यह ज्ञात होने लगता है कि हम अँधेरे से कुछ प्रकाश की ओर आ गए हैं। इन पुत्रों के स्वर अधिकांश में मिलते हुए हैं, यह तुम्हें आगे दिखाई पड़ेगा। भैरव की जो पाँच रागिनियाँ कही गई हैं, इनमें आसावरी व मारवी, इन दोनों में तीव्र गान्धार प्रयुक्त हुआ है व रि, ध कोमल माने हैं। तब यदि पुत्र रागों में तीव्र गान्धार दिखाई दिया, तो मान लिया जाएगा। किन्तु इतने मात्र से ही मैं यह मानने को तैयार नहीं हूँ कि जब इस प्रकार का सम्बन्ध प्रत्यक्ष है, तब ग्रन्थों में वर्णित राग-रागिनी-परिवार का विधान योग्य है। इस विधान का औचित्य अभी उत्तम रूप से सिद्ध होना बाकी है। आगे-आगे ग्रन्थकार किन-किन बातों की ओर ध्यान देने लगे थे, वे निरर्थक बातें तुम्हें बतादी गई हैं।

प्रश्न—शायद प्राचीन राग-वर्गीकरण भी पुण्डरीक-जैसी विचारधारा पर रचे गए होंगे ?

उत्तर—शायद होंगे ! परन्तु उन्हें संतोषजनक रीति से किसी को सिद्ध तो करना चाहिए न ? अब 'दर्पण' के भैरव को ही लो। यह जनक राग है, जब इसका स्वरूप ही निश्चित नहीं, तब इसकी भार्या व पुत्रों के रूप कैसे व्यवस्थित हो सकेंगे ? परन्तु यह विषय हम स्थगित ही रखें। शायद भविष्य में हमें और किसी प्राचीन ग्रन्थ का पता लग जाए तथा विवादग्रस्त बातों की स्पष्टता भी हो जाए।

प्रश्न—यहाँ पर एक प्रश्न और भी उपस्थित होता है। पहले आपने यह कहा ही है कि 'रत्नाकर' में भैरव राग भिन्नषड्ज से उत्पन्न माना गया है। हम सोचते

हैं कि यदि 'रत्नाकर' के उपरान्त लिखे हुए ग्रन्थों में भिन्नषड्ज का स्वर-स्वरूप लिखा हुआ हो, तो कुछ साधार स्पष्टीकरण मिल सकता है। क्या नहीं मिलेगा ?

प्रश्न—ऐसी बात नहीं है कि शार्ङ्गदेव के पश्चात् होनेवाले सभी ग्रन्थकर्त्ताओं ने उस राग को बताया हो। 'चतुर्दण्डिप्रकाशिका' में भिन्नषड्ज के स्वर इस प्रकार कहे गए हैं—सा, कोमल री, कोमल ग, शुद्ध म, शुद्ध प, शुद्ध ध (कोमल ध) व तीव्र नि। उसके नियत ७२ ठाठों में इस ठाठ का स्थान नवाँ है। इसमें निषाद (तीव्र) छोड़कर शेष अपने भैरवी ठाठ के स्वर ही समझ लो। 'संगीतसारामृत' में भिन्नषड्ज को अपने भैरवी ठाठ के ही सभी स्वर दिए गए हैं और उसका ठाठ 'भूपाल' कहा गया है। पुण्डरीक तो भिन्नषड्ज का वर्णन ही नहीं करता। यह तुम्हें ज्ञात ही है कि शार्ङ्गदेव ने 'अन्तर ग' व 'काकली नी' बताए हैं। अब भावभट्ट क्या कहता है, वह भी सुना देता हूँ। यह मैं प्रथम ही कह चुका हूँ कि इसका शुद्ध स्वर-ठाठ दक्षिण का ही था। यह पंडित भी हमारे-जैसा एक संग्रहकर्त्ता था। उसने अपने ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न ग्रन्थों के मत संगृहीत कर दिए हैं। यह भी 'रत्नाकर' को समझ चुका था, यह नहीं दिखाई देता; परन्तु इसके-जैसे दूसरे कई निकलेंगे। भावभट्ट के तीन ग्रन्थ कौन-कौनसे हैं, यह तुम जानते ही हो। उसने अपने 'अनूपांकुश' में कहा है :—

शुद्धभैरवहिंदोली देशकारस्ततः परम्।
श्रीरागः शुद्धनाटश्च नट्टनारायणेतिषट्॥१॥
हिंदोलो दीपकश्चैव भैरवो मालकौशिकः।
श्रीरागो मेघरागश्च षडेते पुरुषाः स्मृताः॥२॥

प्रश्न—इसमें यह प्रथम श्लोक तो इसने पुण्डरीक का ही लिख मारा है। ठीक है न ?

उत्तर—मुझे भी ऐसा ही दिखाई पड़ता है; क्योंकि उसने प्रथम जिन श्लोकों; जैसे :—

धन्नासी भैरवी चैव सैंधवी मालसी तथा।
आसावरी च पंचस्युर्भैरवस्य वरांगनाः॥

आगे पुत्र इस प्रकार बताए हैं :—

भैरवो ललितश्चैव परजः पंचमस्तथा।
बंगालः पंच संप्रोक्ताः भैरवस्य सुता इमे॥

प्रश्न—तो फिर शंका ही नहीं रही ! यह भाग बिलकुल 'रागमाला' का ही ठीक है, पर क्या इसके भैरव का स्वरूप भी 'रागमाला' का ही है ?

उत्तर—नहीं ! भैरव का वर्णन करते हुए इसने इस प्रकार कहा है :—

तत्र प्रथमं भैरवरागालापः । स त्रिधा, औडुवषाडवसम्पूर्णभेदात् ॥ औडुवा षाडवा पूर्णा भैरवे भांति मूर्छनाः । अथोदाहरणं वच्मि यथोक्तं पूर्वसूरिभिः ।

ऐसा कहते हुए भावभट्ट तत्काल 'पारिजात' में दिए हुए आलाप उद्धृत कर देता है। यह पूरा होने पर फिर स्वतः के तैयार किए हुए आलाप लिखता है। अन्त में सोमनाथ का बताया हुआ स्वर-स्वरूप लिख देता है।

प्रश्न—इसकी पद्धति तो सम्पूर्ण दक्षिण की ही होगी ?

उत्तर—हाँ, उसकी गान्धार-निषाद-सम्बन्धी परिभाषा बताता हूँ :—

यदा गान्धारसंज्ञोऽसौ श्रुतिद्वयं समाश्रयेत् ।
तदूर्ध्वमध्यमस्यैव तदा स्यात्सांतराभिधः ॥
यदा निषादसंज्ञकः श्रुतिद्वयं समाश्रयेत् ।
तदूर्ध्वसस्य काकली तदाऽसौ कथ्यते बुधैः ॥

प्रश्न—बस, बस ! यह परिभाषा दक्षिण की ही है। ग्रंथकार ने स्वरसमुदाय कौनसे बताए हैं ?

उत्तर—वे इस प्रकार हैं। सर्व प्रथम औडुव अर्थात् रे, प वर्ज्य कर इस तरह के स्वरसमुदाय दिए हैं—'ध़नि़सा, सा, सानि़ध़, नि़सा, ध़नि़सा, गमग, सानि़ध़, साध़नि़नि़ध़, मध़, नि़सा, ग, मग, सानि़ध़नि़सा, गमध़निसां, निसां, सांनिध, निसांगंमंगंसां, सांनिध, निध, धम, धनिसां, निधम, गमग, सा ।

इस प्रकार के सैकड़ों स्वरसमुदाय तुम बना सकते हो। यह औडुव स्वरूप हुआ। दूसरे स्वरूप में पंचम स्वर लेकर केवल ऋषभ को वर्ज्य किया है। तीसरे स्वरूप में सम्पूर्ण स्वर लिए हैं।

प्रश्न—इसकी विचारधारा हमारे ध्यान में आ गई। क्या भावभट्ट ने अपने ग्रंथ 'रत्नाकर' व 'अनूपविलास' में भैरव के संबंध में कुछ और जानकारी दी है ? परन्तु ठहरिए, भावभट्ट की पद्धति यदि संक्षेप में बताने-योग्य हो, तो हमारी प्रार्थना है कि सम्पूर्ण पद्धति ही बता दीजिए। शुद्ध आधार पर चलना ही उचित है।

उत्तर—मैं भी यह बतानेवाला ही था। आगे भी हमें भिन्न-भिन्न स्थलों पर उसका मत देखने की आवश्यकता पड़ेगी, अतः उसकी पद्धति संक्षेप में जान लेना अनुचित नहीं है। तो फिर सुनो ! 'अनूपविलास' की श्रुति-स्वर-रचना सभी अन्य ग्रंथों के अनुसार है। जैसे अन्य ग्रंथकारों ने मन्द्र, मध्य व तार नाद-स्थान तथा

प्रत्येक में २२ नाद माने हैं; उसी प्रकार भावभट्ट ने किया है। शुद्ध स्वर-स्थान ४, ७, ९, १३, १७, २०, २२ श्रुति पर माने हैं। आगे कहता है :—

प्रतिस्थानं स्वराः सप्त निवसंति यथाक्रमम्। चतुःश्रुतिस्त्रिश्रुतिश्च द्विश्रुतिश्च चतुःश्रुतिः। चतुःश्रुतिस्त्रिश्रुतिश्च द्विश्रुतिश्च यथाक्रमम्। आदौ श्रुतौ चतुर्थ्यां तु स्वरः षड्जोऽधितिष्ठति। सप्तम्यामृषभस्तद्वद् गांधारस्य स्थितिः पुनः॥

इस सम्बन्ध में तुम्हें और कुछ स्पष्टीकरण चाहिए क्या ?

प्रश्न—यह सब हमारे ध्यान में आ गया, कुछ नहीं चाहिए।

उत्तर—आगे यह ग्रन्थकार कहता है :—

'अथलघ्वक्षरमानेनानेन परिकीर्तितः।' तथा इसकी व्याख्या इस प्रकार की है—'लघ्वक्षरोच्चारणमात्रो निमेषमात्रो वा कालः श्रुतिः' श्रुति की यह व्याख्या हमारे लिए अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है। फिर श्रुति के दो वर्ग बताए हैं—१. गात्रजा, २. यंत्रजा; तीव्रा, कुमुद्वती, मंदा, आदि-आदि गात्रज (शरीरोत्पन्न) श्रुतियाँ कही हैं। यंत्रज श्रुतियों के नाम—१. निष्कला, २. गूढ़ा, ३. सकला, ४. मधुरा आदि बताए हैं। इन्हें अभी कह सुनाने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इनका तुम्हारे लिए अधिक उपयोग दिखाई नहीं पड़ता। आगे ग्रन्थकार कहता है कि इन बाईस नादों में से कुछ नाद प्रत्येक बार पसन्द कर उन्हें स्वर मानकर गीत गाए जाते हैं। यह समझ लेने योग्य बात है। इसने स्वरों की व्याख्या 'रत्नाकर' से उद्धृत की है तथा इस पर की हुई कल्लिनाथ की टीका का स्वर-श्रुति-भेद-दर्शक शब्द-पांडित्य भी ग्रहण कर लिया है। 'शृंगारहार' ग्रन्थ का एक उदाहरण इस प्रकार लेकर रख दिया है :—

श्रुतिभ्यः स्युः स्वरा जाताः स्वरेभ्यो ग्रामसंभवः।
ग्रामाभ्यां जातयो जाता रागा जातिसमुद्भवाः॥
यत्किंचिद्वाङ्मयं लोके शब्दो वा कृत्रिमं भवेत्।
सर्वं सप्तस्वरैर्व्याप्तं विष्णुनैव जगत्त्रयम्॥

प्रश्न—इस प्रकार की बातें गम्भीर तो अवश्य हैं, परन्तु न मालूम ये प्रत्यक्ष में उपयोगी कितनी होंगी ? ग्रन्थकार को ऐसी बातें एकत्र करने की प्रबल लालसा रही होगी ?

उत्तर—यह तो ठीक ही है, परन्तु कहीं-कहीं तो इसकी अपेक्षा और भी विलक्षण बातें संगृहीत करदी गई हैं। परन्तु हम इसको क्यों दोष दें ? हमारे देशी ग्रन्थकार भी इस मामले में पीछे नहीं हैं, उनके इतिहास को ही देखो :—

षण्णां स्वराणां जनकः षड्भिर्वा जन्यते स्वरैः ।
षड्भ्यो वा जायतेऽगेभ्यः षड्ज इत्यभिधीयते ॥
यस्मिन् षड्जादयो जातास्तस्मात्षड्ज इतीरितः ।
कंठोरस्तालुरसनानासाशीर्षाभिधेषु च ॥
षट्सु स्थानेषु जातत्वात्षड्जः स्यात्प्रथमस्वरः ।
कंठात्संजायते षड्जो ऋषभो हृदयोद्भवः ॥
गांधारः स्यात्तु नासिक्यो मध्यमो नाभिसंभवः ।
उरसः शिरसः कंठात् संजातः पंचमः स्वरः ॥
ललाटे धैवतं विद्यान्निषादः सर्वसंधिजः ।
सप्तस्वराणामुत्पत्तिः शरीरे परिकीर्तिता ॥
नादात्मकानामेतेषां रूपवर्णादि वर्ण्यते ।
षण्मुखः स्याच्चतुर्हस्तः पाणिभ्यामुत्पले दधत् ॥
वीणाशोभिकरद्वंद्वं स्फुरत्ताम्ररसप्रभः ।
कुलं सुपर्वजं जंबुद्वीपं ब्रह्मा च दैवतम् ॥
शृंगारके रसे ज्ञेयो मुख्यगाता तु पावकः ।
मयूरो वाहनं त्वस्य स्वरानुकरणात्पुनः ॥

अब सभी स्वरों का सिलसिलेवार वर्णन मैं नहीं सुनाऊँगा। नमूना दिखा दिया है। कहाँ यह इतिहास और कहाँ पाश्चात्यों की कल्पना ? बस कह दिया कि ध से छठी श्रुति की ध्वनि षड्ज होगी। इसका समाधान होना कैसा ? अस्तु—

सम्पूर्ण स्वरों के वर्णन के सिवाय जो बातें अड़चन में डालनेवाली हैं, वे अब तुम्हें सरलता से मिल सकती हैं।

प्रश्न—किस प्रकार और कहाँ से ? भावभट्ट के ग्रन्थ अभी तक नहीं छापे गए हैं न ?

उत्तर—हाँ, वे अभी तक किसी ने प्रकाशित नहीं किए, परन्तु अब 'संगीतसार' आदि ग्रन्थ छप गए हैं, उनमें भी यह जानकारी मिल सकेगी। यह प्रश्न तुम्हारा है ही नहीं कि प्रतापसिंह ने यह सब अपने ग्रन्थ में क्यों शामिल किया ? इसमें कोई संदेह नहीं कि यह भी एक बहुत परिश्रमी विद्वान् हो गया है। ऐसे खोजी लेखक इस समय में बहुत थोड़े प्राप्त होंगे।

'संगीतसार' में बहुतसी बातें उपयोगी हैं। 'रत्नाकर' का स्पष्टीकरण करनेवाले को इस ग्रन्थ से अवश्य मदद मिलेगी। इसके कुछ विधान हमारे वर्तमान

शिक्षार्थियों के लिए आश्चर्यजनक हो सकते हैं, परंतु संगीत परिवर्तनशील है। ठीक है न ?

प्रश्न—कैसे ?

उत्तर—उदाहरणार्थ मुख्य छहों रागों के सच्चे स्वर लगने की परीक्षा का विषय ही लो।

अथ भैरव राग की परीक्षा लिख्यते। घाणी में तील डार वामें लाठी मेल के बलध जोते नहीं। और भैरव राग गाइये जो वाके गायवेसें घाणी की लाठी आपही सों फिरने लगे। तब भैरव सांचो जानिये इ०।

तुम पूछोगे कि किसी ने ऐसा राग गाया भी होगा? परंतु इस शंका को प्रथम ही ग्रंथकार ने स्पष्ट कर दिया है, देखो :—

या रागतें मुक्ति की इच्छा करके श्री शिवजी हनुमानजी नारदजी आदि देवर्षी। भरतादि ब्रह्मर्षी। शारंगदेवादिराजर्षी। संगीतशास्त्र के जानिवे वार नें गायो है।

अब जरा बड़े लोगों की नम्रता भी देखो! राजर्षि शार्ङ्गदेव ने अपने 'रत्नाकर' में इस संबंध में एक भी शब्द नहीं लिखा कि इस प्रकार मैंने यह राग गाया है, या भैरव की अमुक रीति से परीक्षा हो सकती है। परंतु क्या ऐसी बातें छुपी रह सकती हैं? 'संगीतसार' ग्रंथ तुम अवश्य पढ़ना। उसमें तुम्हें अपने प्रचलित संगीत-संबंधी कुछ उपयोगी बातें भी मिल जाएँगी। यह ग्रंथ बहुत बड़ा है और इस समय मैं इसके विषय में कुछ अधिक नहीं बताऊँगा। ग्रंथकार ने इसमें एक बात बड़ी दूरदर्शिता से सिद्ध कर रखी है, उसे देखकर सभी संगीत-रसिकों को बहुत आश्चर्य हो सकता है।

प्रश्न—वह कौनसी बात है ?

उत्तर—ग्रंथकार ने समस्त नवीन व प्राचीन रागों का संबंध शिवजी से संबंधित कर दिया है। नहीं तो हुसेनी, बहादुरी, दरबारी, नायकी, पीलू, जौनपुरी, लाचारी, काफी, सूरदासी, मियाँकीमल्लार, रामदासी, फरोदस्त आदि राग बिना इष्ट देवता, शस्त्रास्त्र, रंग-रूप, वाहन व क्रीड़ा-साधन के निराश्रित-जैसे भटकते फिरते होंगे? इस कार्य को सिद्ध करने में इसे बहुत परिश्रम करना पड़ा होगा, क्योंकि इनके लिए संस्कृत-ग्रंथों का आधार नहीं मिल सकता। अभी हम भावभट्ट की ही प्रशंसा कर रहे थे, परंतु राधागोविंद ने तो उससे ऊँचे दर्जे की कल्पनाएँ की हैं। यह सभी स्वीकार करेंगे। मैं जानता हूँ कि इस सामग्री से तुम्हारे-जैसे पाश्चात्य ग्रंथों के अध्येता, भावुकता-शून्य शिक्षार्थियों को विशेष

कौतूहल नहीं हो सकता, परन्तु उसमें ग्रंथकार क्या कर सकता है ? इन बातों का महत्त्व तत्कालीन राजाओं के दरबारों में कितना होगा, इसकी कल्पना ही कर लेनी चाहिए। साथ ही उस जमाने में संसार में पाप कम होगा, लोग भोले-भाले व गायक चतुर होंगे, राजा दयालु होंगे। ऐसी परिस्थिति में 'भैरव' गाने से घानी फिरना, 'मालकोष' से अँगीठी सुलगाना, 'हिण्डोल' से झूला हिलना, 'दीपक' से दिए जलना, 'मेघ' से पानी बरसना, 'श्री' से मुरदा खड़ा होना, कैसे सम्भव नहीं होगा ? यह सभी विचार कर सकते हैं। हाँ, यह सत्य है कि स्वर और राग के रंग, रूप, वाहन आदि के वर्णन अभी भी गायक लोगों के उपयोग में आते रहते हैं। मुझे स्मरण है कि कुछ दिनों पूर्व एक खाँ साहब ने मेरे पास से इस प्रकार के विवरणवाले श्लोक माँगे थे।

प्रश्न—किस लिए ?

उत्तर—खाँ साहब कहने लगे कि पंडित जी ! ऐसे श्लोक हमें संगृहीत करना आवश्यक होता है। किसी-किसी महफिल में कोई सिरफिरा गायक अपने काका, मामा व वालिद की बड़ाई करते हुए चाहे जैसी हाँकने लग जावे, तो उससे इस प्रकार का एकाध प्रश्न किया जा सकता है। "भाई ! तुम्हारी ये सब बकवाद रहने दो, पहले ये तो बताओ कि धैवत सुर की जड़ कहाँ है, उसका देवता कौन, उसके हाथ में क्या है, वो कौनसे जानवर पर बैठा है ?"

यह कथन सुनकर मुझे उसकी समझ पर दया उत्पन्न हो गई और मैंने वे श्लोक उसे नकल करा दिए।

प्रश्न—क्या ये लोग आपस में ऐसे प्रश्न पूछते हैं ? और क्या ये वर्णन इसी लिए ये लोग चाहते हैं ?

उत्तर—हाँ ! नहीं तो क्या, तुम यह समझते हो कि वे इन्हें प्राप्त कर राग-मूर्ति की उपासना करते होंगे। हरे ! हरे ! यह बात बिलकुल नहीं है। मैंने तो सुना है कि एक बार एक गायक ने दूसरे से यह प्रश्न किया कि 'खाँ साहब ! जब महादेव जी के मुख से भैरव राग पैदा हुआ, तब ब्रह्मा जी का मूँ किस तरफ था ?'

प्रश्न—धन्य है बाबा ! अपने देवताओं का इन्हें बहुत अभिमान दिखाई पड़ता है ?

उत्तर—संगीत-व्यवसायी लोगों में तो करीब-करीब ऐसा दिखाई पड़ता ही है। अरे हाँ ! बात पर से बात आ गई। परसों मेरा मुन्शी एक प्रसिद्ध व प्राचीन उर्दू-ग्रंथ में से कल्लिनाथ-मत की उत्पत्ति का वृत्तान्त पढ़ रहा था। उसमें बताया हुआ अभूतपूर्व वर्णन मुझे आश्चर्यजनक ज्ञात हुआ और मुझे बड़ा मजा आया।

प्रश्न—क्यों भला, उसमें क्या लिखा था ?

उत्तर—मैंने उतना भाग नकल कर लिया है, वही मैं तुम्हें पढ़कर सुना देता हूँ। ग्रन्थकार ने कल्लिनाथ को 'कृष्ण' समझकर, इसी समझ के आधार पर उसने अनुमान लगाया है, ऐसा दिखाई देता है।

"कृष्ण कनैया ब्रिजबासी सें हैं। के वो एक देवता कौमे हिनूद सें गुजरा है। के वो रोज गेंद बिलावर लभेदरया जमना हमरा तिफलाँ हमसर के खेल रहा था। के कजारा गेंद उसकी जमना में जा पडी। उस गेंद को मानी काना कृष्ण कन्हैया फोरन ज्ना में कूद पड़ा। और तह-दर्या में जा लगा। और वहाँ कजारा एक सांप हजार ज्ञनियाँ बैठा था। निहायत बडा मिस्ल अशृद है के वो बादशाह साँपों का था। और अवाम उसे राजावासट कहते थे। गरज के जब कन्हैया कूदा तो उस साँप हजार फने क फन पर जा बैठा। उसने इसको फन मारने चाहा। ये उछल कर उसके दूसरे न पर जा बैठा। और जब उसने वो फन उठाया तो ये उछलकर तीसरे फन पर जा ा। गरज के कान्हा देर तक एक फन से दूसरे फन उछल कूद बैठता रहा। उसमें एक तर्हे का नाजवा अन्दाज का निर्त पैदा होता रहा। आखिर अलामर काना के थ एक रसी का टुकडा आ गया। उसने उसी रसी से उस नाग की नाक बाँधकर और उसके फन पर सवार होकर पानी पर उभरा। उस वख्त हालत खुशी में के रसी को बाँधकर अपनी गिरफ्त में कर लिया था। गोया जब से उस वजे का गाना जारी हुवा और नाम उसका कल्लिनाथ मत मशहूर हुवा। और वे जो एक फन से दूसरे फन पर कुबडा हो-हो कर उछल कूद कर गया था उसका एक वजे का निर्त जारी हुवा। के उसकी सिफत किताब हाजा में दर्बाब निर्त अध्याय के मुनदर्ज है। पस, मालूम हुवा की कल्लिनाथ मत में मिस्ल रासधारियों के गाना-बजाना और नाचना मत्तजमन है। के वो इसी मत की वजा बरतते हैं। और इस मत में भी छः राग मिस्ल सोमेश्वर मत के हैं। और फी राग छः छः रागनियाँ हैं। लेकिन अकसर रागनियाँ इसकी और मतों के बरखिलाफ हैं। और फी राग आठ-आठ पुत्र हैं। × × और बाजे हो के रुत और बख्त इस मत के राग और रागनी और पुत्र सोमेशर मत के हैं।"

प्रश्न—इसमें कल्लिनाथ-मत के राग व रागिनी कौनसे बताए गए हैं?

उत्तर—तुम चाहो तो बता देता हूँ, आगे मैं भिन्न-भिन्न मत बतानेवाला ही हूँ।

१. श्रीराग—१. गौरी, २. कोलाहल, ३. धवला, ४. वरोराजी, ५. मालकौंस, ६. देवगान्धार।

२. पंचम—१. त्रिवेणी, २. हस्तंतरेतहा, ३. अहीरी, ४. कोकभ, ५. बेरारी, ६. आसावरी।

३. भैरव—१. भैरवी, २. गुजरी, ३. बिलावली, ४. बिहाग, ५. कर्नाट,

६. कानडा ।

४. मेघ—१. बङ्गाली, २. मधुरा, ३. कामोद, ४. धनाश्री, ५. देवतीर्थी, ६. दिवाली ।

५. नटनारायण—१. तरवंकी, २. तिलंगी, ३. पूर्वी, ४. गांधारी, ५. रामा, ६. सिंधमल्लारी ।

६. वसंत—१. अंधाली, २. गुणकली, ३. पटमंजरी, ४. गौंडगिरी, ५. धांकी, ६. देवसाग ।

इसी ग्रंथ में भरत के संगीत के विषय में इस प्रकार की टिप्पणी है :—

"भरत एक शक्स बड़ा पंडित और ऋषि यानी फकीर कामिल गुजरा है। उसके मत में सीधा-सीधा गाना मिस्ल भजन और गजल वगैरे के गाया जाता है। जैसा कि भरत मौसूफ देवताओं की सिफत और सना में गाया था, तब से सीधा गाने का रिवाज निकला और इस मत में छह राग हैं और फी राग पाँच-पाँच रागनियाँ और आठ-आठ पुत्र और उनकी आठ-आठ भार्झा माफक जनोपिस्र यानी बहुओं की है और वाजे हो के वे भार्जा और किसी मत में नहीं हैं।"

यह मैं बता चुका हूँ कि आजकल राग, रागिनी, पुत्र, पौत्र आदि के वर्णन प्रत्यक्ष संगीत के लिए अधिक उपयोगी नहीं हैं। कभी-कभी मजा यह हो जाता है कि अपने लेखकों, कभी-कभी संस्कृत-लेखकों के गपोड़े मुसलमान ग्रंथकार अपने उर्दू-ग्रंथों में उड़ाकर लिख मारते हैं व ऐसा करते हुए अपने पास का भी कुछ मिला देते हैं और कुछ समय पश्चात् अपने देशी भाषा के ग्रंथकार बड़े ठाठ से उन रूपांतर हुए गपोड़ों को अपने ग्रंथों में संगृहीत कर लेते हैं। ऐसे लेखकों में बहुत विद्या बुद्धि तो होती ही नहीं, परंतु जहाँ थोड़ी-बहुत वह प्राप्त भी हो, वहाँ प्रत्यक्ष संगीत का ज्ञान उच्च स्तर का नहीं होता। मेरा यह कथन नहीं है कि सभी देशी भाषा के लेखक ऐसे ही होते हैं। इनमें कोई-कोई बहुत अच्छे मिलते हैं व उनका मत भी समाज में आदर पाता है। कौन भला व कौन बुरा, यह निश्चित करने का कार्य हमारा नहीं। अच्छा, अब हम फिर भावभट्ट की ओर चलें।

प्रश्न—जी हाँ, 'अनूप विलास' में उसने विकृत स्वरों का वर्णन किस प्रकार किया है ?

उत्तर—कहता हूँ, सुनो :—

विकृतानां स्वराणां तु लक्षणं प्रोच्यतेऽधुना ।
येषां शुद्धत्वहानिः स्यात्ते स्वरा विकृता मताः ॥
हानिस्तु द्विविधा प्रोक्ता तत्रांतर्बाह्यगोचरा ।
बाह्यगोचरतां याति विकृतत्वं द्विधा ततः ॥
स्वभावात्तदभावत्तु भवत्वेव न संशयः ।
रत्नाकरे द्वादशैव, तिथिसंख्याः परे ततः ॥
द्वाविंशतिर्मतंगोक्तास्तेऽहोबलेन कीर्तिताः ॥

यह कहकर भावभट्ट शार्ङ्गदेव के बारह विकृत स्वर बताता है। ये स्वर तुम्हें ज्ञात ही हैं, अतः मैं दुबारा नहीं सुना रहा हूँ। शार्ङ्गदेव के बारह विकृत स्वर कहाँ व कैसे उपयोग में आए होंगे, इस बात की जानकारी भावभट्ट को हो गई हो, ऐसा बिलकुल नहीं दिखाई पड़ता!

प्रश्न—तो फिर 'रत्नाकर' की मूर्च्छना, जाति, आदि बातें भी उसकी समझ में न आई होंगी?

उत्तर—यह तो स्पष्ट ही है। ग्राम के सम्बन्ध में भावभट्ट इस प्रकार कहता है:—

ग्रामस्वरो मेरुसंस्थो ध्रुवत्यात्स्यात्कथं च्युतः।
च्युतस्यापि कथं तस्याच्युतत्वं परिकीर्तितम् ॥
उच्यते भावभट्टेन ग्रामस्वरच्युतिर्नहि ।
षड्जग्रामे मध्यमस्य षड्जस्यापि च मध्यमे ॥
भिन्नग्रामे च्युतिरस्तु स्वग्रामे न कदाचन ।
यथा भावोद्भवस्यैव भवितुं तत्र नार्हति ॥
षण्णां स्वराणां षड्जेऽस्त्याविर्भावो तु मुनीरितः ।
भेदद्वयं मूर्च्छनायां तस्माद्भवितुमर्हति ॥

हमें भावभट्ट की आलोचना करने की आवश्यकता नहीं, परन्तु इस प्रमाण को देखकर यह कैसे कहा जा सकता है कि वह 'रत्नाकर' के ग्राम अच्छी तरह समझ गया था? यह दिखाई देता है कि प्राचीन संगीत में 'ग्राम' का महत्त्व कितना व कहाँ-कहाँ है, इस सम्बन्ध में बड़ा ही अज्ञान फैला हुआ है। एक बार प्रवास करते समय मुझे एक संस्कृतज्ञ संगीत-पंडित से बातचीत करने का अवसर प्राप्त हुआ था। यह सुनकर कि उसके पास 'रत्नाकर' पढ़ने के लिए शिक्षार्थी जाया करते हैं, मैं भी गया था। ग्रामों की चर्चा चलने पर उसने कहा:—

"पंडित जी ! तुम ऐसे विषयों पर खाली फांकें मार रहे हो, सच पूछो अपने मृत्यु-लोक के वास्ते एक खरजग्राम ही रखा है। मध्यमग्राम पाताल में गाया जाता है और गान्धारग्राम देवलोक में प्रचलित है। शार्ङ्गदेव मध्यमग्राम के वास्ते कुछ थोड़ा लिखता है, परन्तु वह यथार्थ नहीं है। ग्रामों का भेद समझनेवाला मैंने एक भी पुरुष अभी तक देखा नहीं, जो मिले तो उसका मैं शागिर्द हो जाऊँ और जो वो माँगे सो देऊँ।"

मैंने फिर आगे उससे बहस ही नहीं की।

प्रश्न—अपने देशी भाषा के लेखकों में से किसी ने ग्राम के सम्बन्ध में कुछ खुलासा नहीं किया ?

उत्तर—अभी तक मुझे तो ऐसा किया हुआ नहीं दिखाई दिया ! केवल टेढ़े-मेढ़े तर्क, कहीं-कहीं अवश्य दिखाई पड़ते हैं। किसी ने तो अब दोनों ग्रामों से उकताकर नवीन 'निषाद' ग्राम उत्पन्न कर दिया है। शायद गान्धार-ग्राम के देवलोक प्रस्थान करने पर उसका संवादी पसन्द किया गया होगा ! अस्तु, अब भावभट्ट के विषय में आगे बताता हूँ। 'रत्नाकर' में बारह विकृत स्वर, सोमनाथ के 'रागविबोध' में पन्द्रह, 'पारिजात' में बाईस; इस प्रकार बताते हुए फिर भावभट्ट कहता है :—

चत्वारिंशत्तु ते प्रोक्ता द्व्यधिका भावसंमताः।

प्रश्न—ऐं यह क्या ४२ विकृत ! और इनका उपयोग कहाँ और कैसे होगा ?

उत्तर—तुम व्यर्थ ही घबरा गये। भावभट्ट की कुल श्रुतियाँ बाईस ही हैं, इसलिए यह न समझना चाहिए कि इतनी सारी भिन्न-भिन्न ध्वनियाँ एक सप्तक में आनेवाली हैं। भावभट्ट ने यह कुछ भी नहीं बताया कि ये बयालीस ध्वनियाँ क्यों चाहिये ? उसने सोचा होगा कि मैं अहोबल से बढ़कर कठिन कार्य नियत कर दूँ। हमारे कुछ संस्कृत-ग्रंथकारों में ऐसे आडम्बर बढ़ाने की लालसा सचमुच दिखाई पड़ती है। 'राधागोविन्दसङ्गीतसार' में ये सारे ४२ विकृत प्रामाणिक रूप से उद्धृत किए हुए दिखाई देंगे। इतना ही नहीं, अपितु इन विकृतों का समावेश बाईस श्रुतियों में ही कर दिखाया है।

प्रश्न—परन्तु उसने इस सम्बन्ध में भी कुछ स्पष्ट किया है कि यह सब स्वर भिन्न-भिन्न रागों में और किस प्रकार कहाँ-कहाँ पर उपयोग में लिए जाएँगे ?

उत्तर—इस ग्रन्थ की मैं आलोचना करना नहीं चाहता। अब इस ग्रन्थ का रागाध्याय प्रकाशित हो ही गया है, उसे तुम पढ़कर देख ही लोगे और इसलिए मैं तुम्हारे प्रश्न का उत्तर देना पसन्द नहीं करता। भावभट्ट के ग्रन्थ में एक मजेदारा बात तुम्हें यह दिखाई देगी कि इन बयालीस विकृत स्वरों का स्पष्टीकरण संस्कृत में न होकर हिन्दी में किया है।

प्रश्न—ऐसा क्यों ? संस्कृत-ग्रंथ में हिन्दी-भाग क्यों दे दिया ?

उत्तर—कौन जाने भावभट्ट के मन में क्या रहा होगा ? यह भाग संस्कृत में लिखने से पाठकों को बोध नहीं होगा, शायद ऐसा ही उसने सोचा हो। अथवा यह भाग उसने कहीं से उद्धृत कर लिया होगा। भावभट्ट ने अपना ग्रंथ संस्कृत में इसलिए लिखा कि वह समस्त देश में पढ़ने व समझने में आ जाए, यह नहीं कि उसकी मातृभाषा भी संस्कृत थी। भावभट्ट के ये ४२ विकृत 'सङ्गीतसार' में इस प्रकार ग्रहण किए हैं :—

"तहा रंजनी श्रुती में रिषभ रहे तब मृदु संज्ञा पावे। ऐसे ही रिषभ के दोय भेद हैं। रौद्री श्रुती में गंधार ठहेरे तब मृदु संज्ञा पावे। रतिका श्रुती में गंधार ठहेरे तब अति मन्द्र संज्ञा पावे। रंजनी श्रुती में गन्धार ठहेरे तब अति मन्द्र संज्ञा पावे। ऐसे गन्धार के तीन भेद हैं इ०।"

यह भाग 'राधागोविन्द-सङ्गीतसार' के पृष्ठ ३४ पर तुम्हें प्राप्त होगा। इन बातों को सुनकर अशिक्षित गायक व सुशिक्षित नवसिखिये यदि प्रभावित हो जाएँ, तो आश्चर्य नहीं। यदि किसी ग्रन्थकार ने अपने समय की दन्तकथाएँ इतिहास के रूप में अपनी रचना में सम्मिलित की हों, तो कुछ अनुचित नहीं है। उसका हेतु अवश्य पवित्र होना चाहिए। हमें चाहिए कि हम प्राचीन ग्रन्थों का केवल उपयोगी भाग ग्रहण करें, बाकी का छोड़ दें। भावभट्ट को 'रत्नाकार' का स्वराध्याय समझ में नहीं आया, अतः रागाध्याय भी समझ में नहीं आ सका और 'राधागोविन्द' का मुख्य आधार भावभट्ट ही रहा था, ऐसा दिखाई पड़ता है। परन्तु मैं अभी भावभट्ट के सम्बन्ध में बोल रहा हूँ। इस पंडित ने अपने ग्रंथ में बहुत-कुछ हमारे-जैसा ही किया है। जिस प्रकार हम अपने प्रत्येक राग के सम्बन्ध में उपलब्ध ग्रंथ-मत देखते जा रहे हैं, उसी प्रकार भावभट्ट ने किया है। यह सत्य है कि उसे हमारी अपेक्षा कुछ अधिक ग्रन्थ मिल सके थे, परन्तु यह भी गलत नहीं है कि उसके उदाहरणों से ही हमें भी बहुत से ग्रन्थमत प्राप्त हो सकेंगे। हमें जो-जो ग्रन्थ स्वतन्त्र मिलेंगे, उनका उपयोग हम स्वतन्त्र रूप से करेंगे ही, परन्तु जो ग्रंथ नहीं मिल सकते, उनका मत हम भावभट्ट के संग्रह से ही ग्रहण करेंगे। अब 'भैरव' पर भावभट्ट क्या कहता है, सुनो :—

रत्नाकरमते प्राह भैरवस्तत्समुद्भवः।
धांशो मांतो रिपत्यक्तः प्रार्थनायां समस्वरः॥
धैवतांशग्रहन्यासः संपूर्णः स्यात्समस्वरः।
तारमन्द्रोऽयमाषड्जगान्धारः शुद्धभैरवः।
रत्नाकरे द्विधा प्रोक्तः पूर्णौडुवप्रभेदतः॥
तत्रौडुवे हिंदोलेन तस्य भेदः प्रकथ्यताम्।
जन्यजनकभेदोऽपि भो संगीतविशारदाः॥

हिंडोल का स्वरूप कुछ संस्कृत-ग्रन्थों में ठीक मालकोश जैसा है।

भैरवे तु रिपौ नस्तो धैवतादिकमूर्च्छनः।
तत्रोक्तौ च गनी तीव्रौ कोमलो धैवतः स्मृतः॥

—श्रीनिवासमते

रागार्णवमतेऽपि स्याद्रिपहीनोऽथ मातगः।
धैवतो विकृतो यत्र चौडुवः परिकीर्तितः॥

—रागार्णवे

'शुद्ध भैरव' व 'भैरव' की ग्रन्थकारों द्वारा की गई गड़बड़ भी तुम्हें दिखाई देगी। इसका कारण इतना ही है कि उनमें बहुत थोड़े ऐसे थे, जो प्राचीन शास्त्र उत्तम रूप से समझ पाए हों। यदि कोई यह कहे, तो हमें आश्चर्य नहीं होगा कि उनमें ऐसे लोग भी थे, जिन्हें प्रत्यक्ष संगीत का ज्ञान नाम-मात्र का व प्राचीन संगीत का ज्ञान केवल सुना हुआ था। 'रागमंजरी' के अनुसार—'रिह्नौ भैरवः सन्त्रिमले हीजेजमेलके।' यह अपना भैरव ठाठ है। भावभट्ट ने भैरव के अनेक प्रकार बताए हैं। इनमें तीन औडुव, षाडव व सम्पूर्ण प्रकार तो मैं बता ही चुका हूँ। आगे :—

तस्माद्भैरवरागस्तु त्रिविधः परिकीर्तितः।
वसन्तभैरवस्तुर्यस्तत आनन्दभैरवः॥
नन्दभैरवसंज्ञस्तु गान्धारभैरवस्तथा।
स्वर्णाकर्षणपूर्वस्तु ततः पंचमभैरवः।
नवधायं प्रपंचोक्तःश्रीजनार्दनसूनुना॥

प्रश्न—परन्तु इन सम्पूर्ण प्रकारों के लक्षण भावभट्ट किस प्रकार बताता है?

उत्तर—वे उसने इस प्रकार बताए हैं, देखो :—

शुद्धा सवसन्तमेले रिमपधा ह्यन्तरश्च काकलिकः।
अस्माद्वसन्तटक्कहिजेजहिंदोलप्रमुखाः स्युः॥

—रागविबोधे

कोमलाख्यौ रिधौ तीव्रौ गनी वसन्त भैरवे।
धैवतांशग्रहन्यासो मध्यमांशोऽपि संमतः॥

—पारिजाते

भैरवीलक्ष्मसंयुक्तस्त्वानन्दभैरवः स्मृतः ।
स्वमेलजनितत्वात्तु विशेषः समुदाहृतः ॥
भैरवीमेलसंभूता निषादग्रहसंयुता ।
गान्धारे नैम्न्ययुक्ता या ज्ञेया सानन्दभैरवी ॥

मेरे गुरु ने आनन्दभैरव, आनन्दभैरवी व नन्दभैरवी, ये तीनों राग भिन्न-भिन्न माने हैं और उनका कथन उचित भी जान पड़ता है। आगे सुनो :—

नैषादनैम्न्ययुक्तस्तु गान्धारग्रहसंयुतः ।
बहुलीलक्ष्मसंयुक्तो नन्दभैरवसंज्ञकः ॥
गान्धारेण समायुक्तो गान्धारभैरवः स्मृतः ।
पंचमेन समायुक्तः प्रोक्तः पंचमभैरवः ॥
गान्धाररहितः प्रोक्तः स्वर्णाकर्षणभैरवः ।

इस श्लोक में बसन्त, बहुली, भैरवी, गान्धार, पंचम रागों का भैरव से मिश्रण बताया गया है। ये राग मैंने अभी तक तुम्हें नहीं बताए हैं।

प्रश्न—परन्तु ये सभी राग ग्रन्थों में प्राप्त होने-योग्य तो हैं ?

उत्तर—हाँ-हाँ, इन रागों के ठाठ व आरोह-अवरोह तो ग्रंथों में अवश्य मिलेंगे। ये राग भैरव से अच्छी तरह मिश्रित किए जा सकते हैं। ऐसे कुछ मिश्ररूप हमारे यहाँ इस समय भी प्रचलित हैं, परन्तु इनको गायकों द्वारा नये-नये नाम प्राप्त हो गए हैं, इतना अन्तर है।

प्रश्न—आपने पहले 'हिजेज' नाम लिया था, यह कानों को कुछ विलक्षण-सा ज्ञात होता है।

उत्तर—यह भी ऐसा ही अरब देश का एक भू-भाग 'हिजाज' नाम का है, यह हम भूगोल में पढ़ते हैं। शायद यह नाम उधर से ही आया होगा। पुरातन युग में सम्भवतः हमारे देश व उस प्रदेश के बीच कुछ आमदरफ्त रही होगी। संस्कृत-ग्रंथों में भी ईमन, तुरुष्क तोड़ी, हुसेन तोड़ी आदि यावनिक नाम दिखाई पड़ते हैं। इससे अधिक 'हिजाज' नाम की जानकारी मैं कैसे व कहाँ से दे सकता हूँ ? अस्तु, अब भावभट्ट के 'अनूपरत्नाकर' नामक ग्रन्थ की ओर हम घूम जाएँ। यद्यपि यह पंडित मूलतः दक्षिण का था, परन्तु यह उत्तर की ओर भी आकर रहा था, अतः इसके ग्रंथों में कुछ मात्रा में अपने लिए उपयोगी जानकारी अवश्य मिल सकेगी। हम इस विषय में उसके अवश्य कृतज्ञ हैं कि उसने उत्तम संग्रह किया है।

प्रश्न—क्यों गुरुजी, अपने सङ्गीत के संस्कृत-ग्रन्थ लिखनेवाले अधिकांश ग्रंथकार दक्षिण के ही क्यों दिखाई पड़ते हैं ?

उत्तर—मैं समझता हूँ कि इसी प्रकार का प्रश्न अन्य शास्त्रों के विषय में भी किया जा सकता है। क्या हमारे वेदान्त आदि गहन विषयों के उत्तमोत्तम ग्रंथ दक्षिण की ओर के नहीं हैं? परन्तु मैं यह उत्तर डरते-डरते दे रहा हूँ। हम पढ़ते हैं कि श्री रामानुजाचार्य, श्री शंकराचार्य दक्षिण की ओर के ही थे। उत्तर की ओर ग्रंथ क्यों नहीं हैं? इस प्रश्न का उत्तर मेरी कल्पना का ही कैसे मान्य होगा? कोई-कोई कहते हैं कि उत्तर के ग्रंथ नष्ट हो गए हैं।

प्रश्न—आपका कथन यथार्थ है। हमारे हृदय में स्वाभाविक ही यह प्रश्न उत्पन्न हो गया था, अतः आपसे पूछ लिया। यदि इसका उत्तर नहीं भी दें, तो भी कोई हर्ज नहीं। अस्तु, अब आप 'अनूप-रत्नाकर' की पद्धति भी हमें कह सुनाइए। अपनी सभी संस्कृत-पद्धतियाँ हम अच्छी तरह समझ लेना चाहते हैं। यदि विषयान्तर हो जाए, तो भी कोई हानि नहीं। आगे चलकर जब क्रमशः भिन्न-भिन्न रागों का विवरण आएगा और उन पर आप भिन्न-भिन्न ग्रंथों का मत भी सुनाएँगे, तब हमें यह जानकारी अच्छी सिद्ध होगी।

उत्तर—हाँ, यह भी ठीक ही है। मैं भी इसी उद्देश्य से इस पद्धति को विस्तारपूर्वक बताता आ रहा हूँ। ऐतिहासिक दृष्टि से भी पद्धति का ज्ञान उपयोगी होता है। साथ ही इससे तुम्हें यह भी दिखाई देने लगेगा कि संगीत में किस-किस प्रकार का परिवर्तन होता आया है। यह मैं तुम्हें बता चुका हूँ कि भावभट्ट का पिता पं० जनार्दन भट्ट बादशाह शाहजहाँ के पास था। स्वयं भावभट्ट कर्णसिंह के पुत्र अनूपसिंह के यहाँ नौकर था। इसको 'अनुष्टुप्चक्रवर्ती' और 'सङ्गीतराज' की उपाधियाँ प्राप्त थीं, इसलिए यह मान लेना गलत न होगा कि उसे प्रत्यक्ष सङ्गीत का अच्छा ज्ञान था। आजकल युग बदल गया है। एक तरह से यह कहा जा सकता है कि इस समय न तो वैसे गुणग्राहक नरेश ही हैं, न वैसे पण्डित ही। प्रत्येक राजा के आश्रित सङ्गीत-प्रवीण लोग हों, यह तो एक शोभनीय बात है। ऐसे लोगों को सिवाय राज्याश्रय के दूसरा कौनसा प्रोत्साहन मिल सकता है। परन्तु इस समय प्रायः ऐसे गुणग्राहक आश्रयदाता नहीं पाये जाते, इसी लिए बेचारे गुणी लोग स्वतः ही अपने आपको शास्त्री, पंडित, प्रोफेसर, नायक आदि पदवियाँ देकर मन में सन्तोष कर लिया करते हैं। यहाँ कोई यह कह सकते हैं कि अभी भी किसी-किसी संस्थान में आश्रित गुणी लोग हैं। यह मैं स्वीकार करूँगा कि कहीं-कहीं ऐसे व्यक्ति हैं, परन्तु मैं समझता हूँ कि उनमें से अधिकांश निरक्षर, दुराग्रही, कमसमझ व अल्प महत्त्व के ही पाए जाते हैं। इन लोगों की ओर से संगीतोन्नति के लिए पर्याप्त सहायता मिलना सम्भव नहीं है। मेरा व्यक्तिगत मत यह है कि कोरे पीढ़ीजात अनाड़ी गायकों को आश्रित बनाए रखने में किसी का भी हित नहीं है। जिस राजा के आश्रित उत्तम गुणी हों, यदि वह यह व्यवस्था कर दे कि उसके आश्रित गायकों का उपयोग सभी सङ्गीत-प्रेमी लोगों को हो सके, तो सङ्गीत की उन्नति के लिए कुछ वास्तविक सहायता मिल सकेगी। मैं सुनता हूँ कि कुछ स्थानों पर गायकों को सङ्गीतशाला चलाने का काम सौंप दिया है। मेरी समझ से यह बहुत उपयोगी युक्ति है। ऐसी शाला पर

यदि योग्य देख-रेख हो, तो आगे चलकर बड़े उत्तम फल की आशा की जा सकती है, यह प्रत्येक व्यक्ति स्वीकार करेगा। एक-दो छोटे-छोटे संस्थानों में इस सम्बन्ध में मुझे जो अनुभव हुआ, वह मुझे बहुत बुरा जान पड़ा। इनमें से एक जगह तो एक राजा साहब की थी, जिनके लिए यह ख्याति थी कि ये स्वतः संगीत के जानकार हैं। उनके पास प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथ थे। यह पता लगने पर मैंने उन्हें दिखा देने के विषय में उनसे प्रार्थना की थी।

प्रश्न—फिर उन्होंने क्या उत्तर दिया ?

उत्तर—वे बोले, "पण्डितजी ! आपका उत्साह व परिश्रम देखकर मुझे बहुत आनन्द हो रहा है। परन्तु मुझे खेद है कि मैं आपको अपने ग्रंथ नहीं दिखा सकूँगा।" जब मैंने इसका कारण पूछा, तो वे कहने लगे—"यदि मैं अपने ग्रंथ चाहे जिसको दिखाने लग जाऊँ, तो गली-गली में पण्डित हो जाएँगे तथा वह विद्या, जो हमारे पूर्वजों ने सँभालकर रखी थी, जाहिर हो जाएगी। और, यदि ग्रंथ छप गया, फिर तो कोई किसी को नहीं पूछेगा। फिर कौन बड़ा व कौन छोटा, इसकी कदर कौन करेगा ?"

प्रश्न—क्या फिर अंत में उन्होंने ग्रंथ दिखाया ? ये तो बड़े ही विलक्षण व्यक्ति दिखाई पड़े।

उत्तर—उनके राजभवन अथवा पुस्तकालय में ही वे पुस्तकें दिखाते हैं। ऐसे लोगों के आगे हम क्या कर सकते हैं ? अपना-सा मुँह लेकर मैं वापस लौट आया। मैं समझता हूँ कि ऐसे और भी कई व्यक्ति निकल सकते हैं। वे संस्थानपति अब नहीं रहे, अब उनकी गद्दी पर एक तरुण युवराज बैठे हैं। कभी-कभी तो हम सुनते हैं कि राजा तो अपने गायक के शागिर्द बनकर उसका पालकी में जुलूस निकालते हैं; यह तरीका भी मुझे पसन्द नहीं है। नौकर, नौकर है और मालिक मालिक ही है। यदि नौकर बहुत विद्वान् व योग्य हो, तो उसे यथाशक्ति बड़ा वेतन व योग्यता के अनुरूप सम्मान देने में कोई हानि नहीं, परन्तु उसके आगे मालिक का हाँजी-हाँजी करना व हाथ जोड़कर खड़े रहना, कहाँ तक शोभनीय है ? अस्तु, अब मैं एक भिन्न प्रकार का अनुभव सुनाता हूँ। प्रवास करते समय एक नामी गुणी के पास जाने का मुझे अवसर प्राप्त हुआ। मेरे हाथ में उस समय 'संगीत-सार-संग्रह' नामक छपी हुई पुस्तक थी। बोलते-बोलते उस सज्जन की दृष्टि मेरी पुस्तक की ओर पहुँची। उसने वह पुस्तक अपने हाथ में लेकर मुझसे पूछा, "पंडित जी ! यह कौनसा ग्रंथ है ?" मेरे मुँह से निकल गया कि यह 'संगीत-दर्पण' नामक ग्रंथ है।'

प्रश्न—परन्तु वह पुस्तक तो 'संगीत-सार-संग्रह' थी न ?

उत्तर—हाँ, परन्तु मेरे मुँह से एकाएक वैसा निकल गया। उस ग्रंथ में 'दर्पण' का काफी भाग संगृहीत था, इसलिए मैं वैसा बोल गया। परन्तु मेरा उत्तर

सुनते ही वे सज्जन हँसने लगे और मुझसे बोले—'दर्पण ग्रंथ किसने और कब लिखा ?' मैंने उन्हें दामोदर पंडित का नाम बताया, यह सुनकर वे और अधिक हँसने लगे।

प्रश्न—हम नहीं समझे ! हँसने की क्या बात थी ? क्या 'दर्पण' का लेखक दामोदर नहीं है ?

उत्तर—मैं भी प्रथम उनके हँसने का कारण नहीं समझ पाया, परन्तु आगे चलकर बात कुछ स्पष्ट हुई। उन्होंने नृत्याध्याय में से कुछ भाग पढ़कर दिखाने को कहा। मैंने उन्हें पढ़कर व भाषांतर कर उसे सुनाया। उसमें 'संयुतहस्त' व 'असंयुतहस्त' के भेद सुनकर वे महाशय बोले, 'बस-बस, मैं ऐसे ग्रंथों को बिलकुल नहीं मानता। क्या तुम ये भेद प्रत्यक्ष रूप में दिखा सकते हो ?'

प्रश्न—क्या ? यानी, प्रत्यक्ष नाचकर ?

उत्तर—सचमुच, उसका यही आशय था। परन्तु मैंने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया कि 'महाराज ! मुझे नाचना बिलकुल नहीं आता। मैंने तो इस ग्रंथ में लिखा हुआ ही पढ़कर सुनाया है।' यह सुनकर वे फिर हँसने लगे व अपने शिष्यों की ओर घूमकर बोले, 'देखते हो ! भ्रष्ट ग्रंथों के छपजाने से क्या-क्या अनर्थ होता है ? इसलिए ही हमारे-जैसे गुणी लोग अपने ग्रंथ कभी भी किसी को नहीं दिखाते। अब भला ये बेचारे उन दामोदर का ढोंग क्या समझ सकते हैं ? दामोदर ने तो असल 'दर्पण' की शकल भी नहीं देखी होगी।'

प्रश्न—हम नहीं समझ सके कि वे क्यों इस तरह नाराज हो गए ?

उत्तर—पहले मैं भी नहीं समझा, परन्तु उसने शीघ्र ही खुलासा कर दिया।

प्रश्न—क्या किया ? यह भी एक मजेदार बात है।

उत्तर—उसने कहा—'पंडितजी ! यह तुम्हारा ग्रंथ कौड़ियों की कीमत का है। यह बिलकुल 'कूढ़ा' (भ्रष्ट) ग्रंथ है। दामोदर को कुछ नहीं आता था, मैं इस तरह के ग्रंथों का 'कायल' नहीं हूँ। मैं तो स्वयं देवताओं द्वारा लिखे हुए ग्रन्थों को ही मानता हूँ। मनुष्यों के लिखे हुए नहीं मानता।

प्रश्न—देवताओं ने कौन-से ग्रंथ लिखे ? और किस भाषा में, किस प्रकार लिखे ?

उत्तर—इसी प्रकार मैंने भी उससे पूछा। इसपर उसने लपने लड़के से घर में से एक पोथी मँगवाई। सम्पूर्ण शिष्य यह देखकर चकित हो गए और मुझपर

तरस खाते हुए मेरी ओर देखने लगे। पंडितजी (उस सज्जन) ने एक-दो पन्ने मेरे हाथों में दिए और बोले 'तुम्हें संस्कोरत अच्छो आतो है न ? अब आँखें खोलकर देख लो।'

प्रश्न—वह कौनसा ग्रंथ था ?

उत्तर—उसका नाम भी 'संगीत-दर्पण' ही था। उसमें कुछ भिन्न प्रकार के श्लोक थे। उन्हें देखकर मैं समझ गया कि यह दामोदर-रचित नहीं है। उधर उस पंडित ने भी पढ़ने का जल्दी ही तकाजा कर दिया, अतः मैं यह नहीं देख पाया कि वह ग्रंथ किसने लिखा था। पन्ने भी मध्य-भाग के थे। मैं पढ़ने लगा। मुझे अब वे श्लोक तो याद नहीं हैं, परन्तु ग्रंथकार ने उन श्लोकों में नारद, महादेव, तुम्बरु का थोड़ा-सा संवाद लिख रखा था। मैंने एक-दो जगह 'महादेव उवाच' 'नारद उवाच' इस प्रकार पढ़ा। ग्रंथ किसने लिखा, यह ज्योंही मैंने देखना चाहा, उसने मेरे हाथों से वे पन्ने झपट लिए, व मुझसे कहा—'महादेव उवाच' याने क्या ? यह इन बैठे हुए लोगों को बता दो। मैंने बताया 'महादेवजी कहते हैं।' फिर क्या कहना ! वह अपने शिष्यों की ओर घूमकर जोर से बोले, 'क्यों भाइयो ? अब खुद महादेव जी बोलते हैं कि कोई दूसरे ? मैं नहीं, बल्कि ये खुद पढ़ रहे हैं। मेरा ग्रंथ खुद देवताओं द्वारा लिखा हुआ है कि नहीं, अब तुम्हीं देख लो !'

प्रश्न—बहुत खूब ! धन्य है !! ग्रन्थकार ने 'महादेव उवाच' कहा है, तो इससे उसका ग्रंथ स्वयं महादेव ने लिख दिया ? उसका यही मतलब था न ?

उत्तर—हाँ, परन्तु हमें उसकी हँसी नहीं उड़ानी है। ऐसे अशिक्षित व विक्षिप्त विचार के अनेक गायक-वादक तुम्हें मिल जाएँगे। हमारे देश में अभी भी अनेक प्रशंसा-योग्य गुणी हैं, परन्तु उनमें शिक्षा का अभाव होने से उनकी सहानुभूति व सहायता प्राप्त करना सरल नहीं है। मैंने अभी तुम्हें जिनकी बातें बताई हैं, वे अपनी कला में बिलकुल अद्वितीय हैं, परन्तु उनकी समझदारी देखी ! ऐसे लोगों को पालकियों में बैठाने व राजा-रईसों द्वारा 'उस्ताद-उस्ताद' कहकर उनकी खुशामद करने से उनका स्वभाव कैसा बन जाएगा, उसकी तुम स्वयं कल्पना कर सकते हो। ये लोग गरीब शिष्यों की ओर देखेंगे भी क्यों ? खैर, हमतो अपने 'अनूपरत्नाकर' की ओर चलें। यह बातचीत याद आ जाने से मैं सुना गया हूँ। यह नहीं समझना चाहिए कि भावभट्ट के समय शार्ङ्गदेव के सभी विकृत स्वरों के नाम प्रचलित थे। वह स्वयं 'च्युत व अच्युत' शब्दों के विषय में कहता है—'मार्गसंगीते षड्जस्य च्युतत्वं देश्यां तु स अच्युत एव।' 'अनूपरत्नाकर' में एक 'लक्षणगीत' मुझे दिखाई पड़ा था, वह मैंने तुम्हारे लिए उद्धृत कर लिया है; देखो :—

३ ३३ ३ ३२ ३ ५३६ ५ ३ २१ ६१ २ २३ ३
'स प्त सु र क म आ दि दे ले त ष ट अंक प रि मा न।
अं त सु र के आ गि ले जे पा छे ने ई गु नि क रो संख्या ते सें ई गि न ती पर धा न।।

जा के अ ग ले पा छे न हीं ते ई स म भा ई क रि जा नो जु हीं स ज्ञा न।
तो आ दि अं क ले न ष्ट उ दि ष्ट च र च्यो ज्यौं री झे श हा ज हाँ सु जा न ।।

सम्भवत: यह गीत सुजान खाँ ने बनाया होगा, या इसे जनार्दन भट्ट ने शाहजहाँ के सम्मुख गाया होगा। सुजान खाँ एक बहुत प्रसिद्ध गुणी हुआ है। उसके अनेक गीत प्रसिद्ध हैं। यह शाहजहाँ के समय था या नहीं, इसका ठीक पता नहीं है। यह नहीं दिखाई देता कि जनार्दन भट्ट सुजान खाँ के गाने गाते होंगे, इसी लिए 'सुजान' यानी 'सयाना' यह विशेषण शाहजहाँ के लिए ही ग्रहण करना पड़ेगा।

प्रश्न—इसका क्या प्रमाण है कि यह जनार्दन भट्ट ने गाया होगा ?

उत्तर—केवल इतना है कि यह शाहजहाँ का आश्रित था। अस्तु, इस गीत के सम्बन्ध में भावभट्ट कहता है :—

एतत्पद्यं भूपालीरागेण गीयते। तस्माद्भूपालीरागलक्षणं प्रथमतः प्रपंच्यते। तद्यथा रत्नाकरे 'त्रिवणा भिन्नषड्जस्य भाषा तदंगं डोंबकृतिः' 'तज्जा डोंबकृतिर्मांशा धांता दैन्ये रिपोज्झिता।'

प्रत्येक मर्मज्ञ पाठक को यह दिखाई देगा कि भावभट्ट पंडित को 'रत्नाकर' के भिन्न-षड्जग्राम का स्वरूप अच्छी तरह समझ में नहीं आ सका। उसका लिखा हुआ लक्षणगीत 'भूपाली' राग में है। यह सत्य है कि उसके भूपाली राग की व्याख्या भिन्न-भिन्न ग्रंथकारों के मतों द्वारा की है, परन्तु कौन जाने ये सब मत उसकी समझ में आ चुके थे, या नहीं ? उदाहरणार्थ, शार्ङ्गदेव की–'डौंबकृति' को लो ! यह नहीं जान पड़ता कि इसके स्वरूप का स्पष्ट बोध भावभट्ट को हो गया था। भूपाली के संबंध में उसके एकत्र किए हुए ग्रंथ-मत जानना हमारे लिए आवश्यक नहीं है।

प्रश्न—इस लक्षणगीत के अक्षरों पर जो अंक लिखे हुए हैं, उन्हें स्वरवाचक समझना चाहिए ?

उत्तर—हाँ, तुमने ठीक पहचान की। भूपाली में मध्यम व निषाद स्वर वर्ज्य होते हैं, इसलिए ४ व ७ के अंक तुम्हें यहाँ नहीं दिखाई पड़ेंगे। यहाँ पर मैं और एक बात की ओर तुम्हारा ध्यान आकर्षित करूँगा।

प्रश्न—वह कौनसी ?

उत्तर—किसी-किसी अक्षर पर एक ही अंक लिखा हुआ जो तुम्हें दिखाई पड़ता है, इन स्थानों को इस पण्डित ने 'स्थायीवर्ण' बताया है। प्रत्यक्ष अलंकार का नाम 'निष्कर्ष' है। इसी पंक्ति में कुछ स्थानों पर 'गात्रवर्ण' अलंकार है। इस अलंकार के संबंध में भावभट्ट कहता है :—

त्रिश्चतुर्वास्वरोच्चारैर्गात्रवर्णमिमं जगुः।
निष्कर्षस्यैव भेदौ द्वौ केचिदेतौ बभाषिरे॥
तस्माद्गात्रवर्णस्यैव प्रथमा कला 'गगगग' इ०।

इस उदाहरण से तुम्हें यह भी थोड़ा-बहुत दिखाई देगा कि ग्रंथोक्त वर्ण, अलंकार, कला आदि शब्दों का अर्थ पंडितों ने कैसा किया है। अस्तु, गीतों में दिखाई पड़नेवाले अलंकार के सम्बन्ध में बोलकर फिर 'शम, प्रतिहति, आहति' आदि वादन-प्रकारों के सम्बन्ध में भावभट्ट ने समझाया है, यह भाग मैं अभी नहीं बताऊँगा। 'राग-विबोध' के अन्तिम 'विवेक' (अध्याय) में वह तुम्हें प्राप्त हो सकेगा। वीणा पर बजाने के ये भिन्न-भिन्न भेद-प्रभेद हैं। सुना जाता है कि इनका स्पष्टीकरण करने का प्रयत्न इस समय एक-दो विद्वान् कर रहे हैं। वे जो स्पष्टीकरण करेंगे, वह तुम देखोगे ही। यदि वह योग्य हो, तो उसे स्वीकार कर लेना।

प्रश्न—इन सब बातों से ज्ञात होता है कि भावभट्ट ने बहुत परिश्रम किया है।

उत्तर—इसमें क्या संदेह है। उसने सचमुच परिश्रम किया है। उसके आगे अपने-जैसों की बात ही क्या? चाहे उससे 'रत्नाकर' का स्पष्टीकरण नहीं हुआ हो, परन्तु यह सत्य है कि उसने बहुत-सी उपयुक्त जानकारी संगृहीत की है। इतना ही है कि जब ग्रंथकार एक के ग्राम, दूसरे की मूर्च्छना, तीसरे की श्रुति, चौथे के राग और पाँचवें के वर्णालंकार; इस प्रकार 'कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा' जैसा कार्य करता है, तो उतना भाग हमें असंगत ज्ञात होता है।

प्रश्न—'अनूपरत्नाकर' में कितने व कौन-कौन मेलराग बताए गए हैं?

उत्तर—प्रथम भिन्न-भिन्न ग्रंथों के वर्गीकरण बताकर वह अपने 'मेल' इस प्रकार कहता है :—

टोडीगौडीवराटीनां केदारशुद्धनाटयोः ।
मालवाकौशिकाख्यस्य श्रीरागस्य ततः परम् ॥
हंमीराहेरिकल्याणा देशाक्षी देशिकारकः ।
सारंगश्चैव कर्णाटः स कामोदो हिजेजकः ॥
नादरामक्रिहिंदोलमुखारीसोमरागकाः ।
एतेषां मेलसंजातरागाणां च यथाक्रमम् ॥
लक्षणं वक्ष्यते किन्तु लोकवृत्तानुसारतः ॥

इस प्रकार उसने बीस मेल बताए हैं। परन्तु मित्रो! अब हमें भावभट्ट के पीछे अधिक समय तक पड़े रहने की आवश्यकता नहीं। उसके तीनों ग्रंथों के सम्बन्ध में मैं थोड़ा-थोड़ा बता चुका हूँ। राग-प्रकरण में भावभट्ट ने प्रमुख रूप से सोमनाथ, अहोबल व पुण्डरीक का आधार ही ग्रहण किया ज्ञात होता है। यह परिच्छेद भिन्न-भिन्न राग बताते हुए सामने आएगा ही। एक अन्य 'रागमाला' (व्यासकृत रागमाला) में भैरव इस प्रकार बताया गया है :—

शुभ्रांगः शुभ्रवासाः शिरसि शशिधरः शृंगवाद्यश्च हारी ।
शंभोर्वक्त्राब्जजातो धृतगलगरलो भैरवो रक्तनेत्रः ॥
धत्ते शूलं कपालं जलजमणिमये कुण्डले कर्णयुग्मे ।
तारं जूटं जटानां शरदि सुरगणैर्गीयते प्रातरेषः ॥

मैं समझता हूँ कि इस राग पर अब और अधिक ग्रंथों का मत प्राप्त नहीं है। यह सरलता से दिखाई देगा कि अपना प्रचार काफी मात्रा में ग्रंथों से सम्बन्धित है। अब मैं भैरव का वर्तमान स्वरूप बताता हूँ; सुनो :—

लक्ष्ये भैरवमेलो यः शास्त्रेऽसौ गौडमालवः
तदुत्पन्नः सुविख्यातो भैरवो गीयते बुधैः ॥
धैवतांशग्रहः प्रोक्तः सम्पूर्णः सर्वसम्मतः ।
आरोहणे भवेद्र्यल्पः प्रातःकालोचितः पुनः ॥
अस्मान्मेलात्समुत्पन्ना बहवो विश्रुता मताः ।
प्रातर्गेयसुरागास्ते ह्युत्तरांगप्रधानकाः ॥
रिधयोरत्र वैचित्र्यं यथा गन्योः प्रदोषके ।
आंदोलनं यथान्यायं तयोश्चातीवरक्तिदम् ॥
ग्रंथेषु केषुचिद्दृष्टो निषादः कोमलो यतः ।
अवरोहसमासक्तो रक्तिघ्नो नेति मे मतिः ॥
बहुलत्वं यत्र मस्य तत्र गस्याल्पता सदा ।
नियमः संमतो लक्ष्ये सुप्रसिद्धो न संशयः ॥
भैरवोऽयं यथा प्रातः सायं श्रीराग ईरितः ।
एकस्मिन् धैवतोंऽशः स्याद्द्वितीये रिस्वरस्तथा ॥
संधिप्रकाशरागाणां लक्षणं शास्त्रसंमतम् ।
कोमलत्वं भवेद्धयोर्गत्योस्तीव्रत्वमीक्षितम् ॥

रागकल्पद्रुमांकुरे :—

रागादिर्भैरवाख्यो मृदुऋषभमधस्तीव्रगांधारनिः स्याद्वाद्यस्मिन् धैवतो-
सावृषभ इह तु संवादिरूपोऽभिगीतः । आरोहेऽल्पर्षभत्वं क्वचिदपि मृदुर्नि
प्राहुरेकेऽवरोहे प्रातःकाले स नित्यं जगति सुमतिभिर्गीयते मंजुतानैः ॥

रागचन्द्रिकायाम् :—

प्रथमो भैरवो रागो मृदुमर्षभधैवतः ।
वादी धैवत एवात्र संवादी त्वर्षभो मतः ॥

रागचन्द्रिकासार :—

भैरव कोमल रिमध सुर तीख गन्धार निखाद ।
धैवत वादी सुर कह्यो तासु रिखब संवाद ॥

प्रश्न—वाह-वाह ! ये आधार हमारे लिए बहुत सुविधाजनक है। अब हम भैरव राग के सम्बन्ध में कुछ नियमबद्ध जानकारी किसी को बता भी सकेंगे। देखिए, ग्रंथाधार किस प्रकार उपयोगी सिद्ध होते हैं ? ये समस्त प्रमाण जिस तरह आजकल हमारे गायक भैरव राग गाते हैं, उसी रूप को बतानेवाले मानने चाहिए न ?

उत्तर—निस्संदेह ! मैं तुम्हें जो प्राचीन वर्गीकरण बताता हूँ, वे भी तुम चाहो तो याद रखो। मेरा इस सम्बन्ध में कोई आग्रह नहीं। ऐतिहासिक सामग्री की दृष्टि से यदि वह भी हमारे संग्रह में हो, तो क्या बुरा है ? पाश्चात्य विद्वान् भी अपने हिन्दू-संगीत पर लिखते हुए हमारे ग्रंथों में बताए हुए वर्गीकरण का आदरपूर्वक उल्लेख करते हैं। चाहे उससे विशेष लाभ हो या न हो, पर यह कहा जा सकता है कि संसार के राष्ट्रों में भिन्न-भिन्न कालों में कितनी मात्रा में विचार-सादृश्य रहा था, इसे समझने का यह भी एक साधन है। कुछ वर्ष पूर्व Mr. Whitten ने कलकत्ता में छात्रों के सम्मुख एक छोटा-सा व्याख्यान दिया था। इसमें उन्होंने अपने राग-रागिनियों के प्रभाव आदि का वर्णन किया था। मैंने उनका निबन्ध यहाँ मँगवा लिया है और तुम्हारी पसन्द का विषय होने से उसमें से थोड़ा-सा भाग पढ़कर सुना देता हूँ।

प्रश्न—देखें, वे क्या कहते हैं ?

उत्तर—वे कहते हैं :—

'Beyond doubt India may lay claim to a very high antiquity. It was among the earliest settlements of the sons of Noah and possessed a people renowned for learning and intelligence and for their proficiency in the arts and sciences; and as Sir William Jones observes 'however degenerate the Hindus may now appear, we cannot but suppose, that in some early day they were splendid in arts and arms, happy in government, wise in legislation and eminent in knowledge.'

The God of the Hindus is Brahma and the invention of Music is ascribed to this deity and to his wife Saraswati, the Goddess of learning, music and poetry. According to popular belief, in the beginning, the Gods and Goddesses met on special occassions for the purpose of composing and singing songs, the result of which was the production of a series of systems or modes known to all Hindus as Rags and Raginees. To Shiva or Mahadeva is ascribed the creation of the six Rags and from his wife, the Goddess parwati are said to have emanated thirty-six Raginees. These Rags though really representing the original systems or styles of melody, bear in the estimation of the Hindus a sacred and peculier interest as being the palpable personifications of the will of their originator, each having a separate existence and shape, although unperceived by the eyes of mortals. With each of these six male Rags are associated six female Raginees, which partake of the peculiar measure or quality of their males, but in a softer and more feminine degree.

From each of these thirty-six Raginees have been born three Raginees reproducing the special peculiarity of their original; and these have in their turn produced offsprings without number, each bearing a distinct individuality to the primary Rag. or to use a Hindu expression 'they are as numerous and alike as the waves of the sea.'

These Rags were designed to move some passion or affection of the mind and to each was assigned some particular season of the year, the time of the day and night, or special locality or district; and for a performer to sing a Rag out of its appropriate season or district would make him in the eyes of all Hindus an ignorant pretender and unworthy the character of a musician.

The allotment of a particular mode to a particular district is not common to India alone; the same system prevails in Arabia, Persia and other ancient countries. A line from the veiled prophet of Khorassan runs:—'In the pathetic mode of Ispahan.' And this peculiar custom is further described in a

footnote as follows:—The persians, like the ancient Greeks call their musical modes or perdas by the names of different countries or cities as the mode of Ispahan, the mode of Irakh etc.

And I would venture to refer even to another passage from Lala Rookh, thus—"Last of all she took a guitar and sang a pathetic air in the measure called Nava, which is always used to express the lamentations of absent lovers."

The names of Rags and their peculiar qualities may be thus briefly described :—

1. Hindol:—The effect of the performance of this Rag is to produce in the mind of the hearers all the sweetness and freshness of spring; sweet as the honey of the bee and fragrant as the perfume of a thousand blossoms.

2. Shri Rag:—The quality of this Rag is to affect the mind with the calmness and silence of declining day; to tinge the thoughts with a roseate hue, as clouds are guilded by the setting sun before the approach of darkness and night.

3. Megh Mallar:—This is descriptive of storms and tempests or the effect of an approaching thunderstorm and rain; having the power also of influencing clouds in times of drought.

Tradition asserts that a singing girl once, by exerting the powers of her voice in this Rag drew down from the clouds, timely and refreshing showers on the parched rice-crops of Bengal, and thereby averted the horrors of famine in the land.

4. Deepuk:—This Rag is said to be extinct. No one could sing it and live; it has consequently fallen into disuse. But although never practised now, its qualities or effects are well known and are referred to with great awe and expression of wonder.

5. Bhyrub:—The effect of this Rag is to inspire the mind with a feeling of approaching dawn; of the busy hum of insects, the carolling af birds the sweetness of the perfumed air and the sparkling freshness of dew dropping morn.

6. Kowshik :—The effects of this Rag are generally unknown. The renowned singers alone are able to comprehend it.

These several Rags and modes are supposed to possess a godlike and magnetic effect. Their performance is left entirely to the professional or chief songsters, their corresponding raginees being alone practised by the people, and these in their several degrees of relationships to the parent Rag according to the worth or proficiency of the performer.

Those persons who have become great in song are held in high esteem by the Hindus. They are not numerous and are generally attached to the household of a Raja or other noble and their services are highly valued. Of these singers I may mention two, whose names are the household words throughout the land; these are Tansen and Nayak Gopal. Tansen appears to have been the most noted singer the country has produced. It is recorded that he was commanded by the Emperor Akbar to sing the Shree or Night Rag at midday and that the power of music was such that it instantly became night, and the darkness extended in a circle round the palace, as far as his voice could be heard.

Of the magical effects produced by the singing of Gopal Nayak and the romantic termination to the career of this sage it is said that he was commanded by Akber to sing the Rag Deepuk and being obllged to obey repaired to the river Jamna in which he plunged up to his neck. As he warbled the wild and magical notes flames burst from his body and consumed him to ashes.

ऐसी मजेदार दन्तकथाओं का संग्रह पाश्चात्य पण्डित भी कर लेते हैं, किन्तु यह न समझना चाहिए कि इन्हें वे सत्य मानते हैं। हम स्वयं भी उन्हें कहाँ सत्य मानते हैं ?

प्रश्न—परन्तु इतिहास में लिखी हुई होने पर असत्य भी कैसे कही जा सकती हैं ?

उत्तर—यही उचित है कि हम न तो इन्हें असत्य कहें और न सत्य ही मानें। अकबर का समय कोई प्रलय के पूर्व का नहीं था। यह कैसे भुलाया जा सकता है कि इन चमत्कारों को हुए अभी चारसौ वर्ष भी नहीं हुए हैं। मेरा व्यक्तिगत मत यह है कि यह कवि की कल्पना-भाव-मात्र है। यह भी कहे देता हूँ कि इन बातों को यदि किसी ने लिख भी रखा हो, तो भी उन्हें मैं काल्पनिक ही मानूँगा। यह अनिवार्य नहीं कि मेरा यह व्यक्तिगत मत तुम्हें स्वीकार ही करना होगा। क्या हम कभी-कभी पुस्तकों में भूत-प्रेतों की दन्तकथा नहीं पढ़ते? क्या यह सब हम सत्य समझते हैं? लिखने-वाला कौन? उसकी विद्वत्ता कितनी? लिखने का उद्देश्य क्या? वह समय कौनसा? चमत्कार किसने देखे? प्रमाण क्या? इन सभी बातों को ध्यान में रखकर निर्णय करना होगा। मालूम होता है Mr. Whitten साहब को हमारे यहाँ की अन्य एक-दो कथा प्राप्त नहीं हो सकी थीं।

प्रश्न—वे कौनसी?

उत्तर—परसों एक पुस्तक में मैंने पढ़ा कि जब गायक तानसेन दीपक राग से जल गया, तब वह रोते-रोते गुजरात की ओर आया। वहाँ एक गुजरातिन ने नदी पर पानी भरने जाते समय उसे देखा। उसने तत्काल उसे आदरपूर्वक अपने घर बुलाया और मल्हार राग गाकर आकाश से जल बरसाया और उसे पूर्ववत् स्वस्थ कर दिया।

प्रश्न—यह सुनकर केवल हँसी आती है। तानसेन दिल्ली में जल गया, गुजरात तक (जबकि रेल नहीं थी) आ पहुँचा और यहाँ एक गुजरात की नारी ने 'मल्हार' गाकर उसे अच्छा कर दिया! यह कैसे सम्भव है? यह प्रमाण कहाँ से और किस प्रकार प्राप्त होगा कि उस समय गुजरात में संगीत की स्थिति इतनी उच्च थी?

उत्तर—तुम्हारी शंका सत्य है, परन्तु ऐसी कथाएँ अपने अशिक्षित समाज के मनोरंजन का एक बड़ा साधन होती हैं। यदि गायकों से हम यह प्रश्न करें कि हिन्दोल, श्री व दीपक के ये अपूर्व चमत्कार किन-किन स्वरों से होते हैं, तब वे चुप बैठ जाते हैं। दूर की बात जाने दो, यदि तुम किसी से यह प्रश्न पूछो कि तुम आज जो हिंदोल व श्री राग गाते हो, वे किस ग्रंथ के प्रमाण से गा रहे हो, तो ठीक उत्तर देनेवाले हजार में पाँच भी नहीं निकलेंगे; परन्तु हमें ऐसे विषयान्तर में अभी नहीं जाना है। मैं समझता हूँ कि भैरव के लक्षण अब ठीक-ठीक तुम्हारी समझ में आ चुके होंगे?

प्रश्न—जी हाँ, अब हमें इस राग का स्वरूप स्वरों से और बता दीजिए, तो फिर इस राग का वर्णन पूरा हुआ?

उत्तर—ठीक है, यही करता हूँ:—

भैरव

सा, रेरे, साधु, सारे, सा, मगरे, सा; सारेसा, धुधुनिसा, साधुसा, मगरे, गरे, रे, सा; सारेसा। सारेसा, निसा, धु, निधुनिसा, गमगरे, पमगरेसा; सारेसा। निसा, रेरेसा, रेसा, धु, निधुप, मपधु, रे, सा; सारेसा। मगरेसा, सारेसाधु, रेसाधु, निधु, सा, गमगरे, सा; सारेसा। सा, मग, मप, धु, प, मगरे, गमगरे, सा, निसाधु, निसा, पमगरे सा; सारेसा। निसा, रेसा, गरे, मगरे, पमगरे, रेसा, धुप, मपमगरे, सा; सारेसा। प, पपधु, निसां, सांरें, सां, सांधु, निसांरेंरेंसां, निधु, रेंसांनिधु, निधु, धु, प; मगमप, धु, मंगंरेंसां, निधुप, सांनिधुप, मगरे, गमपमगरे, रेसा; सारेसा।

सासा, मगमप, धुधुपप, मपमग, रे, पमगरे, सा; सारेसा। सानिधुप, धुप, मप, धुधुप, निसा, मगरे, पमगरे, रे, सा; सारेसा। मगमप, धुधु, निधुप, सांनिधुप, रेंसांनिधुप, मपमगरे, पमगरेसा; सारेसा। मगरेसा, गरेसा, रेसा, धु, धु, निधु, सा, मगम, धुपमगरे, सा; सारेसा। धुधुप, मप, सांनिधुप, रेंसांनिधुप, निधुप, मपधुपमगरे, पमगरेसा; सारेसा। निसा, गमप, धु, प, मगरे, गमपमगरे, गरे, सा, ग, मप, धु, प। सानिधुप, निधुसा, गरे, मगरे, निधुपमगरे, सा; ग, मपधु, प। निसागम, पधुनिसां, सांनिधुप, मगरेसा; ग, मप, धु, प। सारेसा, म, गप, म, गरेसा, निसा, निधुनिसा, मगरे, पमगरे, सा। धु, धु, प, मप, निधु, प, मपमगरे, मगरे, पमगरे, रे, सा; गमपधुप।

प्रश्न—यह भैरव राग तो अच्छी तरह हमारे ध्यान में जम गया। अब आगे का राग लीजिए?

उत्तर—ठीक है! अब मैं रामकली राग बताता हूँ। रामकली राग की प्रकृति अधिकांश रूप में भैरव-जैसी होने से उसे अभी समझ लेना सुविधाजनक होगा। भैरव व रामकली राग अलग-अलग गाकर सुनाने में गायकों को थोड़ी-बहुत कठिनाई पड़ती है। इसी प्रकार की कठिनाई पूर्वी ठाठ में श्री व गौरी रागों की जोड़ी में होती है। यह स्वीकार करना पड़ेगा कि कुशल गायक ये समस्त राग अलग-अलग नियमों से उत्तम रूप से सँभालते हैं, परंतु मैंने अभी साधारण अनुभव की बात बताई है। भैरव के पश्चात् तत्काल यदि किसी ने रामकली गाने की फर्माइश की, तो गायक कुछ हिचकिचाने लगते हैं।

प्रश्न—ऐसा प्राय: सभी समप्राकृतिक रागों में होता होगा?

उत्तर—हाँ, ये राग दूसरे रागों में मिल जाते हैं, अतः इनमें नियमों की ओर अधिक सूक्ष्मता से ध्यान देना पड़ता है। जिस प्रकार गायक इन रागों को

गाते हुए गड़बड़ी में पड़ जाते हैं, वैसे ही श्रोता भी राग पहचानने में चकरा जाते हैं।

प्रश्न—तो फिर रामकली में भैरव-अंग के ऋषभ व धैवत लगते होंगे ?

उत्तर—हाँ ! फिर भी ये स्वर बड़ी खूबी से प्रयुक्त किए जाते हैं। मेरे कहने का अर्थ तुम्हारे ध्यान में तब अच्छी तरह से जमेगा, जब मैं इन स्वरों को गाकर दिखाऊँगा।

प्रश्न—रामकली में किस स्वर को वादी माना गया है ?

उत्तर—यह राग प्रचार में दो-तीन तरह से गाया जाता है। इसलिए जो रूप गाया जाएगा, उसी पर उसका वादी स्वर अवलम्बित रहेगा। मैं समझता हूँ कि पहले मैं तुम्हें प्रचलित रूप बता दूँ; फिर वादी स्वरों के सम्बन्ध में बताना ठीक होगा।

प्रश्न—ठीक है, ऐसा ही कीजिए।

उत्तर—रामकली का एक सरल, परन्तु उलझन में डाल देनेवाला स्वरूप 'सम्पूर्ण रामकली' कहा जा सकता है। यह स्वरूप प्रायः भैरव का सन्देह उत्पन्न कर देता है।

प्रश्न—फिर इसका इलाज क्या है ?

उत्तर—कुशल गायक इसको भिन्न-भिन्न युक्तियों से भैरव से दूर रखते हैं। भैरव का गांभीर्य, 'मगरे॒सा' की सुन्दर व विलम्बित मीड़, मन्द्र-स्थानों का विशिष्ट प्रयोग, धैवत का महत्त्व आदि सभी बातें तुम जानते ही हो। रामकली में इन्हें प्रयुक्त नहीं किया जाता। रामकली में सा, म, प, स्वरों का प्राबल्य श्रोताओं को अधिक दिखाई पड़ेगा। इस राग के पंचम स्वर की ओर मैं तुम्हारा ध्यान खास तौर से खींचनेवाला हूँ। यह देखो कि 'प, प, ग, म, रे॒, सा, प' स्वरों को गाते हुए मैं इसे भैरव से कैसे बचा लेता हूँ ? इस पंचम में बहुत सूक्ष्म तीव्र मध्यम का एक कण किस प्रकार लगाया गया, यह भी देखा क्या ? मैं तुम्हें केवल ऐसे कण से ही इस राग को पहचानने की बात कहूँगा। यह देखने-योग्य बात है कि मर्मज्ञ गायक 'सा, म ग म प, प ध॒ प, प ग म, रे॒ सा, ध॒ प,' इस प्रकार से गाते हुए हमारा ध्यान पंचम की ओर बड़ी सफाई से किस प्रकार खींच लेते हैं। कोई-कोई तो यह कहते हैं कि रामकली की गति कुछ अधिक चंचल रखनी चाहिए, जिससे उसमें भैरव का गांभीर्य नहीं आ सके। तुम तो पंचम पर 'न्यास' करने की आदत बना लो, समझ लो कि इच्छित परिणाम अपने-आप उत्पन्न हो जाएगा। रामकली में मध्यम भी बीच-बीच में खुला प्रयुक्त कर दिया जाता है, परन्तु वहाँ 'म ग रे॒ सा', यह मीड़ योजित नहीं की जाती। 'नि॒ सा, ग म, प, ध॒ प ग म' इस प्रकार का स्वर-समुदाय

बुरा नहीं दिखाई देगा, परन्तु इसका प्रयोग कर षड्ज से मिलते हुए, राग सँभालने में ही खूबी है। मुझे स्मरण है कि कुछ वर्ष पूर्व मैं जयपुर गया था, वहाँ एक प्रसिद्ध व वृद्ध तन्त्रकार से मेरी बातें भैरव व रामकली में कैसे भेद किया जाए, इस सम्बन्ध में हुई थीं। उन्होंने ये राग अपने पुत्र द्वारा बजवाकर दिखाए, परन्तु यह नहीं बता सके कि इन दोनों रागों में अमुक ही भेद है। उस लड़के ने भैरव की गत 'सा, ग म प प, ध ध, प प, म ग रे, प म ग रे सा। सा ध़ नि़ सा, रे रे सा सा, म ग रे प म ग रे सा।' इस प्रकार बजाई, व रामकली की गत उसने 'सां रें सां नि, ध नि ध प, म ग रे प, म ग रे सा। नि़ सा म ग, प प ध प, सां सां रें सां ध नि ध प।' इस प्रकार आरम्भ की। मुझे केवल यही दिखाई पड़ा कि विस्तार करते हुए बार-बार वह लड़का विश्रांतिस्वर पंचम को बनाए हुए था। उन वृद्ध सज्जन से मैंने आरोह-अवरोह के नियम बताने के लिए बहुत आग्रह किया, तब उन्होंने मुक्त हृदय से मुझे यह उत्तर दिया—'महाराज! आपको क्या चाहिए, यह मैं अच्छी तरह समझ गया हूँ। मैं स्पष्ट रूप से कह रहा हूँ कि हमारे गुरु हमें भिन्न-भिन्न रागों के भेद इस प्रकार व्यवस्थित रूप से बताते ही नहीं हैं। गाते-गाते हम लोग कुछ-कुछ राग-नियम देख सकते हैं, परन्तु ये खरे हैं या खोटे, यह हम खुद भी नहीं जानते, फिर हम किसी के प्रश्नों का उत्तर कैसे दे सकते हैं? हमें लिखना-पढ़ना भी अधिक नहीं आता, इसलिए खोजकर योग्य नियम निकालने का हमें ज्ञान भी नहीं होता। हमारे पुरखे भी हमारे-जैसे निरक्षर थे, फिर भला उनसे हमें नियमों का ज्ञान कैसे हो सकता था? आप चाहें तो प्राचीन व प्रसिद्ध गायकों से ऐसा पूछ देखें, तब आपको मेरे कथन की यथार्थता ज्ञात हो सकेगी। हमें अनेक चीजें आती हैं, परन्तु हम उन्हें केवल सुनकर सीखते हैं। वे शास्त्र-दृष्टि से शुद्ध हैं या नहीं, यह समझने की सामर्थ्य वास्तव में हम लोगों में नहीं है। हम अपने घराने की 'गायकी' अच्छी तरह सँभाले रहें, इसी लिए हमारे बड़े-बूढ़े यह पसन्द नहीं करते कि हम वयस्क होने तक अन्य गायकों का गाना सुनें। एक बार हम वयस्क हो गए और हमारे गले में एक विशिष्ट प्रकार का घुमाव पैदा हो गया, तो फिर मानव-स्वभाव के अनुसार कहिए, या परम्परा की अशिक्षा के कारण, हमें अन्य गायकों का गायन अपनी दृष्टि में तुच्छ ही ज्ञात होने लगता है। इतना ही नहीं, बल्कि हम यह स्पष्ट कहने में भी आगे-पीछे नहीं देखते कि जो मत हमारे मत से असंगत है, वह गलत है। कभी-कभी खुद हमें भी ज्ञान हो जाता है कि यह दुष्ट स्वभाव है, परन्तु दुर्भाग्यवश वह स्वाभाविक रूप से हममें घुल-मिल गया है और उसे छोड़ना हमारे लिए कष्ट-साध्य है। जैसे-जैसे हम आगे विद्वानों व सभ्य लोगों के सहवास में आते हैं, वैसे-वैसे अपना पूर्व-स्वभाव बदलने का प्रयत्न करते हैं, परन्तु वह हमसे क्वचित् ही सध पाता है। इस अनिष्ट ढङ्ग से केवल एक ही लाभ होता है कि प्राचीन गायकों के कुछ गीत, परम्परा से थोड़े-बहुत प्रमाण में सँभाल लिए जाते हैं और वे आगे खोजनेवालों को प्राप्त हो सकते हैं। मैं प्रसिद्ध गायकों के घरानों के सम्बन्ध में कह रहा हूँ; ढाड़ी, मीरासी आदि लोगों की परम्परा के सम्बन्ध में यह बात नहीं है।

प्रश्न—शायद यह कोई अलग वर्ग होगा ?

उत्तर—हाँ, तबला-सारंगी बजानेवाले आदि इसी वर्ग के माने जाते हैं। इन्हें
संगीत के साम्प्रदायिक या घरानेदार गायक नहीं मानते। सुना जाता है कि सच्चे,
खानदानी गायक इन लोगों से शायद ही कभी बेटी-व्यवहार करते हों। ढाड़ी लोगों
में भी कहीं-कहीं प्रसिद्ध गायक निकलते हैं, परंतु यह कहा जाता है कि वे गायक
घराने के 'खास' शागिर्द होकर तैयार होते हैं। यह माना जाता है कि संगीत के
साम्प्रदायिक घराने पहले बनाई हुई चार वाणियों के आधार पर हुए हैं। अब समय
के अनुसार गायकों के व्यवस्थित वर्ग निश्चित करना बहुत कठिन हो गया है। अब
तो जिसे देखो, वही गायक, जिस वाणी का पता हो, उसे ही दबा बैठते हैं व प्रसंग के
अनुसार खंडार, नोहार, डागुर आदि बन जाते हैं। यह भी कहा जाता है कि
आजकल वाणी का अधिक रहस्य प्राप्त नहीं है। प्राचीन काल में गायक के खानदान
में कभी वाद्य (सारंगी आदि) नहीं बजाए जाते थे। अब देखो, तो कोई-कोई गायक
जीविका के लिए ताँसे (शादी में बजाए जानेवाला चमड़े का वाद्य) बजाने को तैयार
हो जाएगा। आजकल 'तालीम' देनेवाले लोग भी गायन, वादन व नृत्य, तीनों कलाओं
की शिक्षा देने को तैयार हैं। अनेक बार ऐसे लोगों में योग्यता के नाम पर सुना
हुआ गायन-वादन और देखा हुआ नृत्य ही प्राप्त होता है। अस्तु, उन सज्जन का मत
मैं तुम्हें बता चुका हूँ। अब आगे चलें। रामकली का समय प्रातःकाल है। कभी
यह राग भैरव के पहले और कभी पीछे गाया जाता है। यह संधिप्रकाश राग है, अतः
इसमें कोमल रे, ध तथा तीव्र ग, नि स्वर उचित ही हैं। रामकली के संपूर्ण
स्वरूप में सा, म या प, इनमें से कोई एक वादी स्वर होता है। रामकली के तीन-
चार प्रकार गायक गाते रहते हैं। एक औडुव भेद है, जिसमें आरोह में म, नि स्वर
वर्ज्य किए जाते हैं एवं वादित्व धैवत को दिया जाता है।

प्रश्न—जाति बदल जाने के कारण धैवत स्वर वादी होने पर भी यह राग
भैरव से पर्याप्त भिन्न हो जाएगा। ठीक है न ?

उत्तर—यह तो स्पष्ट ही है। रामकली का स्वतंत्र भेद माना जाता है। यह
राग हमें अधिकतर सुनने को नहीं मिलता। गायकों को नियमों में जकड़े हुए राग
अधिक पसंद नहीं आते। उन्हें नियमरहित व संपूर्ण रागस्वरूप सदैव पसंद आते हैं,
क्योंकि इन स्वरूपों में इच्छानुसार तानें लगाना सरल पड़ता है। रामकली का
औडुव-संपूर्ण स्वरूप इस प्रकार होगा :—

'धुधुप, धुप, मगरेरेसा सारेसाधुसापमगरेसा, सारेसामगपपपधुप, सांधुपनिधुपमग-
रेसा। पपधुधुसांऽसांरेंसां, सांनिधुनिधुरेंसांनिधुप, मंमंगंरेंसांनिधुप, सांनिधुनिधुपमगरेसा।

इसमें भैरव का मंद्रस्थानवाला भाग तथा 'मगरेसा' की प्रसिद्ध मींड़ बार-बार
नहीं लेनी चाहिए। रामकली के इस औडुव-संपूर्ण प्रकार में आरोह करते हुए
मध्यम व निषाद स्वर वर्ज्य करने पड़ते हैं। यहाँ कुछ 'विभास राग' की छाया किसी
को दिखाई देगी, परंतु 'विभास' का अवरोह औडुव है, इसलिए वह राग अलग हो

जाएगा। रामकली के इस भेद को पहले स्वरों से गाने का प्रयत्न करो और भैरव व विभास रागों से बचाने का ध्यान रखो, तो तुम्हें यह राग सध जाएगा। यह कार्य कठिन नहीं है।

प्रश्न—क्या ये स्वर-समुदाय चल जाएँगे; देखिए :—

साधुधुप, मगरेसा, सारेरेसा, निधुसा, मगरेसा, सामग, पपधुप, धुप, मग, निधुप, सांनिधुप, गपमगरेसा।

उत्तर—ये स्वर-समुदाय अशुद्ध नहीं हैं। गाते हुए इनका प्रयोग कहाँ और किस प्रकार किया जा सकेगा, यह आगे चलकर तुम्हारे ध्यान में आ जाएगा। मैं कह चुका हूँ कि औडुव-संपूर्ण रूप प्रचार में बहुत कम दिखाई पड़ता है। जो स्वरूप आजकल हम प्रायः सुनते हैं, वह संपूर्ण स्वरूप है तथा उसमें दोनों मध्यमों का प्रयोग किया जाता है, यह नहीं भूलना चाहिए।

प्रश्न—अर्थात् 'धु प मं ग रे सा' इस प्रकार होता होगा ?

उत्तर—नहीं, नहीं, यह नहीं चलनेवाला है भाई ! इससे तो तत्काल ही राग में सायंगेयत्व आ जाएगा।

प्रश्न—हाँ, हाँ, इसमें कोमल मध्यम नहीं है, शायद इसलिए यह रूप वैसा हो जाएगा। अच्छा, यदि 'धुप, मंग, मगरेसा' इस प्रकार करें तो ?

उत्तर—यह रूप भी अच्छा नहीं दिखाई देगा। तीव्र म लेकर 'पमंग' इस प्रकार का अवरोह तो बुरा ही लगेगा। तीव्र मध्यम का उपयोग बड़ी खूबी से किया जाता है। यह स्वर प्रायः कुछ पंचम की संगति में आरोह में दिखाया जाता है। कुछ मर्मज्ञों का मत है कि तीव्र म वाला टुकड़ा किसी भिन्न राग का है। वे कहते हैं कि यह टुकड़ा भैरव से इस राग को अलग करने के लिए खास तौर से लिया गया है। सुविधा के लिए ऐसा ही तुम भी मान लो, तो कोई बड़ी हानि नहीं है। एक तरह से तो तुम्हारा इस बात को मान लेना ही अच्छा होगा। तीव्र मध्यम आरोह में लेने से अपने साधारण नियमों में असंबद्धता उत्पन्न हो जाएगी; परंतु यहाँ ऐसा समझ लेना चाहिए कि यह एक अलग राग के अंश का एक खंड-मात्र है। रामकली में तीव्र मध्यम एक नियमित स्वर-समुदाय में प्रायः आता है। उत्तरांगप्रधान रागों की संपूर्ण विचित्रता प्रायः अवरोह में होती है, अतः तीव्र मध्यम का स्पर्श आरोह में होने से अधिक हानि नहीं होती। कभी-कभी गायक दोनों मध्यम जोड़कर तान लेते हैं, परंतु यह कृत्य बार-बार किया गया, तो राग बिगड़ जाएगा। उत्तर-रागों का अवरोह बड़े ध्यानपूर्वक अभ्यास से तैयार करना पड़ता है। रामकली में दोनों मध्यम ग्रहण करनेवाले गायक इसे भैरव के पहले ही गाते हैं।

प्रश्न—यह उचित ही दिखाई देता है। तीव्र मध्यम रात्रि बीतते-बीतते अदृश्य होनेवाला स्वर है, फिर आगे भैरव में वह स्वर होता ही नहीं।

उत्तर—तुमने ठीक कहा। रामकली भैरव के पूर्व गाए जाने पर ही शोभा देगी। रात्रि के अन्तिम प्रहर में दोनों मध्यमवाले राग दूसरे भी हैं। इनमें तीव्र म अधिक होता है। इस रामकली में यह स्वर अब विदा होने के मार्ग पर आ जाता है। कोई कुछ भी कहे, परन्तु हमें अपने प्राचीन पंडितों की रचना में बहुत कौशल दिखाई पड़ता है। जैसे-जैसे अनुभव अधिक होने लगता है, वैसे-वैसे यह अपने-आप ज्ञात होने लगता है कि अभी हमें बहुत-कुछ सीखना है।

ऐसा कोई नियम नहीं है कि रामकली के गीत अमुक स्वर से ही आरम्भ होते हैं। 'सा, मग, मपधु, प' यह प्रारम्भिक भाग तुम्हें भैरव व रामकली, दोनों में दिखाई देगा। परन्तु रामकली में पंचम स्वर श्रोता के लक्ष्य का तत्काल भेदन कर देता है। रामकली में 'मंप, धुनिधुप' इस प्रकार का जो टुकड़ा आ सकता है, वह भैरव में कभी नहीं चल सकता। 'मगरेसा' यह स्वरसमुदाय दोनों रागों में आता है, परन्तु भिन्न-भिन्न प्रकार से ग्रहण किया जाता है। भैरव में 'मग रेसा' की मोड़ बताई है। रामकली में 'ग, मग, रेरेसा' इस प्रकार करना पड़ता है। यह टुकड़ा मेरे साथ दस-बीस बार तुम्हें बोलना पड़ेगा। इसमें 'गमग' ये स्वर किस तरह लेता हूँ, यह देखो। भैरव में प्रयुक्त होनेवाली वह मीड़ यहाँ बिलकुल नहीं चल सकेगी। 'नि सा, गमम, प धुप, धुप, मंपगमरे, सा' यह भाग ध्यान में जमा लो, यह गायकी का टुकड़ा है। इन स्वरों को गाते ही रामकली स्पष्ट दिखाई देगी। 'सा ग, मप, धुप, मगरे, पमगरेसा' इन स्वरों को विलम्बित रूप से गाया कि भैरव हुआ। इनमें कहाँ-कहाँ किस प्रकार से कण लगाए जाते हैं, यह भी देखो। यदि ये कण नहीं आए, तो यह नहीं कि राग अशुद्ध हो जाएगा; परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि यदि ये कण आ गए तो राग अधिक सुन्दर बन जाएगा। ये कण ऊपर के स्वरों के ही प्रायः लगाये जाते हैं। पंचम पर मैं किस प्रकार रुक जाता हूँ तथा तीव्र मध्यम को धीरे से पंचम में किस प्रकार मिला देता हूँ, यह ध्यानपूर्वक देखकर सीख लो। 'धुधुप, मंप, गमरेसा' इतने स्वर ही प्रथम अच्छी तरह गाकर सीखने चाहिए। 'धुधु, प' स्वर विलम्बित में विभास राग का आभास होने पर्यन्त, खींचे जाएँ व उनमें 'मंपग' 'मरेसा' ये भिन्न टुकड़े जोड़ दिए जाएँ। केवल मन्द्र-स्थान में विशेष हलचल नहीं करनी चाहिए, क्योंकि यहाँ भैरव राग से दूर रहना है। 'साधु' इस प्रकार मीड़ ली कि रामकली का रंग बिगड़ा। 'सा, धुसा' इस प्रकार से यह टुकड़ा धैवत का स्पर्श करते हुए कहीं-कहीं दिखा दिया, तो चल जाएगा। ऐसी छोटी-छोटी अनेक तानें, जो पंचम पर समाप्त हों, लेते रहना चाहिए तथा श्रोताओं का ध्यान खास तौर से स्वर की ओर खींचना चाहिए। बीच-बीच में 'ग, मगरेसा, गम' लेकर इसमें 'धु मंप, धुनिधुप, प, गम, रेसा' भाग जोड़ देना चाहिए। पहले टुकड़े में व्यस्त (खुले) रूप में मध्यम का प्रयोग करने पर चमत्कारिक परिणाम उत्पन्न होगा। यहाँ सम्भवतः ललित राग का अंग दिखाई पड़ेगा। परन्तु 'गम, धु, धुपमंपगमरेरेसा' इन स्वरों के प्रयोग से समस्त शंका दूर हो जाएगी! रामकली गाते हुए सदैव भैरव-अंग उत्पन्न करने का संकल्प करना चाहिए व साथ ही साथ यह भी ध्यान रखना कि यह कालिंगड़ा-जैसा स्वरूप श्रोताओं को ज्ञात न होने पाए। 'मंप, धुनिधुप,' इन स्वरों को गाते

हुए निषाद को केवल 'ईषत्स्पर्श' नियम से दिखाया जाए। इससे स्वतंत्र प्रभाव उत्पन्न होगा और यह राग अन्य समप्राकृतिक रागों से दूर किया जा सकेगा। हमारे गुणी जनों का यह कथन मिथ्या नहीं है कि अभ्यास एक अद्भुत चीज है। मुस्लिम गायकों के सम्मुख हिन्दू गायकों की तेजस्विता नहीं प्रकट होती (लगभग आजकल तो ऐसा ही मत है), इसका कारण मेरे विचार से उचित रियाज का अभाव है। हिन्दू गायकों में बुद्धि कम नहीं होती, परन्तु इस क्रिया-सिद्ध विषय में केवल बुद्धि ही सफलता नहीं दिला सकती। बचपन से ही मृदंग या तबलावादक की संगति से दमदार एवं सुरीली आवाज से रियाज करते रहने पर अच्छी तरह से गायन-पटुता आ सकती है। हमारे हिन्दू गायकों को दूसरी कोई कठिनाई नहीं है, कठिन है तो हिन्दी-भाषा का अज्ञान। इसे दूर करने का सरल उपाय यह है कि शिक्षार्थियों को अपने गुरु से अपनी चीजों का अर्थ स्पष्ट समझकर ग्रहण करना चाहिए। कभी-कभी हमारे हिन्दी-गायक भी शब्दोच्चारण गलत करते हैं, चाहे जिस शब्द पर तान लेने लगते हैं और इस प्रकार वे हिन्दी भाषा के जानकार लोगों को हँसने का कारण उपस्थित कर देते हैं। यहाँ यह बचाव बिलकुल नहीं चल सकेगा कि 'क्या यह हमारी भाषा है?' हिन्दी-चीज गाते हुए शब्दोच्चारण की ओर दुर्लक्ष्य करने से कैसे काम चलेगा? अस्तु, आरोह में नि, वर्ज्य करनेवाला रामकली का जो स्वरूप मैंने बताया है, उसमें 'सा, मग, पप, धुप, निधुप, मग, धुप, गम, रेरेसा' इस प्रकार स्वर-प्रयोग करने होंगे। अवरोह में म, नि स्वर उचित रीति में दिखाने पर विभास का अंग दूर हो जाएगा। प्रातः-कालीन रागों में सा, म, प में से कोई एक स्वर वादी बनाने से असंगति उत्पन्न नहीं होती, इसलिए कोई-कोई गायक रामकली में पंचम स्वर पर बहुत काम करते हैं और यह सुन्दर भी दिखाई देता है। अच्छा, अब यह बताओ कि मेरे बताए हुए रामकली के भेद तुमने किस प्रकार ध्यान में जमाए हैं?

प्रश्न—हमने ये तीन स्वरूप ध्यान में रखे हैं। १. निसा, ग, मप, धु, प, निधुप, गमरेसा; सांनिधुनिधुप, गमधुप, गमरेरेसा, गमधु, प; २. ग, मरेसा, रेसा, निधु, गम, धु, पमंप, धुधुनिधुप, गमरे, सा; ३. सा, ग, पधुप, धुधुसां, निधुप, पधुप, गमरे, सा, साधुसा, गमरे, धुप, गमरेरेसा, धुप।

उत्तर—मैं समझता हूँ कि तुमने ये उठाव अच्छी तरह से ध्यान में रख लिए हैं। जिस प्रकार भैरव में मन्द्र व मध्यस्थान शोभा देते हैं, उसी प्रकार रामकली में मध्य व तार-स्थान रंजकता उत्पन्न करते हैं। मन्द्र-स्थान में प्रवेश करते हुए भैरव न आने की सावधानी की गई, तो रामकली में मन्द्र-स्थान के स्वरों का उपयोग करना तुम्हें याद हो जाएगा। इस जगह मीड़ की उलझन में नहीं पड़ना है। 'साधु, मगरे, सा, साधु, प, मगरे, पमगरेसा' यह भाग रट लेने का प्रयत्न करो; क्योंकि यह भैरव का जीवभूत अंग है।

हमारे संस्कृत-ग्रंथों में रामकली, रामकेली, रामकृति, रामक्रिया, रामकिरी, राम-करी, रामक्री आदि नाम प्राप्त होते हैं। रागों के नाम हमारे गायकों द्वारा अनेक प्रकार से बदले जाकर गृहीत हुए हैं। यह देखते हुए भी हमें इनके सुधारने के झंझट में पड़ने

की आवश्यकता नहीं। मियाँ की तोड़ी, मियाँ की सारंग, बिलासखानी तोड़ी, लाचारी तोड़ी आदि नाम हिन्दुस्तानी पद्धति में अब इतने साधारण हो गए हैं कि इनके औचित्य-अनौचित्य की ओर ध्यान देने की किसी को आवश्यकता ही नहीं रही। स्वयं लक्ष्यसंगीतकार ने प्रचलित नाम ही स्वीकार करना अच्छा समझा। जो स्पष्ट रूप से संस्कृत-नाम हैं, उन्हें उसी प्रकार शुद्ध मानने में कोई हानि नहीं, परन्तु यावनिक नाम यथावत् रहें, तो भी चल सकेगा। मैं यह कह चुका हूँ कि प्रायः गायक लोग एक ही बैठक में भैरव व रामकली को गाना टालते रहते हैं, क्योंकि ये राग समप्राकृतिक हैं। प्रायः ये गायक तानबाजी करते हैं और इन्हें इस कारण दोनों रागों का अलग-अलग विस्तार करना कठिन हो जाता है। परन्तु यह हरएक व्यक्ति कहेगा कि नियमों को उत्तम रूप से समझे हुए, अर्थात् बुद्धिमान् के लिए यह कार्य इतना कठिन नहीं होता। मैंने पहले कहीं-कहीं अवरोह में कोमल निषाद लिया था, यह तुम्हें दिखाई दिया होगा। इससे यह न समझना चाहिए कि कोमल निषाद से स्वतन्त्र अवरोह 'सां नि ध प' हो सकेगा। ये स्वर रामकली में कहीं-कहीं केवल रंजकता-वृद्धि के लिए विवादी स्वर के रूप में गायक लोग प्रयुक्त करते हैं। मजा यह है कि तीव्र मध्यम लेनेवाली तान में भी यह स्वर अनेक बार जोड़ दिया जाता है। इसी वजह से मैंने तुम्हें सुझाया था कि यह 'मं प ध नि ध प' का टुकड़ा किसी अन्य राग का रामकली में प्रविष्ट हो जाता है। यदि यहाँ पंचम को षड्जत्व दिया जाए तो 'नि सा रे ग रे सा' यह तान उपयुक्त तान के रूपांतर में प्राप्त होगी, परन्तु षड्ज-परिवर्तन व षड्ज-संक्रमण के विषय अलग-अलग हैं। इन विषयों पर यहाँ संक्षेप में नहीं बताया जा सकता। अभी तुम्हें इतनी गहराई में जाने की जरूरत नहीं है। रामकली का न्यास-स्वर कोई पंचम मानता है, कोई षड्ज मानता है। अवरोह में ऋषभ स्वर पर अधिक जोर न देने में बड़ी विशेषता है। यहाँ तुम जितने अधिक आन्दोलन लोगे, उतना ही अधिक तुम्हारा राग भैरव की ओर चला जाएगा। कुछ गायक 'ग, म रे सा, ग, म प, मं प, ध प' स्वर इस खूबी से गाते हैं कि वे श्रोताओं को 'जोगिया' नामक राग का थोड़ी देर के लिए आभास करा देते हैं तथा भैरव को दूर रखते हैं। उन्हें ज्ञात रहता है कि गान्धार वर्ज्य न होने से जोगिया से यह राग सहज में अलग हो जाएगा। रामकली राग भैरव-अंग का होने से इसका ग्रंथों में 'मालवगौड़' ठाठ में प्राप्त होना आश्चर्य की बात नहीं है। रागलक्षणकार कहता है :—

मायामालवगौलाख्यमेलाज्जातः सुनामकः ।
रागो रामकलिश्चैव सन्यासं सांशकं ध्रुवम् ॥
आरोहे मनिवर्ज्यं चाप्यवरोहे समग्रकम् ॥

कुछ संस्कृत-ग्रंथकारों ने राग रामक्रिया या शुद्ध रामक्रिया को पूर्वी ठाठ में माना है। मैं समझता हूँ कि रामकली व रामक्रिया, ये दोनों राग भिन्न-भिन्न

मान लेनें पर उन ग्रंथकारों के उपर्युक्त मत से अपने प्रचलित राग रामकली को कोई बाधा न आ सकेगी।

प्रश्न—अपने यहाँ रामकली में दोनों मध्यम ग्रहण करने का प्रचार है, तो क्या इससे यह ज्ञात नहीं होता कि हमारे गायकों ने संस्कृत-ग्रंथकारों के मत को सम्मान देने के लिए इस प्रकार का स्वरूप स्वीकार किया होगा ?

उत्तर—इस प्रश्न का विश्वस्त उत्तर कैसे दिया जा सकता है ? शायद ऐसा ही हो।

प्रश्न—जो रामक्रिया को पूर्वी ठाठ का राग मानते हैं, वे इसके वर्ज्य स्वरों के नियम कैसे नियत करते हैं ?

उत्तर—प्रथम तो यह बात याद रखने की है कि अपने उत्तर की ओर के गायक रामकली व रामक्रिया, इस प्रकार के दो अलग-अलग राग गाते ही नहीं, वे सदैव 'रामकली' नाम का ही उपयोग करते हैं। मैंने तुम्हें सुझाया ही है कि पूर्वी ठाठ में आरोह में म नि, वर्ज्य कर एक नवीन रूप उत्पन्न हो सकेगा। इस रूप को ग्रंथाधार भी प्राप्त है और यह सुन्दर भी दिखाई देगा। पूर्वी ठाठ को ही अनेक ग्रंथकार 'रामक्रिया ठाठ' कहते हैं। रामक्री राग के आरोह-अवरोह के सम्बन्ध में ग्रंथों में मतभेद है। यह गायकों की इच्छा पर निर्भर है कि वे कौनसा रूप पसन्द करते हैं।

प्रश्न—हमारे रामकली राग में न जाने कब से दोनों मध्यम प्रविष्ट हुए हैं ?

उत्तर—यह सब ऐतिहासिक गुत्थी ही कही जा सकती है। इसका सम्बन्ध उस युग से है, जबकि हमारी पद्धति में मध्यम का महत्त्व और स्थान अच्छी तरह समझकर राग-व्यवस्था की गई थी। वह काल 'अमुक समय' ही था, यह निश्चित करने के साधन आज प्राप्त नहीं हैं। इसी तरह के अन्य उदाहरण भी देखो ! 'पूर्वी, गौरी, परज, वसन्त, ललित' इत्यादि राग अपने ग्रंथों में 'मालवगौड़' ठाठ में बताए हुए हमें प्राप्त होंगे। मजा यह है कि ये सभी राग हमारे हिन्दुस्तानी गायक इस समय गाते हैं, परन्तु इनमें दोनों मध्यमों का उपयोग नहीं करते। तीव्र मध्यम कैसे व कब इन रागों में आ गया, यह बात गायक भी नहीं बता सकते। मैं समझता हूँ कि यह बात भी गलत नहीं है कि ये राग तीव्र मध्यम-रहित अपने यहाँ शायद ही सुनने को प्राप्त हों। तुम्हें हिन्दुस्तानी पद्धति के मूल तत्त्व अब समझ में आ गये हैं। अतः चाहे तुम यह न बता सको कि यह तीव्र मध्यम कब शरीक हो गया, परन्तु यह अवश्य समझ सकते हो कि यह स्वर क्यों सम्मिलित हुआ होगा। तुम तत्काल ही कह सकते हो कि ये राग, जबकि रात्रिकालीन मानकर निश्चित किए गए, तभी इनमें तीव्र म सम्मिलित किया गया।

प्रश्न—परन्तु इतना और कहेंगे कि इन रागों में कोमल म बिलकुल ग्रहण न करने से तीव्र म बिलकुल स्वतन्त्र हो जाएगा, इसी लिए दोनों मध्यमों का उपयोग गायकों ने पसन्द किया होगा। एक म ठाठवाचक व दूसरा मं कालवाचक कहा जाएगा। परन्तु क्यों गुरूजी ! सायंकालीन रागों में कहीं कोमल म आता होगा, तो भी हम समझते हैं कि उसका प्रयोग बहुत थोड़े रूप में होता होगा ?

उत्तर—तुम्हारा अनुमान सही है। उदाहरणार्थ पूर्वी राग को ही लो। इसमें कोमल म बहुत ही थोड़ा लगता है। आगे चलकर तुम देखोगे कि यमन में जिस प्रकार कोमल म का अल्प प्रयोग ग्राह्य है, उसी प्रकार पूर्वी-भाग में भी इस स्वर का सीमित प्रयोग होता है।

प्रश्न—क्या ऐसा होना ही चाहिए; बिना इस प्रयोग के क्या हानि होगी ?

उत्तर—मैं बता ही चुका हूँ कि प्राचीन रागों में सर्वत्र कोमल म बताया गया है। पूर्वी राग का गायन-समय संध्याकाल होने से समस्त राग-वैचित्र्य तीव्र म पर अवलंबित हो जाता है। रामकली में इसके विपरीत बात है। उसमें तीव्र म गौण है तथा राग-वैचित्र्य कोमल म पर अवलम्बित हो जाता है। मैं यहाँ सायंकालीन रागों पर विचार करना पसन्द नहीं करूँगा। रामकली का तीव्र म आरोह में व पूर्वी का कोमल म अवरोह में देखकर मर्मज्ञों को सचमुच ही बड़ा आनन्द मालूम होता है। अस्तु, अब आगे चलें। रामकली का अन्य एक रूप और भी कहीं-कहीं पर दिखाई पड़ता है, इसमें थोड़ासा कोमल गांधार का उपयोग भी किया जाता है। मुझे एक गायक ने यह भेद इस प्रकार गाकर दिखाया था—'प प रे सा, रे ग ऽ म, ध – ध प, ध नि ध प, ग म ध ध, प प ध म, प ग ऽ प, रे रे सा ऽ'। कोमल ग, नि स्वर गौण रखने व भैरव-अंग प्रबल रखने पर यह स्वरूप मनोरंजक हो जाता है। गान्धार का प्रमाण बढ़ जाए, तो यहाँ टोड़ी का कोई मिश्र रूप उत्पन्न हो जाएगा और उसे 'रामतोड़ी' जैसा कोई नाम देना पड़ेगा।

प्रश्न—इस दोनों गान्धारवाली रामकली का अन्तरा उस गायक ने किस प्रकार गाया था ?

उत्तर—अन्तरा उसने भैरव-जैसा ही गाया था, परन्तु उसके अन्तिम भाग में उसने स्थायी का कोमल ग वाला टुकड़ा युक्तिपूर्वक इस प्रकार जोड़ दिया था—'प ऽ प प, ध ध नि नि, सां ऽ सां ऽ, सां रें सां ऽ, ध ऽ ध ध, नि ध सां नि, ध ऽ ध ऽ' नि ध प ऽ, ग म नी ध प ऽ ध म, प ऽ ऽ ग, प रे ऽ सा।' इसमें पंचम स्वर लेते हुए मैंने कहाँ-कहाँ पर किस प्रकार से तीव्र म की आँस लगाई है, यह ध्यान में रखने-योग्य है। इसके प्रयोग से ही यह स्वरूप भैरव से अलग किया जा सकता है। यह बहुत

गूढ़ बात है। कोमल ग पर जाते हुए 'मं प ग, प, रेरे सा', इस टुकड़े में ही इस स्वरूप की समस्त विशेषता निहित है, यह कहना गलत नहीं है; यह प्रत्येक व्यक्ति कह देगा। थोड़ा-सा ही कोमल ग ग्रहण कर लेने पर एक नवीन प्रकार उत्पन्न हो जाता है, यह स्वर पंचम से युक्तिपूर्वक जोड़ दिया जाता है।

प्रश्न—आपका कथन हम अच्छी तरह समझ गए। अब रामकली, रामक्री, रामक्रिया आदि रागों के सम्बन्ध में हमारे ग्रंथकारों ने क्या कहा है, यह देखना है ?

उत्तर—ठीक है, कहता हूँ :—

स्वरमेलकलानिधौ :—

शुद्धाः सरिपधाश्चैव च्युतपंचममध्यमः।
च्युतमध्यमगांधारश्च्युतषड्जनिषादकः ॥
शुद्धरामक्रियामेलः स्यादेभिः सप्तभिः स्वरैः।

संगीतसारामृते :—

शुद्धाः सपरिधाः स्युर्विकृतपंचममध्यमः।
गांधारोऽतरसंज्ञश्च काकल्याख्यनिषादकः ॥
एतैः सप्तस्वरैर्युक्तः शुद्धरामक्रिमेलकः।
अत्र रागाः शुद्धरामक्रियाद्याः संभवंति हि ॥

सद्रागचन्द्रोदये :—

शुद्धौ सरी शुद्धपधैवती चेन्मनामधेयो लघुपूर्वकश्च।
लघ्वादिकौ षड्जकपंचमौ चेद्विशुद्धरामक्र्यभिधस्य मेलः ॥
मेलादमुष्माच्च विशुद्धरामकृतिस्तथा त्रावणिकाभिधाना ॥

यहाँ पर पुण्डरीक ने 'रामक्रिया' नाम का उपयोग करते हुए 'रामकृति' नाम प्रयुक्त किया है। यदि कोई कहे कि यह वर्णन तो 'शुद्ध रामक्रिया' राग का हुआ, 'रामक्रिया' के सम्बन्ध में यह आधार कैसे हो सकता है ? यह प्रश्न विचारणीय अवश्य है और इस प्रश्न पर कुछ संतोषजनक उत्तर प्राप्त हो सके, तो अच्छा होगा। एक पंडित ने मुझे बताया था कि जिस उद्देश्य से 'शुद्ध' शब्द लगाकर अपने संगीत में राग-भेद हो सकते हैं, उसी बात को देखते हुए 'शुद्ध रामक्री' पूर्वी ठाठ में व 'रामक्री' भैरव ठाठ में सम्मिलित करना सुविधाजनक होगा। इस बात पर तुम समय निकालकर विचार करना। इस संबंध में सोमनाथ का थोड़ा-सा आधार दिया जा सकता है :—

मालवगौडकमेले सरिमपधा एव पंच शुद्धाः स्युः।
मृदुमध्यममृदुषड्जौ चास्मान्मेलाद्भवन्तीमे ॥

मालवगौडो गौड्यौ पूर्वीपहाडी च देवगांधारः ।
गौडक्रिया कुरंजी बहुली रामक्रिया चापि ॥

—रागविबोधे

'रामक्री' का लक्षण सोमनाथ ने इस प्रकार दिया है :—

संपूर्णा रामक्रीः सांशांतादिः सदाऽपि गांशाद्या ।

यहाँ शुद्ध शब्द का प्रयोग नहीं है। इस राग को भैरव ठाठ में मान लेने पर उसे रामकली समझा जा सकेगा। पुण्डरीक विठ्ठल ने अपनी 'रागमाला' में 'रामक्री' को देशकार राग की एक भार्या माना है और उसका वर्णन इस प्रकार किया है :—

इस श्लोक में 'अनलगति' ग, नि कह देने से रे, ध, ग, नि स्वर भैरव ठाठ के हो ही सकते हैं।

पूर्णेंद्वास्या सुमुक्तामणितरलगला नीलवस्त्रं दधाना ।
कूर्पासं रक्तवर्णं करचरणयुगे कंकणे नूपुरे च ॥
रामक्रीश्चंचलाक्षी विमलतर×रुद्गारयंती विदग्धा ।
शृंगाराढ्या त्रिषड्जा त्वनलगतिगनी राजते सर्वदैव ॥

प्रश्न—ठीक है! परन्तु उसने देशकार का ठाठ कैसे बताया है?

उत्तर—वह उसने इस प्रकार वर्णित किया है :—

जातोऽघोराख्यवक्रात्त्रिगतिगनिगमाः सत्रिपूर्णोत्र रागे ।
रक्तांगः पद्मनेत्रः सितगजगमनो बाखरेजस्य मित्रम् ॥
कंठे मुक्तैकमालो धृतमुकुटशिरश्चित्रवासाः सखड्गो ।
मध्याह्ने योधसंघे सुललितशिशिरे देशिकारश्चकास्ति ॥

यहाँ नि, ग, म, स्वर 'त्रिगतिक' बताए गए हैं, यह तुम देखते ही रहे हो?

प्रश्न—जी हाँ, देख लिया। यह पूर्वी ठाठ का देशाकार होगा, ठीक है न?

उत्तर—बिलकुल ठीक! 'रामक्री' के वर्णन में मध्यम त्रिगतिक न होने से वह स्वर शुद्ध रहता है तथा ठाठ भैरव रह जाता है। यह समझ ही गए होगे?

पारिजाते :—

रिकोमला गतीव्रा या मतीव्रतरसंयुता ।
धकोमला नितीव्रा च ख्याता रामकरीति सा ॥
आरोहे मनिवर्ज्या स्यात् पांशा धैवतमूर्च्छना ।

इस वर्णन में म तीव्र बताया है और आरोह में म, नि वर्ज्य करना कहा गया है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि यह पूर्वी ठाठ होता है। इस प्रकार वर्णन देखकर ही शायद अपने गायकों ने यह निर्णय किया होगा कि रामकली राग रामक्रिया या रामक्री रागों से मध्यम भिन्न होने से अलग ही माना जाएगा। आरोह में दोनों में म, नि स्वर वर्ज्य किए जाएँगे। दोनों मध्यम की रामकली इनका मिश्रण ही होगा।

प्रश्न—आपने कहा था कि लोचन पंडित का ग्रंथ उत्तर-भारत का समझा जाता है। इसमें रामकली के विषय में क्या कहा गया है ?

उत्तर—इसने राग का नाम 'रामकरी' दिया है और राग का ठाठ 'गौरी' माना है।

प्रश्न—अर्थात् वह भैरव ही हुआ ?

उत्तर—हाँ ! प्रत्यक्ष देखो कि इसने ठाठ-वर्णन किस युक्ति से दिया है :—

शुद्धाः सप्तस्वराः कार्या रिधौ तेषु च कोमलौ।
टोडीसुरागिणी गेया ततो गायकनायकैः॥
एवं सति च गांधारो द्वे श्रुती मध्यमस्य चेत्।
गृह्णाति काकली निः स्यात् तदा गौरी प्रवर्तते॥

प्रश्न—'तरङ्गिणी' का शुद्ध ठाठ काफी है। इसमें प्रथम रे, ध कोमल होने से टोड़ी और ग, नि तीव्र होने से भैरव होता है। ठीक है न ?

उत्तर—परन्तु यह तो तुम्हें ज्ञात ही है कि हमारी हिन्दुस्तानी पद्धति की टोड़ी में म, नि, तीव्र और रे, ध, ग कोमल होते हैं। हमारे भैरवी ठाठ को ग्रंथकार टोड़ी कहते थे। यह प्रचलन दक्षिण की ओर आज भी है। रागतरंगिणीकार ने 'रामकरी' नाम स्वीकार किया है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि रामकली, रामक्री, रामकरी आदि नामों का प्रयोग करने में ग्रंथकारों ने बड़ी असावधानी से काम लिया है। अपने प्रचार में एक ही नाम 'रामकली' दिखाई पड़ता है। पार्श्वदेव के 'संगीतसमयासार' ग्रंथ में इस प्रकार कहा है :—

टक्करागोद्भवा भाषा योक्ता कोलाहलाख्यया।
तदुपांगं रामकृतिः षड्जन्यासोपशोभिता॥
मध्यमांशा पहीना च रसे वीरे नियुज्यते॥

प्रश्न—परन्तु पार्श्वदेव का 'टक्क' राग किस ठाठ का होगा, इसका निर्णय होना चाहिए न ?

उत्तर—हाँ, यह ठीक है ! इस पण्डित ने 'रत्नाकर' के ही ग्रामराग स्वीकार किए हैं; इसलिए 'टक्क' के लक्षण इस प्रकार होंगे :—

षड्जमध्यमयासृष्टो धैवत्या चाल्पपंचमः ।
टक्कः सांशग्रहन्यासः काकल्यंतरराजितः ॥
प्रसन्नांतान्वितश्चारुसंचारी चाद्यमूर्च्छनः ।
मुदे रुद्रस्य वर्षासु प्रहरे चापि पश्चिमे ॥
वीररौद्राद्भुतरसे युद्धवीरे नियुज्यते ॥

मैं समझता हूँ कि यदि शार्ङ्गदेव के 'टक्क' राग का निर्णय हो जाए, तो इसका भी हो जाएगा।

प्रश्न—शार्ङ्गदेव ने रामकली बताई है क्या ?

उत्तर—उसने रामकली बताई है तथा उसके लक्षण इस प्रकार वर्णन किए हैं :—

कोलाहला टक्कभाषा सग्रहांशा पवर्जिता ।
सधमंद्रा मभूयिष्ठा कलहे गमकान्विता ॥
तज्जा रामकृतिर्वीरे मांशा सांता पवर्जिता ।
भाषांगत्वेऽप्युपांगत्वमतिसामीप्यतोऽत्र च ॥
शार्ङ्गदेवेन निर्णीतमन्यत्राप्यूह्यतां बुधैः ॥

इसपर कल्लिनाथ इस प्रकार टीका करते हैं :—

बहुलीपर्यायभूतां रामकृतिं लक्षयित्वा भाषांगत्वेप्युपांगत्वमतिसामीप्यतोऽत्र चेत्युक्तम् । अस्यायमर्थः कोलाहलोत्पन्नाया रामकृतेर्भाषांगत्वेऽतिसामीप्यतः । सामीप्यमत्र सादृश्यं विवक्षितम् । तेन यत्र किंचित्सादृश्यं तत्रोपांगत्वं, यत्रांगत्वसादृश्यं तत्रो । पांगत्वमिति न्यायेनात्रोपांगत्वं च निर्णीतमिति ।

बहुली राग का ठाठ अन्य ग्रंथकार अपने भैरव ठाठ-जैसा ही मानते हैं। 'टक्क' का ठाठ भी कोई-कोई वही मानते हैं। पार्श्वदेव ने अपने ग्रंथ में भैरव राग का भी संक्षिप्त वर्णन किया है। पहले बताए हुए रामकली के लक्षण सुनाते समय मेरी दृष्टि इस वर्णन की ओर भी गई थी। वे लक्षण तुमको सुना दूँ ? इन्हें तो मुझे पहले ही बताना चाहिए था, यह अवश्य ही मेरी भूल हुई !

प्रश्न—जी हाँ, सुना दीजिए। यदि अब सुना दिया, तो भी क्या हुआ ?

उत्तर—ठीक है, वे लक्षण इस प्रकार हैं। देखो :—

भिन्नषड्जसमुद्भूतो मन्यासो धांशभूषितः ।
समस्वरो रिपत्यक्तः प्रार्थने भैरवः स्मृतः ॥

प्रश्न—और भिन्नषड्ज कैसा बताया गया है ?

उत्तर—वह अलग से नहीं बताया, उसके लक्षण 'रत्नाकर' से ही लेने पड़ेंगे। यह तुम्हें ज्ञात ही है कि इस सम्बन्ध में शार्ङ्गदेव क्या कहता है।

प्रश्न—पार्श्वदेव ने अपने 'समयसार' ग्रंथ में राग-रचना किस प्रकार की है, यह बात क्या आप संक्षेप में सुना सकेंगे ?

उत्तर—हाँ ! इसने अपने ग्रंथ में वस्तुतः देशी संगीत ही बताया है। देशी संगीत में रागांग, भाषांग, क्रियांग, उपांग रागों का समावेश होता है। शार्ङ्गदेव भी इस प्रकार कहता है; देखो :—

अथ रागांगभाषांगक्रियांगोपांगनिर्णयम् ।
केषांचिन्मतमाश्रित्य कुरुते सोढलात्मजः ॥
रंजनाद्रागता भाषा रागांगादेरपीष्यते ।
देशीरागतया प्रोक्तं रागांगादिचतुष्टयम् ॥

पार्श्वदेव ने आरम्भ में स्वर, ग्राम, मूर्च्छना, आलाप, गमक, स्वरस्थान आदि बताकर फिर ग्राम-राग व उनके नाम बताए हैं। इतना करने के पश्चात् वह आगे देशी राग-प्रपंच की ओर झुका, उसका वर्गीकरण इस प्रकार दिखाई देता है :—

सम्पूर्ण रागांगराग १२

१. मध्यमादि	५. आम्रपंचम	९. दीपक
२. शंकराभरण	६. घन्टा राग	१०. तोड़ी
३. देशी हिन्दोल	७. गुर्जरी	११. सोमराग
४. शुद्ध बंगाल	८. मालवश्री	१२. वराली

षाडव रागांगराग ४

१. गौड़, २. देश (प हीन), ३. धन्नासी, ४. देशाख (रि हीन)।

औडुव रागांगराग ४

१. भैरवी, २. श्री, ३. मार्गहिन्दोल, ४. गुंडक्री (रि प हीन)।

संपूर्ण भाषांगराग २१

१. कैशिक
२. आदिकामोद
३. वेलावली
४. शुद्धवराली
५. नट्टा
६. आरभी
७. बृहद्दाक्षिणात्या
८. दाक्षिणात्या
९. पौराली
१०. भिन्नपौराली
११. मधुकरी
१२. रगंती
१३. सेरंजी
१४. प्रथममंजरी
१५. शालवाहिनी
१६. नटनारायणी
१७. उत्पली
१८. वेगरंजी
१९. तरंगिणी
२०. घानी
२१. नादांतरी

षाडव भाषांगराग ११

१. कर्णाट बंगाल (प हीन)
२. सौवीर (")
३. आंधाली (सा हीन)
४. श्रीकंठी (")
५. नीलोत्पली (सा हीन)
६. शुद्धगौडी (रे हीन)
७. गौडी (")
८. सौराष्ट्री (")
९. भंमाली (रे हीन)
१०. सैंधवी (नि हीन)
११. छाया (सा हीन)

औडव भाषांगराग १५

१. नादध्वनि
२. अहीरी
३. कांभोजी
४. पुलिंदी
५. कच्छली
६. वोहारी
७. गोल्ली
८. गांधारगति
९. ललिता
१०. श्रावणी
११. सैंधवी
१२. डोंबक्री
१३. सैंधव
१४. कालिंदी
१५. खसिता

संपूर्ण उपांगराग १८

१. सैंधव वराली
२. कुंतल वराली
३. तुरुष्क तोड़ी
४. सौराष्ट्री
५. गुर्जरी
६. द्राविड़ी गुर्जरी
७. कर्णाट गौड़
८. छाया बिलावल
९. भैरवी
१०. सिंहली
११. कामोदी
१२. देवाल (देशवाल)
१३. मुहाली (सिंघली कामोद)
१४. छायानट्टा

अगले चार नाम मेरी प्रति में नहीं हैं। 'रत्नाकर' में २७ उपांग दिए गए हैं।

षाडव उपांगराग ७

१. महाराष्ट्र गुर्जरी
२. खंबावती
३. कुरंजी
४. रामक्री
५. भुन्जी
६. मल्लारी
७. भल्लाती

औडव उपांगराग ६

१. छाया तोड़ी
२. देशवाल गौड़
३. तुरुष्क गौड़
४. प्रताप बेलावली
५. पूर्णा
६. मल्लार

क्रियांगराग ३

१. देवक्री २. त्रिनेत्रकी ३. स्वभावक्री

इस प्रकार पार्श्वदेव ने लगभग १०२ देशी राग बताए हैं। इन सभी के लक्षण उसने नहीं बताए, कुछ अवश्य कह दिए हैं। अभी तक 'समयसार' ग्रंथ प्रकाशित नहीं हो सका, इसलिए मैंने तुम्हें यह जानकारी दी है। मुझे मिली हुई हस्तलिखित प्रति में कुछ रागों के नाम गलत भी हो सकते हैं, परंतु मेरी प्रति में वे जिस प्रकार बताए गए हैं, वैसे ही मैं बता रहा हूँ। पार्श्वदेव ने अपने शुद्ध और विकृत स्वर समझाने का उचित साधन पाठकों के लिए प्रस्तुत नहीं किया। उसने 'रत्नाकर' की ही कई बातें लेकर अपनी भाषा में लिख दी हैं। इसके ग्रंथ से यह भी ज्ञात नहीं होता कि उसे 'रत्नाकर' का कठिन भाग समझ में आ चुका था। अस्तु, अब हम पुनः रामकली की ओर चलें। एक हिंदू गायक ने मुझे बताया था कि उसके घराने में रामकली भैरव की एक रागिनी मानी जाती है।

प्रश्न—उसने उसका राग-वर्गीकरण किस प्रकार बताया ?

उत्तर—सुनो, कहता हूँ :—

१. श्रीराग

१. परज, २. धनाश्री, ३. पूर्वी, ४. गौरी, ५. त्रिवेणी, ६. मारवा।

२. भैरव

१. भैरवी, २. रामकली, ३. आसावरी, ४. खमाज, ५. गुर्जरी, ६. हमीर।

३. दीपक

१. केदार, २. नट, ३. भूप, ४. यमन, ५. शुद्धकल्याण, ६. अलय्या।

४. हिंडोल

१. पूरिया, २. शंकरा, ३. वसंत, ४. पंचम, ५. मालश्री, ६. ललित।

५. मेघ

१. सोरट, २. दरबारी, ३. गौड, ४. मधमाद, ५. छाया, ६. झिंझोटी।

६. मालकंस

१. बागेश्री, २. सोहनी, ३. तोड़ी, ४. बंगाली, ५. भीमपलासी, ६. बिहाग।

प्रश्न—यह वर्गीकरण कुछ नवीन धरातल पर किया हुआ ज्ञात होता है। भला भैरव की, खमाज व हमीर रागिनियाँ मानने में क्या खूबी होगी ? यह कारण

तो नहीं है कि इनमें भी धैवत जरा अधिक मात्रा में आगे लाया जाता है? आपने उससे कुछ प्रश्न नहीं पूछे क्या?

उत्तर—हाँ-हाँ मैंने वह वार्तालाप लिखकर रख लिया है। उससे मैंने अनेक रागों के सम्बन्ध में जानकारी माँगी थी। वह सब मैं यथास्थान आवश्यकता होने पर कहूँगा। उसने कहा था कि हमारे घराने का यह मत है कि राग व रागिनी में कुछ बातों का साम्य तो होना ही चाहिए।

प्रश्न—वह कौनसा घराना?

उत्तर—उसने बताया कि हमारी गायकी सदारंग-अदारंग से आई है। मैंने यह पूछा था कि भैरव में और हमीर, खमाज में कौनसा साम्य है। इस पर उसने एक साधारण उत्तर दिया कि 'राग-रागिनियों में गायकी तो समान मिलेगी।' उसने प्रथम ही यह स्वीकार कर लिया था कि उसकी गायकी अन्य गायकों से भिन्न है। उसका मत इस प्रकार भी दिखाई दिया कि भैरव का धैवत कोमल नहीं, बल्कि शुद्ध है। कोमल स्वर का दर्जा उसके मत से शुद्ध से निचला होता है। रामकली में उसने अति कोमल रे का प्रयोग बताया है। हमारे लिए 'भिन्नरुचिर्हि लोकः' इस न्याय से चलना ही पर्याप्त है।

प्रश्न—तो फिर इस विद्वान् ने एक सप्तक में बारह से अधिक स्वर माने होंगे? इसका मत भी संगृहीत कर लेना अच्छा होगा। आपको कैसा जान पड़ता है?

उत्तर—हाँ-हाँ, अवश्य! किंतु अनिवार्य नहीं है कि हमें उसका मत स्वीकार ही करना चाहिए!

प्रश्न—हमने जो-जो राग सीखे हैं, उनके सम्बन्ध में उसका मत संक्षिप्त रीति से कहा जा सके, तो सुना दीजिए?

उत्तर—सभी रागों के सम्बन्ध में उसका मत बताने में तो बहुत समय लगेगा। कुछ थोड़ेसे रागों के सम्बन्ध में उसका मत सुना देता हूँ। उसका कथन मैंने जैसा समझा है, वही तुम्हें बता रहा हूँ। उसने बताया—शुद्ध कल्याण में हम शुद्ध म लगाते हैं। देशकार में हम शुद्ध धैवत के नीचे का ध उपयोग में लाते हैं। इस धैवत के नीचे और भी दो धैवत हम मानते हैं। केदार राग में हम दो प्रकार के ऋषभ स्वरों का प्रयोग करते हैं, आरोह में शुद्ध रे ग्रहण करते हैं व अवरोह में कुछ कोमल ऋषभ लेते हैं। गांधार आरोह व अवरोह, दोनों में तीव्र लेते हैं। शुद्ध धैवत रखते हैं। हमीर में धैवत अधिक ऊँचा रखते हैं। कामोद में गांधार शुद्ध व निषाद तीव्र लेते हैं। केदार में एक ही तीव्र निषाद लिया जाता है। हमीर में दोनों निषाद आते हैं। हमीर में रे, ग तीव्र, मध्यम दोनों व नि आरोह में चढ़ी व अवरोह में शुद्ध ली जाती है। इसका धैवत तीव्रतर कहा जाएगा। छाया व छायानट राग हम भिन्न-भिन्न मानते हैं। इनमें ऋषभ व गांधार तीव्र तथा निषाद दोनों लगते हैं। कामोद में रे तीव्र, ग शुद्ध, म शुद्ध, ध तीव्र

व नि तीव्र प्रयुक्त करते हैं। हम भूप में सभी स्वर तीव्र मानते हैं। बिहाग में रे, ध शुद्ध, दोनों मध्यम, ग तीव्र लगता है तथा निषाद तीनों दर्जे का शुद्ध, तीव्र व कोमल लगता है। सोरठ में सारे स्वर तीव्र व मध्यम शुद्ध, गान्धार बिलकुल वर्ज्य व निषाद दोनों आते हैं। देश में गांधार आ जाता है, बाकी सभी सोरठ के स्वर लगते हैं। जयजयवन्ती में देश के ही स्वर लगते हैं व निषाद दोनों लगते हैं। गारा के हम दो प्रकार मानते हैं। १. सिंधगारा, २. खमाज गारा। बिलावल में हम दोनों निषाद, शुद्ध मध्यम, बाकी स्वर तीव्र लगाते हैं। मालश्री में सिर्फ रे वर्ज्य करते हैं। हिंदोल में रे, प वर्ज्य करते हैं व धैवत शुद्ध रखते हैं। जैत राग में रे तीव्र, ग शुद्ध, म शुद्ध, नि, ध तीव्र प्रयुक्त करते हैं। मलूहा में हम समस्त स्वर केदार के लगाते हैं, केवल मध्यम वर्ज्य करते हैं।

मैं समझता हूँ इनसे और अधिक रागों की जानकारी तुम्हें अभी नहीं है। ये राग तुम्हें आते ही हैं, अतः इस संक्षिप्त जानकारी से भी तुम उसके मत की कल्पना सहज में ही कर लोगे।

प्रश्न—गुरुजी ! इस विद्वान् ने स्वरों के कितने प्रकार माने हैं ?

उत्तर—उन्होंने बताया था कि ये स्वरों के पाँच दर्जे मानते हैं। १. अति कोमल, २. कोमल, ३. प्रकृत (शुद्ध, सम), ४. तीव्र, ५. तीव्रतर। यहाँ मैं तुम्हें पुनः सावधान किए देता हूँ कि तुम्हें इन दर्जों के झगड़ों में नहीं पड़ना है। अब हम पुनः रामकली की ओर चलें। 'समयसार' के लक्षण तो तुम सुन ही चुके हो। दूसरा एक लक्षण 'रागमाला' में इस प्रकार कहा है :—

धत्ते श्यामलकंचुकीं च गलके मुक्तावलीमंशुकम् ।
शोणाभं वरकंकणानि करयोः पादद्वये नूपुरौ ॥
चंद्रास्या मदविह्वला सकरुणां भाषां भृशं भाषती ।
चैषा रामगिरी दिनांतसमये रामेण गीता पुरा ॥

यहाँ 'रामगिरी' नाम दिया है और यह राम द्वारा गाई हुई बताई है। बस, केवल स्वर-स्वरूप पाठकों को लगाना पड़ेगा। समय संध्याकाल का बताया गया है।

अनूपसंगीतरत्नाकरे—

निगौ तृतीययतिकौ गौडीमेलः प्रकीर्तितः ।
मेलादतो गुर्जरी बहुला रामकली तथा ॥

× × ×

सत्री रामकली पूर्णा सदा गेया विरागिणी ॥

(हिंदोल की पत्नी बताई गई है।)

संगीत-दर्पणे :—

हेमप्रभाभासुरभूषणा च
नीलं निचोलं वपुषा वहंती ॥
कांते समीपे कमनीयकंठा
मानोन्नता रामकिरी मतेयम् ॥
षड्जग्रहांशकन्यासा पूर्णा रामकिरी मता ।
मूर्च्छना प्रथमा ज्ञेया करुणे सा प्रयुज्यते ॥
रिधत्यक्ताऽथवा प्रोक्ता कैश्चित्पंचमवर्जिता ।
त्रिविधा सा समुद्दिष्टा सम्पूर्णा षाडवौडवा ॥

उत्तर के गायकों के मत से रामकली में भैरव के समान अति कोमल रे, ध प्रयुक्त होते हैं, परन्तु प्राचीन व प्रसिद्ध गायक सूक्ष्म स्वर-प्रपंच की चर्चा नहीं करते, यह भी सत्य है।

प्रश्न—जरा ठहरिए। प्रथम आपने जिन हिन्दू गायक का मत बताया था, हमें याद है कि उसमें अति कोमल रे लेने को कहा था। क्या आपने उससे यह नहीं पूछा कि उसका आधार-ग्रंथ कौन-सा है?

उत्तर—उसका दावा ग्रंथ-शास्त्र पर आधारित बिलकुल नहीं था। मेरा तर्क यह है कि उसकी गुरु-परम्परा में पहले किसी ने 'पारिजात'-जैसा कोई ग्रंथ पढ़ा होगा और उसका स्वराध्याय भी देखा होगा। फिर उसके आधार से स्वरों के भिन्न-भिन्न दर्जे देखकर उसने अपना मत निश्चित किया होगा। उसके आधार जानने से हमें कुछ भी लाभ नहीं है। उस गायक ने मुझे दो-ढाईसौ गीत दिए, वे भी मैंने स्वलिपि बनाकर लिख दिए हैं। उनमें तुम्हें प्रचलित हिन्दुस्तानी राग-स्वरूपों से अनेक जगह विपरीत मत दिखाई देगा, फिर भी वे विद्वान् अपना संबंध सदारंग-अदारंग तक पहुँचा देते हैं।

प्रश्न—सदारंग-अदारंग का काल कौनसा है?

उत्तर—यह बिलकुल सही निश्चित करना कठिन है, परन्तु इसे निश्चित करने का उपाय अवश्य है।

प्रश्न—वह कौनसा?

उत्तर—ये प्रसिद्ध गायक बादशाह मोहम्मदशाह के आश्रित थे। उन्होंने अपने अनेक गीतों में इस बादशाह का नाम भी डाला है। वह नरेश औरंगजेब के पश्चात् हुआ था और औरंगजेब की मृत्यु सन् १७०७ में हुई थी।

प्रश्न—तो फिर ये गायक दो-ढाई-सौ वर्ष पूर्व हुए होंगे, ऐसा दिखाई देता है। इस सम्बन्ध में हमें अधिक जानकारी कहाँ से प्राप्त होगी ?

उत्तर—मैं अभी ऐतिहासिक जानकारी एकत्र कर रहा हूँ, और वह भी मैं तुम्हें किसी भिन्न अवसर पर क्रमानुसार बताऊँगा। उन गायकों का वास्तविक नाम सदारंग-अदारंग नहीं था। ये नाम उन्होंने केवल अपने गीतों में लगा दिए हैं। इस प्रकार ये नाम रखने की प्रथा अभी भी अपने गायकों में पाई जाती है। 'संगीत कल्पद्रुम' में हमें इस प्रकार के अनेक नाम प्राप्त होते हैं; जैसे—सदारंग, अदारंग, मनरंग, रसरंग, कौड़ीरंग, इश्करंग, दिलरंग, खुशरंग, सरसरंग रंगरस, आनंदरंग, इत्यादि। ये कौन-कौन गायक थे तथा अब इनके वंशज कौन-कौन बचे हैं, यह पता लगाना बहुत कठिन है ! मैं यह प्रथम ही बता चुका हूँ कि मेरे स्वतः के मुख्य गुरु मनरंग के खानदान के थे। उनका मत 'लक्ष्यसंगीत' के मत से बहुत मात्रा में मिलता है। मेरे गुरु ने भी अनेक गीतों की रचना की है, उसमें अपना नाम 'हररंग' लिखा है। परन्तु हमें अधिक विषयान्तर में नहीं जाना चाहिए।

प्रश्न—अब हमें रामकली के प्रचलित रूप के समर्थक आधार सुना दीजिए ?

उत्तर—कहता हूँ, सुनो :—

मेले मालवगौडीये रागो जातः सुमंगलः।
रामकेलीति विख्यातः प्रातर्गेयो बुधप्रियः॥
धैवतस्यैव वादित्वं संवादित्वं तु रेः स्मृतम्।
आरोहे मनिवर्ज्यं स्यादवरोहे समग्रकम्॥
केचिदत्र निर्दिशंति मध्यमौ द्वौ विपश्चितः।
शुद्धमध्यममुक्तत्वं गर्हणीयं न मे मते॥
निषादयोर्द्वयोरेव प्रयोगो दृश्यते क्वचित्।
भैरवांगप्रभूतत्वं तत्रापि बहुसंमतम्॥
यथा रामकली प्रातः सायं रामक्रिया मता।
शुद्धमध्यमयुक्ताद्या द्वितीया तीव्रमान्विता॥

—लक्ष्यसंगीतम्।

धवादिनी रिसंवादिन्यथो रिमधकोमला।
मनिसंवर्जिताऽऽरोहे प्रोक्ता रामकली बुधैः॥

—चन्द्रिकायाम्।

रागो रामकली तु यत्र रिमधाः स्युः कोमला धैवतो।
वादी रिस्तदमात्य ईरित इहारोहे मनी वर्जितौ।
सम्पूर्णं त्ववरोहणं निगदितं कैश्चिन्निषादद्वयं।
प्रत्यूषे मधुरस्वरं सुमतयो गायंति यं गायकाः॥

—कल्पद्रुमांकुरे।

भैरवसी है रामकलि, बरजै मनि आरोहि।
ओडव सम्पूरन कही, सम्पूरन अवरोहि॥

—चन्द्रिकासार।

प्रश्न—अब हमें इस राग का विस्तार और बता दीजिए ?

उत्तर—ठीक है, यही करता हूँ। साथ ही एक-दो सरगम भी बताऊँगा। मेरा विश्वास है कि इन स्वरूपों से, जो मैं तुम्हें बता रहा हूँ, इस राग का स्थूल स्वरूप अवश्य ही अच्छी तरह तुम्हारी समझ में आ जाएगा। यह स्पष्ट ही है कि बार-बार उत्तम गायकों का गायन सुनने पर तुम्हें अधिक मात्रा में गायनपटुता प्राप्त हो सकेगी।

रामकली

सा, मगमप, धु, प, गमरेसा, धुप, मंप, गमप, गम, रेसा, पधुप; सा, रेरेसा, गमरेसा, धुपमंप, गमरे, प, गमरे, सा; धुधु, प; सा, धुनि़सा, रेरेसा, गमधुधुप, मंप, गम, नि़धुप, गमरेरेसा, गमधु, प; सा, म, गम, गमप, मंप, पधुनि़धुप, गम, सांनिधु, पमंप, गमरेसा, धु, प; मग, म, धु, प, पमंप, गमरेसा, साम, गम, धुधुपमंप, गमपगमरेसा, सा, नि़सा, धुनि़सा, सा, म, गम, गमप, धुनि़धुप, गमरे, सा; धु, प। गम, पपप, धुधु, निसां, निसां, पधु, निसां, रेंसां, निसां, निधुप, मंप, धुधुपमंप, गम, धुप, सां, रेंसांनिधुप, मंपधुनि़धुप, गमरेरेसा; धु, प। सा, रेसा, गम, मप, पधुपमंप, गम, निधुप, गमरे, सा, धुनि़सारे, नि़सा, गमरेसा; धु, प।

सरगम : ताल तीव्रा (पहला प्रकार)

प ऽ प। धु धु। प प॥ ग म प। ग म। रे सा॥ सा धु धु। नि़ सा। रे सा॥ ग म प। ग म। रे सा॥ प ऽ प। धु धु। सां ऽ॥ सां रें सां। धु नि़। धु प॥ मं प प। धु नि। धु प॥ ग म प। ग म। रे सा॥

सरगम : झपताल (दूसरा प्रकार)

सां सां । नि ध ध । नि ध । नि ध प ॥ गं म । रे ग प । ग म । ग रे सा ॥
सा रे । सा नि़ ध़ । सा ऽ । म ग म ॥ ग म । नि ध प । ग म । ग रे सा ॥

म प । प ध ध । सां ऽ । ध नि सां ॥ सां ध । नि सां रें । सां नि । ध नि ध ॥
प ग । म प प । नि ध । नि ध प ॥ ग म । नि ध प । ग म । रे रे सा ॥

सरगम : झपताल (तीसरा प्रकार)

सां सां । नि ध ध । नि ध । प म म ॥ ग रे । ग प म । ग रे । ग रे सा ॥
सा रे । सा नि़ ध़ । सा ऽ । म ग म ॥ ग म । रे ग प । म ग । रे रे सा ।

प प । नि ध ध । सां ऽ । सां रें सां ॥ सां रें । गं रें सां । गं मं । रें रें सां ॥
ध ध । रें सां नि । ध ध । नि ध प ॥ म ग । रे ग प । म ग । रे रे सा ॥

सरगम : त्रिताल (चौथा प्रकार)

प प रे सा । सा रे ग म । ध ध ध ध । प प मं प ॥ ग म ध ध । प प ध म ।
प ऽ ऽ ऽ । ग ऽ ऽ ऽ ॥

प प प प । ध ध सां ऽ । नि नि सां ऽ । रें रें सां ऽ ॥ ध ध ध ध । नि नि सां ऽ ।
ध ध नि नि । ध ध प प ॥ ग म ध ध । प प ध म । प ऽ ऽ ऽ । ग ऽ ऽ ऽ ॥

प्रश्न—अब राग रामकली अच्छी तरह समझ में आ गया, आगे चलिए ?

उत्तर—अब हम 'गुणक्री' राग को लें। यह भैरव ठाठ का राग है। इसका समय प्रभातकाल है। यह राग 'साधारण' नहीं है। प्राय: उच्च स्तर के गायकों को यह आता है। संक्षेप में यह एक दुष्प्राप्य व अप्रचलित राग कहा जाता है। गुणक्री की प्रकृति गंभीर है, अत: इसे गायक लोग विलंबित लय में गाते हैं। इस राग में गांधार व निषाद वर्ज्य हैं, अत: यह औडुव माना जाता है।

प्रश्न—तो फिर, गुणक्री का आरोह-अवरोह सा रे म प ध सां । सां ध प म रे सा, इस प्रकार होता होगा ?

उत्तर—हाँ ! गुणक्री गानेवाले से यदि अपना राग ठीक-ठीक सँभालते न बन सके, तो वह 'जोगिया' नामक एक अन्य बिलकुल साधारण राग-स्वरूप में चला जाएगा। वैसे ये दोनों राग बिलकुल अलग-अलग हैं।

प्रश्न—जोगिया राग इसमें किस जगह पर उत्पन्न होना संभव है ?

उत्तर—जोगिया में गांधार वर्ज्य है। 'म, रे सा' स्वर लगाते समय बहुत सावधानी की आवश्यकता होती है। जोगिया में ऋषभ बिलकुल अल्प लगता है। मध्यम को लंबा बताकर 'रे सा' स्वर झटके से गाए कि जोगिया हो जाएगा। गुणक्री में भैरव-अंग होने से 'सा, रे रे, सा, ध़ सा, रे, सा, म, रे, सा' स्वर गाए जाते हैं।

'म रे॒ सा' की मीड़ तुम्हें ध्यान में रखते हुए सावधानी से गुणक्री में लेते रहना चाहिए। भैरव में गांधार स्पष्ट आता है, इसलिए 'म ग रे॒, सा' इस प्रकार स्वर लिए जा सकते हैं। गुणक्री में गांधार अवरोह की मीड़ में स्वल्प रूप में लग जाएगा, परंतु वह स्पष्ट दिखाया नहीं जा सकेगा। मैं तुम्हें यह हिस्सा खास तौर पर याद रखने को कहूँगा। इसी प्रकार एक महत्त्वपूर्ण जगह 'ध॒ म' की है। यह स्वर-संगति गुणक्री में चल सकती है, परंतु अधिक मात्रा में नहीं लगाई जाए। 'ध॒ म, रे॒ सा' इस प्रकार से स्वर गाते ही स्पष्ट जोगिया हो जाएगा। यहाँ पर 'ध॒, प, म रे॒, सा' इस प्रकार भैरव-अंग से चलना पड़ेगा। मध्य में पंचम आ जाने से जोगिया का प्रभाव बहुत कम हो जाएगा। जोगिया राग गुणक्री के बहुत निकट है। इसका कारण यह है कि जोगिया में गांधार व निषाद आरोह में वर्ज्य हैं और अवरोह में गांधार वर्ज्य है। इस राग के विषय में आगे बताना ही है। 'गुणक्री' में निषाद बिलकुल न होने से राग-भिन्नता तो प्रत्यक्ष ही है, तो भी पूर्वांग में जोगिया से अलग रखना पड़ेगा। अवरोह में गुप्त रूप से गांधार लगाने में बड़ी विशेषता है। तुम्हें मालूम ही है कि सोरठ में 'म रे॒' लेते हुए गांधार किस प्रकार गुप्त रखा जाता है। इसके अवरोह में भी गांधार की 'आँस' शास्त्रीय दृष्टि से क्षम्य होगी। भैरव में मैंने तुम्हें जो ऋषभ का आंदोलन सिखाया है, वह अनेक स्थलों पर काम आएगा। संधिप्रकाश रागों में 'सा रे॒ रे॒, सा' इन स्वरों का कितना महत्त्व है, यह तथ्य धीरे-धीरे अब समझ में आने लगेगा। मैं तुम्हें श्री राग सिखाते समय बताऊँगा कि वहाँ पर ये ही स्वर किस तरह भिन्न प्रकार से उच्चारित किए जाएँगे। गायन में यही खूबी तो ध्यान में रखने की है, दूसरी है ही क्या ? गायक लोग ऐसी बातों को व्यर्थ ही बड़ा हौवा बनाए रखते हैं। मैं समझता हूँ कि प्रत्येक ठाठ में आनेवाले मुख्य अंग यदि विद्यार्थी को प्रथम ही सिखा दिए जाएँ, तो संपूर्ण मार्ग सरल हो जाता है। मैंने अभी तुम्हें भैरव-अंग व जोगिया-अंग दिखाए हैं, इन्हें एक बार अच्छी तरह सुन लो, फिर ये ध्यान में ठीक-ठीक जम जाएँगे। यह स्वीकार करना पड़ेगा कि ये बातें लिखकर पाठकों को समझा दी जाएँ, ऐसी स्थिति आज नहीं है। हमारे यहाँ स्वरलिपि-पद्धति की संपूर्णता का दावा करनेवाले पंडित हैं, तो भी यह कथन बिलकुल गलत नहीं है कि कुछ बातें लेखन-पद्धति के बाहर ही रह जाती हैं; परंतु मैं समझता हूँ कि प्रत्येक समझदार आदमी यह कभी नहीं कहेगा कि यदि संपूर्ण लिपि संभव नहीं है तो बिलकुल होनी ही नहीं चाहिए। मेरा मत है कि संगीत की लेखन-पद्धति आवश्यक है। यह सहज ही समझ में आ जाएगा कि समस्त देश में एक ही लिपि होने पर कार्य उत्तम रूप से पूरा होगा। पाश्चात्य लोगों ने इसी लिए सर्वत्र समान लेखन-पद्धति स्वीकार की है, इससे उन्हें होनेवाले लाभ हम देखते ही हैं। यह नहीं है कि यह बात हमारे यहाँ ज्ञात न हो, परंतु हमारे यहाँ प्रत्येक पुस्तक-लेखक यह समझता है कि मेरी ही लिपि निर्दोष व सुलभ है तथा वही सारे देश को मान्य होनी चाहिए। यह समझना स्वाभाविक तो है, परंतु यह भी देखना होगा कि ऐसा हो सकना संभव भी है या नहीं। संगीत पर लिखे हुए प्रायः समस्त ग्रंथ मैं पढ़ता रहा हूँ। तथा भिन्न-भिन्न लिपियाँ मेरे देखने में आई हैं, इनमें शुद्ध 'स्वदेशी' एक भी लिपि नहीं दिखाई दी। जिसे देखो, उसने चार-पाँच पद्धतियों का मिश्रण कर

अपनी नवीन लिपि बनाकर रख दी है। कोई यूरोपियन 'स्टाफ' की लकीरों में अपने नाद-स्थान दिखाता है, कोई यूरोप के 'बार' सम्मिलित करता है, कोई पाश्चात्यों के पुनरावर्तन के चिह्न लेता है। इस प्रकार की लिपियाँ सदैव दिखाई पड़ती हैं। मेरा कथन इतना ही है कि जिस विद्वान् को अपना संगीत बारह स्वरों का ही लिखना है, वह इस टेढ़े-मेढ़े या गंगा-जमनी मार्ग को छोड़कर सीधी तरह योरोप का नोटेशन ही क्यों नहीं ग्रहण कर ले? हम लिपिकारों से सुनते हैं कि यूरोप की लिपि में मुरकी, गिटकरी, जमजमा, घसीट, मींड़ आदि प्रकार अच्छी तरह नहीं बताए जा सकते। मैं समझता हूँ कि यदि इसके लिए नवीन-चिह्नों की रचना भी करनी हो, तो किसी बैंड-मास्टर की सहायता से कर लेनी चाहिए। इन्हें स्वदेशी की क्या आवश्यकता है? 'रत्नाकर' में लघु, गुरु, प्लुत, द्रुत के लिए दिए हुए चिह्नों को तोड़-मरोड़कर उलटे-सीधे जमाकर, उन्हें तख्त पर बैठाकर नई पद्धति उत्पन्न करने का उपद्रव करें ही क्यों? 'रागविबोध' में पाँच-पच्चीस चिह्न दिखाई देते हैं, उन्हें लेकर ही नवीन पद्धति क्यों रची जाए? ग्रंथों के राग हमारे नहीं, अतः हम मुसलमानी प्रकार गाते हैं, परंतु स्वरलिपि के चिह्न 'रत्नाकर' के लें! यह हमारा कैसा अभिमान है? ऐसे स्वरूपों की कोई निंदा भी करे, तो आश्चर्य नहीं। स्वदेशी पद्धति के अभिमान रखनेवालों से मेरा बिलकुल द्वेष नहीं है। मैं उन सभी को अपना मित्र व बंधु समझता हूँ। मैं यह भी स्वीकार करता हूँ कि यह विषय विवादग्रस्त है, परंतु मैंने अपने आंतरिक विचार तुम्हें स्पष्ट रूप से बता दिए हैं।

अपनी पद्धति प्रामाणिक रूप से स्वदेशी चाहिए न? यदि यूरोप के तत्त्व ग्रहण किए हों, तो फिर उन्हें लीपना-पोतना क्यों? इसकी अपेक्षा यूरोप का नोटेशन ही आवश्यक परिवर्तन करके ग्रहण कर लिया जाए, तो क्या बुरा है? मैं इस समय किसी विशेष पद्धति को लक्ष्य कर नहीं बोल रहा हूँ। संभव है, मेरा यह मत जल्दबाजी का हो; परंतु मेरा विश्वास है कि 'अ' के कोमल स्वर-चिह्न, 'ब' के तीव्र चिह्न, 'क' के गमक-चिह्न, 'ड' के आवर्तन-चिह्न, 'ग' के ताल-चिह्न, 'फ' के काल-चिह्न—इस प्रकार के व्यर्थ के भेद करते रहने से अनेक लोगों से अकारण वैमनस्य होगा व संगीत की प्रगति को हानि होने का भय हो जाएगा। जिस मार्ग से समाज का हित हो, वही मैं पसंद करूँगा। मैंने स्वतः कुछ लक्षणगीत तुम्हारे लिए लिख रखे हैं। उन्हें किसी-न-किसी स्वरलिपि में तो लिखना ही पड़ता। मैं स्वीकार कर चुका हूँ कि मुझे यूरोप का संगीत नहीं आता। मुझे अपनी स्वीकृत स्वरलिपि का जरा भी अभिमान नहीं है। यूरोपियन नोटेशन यदि मुझे आता, तो मैं अपने गीत उसी प्रकार लिखता। तुम अपने राग अभी उत्तम रूप से सीख लो, फिर जो योग्य जँचे, उस लिपि को स्वीकार कर लेना। अस्तु, हाँ! मैं तुम्हें क्या बता रहा था?

प्रश्न—आप कह रहे थे कि कुछ बातें पहले प्रत्यक्ष रूप से सुनकर ही सीखी जाती हैं?

उत्तर—हाँ-हाँ- ठीक है! ऐसी जगहों पर अपने गायक स्थूल रूप से इस प्रकार कहा करते हैं कि 'इसके उच्चार को देखो, इसके चलन को देखो।' उन्हें अपने विचार स्पष्ट रूप से व्यक्त करने नहीं आते। उनके कथन में कभी-कभी कुछ अर्थ

अवश्य होता है। अस्तु, अब तुम्हारे ध्यान में गुणक्री का टुकड़ा 'मरे॒ रे॒, सा' व जोगिया का 'म, रे॒ रे॒ सा' अच्छी तरह जम गया होगा। दूसरी एक बात यह ध्यान में रखने की है कि गुणक्री में भैरव-अंग प्रधान होने के कारण मन्द्रस्थान में धैवत-पर्यंत गायक द्वारा गाया जाना अच्छा रहता है। इस प्रकार का काम हमारे गायक 'जोगिया' में नहीं करते तथा इस राग में यह काम उतना शोभनीय भी नहीं होता।

प्रश्न---गुणक्री में वादी स्वर कौनसा माना जाता है ?

उत्तर--वादी धैवत और संवादी ऋषभ स्वर माना गया है। इस औडुव राग में ग, नि वर्ज्य होने से इसका भैरव व रामकली से मिश्रण होने का भय कदापि नहीं होता। कोई-कोई गायक इस तरह का एक निर्णय और करते हैं कि गुणक्री में रे, ध अति कोमल व जोगिया में ये स्वर थोड़े ऊँचे रखने पड़ते हैं। यह कार्य तुमसे सध जाए, तो देखना, यदि नहीं सध सके, तो तुम्हारे राग-नियम तो स्पष्ट ही हैं। यह अलग से कहने की आवश्यकता नहीं है कि गायकों की इस कल्पना का कोई ग्रंथाधार बिलकुल नहीं है। मैं समझता हूँ कि यदि तुमने योग्य स्थलों पर ठहरते हुए व भैरव-अंग स्पष्ट रखते हुए 'सा, ध॒ ध॒ प, म प, म रे॒ सा सा ध॒, सा, रे॒ रे॒ सा' स्वर गा दिए, तो तुम्हारा राग अच्छी तरह बन जाएगा। अंतरा गाते हुए 'प, ध॒ सां, सां रें॒ रें॒ सां, ध॒ ध॒, सां, रें॒ सां, ध॒ प', इस प्रकार का आरंभ करना उचित होगा। यदि किसी ने इसे भैरव कहा, तो इसमें गांधार-निषाद नहीं, यदि रामकली कहा जाए, तो इसमें गांधार नहीं, आरोह में मध्यम वर्ज्य नहीं, अथवा दोनों मध्यम व दोनों निषाद नहीं। 'जोगिया' किस प्रकार दूर रखा जाता है, यह मैंने बताया ही है। अब क्या 'गुणक्री' एक स्वतंत्र रूप निश्चित नहीं हुआ ? इसके पूर्व रामकली के संबंध में बोलते हुए मैंने बताया था कि ग्रंथों में रामक्री, रामकरी, रामकली आदि नाम हमें दिखाई पड़ते हैं। इसी प्रकार इस गुणकली के विषय में भी थोड़ा-सा दिखाई देता है। ग्रंथों में गुणकली, गुणकरी, गुणकेली, गुंडक्री गौंडगिरी, गुणक्रिया आदि नाम दिखाई देते हैं। यह तुम्हें प्रतीत होगा कि स्वर-स्वरूपों के संबंध में भी ग्रंथों में मतभेद है। पिछली बार मैं गुणकली के संबंध में बता ही चुका हूँ।

प्रश्न—आपने गुणकली राग बिलावल-अंग व स्वरों से हमें बताया था ?

उत्तर--हाँ, मुझे स्मरण है। इस प्रकार की गुणकली का एक प्रसिद्ध गीत अपने गायक गाते हैं, उसी के आधार पर मैंने तुम्हें राग-स्वरूप समझाया था। अब 'गुणक्री' पर विचार कर रहे हैं। पहला प्रश्न यह है कि अपने इस राग-प्रकार को संस्कृत-ग्रंथाधार प्राप्त है, या नहीं ? इसका उत्तर स्वीकारात्मक देना पड़ेगा। यह ठीक है कि मैंने प्रत्येक राग का संस्कृत-आधार देना स्वीकार नहीं किया है, फिर भी जिस - जिस राग के आधार प्राप्त होंगे, उन्हें मैं देता रहूँगा। 'गुणक्री' नाम संस्कृत-ग्रंथ में मिलता है, उदाहरण के लिए अपने 'संगीत-पारिजात' ग्रंथ को ही ले लो।

प्रश्न—अहोबल ने 'गुणक्री' राग किस ठाठ में ग्रहण किया है ?

उत्तर—तुम्हें यह ज्ञात ही है कि अहोबल का शुद्ध ठाठ काफी माना जाता है। यह स्वीकार करने पर और उसके राग-लक्षण लगाने पर अपने-आप खुलासा हो जाएगा; जैसे :—

रिध्रकोमलसंयुक्ता गनिवर्ज्या गुणक्रिया ।
धैवतोद्ग्राहसंयुक्ता क्वचिद्गांधारसंयुता ॥

प्रश्न—यहाँ तो नाम 'गुणक्रिया' बताया है ?

उत्तर—परंतु श्लोक के शीर्षक में 'गुणक्री' नाम दिया है। शायद छंद की सुविधा के लिए 'गुणक्रिया' नाम दिया होगा। यह अहोबल का लक्षण मेरे बताए हुए राग-स्वरूप से अच्छी तरह मिल जाएगा।

प्रश्न—परंतु यहाँ एक शंका है। अहोबल का शुद्ध ठाठ 'काफी' है, अतः गुणक्री में गांधार, निषाद कोमल ठहरेंगे।

उत्तर—शंका ठीक है। मैं समझता हूँ, गांधार व निषाद दोनों को वर्ज्य करने पर यह राग भैरव ठाठ में मान लिया गया होगा। अब 'क्वचिद्गांधारसंयुता' पद ध्यान में आने पर यह प्रश्न अवश्य उत्पन्न होगा कि कौन-से गांधार का प्रयोग किया जाए। परंतु अपना प्रचलित राग-स्वरूप भैरव ठाठ का ही है। गांधार व निषाद, वर्ज्य होने पर अहोबल ने इस संबंध में अपने श्लोक में स्पष्टीकरण नहीं किया। मुझे मेरे गुरु ने गुणक्री भैरव ठाठ में बताई है और अन्य गायकों को भी इसी ठाठ में गाते हुए मैंने सुना है।

प्रश्न—हम समझते हैं कि इस संबंध में अन्य संस्कृत-ग्रंथकारों का कथन देख लेना भी उपयोगी होगा। चाहे उनके लक्षण भिन्न-भिन्न हों, तो भी 'गुणकरी' का ठाठ कौनसा है, यह तो समझ में आ जाएगा। आपको क्या उचित जान पड़ता है ?

उत्तर—यह तुमने ठीक ही कहा। मैं स्वयं भी बतानेवाला था। हम अब यह देखें कि हमारे संस्कृत-ग्रंथकार इस राग के स्वर किस-किस प्रकार के बताते हैं। आरंभ में पंडित रामामात्य अपने 'स्वरमेलकलानिधि' में इस प्रकार कहता है :—

शुद्धाः सरिमपाः शुद्धधैवतश्च ततः परम् ।
च्युतमध्यमगांधारश्च्युतषड्जनिषादकः ॥
एतैः सप्तस्वरैर्युक्तः संमतो रागवेदिनाम् ।
मेलो मालवगौडस्य रामामात्येन लक्षितम् ॥

इन श्लोकों में उसने मालवगौड़ ठाठ का वर्णन किया है, आगे इसी ठाठ में 'गुंडक्री' राग इस प्रकार बताया है :—

सांशो गुण्डक्रियारागः सग्रहन्यासषाडवः ।
धवर्जितः पूर्वयामे गेयो धैवतयुक् क्वचित् ॥

यह स्पष्ट दिखाई देगा कि यह अपना राग-स्वरूप नहीं है, परन्तु ठाठ भैरव ही है। धैवत वर्ज्य करने पर एक भिन्न राग-स्वरूप चाहो, तो उत्पन्न हो सकेगा। सोमनाथ ने 'गौडक्रिया' नाम का प्रयोग किया है। उसका राग-वर्णन रामामात्य के वर्णन से अच्छा मिल जाता है। उसका ग्रंथ आर्या छन्द में है, अतः उसने भिन्न नाम पसन्द किया होगा, हमें ऐसा ही समझ लेना चाहिए। सोमनाथ ने भी 'गौडक्रिया' का ठाठ 'मालवगौड' ही माना है। उसमें शुद्ध धैवत तुम योग्य स्थल पर समझ कर लगाओगे ही। 'रागविबोध' में 'गौडक्रिया' का लक्षण इस प्रकार बताया है :—

गौडक्रिया धरिक्ता सांशन्यासग्रहा प्रातः ।

मेरा व्यक्तिगत मत यह है कि यदि इसे प्रातःकालीन राग मानना हो, तो इसमें धैवत वर्ज्य करना उचित नहीं है, क्योंकि इस स्वर के अभाव से राग पर सायंकाल की छाया दिखाई देगी। यद्यपि मैं यह स्वीकार करता हूँ कि तीव्र मध्यम के अभाव से बिलकुल सायंकालीन राग नहीं हो सकेगा, परन्तु पूर्वांग में कोमल ऋषभ व उत्तरांग में धैवत वर्ज्य, यह स्वरूप अपनी हिन्दुस्तानी पद्धति में व्यवस्थित नहीं दिखाई देगा। अभी मैंने तुम्हें सायंकालीन सन्धिप्रकाश राग नहीं बताए हैं, अतः मेरे कथन का मर्म इस समय तुम्हारे ध्यान में ठीक-ठीक नहीं आ सकेगा, परंतु उन रागों को सीख जाने पर तुम भी मेरे मत का समर्थन करोगे। भैरव व रामकली का स्वरूप तुम्हें याद ही है। अब मैं धैवत छोड़कर बननेवाले स्वरूप को गाकर दिखाता हूँ। देखो :—

'नि॒रे॒गरे॒सा, गमगमपगमग, गमपगमग, रे॒ग, निसांनिप, गमपगमग, रे॒ग, रे॒सा; सानि॒प॒, नि॒सा, गमग, नि॒सा, रे॒गमप, गमग, रे॒सा।'

इसमें तुमको भैरव का आभास नहीं होगा।

प्रश्न—ठीक है गुरुजी ! बिलकुल नहीं होता। इसकी जगह कहीं-कहीं बिहाग का आभास हो जाता है, परन्तु वह भी कोमल ऋषभ से दूर हो जाता है। यह कानों को एक चमत्कारिक स्वरूप ज्ञात होता है।

उत्तर—यह ठीक है। कोई चाहेगा, तो 'गौडक्रिया' नामक गुणक्री से भिन्न यह राग-स्वरूप गा सकेगा। यदि गायक कुशल हो, तथा वह तीव्र म का उपयोग यथास्थल उचित प्रमाण में कर दे, तो अवश्य ही एक नवीन तथा सुन्दर राग-स्वरूप

उत्पन्न कर लेगा, परन्तु यह विषय निराला है।

संगीत लक्षणे :—

शुद्धाः सरिमपाश्चैव शुद्धधैवतवर्जितः।
च्युतमध्यमगांधारश्च्युतषड्जनिषादकः ॥
सांशो गुंडक्रियारागः सग्रहन्यासषाडवः।

'सद्रागचन्द्रोदय' ग्रंथ में पुण्डरीक विट्ठल ने 'गौंडकृति' नाम का प्रयोग किया है तथा ठाठ मालवगोड ही माना है ! 'कृति' व 'क्रिया' एक ही समझना चाहिए। पुण्डरीक के श्लोकों के छन्द निराले हैं, यह भी ध्यान में रखना होगा। 'कृति' यह शब्द 'संगीतरत्नाकर' में दिखाई देता है, उसमें रामकृति, देवकृति, गौंडकृति आदि नाम प्रयुक्त हुए हैं।

प्रश्न—तो फिर 'गौंडकृति' के संबंध में शार्ङ्गदेव का वर्णन देखना भी उपयोगी होगा। वह क्या कहता है ?

उत्तर—'संगीतरत्नाकर' में शार्ङ्गदेव ने 'पूर्वप्रसिद्ध' व 'अधुना प्रसिद्ध' ऐसे संगीत के दो मुख्य भेद किए हैं। उनमें अधुना प्रसिद्ध भाग में जो राग-नाम दिए हैं, उनमें तीन 'क्रियांग' बताए हैं। वे अभी तुम्हें मैंने बताए ही हैं। पहले 'रामकृति' के संबंध में बोलते हुए मैंने कहा था कि यह राग 'कोलाहल' राग से उत्पन्न होता है। 'गौंडकृति' क्रियांग की व्याख्या 'रत्नाकर' में इस प्रकार है :—

षड्जांशग्रहणन्यासां मतारां मपभूयसीम्।
रिधत्यक्तां पमंद्रां च तज्ज्ञा गौंडकृतिं जगुः।

इस क्रियांग का ठाठ निश्चित करना कठिन पड़ेगा, साथ ही यह विवादग्रस्त विषय भी है, अतः इसका निर्णय करना अभी हम नहीं चाहते। अस्तु, मैं तुम्हें पुण्डरीक का मत बता रहा था न ?

प्रश्न—जी हाँ, उसी पर से यह चर्चा चली थी। पुण्डरीक क्या कहता है ?

उत्तर—वह कहता है :—

शुद्धौ सरी मध्यमपंचमौ च।
शुद्धस्तथा धैवतको यदि स्यात्॥
लध्वादिकौ षड्जकमध्यमौ चे-
त्तदा भवेन्मालवगौडमेलः ॥
सांशग्रहा सांतयुता धरिक्ता।
गेया पुनर्गौंडकृतिः प्रभाते॥

यह मत भी रामामात्य, सोमनाथ आदि पंडितों से मिल जाता है। इनके समय में यह राग इसी प्रकार गाया जाता होगा। आगे चलकर गायकों ने प्रातःकाल के समय धैवत का प्रवेश वैचित्र्यदायक समझकर राग-स्वरूप में फेर-फार कर दिया होगा।

रागलक्षणे :—

मायामालवमेलाच्च जाता गुण्डक्रिया तथा।
सन्यासं सांशकं चैव सषड्जग्रहमेव च ॥

इस ग्रंथ में राग के आरोह-अवरोह दो प्रकार से बताए हैं :—

१. सा रे म प नि सां। सां नि ध म ग रे सा ॥

२. सा रे ग प ध सां। सां ध म प ग रे सा ॥

देखते हो न, ग्रंथकारों में किस प्रकार मतभेद रहा है। इनमें अमुक सही व अमुक गलत, यह विवाद करना ही नहीं चाहिए। हमें तो अपनें गाए जानेवाले स्वरूप के नियम जान लेना ही पर्याप्त है। जो मत हमारे प्रचार के निकट हो, उसे ही हम स्वीकार करेंगे। मैंने तुम्हें अपना यह अनुमान बताया था कि रागलक्षणकार ने रामकली व रामक्रिया, दोनों अलग-अलग राग माने हैं। उसने रामक्रिया राग का वर्णन इस प्रकार किया है :—

मायामालवमेलाच्च जातो रागः सुनामकः।
रामक्रियेतिविख्यातः सन्यासं सांशकग्रहम् ॥

सा रे ग म ध नि सां। सां नि ध प ग रे सा ॥

यह भी एक चमत्कारपूर्ण रूप होगा। यहाँ अवरोह में मध्यम वर्ज्य है। इन सभी रागों को हमारे गायक प्रचार में ला सकते हैं।

प्रश्न—आपकी सहायता से हम इन्हें प्रचलित करने का प्रयत्न करेंगे। इसमें एक बार योग्य रीति से वादी-संवादी स्वर कायम करने की विशेषता सध जानी चाहिए। यह तो प्रायः गायक की इच्छा पर ही निर्भर रहता है कि राग प्रातः-कालीन रखा जाए या सायंकालीन। पूर्वाङ्ग व उत्तरांग का मर्म, मध्यम का वैचित्र्य, आदि बातें तो हम अच्छी तरह समझने लगे हैं। सन्धिप्रकाश के लक्षण भी धीरे-धीरे हमारे ध्यान में आते जा रहे हैं। अच्छा, आगे चलिए ?

उत्तर—संगीतसारामृतकार ने 'गुण्डक्रिया' राग मालवगौड ठाठ में ही सम्मिलित किया है; जैसे :—

शुद्धाः स्युः समपाः शुद्धऋषभः शुद्धधैवतः ।
अंतराख्यातगांधारः काकल्याख्यनिषादकः ॥
एतैः सप्तस्वरैर्युक्तो यो मेलः परिकीर्तितः ।
सोऽयं मालवगौलः स्यात्संमतो गानवेदिनाम् ॥

प्रश्न—और 'गुडक्रिया' के लक्षण ?

उत्तर—वे उसने इस प्रकार बताए हैं :—

मेलान्मालवगौलस्योद्भूता गुण्डक्रिया प्रगे ।
गेया संपूर्णतायुक्ता सन्यासांशग्रहा मता ॥

इन लक्षणों में इस राग को प्रातर्गेय व सम्पूर्ण बताया है, इन्हें देखकर चाहे पाठक को क्षण-भर आनन्द हो, परंतु यह नहीं कहा जा सकता कि आगे का मार्ग इससे सुगम हो जाएगा।

प्रश्न—हम भी यही कहनेवाले थे। ये लक्षण बहुत व्यापक हो जाते हैं। इसमें ग्रह, अंश, न्यास, षड्ज स्वर बताया है, परंतु इतने से ही गायक को यह राग उत्तम रूप से गाना नहीं आ सकेगा। खैर, ठाठ भैरव का तो निर्विवाद है।

उत्तर—नारद के 'चत्वारिंशच्छतरागनिरूपणम्' नामक ग्रंथ में रामक्री व गौंडक्री वसन्त राग की रागिनी बताई हैं। 'वसन्त' राग के नाम से ठाठ का संकेत मिल सकेगा। यद्यपि नारद के रागों के स्वर बताने का आज कोई साधन उपलब्ध नहीं है, तथापि कुछ संस्कृत-ग्रंथकार वसन्त को भैरव ठाठ में ही मानते हैं, यह सत्य है। आजकल 'वसन्त' पूर्वी ठाठ में गाया जाता है। नारद ने रामक्री व गौंडक्री के लक्षण इस प्रकार बताए हैं :—

यक्षिणी पद्मवदना यक्षकिंनरदुर्लभा ।
वीणाहस्ता पर्वतस्था रामक्रीरुच्यते बुधैः ॥
शोकाभिभूतनयनारुणदीनदृष्टि ।
नम्रानना धरणिधूसरगात्रयष्टिः ॥
आमुक्तचारुकवरी प्रियदूरवर्ती ।
गौडक्रिया विजयते कृशरूपधेया ॥

इस वर्णन से कुछ विशेष उपकार होना सम्भव नहीं, क्योंकि इसमें पाठकों को राग के स्वरों की स्पष्टता प्राप्त नहीं हो सकेगी। 'चतुर्दण्डिप्रकाशिका' में 'गुण्डक्रिया' राग 'गौल' ठाठ में बताया है। मैं अब आगे रागों के शास्त्र-लक्षण कहूँगा, तब उस राग के ग्रंथोक्त ठाठ भी बताता जाऊँगा। चाहे तुम्हें ठाठ का ज्ञान हो, तो भी राग-लक्षणों के निकट ही ठाठ-लक्षण बताना कहीं-कहीं सुविधाजनक होगा। यदि पुनरुक्ति हो, तो भी चिन्ता नहीं, परन्तु इससे अच्छी तरह समझ में आता जाएगा और ग्रंथकार की परिभाषा फिर अच्छी तरह हृदय में स्थान कर लेगी। व्यंकटमखी कहता है :—

षड्जः शुद्धर्षभश्चैव गान्धारोऽतरसंज्ञिकः।
मपधाख्याः स्वराः शुद्धाः काकल्याख्यनिषादकः।
एतावत्स्वरसंभूतो गौलमेलः प्रकीर्तितः॥

यह तुम्हारे भैरव का ठाठ ही है न ? आगे ग्रंथकार कहता है :—

गुण्डक्रिया गौलमेलजाता सम्पूर्णका मता।

व्यंकटमखी ने अपने पंचम प्रकरण में कुल ५४ राग प्रसिद्ध कहकर बताए हैं। उनका वर्गीकरण उसने ग्रह, अंश, न्यास स्वरों द्वारा किया है।

प्रश्न—वह उसने किस प्रकार किया है ? बताएँगे क्या ?

उत्तर—यह देखो :—

नाटः सौराष्ट्रसारंगनाटशुद्धवसन्तकाः।
गुंडक्रिया मेचबौली नादरामक्रिया तथा॥
वराली ललिता पाडी रागः सालगभैरवी।
श्रीरागारभिधन्यासीशंकराभरणाभिधाः॥
रागौ हिंदोलभूपालौ हिंदोल्यथ वसन्तकः।
आहर्यीभेरिसामंता वसन्ताद्या च भैरवी॥
हेजज्जी मालवश्रीश्च शुद्धरामक्रिया तथा।
कांभोजी च मुखारी च देवगांधारिका तथा।
नागध्वनिः सामरागस्तथा सामवरालिका।
एकत्रिंशदिमे रागाः षड्जन्यासग्रहांशकाः।
गुर्जरी भिन्नषड्जश्च रेवगुप्तिस्त्रयोऽप्यमी।

रिन्यासांशग्रहाः प्रोक्ता मतंगभरतादिभिः ।
नारायणाख्यदेशाख्यी देशाख्यीराग एव च ।
नारायणयथ कर्णाटबंगालश्चेति विश्रुताः ॥
चत्वारस्तु इमेरागा गन्यासांशग्रहाः स्मृताः ।
जयन्तसेनो वहुली मध्यमादिरिमे त्रयः ॥
मग्रहा मध्यमन्यासा मांशकाः परिकीर्तिताः ।
आंधाली चैव सावेरी पन्यासांशग्रहे ह्युभे ॥
रागो मल्लहरी घंटारवो वेलावली तथा ।
भैरवी चेतिचत्वारो धन्यासांशग्रहाः स्मृताः ॥
गौलकेदारगौलौ द्वौ छायागौलाभिधस्तथा ।
रीतिगौलः पूर्वगौलो नारायणाभिधः ।
रागः कंनडगौलश्च सप्तगौला इमे पुनः ।
निषादग्रहनिन्यासनिषादांशाः प्रकीर्तिताः ॥
चतुःपंचाशदुद्दिष्टा इति रागा ग्रहादिभिः ॥

इस प्रकार का वर्गीकरण करके फिर प्रत्येक राग का ठाठ, उसके वर्ज्यावर्ज्य स्वर, वादी, विवादी, समय आदि बातें इस पंडित ने बताई हैं। इसमें संदेह नहीं कि तुम्हारे-जैसे विद्वान् शिक्षार्थियों को यह पद्धति बहुत पसंद आएगी। हमारी हिन्दुस्तानी पद्धति इसी प्रकार व्यवस्थित की जा सके, तो अच्छा होगा। मैं समझता हूँ कि जैसे-जैसे समाज में मतभेद कम होने लगेंगे, वैसे-वैसे यह कार्य अधिक सुसाध्य हो जाएगा। अस्तु, रागतरंगिणीकार ने 'गुणकरी' नामक राग स्वीकार करके, उसे अपने गौरी ठाठ में रखा है। यह ग्रंथकार उत्तर की ओर का है, अतः हम इसके मत को महत्त्वपूर्ण मानेंगे। लोचन पंडित का गौरी ठाठ हिंदुस्तानी पद्धति का भैरव ठाठ ही हुआ। गौरी राग अपने यहाँ सायंकाल में गाया जाता है। अब यह तुम सहज ही समझ सकोगे कि ऐसा होने से गौरी ठाठ में से प्रातःकालीन 'गुणकरी' राग निकल सकेगा। गायन-समय का मुख्य सम्बन्ध वादी स्वर से रहता है, यह तुम जानते ही हो।

प्रश्न—यह हमें मालूम है। एक ही ठाठ से प्रातःकालीन व सायंकालीन राग सहज ही निकल सकते हैं। हिंडोल, कल्याण आदि उदाहरण हम देख ही चुके हैं।

उत्तर—हाँ, वे ठीक हैं! पं० पुण्डरीक विठ्ठल ने अपने 'रागमाला' नामक सुन्दर ग्रंथ में 'गुणकरी' व 'गुंडक्री', इन दोनों को श्री राग की रागिनी माना है।

उसने श्रीराग की पाँच रागिनियाँ इस प्रकार मानी हैं—१. पाड़ी, २. गुणकरी, ३. गौड़ो, ४. नादरामक्री, ५. गुंडक्री।

प्रश्न—यह दिखाई पड़ता है कि पुण्डरीक बहुत बुद्धिमान पंडित हुआ है। उसने गुणकरी व गुंडक्रो रागिनियों का वर्णन किस प्रकार किया है ?

उत्तर—बताता हूँ :—

गुर्जर्या मेलजाता स्फुरिततरसपा न्यादिमध्यान्तपूर्णा।
वक्षोहारायताक्षी सिततरवसना रक्तकूर्पासिका या॥
नानाशृङ्गारभूष्या मृदुमधुवचना श्यामलांगी सुतन्वी।
भर्तुः संकेतकं सद्विमलगुणकरी कामिनी याति सायम्॥

यह वर्णन 'गुणकरी' का हुआ। अब 'गुंडक्री' का सुनो :—

गुर्जर्या मेलयुक्ता रिधपरिरहिता सत्रिका नीलवस्त्रा।
गौरी मुक्तालका या नवनगरचिता कामसंकेतसंस्था॥
नीपच्छायोपविष्टा विमलकरतले पद्मपत्रं दधाना।
गुंडक्री भामिनी सा प्रियतमपदवीं प्रेक्षयन्ती प्रभाते॥

यह प्रकार भी 'गुर्जरी' ठाठ का ही है, अर्थात् अपने भैरव ठाठ का हुआ। 'गुर्जरी' का प्रचलित स्वरूप बदला हुआ है, वह राग मैं अभी तुम्हें नहीं बताऊँगा।

प्रश्न—आजकल 'गुर्जरी' को अन्य किसी ठाठ में माना जाता होगा ?

उत्तर—हाँ, आजकल गुर्जरी का ठाठ 'तोड़ी' मानते हैं। अधिकांश संस्कृत-ग्रंथकारों ने गुर्जरी भैरव ठाठ में माना है। धीरे-धीरे अब तुम्हें यह दिखाई देने लगेगा कि यद्यपि हिंदुस्तानी गायकों ने संस्कृत-ग्रंथों के रागों के विशेष लक्षण शायद अज्ञानता से मिला दिए या बदल दिए हैं, तथापि अनेक स्थलों पर अभी तक रागों का मूल ठाठों से संबंध दिखाई दे सकता है। अभी हमने भैरव, रामकली, गुणकरी इन रागों के ठाठ देखे, वे हमारे प्रचार के बिलकुल निकट हैं। मैं यह कहूँगा कि इस दृष्टि से देखते हुए लक्ष्यसंगीतकार ने यह ठीक ही किया है कि अपने समय की वास्तविक स्थिति व्यवस्थित रूप से लिखकर रख दी। संभवतः आगामी कुछ वर्षों में हिंदुस्तानी पद्धति का स्वरूप और भी कुछ भिन्न हो जाए।

प्रश्न—आपका यह कथन न्यायोचित है। आगे चलकर नए-नए रागों का गायकों द्वारा प्रचार होना संभव है। हमारे सुशिक्षित लोग उन्हें व्यवस्थित करेंगे तथा राग-नियमों की ओर अधिक ध्यान देने लगेंगे, अतः ये सब बातें समझ लेने-योग्य हैं। संसार की जब सभी बातें प्रगतिशील होती हैं, तो संगीत ही कैसे पीछे रहेगा ? अशिक्षित व दुराग्रही गायकों के पास ही सम्भवतः कुछ समय यह प्रतिबन्ध रहे, परन्तु बाद में सभी ओर समानता हो जाएगी।

उत्तर—तुम्हारा कथन कुछ-कुछ समाज-सुधारकों-जैसा ज्ञात होता है। ये लोग विनोद में कभी-कभी ऐसा कहते हैं कि 'ये पुरानखंडी, दुराग्रही, सुधार-अवरोधक दस-पाँच अड़ियल दूर हुए कि समाज की वास्तविक प्रगति होने लगेगी।' किंतु मुझे ऐसे व्यक्तियों का इतना भय नहीं है। मैं समझता हूँ कि हम इस समय उनका यथा-शक्य उपयोग भी कर सकते हैं और ऐसा होने योग्य भी है। हाँ, इनकी थोड़ी खुशामद अवश्य करनी पड़ेगी, क्योंकि इनके पास उच्च स्तर की कला है, अतः उनके दोषों की ओर से आँखें मीच लेनी पड़ेंगी। अस्तु, अब हमें अपने विषय की ओर लौटना चाहिए। एक-दो बार गायकों ने मुझे प्रचार में एक शुद्धस्वर ठाठ का राग-स्वरूप सुनाया और उसका नाम भी उन्होंने 'गौड़गिरी' बताया!

इस प्रकार के मतभेद देखकर तुम गड़बड़ में तो नहीं पड़ोगे?

प्रश्न—नहीं! हम क्यों गड़बड़ में पड़ेंगे? हमें तो आनन्द ही आ रहा है। हमको तो राग का माधुर्य, गायक का कौशल और राग-नियम-मात्र देखना है।

उत्तर—ठीक है। इन विचारों से तुम्हारा किसी से विरोध नहीं हो सकता। अब हम पंडित भावभट्ट का मत देखें।

अनूपांकुशे :—

गौडी पाडी गुणक्री च नादरामक्रिगौंडिके।
श्रीरागयोषितः पंच भावभट्टेन कीर्तिताः ॥

प्रश्न—यह तो पुण्डरीक का ही मत हुआ न?

उत्तर—होगा ही। भावभट्ट तो हमारे-जैसा संग्रहकार ही था न? तब उसके ग्रंथ में पुण्डरीक का मत आएगा ही। उसने अपने 'अनूपरत्नाकर' में 'रत्नाकर' की बहुतसी राग-रचनाएँ उद्धृत कर ली हैं। शार्ङ्गदेव के दशविध राग—ग्रामराग, उपराग, राग, भाषाराग, विभाषाराग, अंतरभाषाराग, रागांग, भाषांग, क्रियांग, उपांग—इसने सभी बताए हैं। किंतु उनका स्पष्टीकरण यह नहीं कर सका है। परन्तु यह कार्य तो आगे भी किसी से नहीं हो सका। 'ग्रामयोर्जातिव्यवधानेनोत्पन्नत्वादेतेषां ग्रामराग-व्यपदेशः' यह ग्रामराग की व्याख्या उसने कल्लिनाथ की टीका से उद्घृत कर दी है। इससे अधिक वह कर ही क्या सकता था? 'रत्नाकर' के पाठकों को यह सहज में दिखाई देगा कि जाति दो ग्रामों में बाँट दी गई हैं। यह भी शीघ्र ही ज्ञात हो सकता है कि इसका उपयोग ग्रह, अंश, न्यास, अपन्यास व विवादी को बताने के लिए था। यह बात शायद भावभट्ट को भी दिखाई दी होगी, परंतु रागों का प्रत्यक्ष स्वर-विन्यास निश्चित हुए बिना इनका उपयोग क्या हो सकता है? भावभट्ट ने गुणक्री की व्याख्या व स्वरविस्तार 'पारिजात' से ही उद्धृत किए हैं। 'अनूपविलास' में उसने गुणकली को 'हृदयप्रकाश' ग्रंथ के आधार पर गौरी ठाठ में ग्रहण किया है। यह स्पष्ट है कि यह भी भैरव का ही ठाठ है।

मि० बनर्जी गुणकली में ऋषभ, धैवत कोमल व दोनों मध्यम मानते हैं तथा राग का समय दूसरा प्रहर बताते हैं। क्षेत्रमोहन स्वामी भी इसी प्रकार अपने 'संगीत-सार' में गुणकली का वर्णन करते हैं। कहना चाहिए कि पूर्व की ओर इसी प्रकार का प्रचार होगा।

प्रश्न—वे अपने मत का कोई संस्कृत-आधार भी बताते हैं ?

उत्तर—हाँ-हाँ, वे भी अपने तरीके से बताते गए हैं। उनका आधार प्रायः सम्पूर्णत्व, औडुवत्व, षाडवत्व आदि सिद्धांतों पर अधिक होता है। उनका खयाल होगा कि रागों के ठाठ यदि पाठक चाहेगा तो संस्कृत-ग्रंथों से खोज निकालेगा। उन्हें इसकी कल्पना भी न होगी कि इनका अनुसंधान करने में हमारी नाक में दम आ जाता है। बंगाल में ही यह खोज शायद आसान रही हो। वे कहते हैं :—

सम्पूर्णा गुणक्री प्रोक्ता मतंगमतसंमता ॥

—ध्वनिमंजर्याम्।

अधिक स्पष्टता के लिए आगे और कहा है कि 'गीतसिद्धांतभास्कर' ग्रंथ में भी इसी प्रकार कहा गया है। मैंने अभी तक यह ग्रंथ नहीं देखा। यह कहाँ मिलेगा तथा इसमें क्या-क्या है, यह सब तुम्हें राजा साहब टैगोर बता सकते हैं। कहा जाता है कि ये उन स्वामीजी (क्षेत्रमोहन) के शिष्य हैं।

सङ्गीतदर्पणे :—

रिधहीना गुणक्रिरी ओडवा परिकीर्तिता।
निग्रहांशा तु निन्यासा कैश्चित् षड्जाश्रया मता॥
रजनी मूर्च्छना चात्र मालवाश्रयिणी तु सा॥

ध्यानम् :—

शोकाभिभूतनयनारुणदीनदृष्टिः।
नम्रानना धरणिधसरगात्रयष्टिः॥
आमुक्तचारुकवरी प्रियदूरवृत्ता।
संकीर्तिता गणकिरी करुणोत्कृशांगी॥

प्रश्न—यह श्लोक तो आपने पहले भी सुनाया था न ? किंतु लक्षण नहीं बताए थे।

उत्तर—हाँ, उस समय यही श्लोक नारद का कहकर सुनाया था। अब यह दामोदर का है। यही तो हमारे ग्रंथकारों का मजा है ! यदि पाठक सहज में यह

जान लें कि मूल लेखक कौन था, फिर उनकी खूबी ही क्या रही ? कहीं-कहीं यह भी कहा गया है कि इस भूल-भुलैया में से जो अपना मार्ग खोज निकाले, वही पंडित है, परन्तु अब इसका इलाज क्या है ? ऐसे लेखकों के सिर पर चाहे जो ठाठ और चाहे जौनसा काल मढ़ दिया जाए, तो आश्चर्य ही क्या है ? अभी मैंने जो श्लोक सुनाया है, वही श्लोक आगे चलकर कल्पद्रुमकार ने पकड़ लिया और अपने तरीके से उसको संशोधित करके लिख मारा ! इतना ही नहीं, उस श्लोक में एक और श्लोक कहीं से नवीन लाकर चिपका दिया है।

प्रश्न—वह कैसे ?

उत्तर—वह श्लोक इस प्रकार है :—

'धैवतांशग्रहंन्यासं कुचितपंचमस्वरं ।
मारवादेशकारश्च गौरायां जायते बुधैः ॥

अथवा

पंचमांशग्रहंन्यासं गुणक्लीच इति स्मृता ।
सौवीरीमूर्च्छना ज्ञेया कौशकस्य वरांगना ॥

कल्पद्रुमकार ने ऐसी सरल संस्कृत की योजना शायद इसलिए की होगी कि अशिक्षित गायकों को श्लोक-उच्चारण में सुविधा हो ! इस समय भी क्या हमारे गायकों ने रागों के नियम-रूपी अंग तोड़-मरोड़कर उन्हें 'सीधा' (सरल) नहीं कर दिया है ? हम आज तानसेन आदि के ध्रुपद गाते हैं, परन्तु यह कितने व्यक्ति या कौन व्यक्ति विश्वासपूर्वक कह सकता है कि उन्हें हम तानसेन के स्वरों में ही गाते हैं ?

प्रश्न—अच्छा, कल्पद्रुमकार ने गुणक्री के स्वर कौनसे बताए हैं ?

उत्तर—वह क्यों बताने लगा ? स्वर तुम अपने उस्ताद के पास से सीख ही लोगे, ऐसा उसने सोचा होगा ! वह हिंदी में इस प्रकार कहता है :—

खरज ग्रह सरिगमपधनि पूरण जाति बताय ।
शरद दिवस पहिले प्रहर गुनी गुणकली गाय ॥
तिय बैठि मलीन धरे पटके बिथुरी सिर केस तज्यों अलके ।
मुख नीचो किए मुरझाय रही जुग नैन बहे सरकी झलके ॥

तन छीन खरी छवि छीन परी लखिके दुःख सोचत है अलके।
विरहागनतें अति ब्याकुल बाल वियोग भरी गुनकी कलिके॥

मेरा हिंदी भाषा का ज्ञान काम चलाऊ होने से कहीं पर शब्द-चूक होना भी संभव है। ऐसे स्थलों पर सुधार कर ग्रहण कर लेना। मुझे पुस्तक में जैसा दिखाई दिया, वैसा ही मैंने बताया है।

प्रश्न—यह तो उन संस्कृत श्लोकों का सार दिखाई पड़ता है। ठीक है न?

उत्तर—हाँ मुझे यही ज्ञात होता है। ऐसे गीतों का उपयोग हमारी अपेक्षा अशिक्षित गायकों के लिए अधिक होता होगा, यही समझा जा सकेगा। अब जरा उच्च स्तर के दोहे भी देखो :—

चंद्रकलाधर शिव सदा कलगुन धर सुखदाई।
गुनकलको धरि गुनकली लहो कंत कलराई॥
देशी टोडी गूजरी ललित असावरि होइ।
देसकारकें मिलतहीं होइ गुनकली जोइ॥
देशकार पंचम मिलें टोडी गौरी आन।
और मिलत हैं गुर्जरी होइ गुनकली जान॥
गौंडवि से जुर लाइयें देवगिरी सुखदान।
गौंडगिरी यों होत है ऐसो गुनी बखान॥

ऐसे ग्रंथकार प्रायः अपना आधार बताते ही नहीं हैं। 'स्वर तेरे और वर्णन मेरा' इस प्रकार के लिए तो प्रत्येक व्यक्ति कहेगा कि यह समाधानकारक रीति नहीं हो सकती। अच्छा, आगे पंडित हरिवल्लभ अपने हिंदी 'संगीतदर्पण' में कहते हैं :—

टोडी खंबावति बहुरी गौरी गुनकरि राग।
ककुभा मिलिये रागनी कौशिक की बड़भाग॥
न्यास अंश ग्रह षड्जतें अरु सम्पूरन होई।
एक प्रहर पर गाइए कहत गुनीजन सोई॥

आगे राग-चित्र का वर्णन किया है और 'सागमपसा, सानिधपमगगमरेसा' इस प्रकार मूर्च्छना दी है। ठाठ जिसे चाहिए, वह कल्पना से निश्चित करके ग्रहण कर ले!

'संगीत-सम्प्रदायप्रदर्शिनी' ग्रंथ में मालवगौड़ ठाठ के जन्यरागों में गुण्डक्रिया बताई गई है :—

गुण्डक्रिश्च सग्रहोऽयमवरोहेऽल्पधैवतः ।
सम्पूर्णः पूर्वयामे तु गातव्यो गायकोत्तमैः ॥

सा रे॒ ग म प ध॒ नि सां सां नि प म ग म ध॒ प म ग रे॒ सा ।

इसके साथ संक्षिप्त टिप्पणी दी हुई है 'उपांग राग, सम्पूर्ण, षड्ज ग्रह, अवरोह में अल्प धैवत, प्रथम याम' संस्कृत-श्लोक का आधार व्यंकटमखी का कहा है और 'चतुर्दण्डिप्रकाशिका' में यह श्लोक है ही नहीं। क्षेमकर्ण-रचित 'रागमाला' में 'गुंड्ग्री' का वर्णन इस प्रकार मिलता है :—

छायायां कदलीवनस्य वसती कामांगसंकोचिनी ।
गौरी शुक्रकचामरालगमना रक्तांबरैरावृता ॥
तन्वी सर्वगुणाग्रमण्डितवपुः पीनातितुङ्गस्तनी ।
गुण्डग्री करपञ्चवक्रसहिता प्रोक्ता महार्यैः परा ॥

यह श्लोक कल्पद्रुमकार ने भी नकल कर लिया है, जो प्रायः ठीक ही है। 'संगीत-सार-संग्रह' में दो जगह गुणकिरी के लक्षण दिए हैं। मजा यह है कि दोनों जगह एक ही से अक्षरशः लक्षण व ध्यान हैं, फिर भी एक 'भैरवाश्रयिणी' व दूसरी 'मालवाश्रयिणी' रागिनी बताई है। इसी ग्रंथ में एक जगह इस प्रकार लिखा है :—

एषा षड्जग्रहन्यासा गौंडक्री परिकीर्तिता ।
रिधहीना दिनादौ च गातव्याद्यरसे बुधैः ॥

मूर्तिस्तु ।

रतोत्सुका कान्तपथप्रतीक्षा—
मापादयंती मृदुपुष्पतल्पे ।
इतस्ततः प्रेरितदृष्टिरार्ता ॥
श्यामांगिका गौंडकिरी प्रदिष्टा ॥

प्रश्न—परंतु इन सभी वर्णनों में इस बात का उचित स्पष्टीकरण नहीं मिलता कि गुणकरी अथवा गुणक्री किन स्वरों में गाई जाएगी। यहाँ क्या किया जाए ?

उत्तर—इस प्रश्न का उत्तर मैं इस प्रकार तो कैसे दे सकूँगा कि 'दर्पण' के श्लोक बोले तथा खाँ साहब जैसे कहें; वैसे गाओ ?' तुम्हारी कठिनाई वास्तविक है। मैं समझता हूँ कि सोमनाथ, रामामात्य, पुण्डरीक, अहोबल, लोचन आदि पंडितों का मत, केवल तुम्हारे प्राचीन शास्त्र के अभाव की पूर्ति करेगा। हिंदुस्तानी पद्धति में गुणक्री इस प्रकार बताई है :—

भैरवान्मेलकाज्जाता गुणक्री रागिणी पुनः ।
आरोहे चावरोहेऽपि गनिहीनैव संमता ॥
धैवतस्तु भवेद्वादी यतोऽसौ भैरवांगिका ।
मन्द्रमध्यस्वरैर्गीता नित्यं श्रोतृसुखावहा ॥
रिमयोः संगतेस्तत्र जोगियाशंकनं भवेत् ।
निषादस्याऽप्यपाहाराद्बुधस्तदपसारयेत् ॥
संध्याकालप्रगेयेषु रागेषु नैव शोभते ।
निगयोर्लंघनं प्रातर्गेयेषु रिधयोर्यथा ॥
गुणक्रीनामिकाप्यन्या धरिक्ता सांशिका क्वचित् ।
या दिनांते मता कैश्चित्तस्या भित्स्यात्परिस्फुटा ॥

—लक्ष्यसंगीते।

चतुर पंडित का मत हमें ठीक जँचता है। उसने धैवत वर्ज्य करने का एक नवीन रूप सुझाया है, उसे आगे चलकर कोई भी बुद्धिमान गायक प्रचार में सरलता से ला सकते हैं। केवल 'लोकरंजनैकफलत्वम्' के नियम की ओर अवश्य ध्यान देना पड़ेगा। अब यह दूसरे आधार देखो :—

गुणकली त्वियं मंद्रमध्यगा—
गनिविवर्जिता भैरवांगिनी ॥
ऋषभधैवती मंत्रिवादिनी ।
सदसि गीयते प्रातरौडुवा ॥

—कल्पद्रुमांकुरे।

गनिवर्ज्या गुणकली मृदुधैवतवादिनी ।
कोमलर्षभसंवादिन्यौडुवा मृदुमध्यमा ॥

—चंद्रिकायाम् ।

Capt. Day साहब 'गुण्डक्रिया' का आरोह-अवरोह इस प्रकार बताते हैं। सा रे ग रे म प नि ध नि सां। सां नि ध प म ग रे ग सा। वे एक दूसरा स्वरूप इस प्रकार देते हैं—'सा रे म प म ग रे म प नि सां। सां नि प ध प म ग रे सा। परन्तु ये दोनों रूप प्रचार में नहीं दिखाई पड़ते। Capt. Willard गुणकली के अवयव 'देसी, तोड़ी, ललित, आसावरी, देशकारी, गुर्जरी' बताते हैं। यह बात भी केवल सुनकर संगृहीत कर लेने योग्य है। इसका तुम्हारे लिए अधिक उपयोग इस समय हो सकना सम्भव नहीं है। 'राधागोविंदसंगीतसार' में 'गुनकरी' मालकंस राग की एक भार्या बताई है। प्रत्यक्ष राग-वर्णन में ग्रंथकार ने बड़ी धांधली की है। यद्यपि उसके प्रमुख आधार-ग्रंथ, भावभट्ट के ग्रंथ तथा 'दर्पण' और 'पारिजात' थे, फिर भी उसके लिखने से ज्ञात होता है कि प्रत्यक्ष स्वर-स्वरूप की दृष्टि से ये ग्रन्थ भी अच्छी तरह उसकी समझ में नहीं आए। यह दिखाई पड़ता है कि लेखक स्वयं हिंदुस्तानी संगीत गाता होगा, परन्तु उसका सम्बन्ध शास्त्र से स्थापित करने की उसे लालसा उत्पन्न हो गई थी। उसका यह काम बहुत ही ऊबड़-खाबड़ हो गया है। 'रत्नाकर' व 'दर्पण' ग्रन्थ तो उसके समझने-योग्य थे ही नहीं। उसके समूचे स्वराध्याय में भी तुम्हें यह प्राप्त नहीं होगा कि उसने प्राचीन शुद्ध स्वर-सप्तक क्या समझा था। उसने गुणकरी किस प्रकार बताई है, देखो :—

'अथ मालकंस की चौथी रागिनी ताकी उत्पत्ति लिख्यते। गुणकरी को शिवजी ने वामदेव मुखसों गायके (क्योंकि मालकंस उसी मुख से निकला हैं) मालकंस की छायाजुक्ति देखी मालकंस को दीनी। गुणकरी को स्वरूप लिख्यते। शोक करिके व्याप्त और लाल जाके नेत्र हैं। और दीनताइसों देखे है।

प्रश्न—क्या यह पहले बताए हुए संस्कृत-श्लोकों का भाषांतर-मात्र नहीं है?

उत्तर—बिलकुल वही है, यह तुमने ठीक पहचान लिया। यह श्लोक ग्रंथकार को 'दर्पण' में प्राप्त हुआ, परन्तु आगे चलकर यह कठिनाई उपस्थित हो गई कि दर्पणकार ने अपनी व्याख्या इस तरह की है—'रिधहीना गुणकिरी औडवा परिकीर्तिता। इत्यादि।' यह व्याख्या राजा साहब को नहीं जँची। अब उन्हें यह निश्चय करना कठिन हुआ होगा कि 'दर्पण' के राग का ठाठ कौनसा है। यहाँ पर फिर उन्होंने यह मार्ग निकाला :—

'शास्त्र में तो यह पाँच सुरसों कही है। सा रे म प ध। यातें ओडव है। याको दिन के तीसरे पहेर के प्रथम एक घड़ी में गाइए। यह तो याको बखत है। और तीसरे पहेर में चाहो जब गावो। याकी आलापचारी पाँच सुरन में किए। संगीतपारिजात सें। ग्रहांश। धैवत। न्यास। षड्ज।'

अहोबल की व्याख्या मैं तुम्हें बता चुका हूँ। तब कुल मिलाकर यह निश्चय हुआ कि 'शिवजी ने पार्वती के आग्रह और विनती से मालकंस को 'गुणकली' नामक भार्या प्रदान की! दामोदर पंडित ने इसके स्वरूप का वर्णन किया। अहोबल ने वर्ज्यावर्ज्य स्वर बताए, परन्तु प्रतापसिंह के समय तक उस चपला ने अपना रूप बिलकुल बदल डाला, क्योंकि 'संगीतसार' के आलापचारी में ऋषभ चढ़ी, धैवत उतरी, षड्ज असली, पंचम असली, मध्यम चढ़ी, मध्यम उतरी, धैवत चढ़ी, इस प्रकार स्वर बताए हैं।'

प्रश्न—वाह! वाह!! परन्तु यह क्या गुरूजी? ऐसा मालूम होता है कि गुणकली व गुणश्री का मिश्रण हो गया है।

उत्तर—अथवा यह कहो कि यह शास्त्र व प्रचार का सम्मेलन हुआ है। फिर भी गनीमत है कि ग्रंथकार ने सारे ४२ विकृत उपयोग में नहीं लिए। स्वराध्याय पढ़नेवाले को तो यह भी एक बड़ा भय था। मैं तुमसे प्रतापसिंह का बताया हुआ राग-स्वरूप गाने का आग्रह नहीं कर सकूँगा। मैं समझता हूँ कि 'संगीतसार' के अनेक राग हमारे वर्तमान प्रसिद्ध गायकों को भी मुश्किल ज्ञात होंगे। यद्यपि राजा साहब ने कहा है कि ये राग स्वयं शिवजी ने गाए हैं, तो भी यह नहीं दिखाई पड़ता कि अपने गायक अब उन्हें अस्वीकार करने में डरेंगे।

प्रश्न—कदाचित् वे यह सोचते होंगे कि मुस्लिम गायकों द्वारा प्रचार में लाए हुए राग शिवजी ने कब और कैसे गाए होंगे! क्या यह शंका उचित नहीं है?

उत्तर—इस विषय में मैं क्या कह सकता हूँ। यही उत्तम मार्ग है कि हम ऐसी 'बारीक' बातों की ओर ध्यान ही न दें। यह छोटी-मोटी बात नहीं है कि प्रतापसिंह ने एक राजा होकर भी संगीत की ओर इतना ध्यान दिया। परन्तु मुझे एक बात और सूझ पड़ती है। जबकि मुख्य छह राग शिवजी के मुख से निकले होंगे और उनका लग्न-संस्कार हुआ होगा, तो उनके बाल-बच्चे होना भी स्वाभाविक हो जाएगा और फिर यदि किसी ने उस परिवार-भर का स्वामित्व शिवजी को प्रदान किया, तो आश्चर्य क्यों होना चाहिए? तो भी ग्रंथकार ने किसी तरह राग-लक्षण में यह बता ही दिया है कि किन-किन रागों की तोड़-मरोड़ या जोड़-तोड़ शिवजी ने की है। यह सत्य है कि स्वर बताते हुए उसने—'शास्त्र में तो अमुक स्वरों सें गाई है' ऐसा संदिग्ध उल्लेख किया है। परन्तु कहीं-कहीं दर्पण, पारिजात, अनूपविलास आदि ग्रंथों का उल्लेख उसने स्पष्ट किया है।

केवल आलापचारी उसने संभवतः अपने आश्रित गायक-वादकों की मदद से लिखी होगी। जब नवीन संगीत को 'नवीन' कहना असुविधाजनक हो और उसे यदि पवित्र (शास्त्रीय देव-सम्बन्धित) बनाना ही निश्चित किया गया हो, तो यह समझ में नहीं आता कि फिर ग्रंथकार को और दूसरा क्या उपाय करना चाहिए ? इसमें भी यह ध्यान रखने-योग्य बात है कि सम्पूर्ण प्राचीन ग्रंथ उपलब्ध न हों और शास्त्रों के प्रत्यक्ष उद्धरण ग्रंथकारों ने ग्रहण किए हों, तब पाठकों को कुतर्क करने की गुंजाइश ही नहीं रहती।

प्रश्न—ये सब बातें हमारे ध्यान में आ गईं। अब हमें 'गुणक्री' का स्वर-स्वरूप बता दीजिए ?

उत्तर—ठीक है ! सुनाता हूँ :—

गुणक्री

सा, रेरे, साध़सा, रे, सा, मरे, साध़प़, म़प़, ध़सारेमरे, सा; सारेसा।

सारेसा, मपमरे, पमरे, रेसा, धधप, मपमरे, रेसा, साध़ध़प़, म़प़, ध़ध़रेसा, रेमपमरे, धधपमपमरे, पमरे, रेसा; सारेसा।

मपपधध, सां, सांरेंसां, सांधधसां, रेंरेंसां, धप, मपध, रेंसां, धप, मप, मरे, पमरे, रेसा; सारेसा; साधधधप; मप, धधप, सांधप, मपमरे, मरेपमरे, सा; ध़ध़सारेसा।

रेंरेंसां, मंपंमंरेंसां, रेंसांध, सांधप, मप, रेंसांधप, मपमरे, पमरे, सा; सारेसा।

स्थायी

सरगम : ताल रूपक (गंभीर स्वरूप)

× रे	रे	सा	रे	रे	सा	सा	× ध़	ऽ	ऽ	सा	ऽ	रे	सा
× रे	रे	सा	रे	रे	सा	सा	× ध़	ऽ	ऽ	सा	ऽ	सा	ऽ
× सा	ध	ध	ध	ध	प	प	× म	प	म	रे	रे	सा	ऽ

अंतरा

×　　　　　　　　　　×
प प प | ध ध | सां ऽ | सां ऽ सां | ध ध | सां ऽ

×　　　　　　　　　　×
सां ध ऽ | सां ऽ | सां ऽ | रें रें सां | सां ऽ | ध ऽ

×　　　　　　　　　　×
ध रें रें | सां ऽ | रें सांऽ | ध ध ऽ | सां ध | प प

×　　　　　　　　　　×
ध ध सां | ध ध | प प | म प म | रे रे | सा ऽ

इस सरगम का उठाव कोई-कोई 'म प म । रे रे । सा ऽ ।। प ऽ प । ध ध । प प ।' इस प्रकार भी करते हैं, परन्तु मेरे बताए हुए स्वरूप में भैरव-अंग शीघ्र ही स्पष्ट हो जाता है ।

प्रश्न—हम समझते हैं कि 'गुणक्री' राग अब अच्छी तरह समझ में आ गया है । अब अगला राग बताइए ?

उत्तर—ठीक है ! ऐसा ही करता हूँ । अब हम 'जोगिया' को लें । श्रोताओं को प्रायः जोगिया और गुणक्री समप्राकृतिक ज्ञात होते हैं, अतः अब तुम्हें इस राग को ही ठीक तरह समझ लेना होगा ।

प्रश्न—अच्छी बात है, अब आप 'जोगिया' ही बताइए ?

उत्तर—'जोगिया नाम सुनाई पड़ते ही तत्काल हमें यह कल्पना होती है कि यह नाम हिंदी या उर्दू भाषा का होगा । यह तर्क सत्य भी है । आगे फिर हम तत्काल यह तर्क और करते हैं कि हमारे अर्वाचीन गायकों ने यह राग किसी प्राचीन संस्कृत-राग को तोड़-मरोड़ कर प्रचार में लिया होगा । यह बात नहीं कि हमारा यह तर्क सर्वथा गलत ही है, ऐसा होना सम्भव है । प्राचीन संस्कृत-ग्रंथों में स्पष्ट रूप से 'जोगिया' नाम प्राप्त नहीं होता । हाँ, संगीतकल्पद्रुमकार आदि ने अपने ग्रंथों में बताया है, उसकी व्याख्या मैं आगे बताऊँगा ही । मेरा यह दावा नहीं है कि मेरे पास समस्त संस्कृत-ग्रंथ हैं, अथवा मैंने उन्हें पढ़ा है, तथापि मेरा आशय इतना ही है कि मुझे जो ग्रंथ प्राप्त हुए हैं, उनमें 'जोगिया' नाम प्राप्त नहीं होता । उन ग्रंथों में 'इराख' 'बाखरेज' 'सरपरदा' आदि पर्शियन या ईरानी नाम अवश्य दिए हैं ।

प्रश्न—जब 'पर्शियन' नाम प्राप्त होते हैं, तब पर्शियन संगीत के सम्बन्ध में जानकारी भी दी होगी?

उत्तर—ऐसी जानकारी तुम्हें संस्कृत-ग्रंथों से प्राप्त नहीं हो सकती, यह तुम्हें ईरानी भाषा के ग्रंथों में अथवा पाश्चात्य विद्वानों के द्वारा की हुई खोज में प्राप्त होगी। मुझे यह ज्ञात नहीं कि पाश्चात्य पंडितों ने प्रत्यक्ष ईरानी संगीत पर क्या जानकारी प्राप्त की है।

एक यूरोपियन सज्जन इस प्रकार कहते हैं :—

Glutted with victory no sooner had the Arabs conquered persia and established a Mahomedan dynasty, than they sought to destroy every vestige of the greatness of her ancient institutions. The practice of any but the Mahomedan religion was forbidden, and the parsees who refused to abandon the ancient system of their ancestors were driven to the plains of Kernan and Hindustan, and have been wanderers ever since. The koran was to be the book of books, all other learning being deemed useless to the faith of Islam; and it was decreed that all her sacred records, her codes of Law, the literature of the ancient Magi and the rich store of works on the arts and sciences then extant should be committed to the flames. This ruthless act was duly carried into effect, and thus perished in a brief hour the results of the labour of successive generations, collected during a period of three thousand years.

Passing over the two centuries succeeding the Mahomedan conquest, during which absolutely nothing is known of the history of the Persian Nation, we find the literature of the country gradually regaining somewhat of its ancient celebrity. The language being extremely soft and harmonious, it was well adapted to all kinds of Poetry and no doubt these songs soon become wedded to suitable melodies. The materials from which to gather anything like reliable data as to the progress of music are extremely scanty and for the little that is known, we are mainly indebted to the researches of Sir William Jones, a judge of the Supreme Court of Calcutta and who nearly a century ago gained great eminence as a ripe Oriental Scholar. In summarising

the result of his observations in regard to the Music of the Persians, he says:—The Persians had no less than eighty-four modes; but whether, like ours, they consisted of succession of sounds relating by just proporations to one principal note, he was unable to observe; arguing however from the sottness of the Persian Language the strong accentuation of the words, and the tenderness of the songs which are written in it, he held that the Persians had a natural and affecting melody, and that they must have possessed a fair knowledge of the Divine art. It is further remarked that their songs were adapted to strains suited to the various emotions of the mind and that they were always sung in Unison, accompanied by such musical instruments as were then known amongst them, and which resembled those already referred to as being peculiar to all ancient nations.

मैं समझता हूँ कि तुम्हें यह सब जानकारी शायद स्थूल रूप की प्रतीत होगी, तुम्हें ईरानी राग-रचना चाहिए, उसकी जानकारी तुम्हें Capt. Willard इस प्रकार देता है :—

Muquamat Farsee—Persian Music—These are said to have their origin from the prophets, whilst others ascribe them, as well as the invention of musical instruments to philosophers. Although the Mukamat Farsee are originally of Persia, yet as they are now known in this country, it seems necessary to say a few words respecting them. The natios of Persia, like those of Hindustan, reckon their ancient music as comprising twelve classes or Muquams, each of which has belonging to it two Shobus and four Goshubs. The Muquams being generally considered equivalent to the Rags of Hindustan, the Shobus being esteemed their Raginees and the Goshubs their Putras or their Bharjas,

इस संबंध में राजा साहब टैगोर के 'Hindu Music' नामक ग्रंथ से भी कुछ जानकारी मिल सकेगी। ईरानी रागों के नाम तुम्हारे ध्यान में नहीं रह पाएँगे। यदि तुम चाहो, तो इस ग्रंथ से उन्हें उद्धृत कर सकते हो।

प्रश्न—हम बीच में ही एक अप्रासंगिक प्रश्न पूछ रहे हैं कि ये यूरोपियन विद्वान् हमारे संगीत पर इतना लिखते हैं, तो क्या इन्हें अपने प्रसिद्ध गायकों के समान या हमारे समाज को पसन्द आने-योग्य गाना भी आता होगा ?

उत्तर—मैं यह स्पष्टता से स्वीकार करूँगा कि अभी तक तो ऐसे गानेवाले मैंने नहीं सुने। अब मैं स्वयं यह कैसे बता सकता हूँ कि Sir William Jones, Willard, Day आदि विद्वानों को प्रत्यक्ष संगीत कितना व कैसा आता होगा ? परन्तु इसी सिद्धांत पर यह देखना भी क्या उपयोगी नहीं होगा कि हमारे वर्तमान लेखकों में से गायक कितने हैं ? यह निर्विवाद सत्य है कि प्रत्यक्ष संगीतज्ञाता अधिक अच्छा लिख सकेंगे, परन्तु यह नियम शायद विवादग्रस्त ही होगा कि प्रत्येक ग्रन्थ-लेखक को गायक बनना ही चाहिए।

प्रश्न—आपके कथन का तात्पर्य हम समझ गए। हमने उक्त प्रश्न क्यों पूछा था, उसका कारण भी सुन लीजिए। इस समय पाश्चात्य पंडित व उन्हीं की देखा-देखी कुछ हमारे विद्वान् प्रायः यह कहते रहते हैं कि हमारे संगीत में सुधार होना चाहिए। इन लोगों के इस कथन में कितना सार है, यह हम आगे पूछनेवाले थे ?

उत्तर—यह मैं भी सुनता और पढ़ता हूँ; परन्तु अभी मैं इसकी ओर ध्यान ही नहीं देता। यह देखना भी महत्त्वपूर्ण है कि यह चिल्लाहट कौन लोग कर रहे हैं। जब तक कोई विद्वान् स्पष्ट रूप से यह नहीं बताता कि संगीत में किस प्रकार का सुधार किया जाना चाहिए, तब तक इस पर विचार भी कैसे किया जा सकता है ? मैंने एक इसी प्रकार के सुधार-प्रेमी सज्जन से सहज स्वभाव से इस प्रकार पूछा था—"क्या इसे सुधार कह दिया जाएगा कि अपने सौ-पचास गायक, पाँच-पचास तबलिए, सौ-दोसौ सारंगिए, इतने ही बीनकार व सितारिए; इन सभी को टाउन हाल-जैसी किसी जगह एकत्र कर एकसाथ कोलाहल करने दिया जाए ? क्या आपको सुधार इस तरह से ज्ञात होगा कि ओहदेदार, विद्वान् व उच्च कुल की स्त्रियों का 'Ball' अब शुरू होना चाहिए ? क्या आपको यह पसन्द है कि अपने सुन्दर-सुन्दर रागों में पाश्चात्यों की Harmony जोड़ दी जाए ? क्या अपने प्राचीन रागों में पाश्चात्य रागों के टुकड़े जोड़ देने से सुधार हो जाएगा ? क्या आप सुधार के नाम पर यह समझते हैं कि अपने वाद्य व कुछ पाश्चात्यों के वाद्य एकसाथ मिला देने चाहिए ? क्या आपको यह पसन्द है कि अपने प्राचीन तालों की सारी व्यवस्था रद्द कर देनी चाहिए और समस्त संगीत को Common Time में ही योजित कर देना चाहिए ? क्या आप कह सकते हैं कि रागों के वर्ज्यावर्ज्य स्वरों के नियम कठोरतापूर्वक दूर फेंक-कर बाईस नादों में चाहे जैसे स्वर मिला देने चाहिए ? क्या आपका यह मत है कि प्राचीन ग्रंथ Deluge (प्रलय) के पूर्व के हैं, अथवा वे असभ्य लोगों के जंगली शास्त्र हैं, अतः इन्हें केवल Museum (अजायबघर) में रख देना ही उचित है ?' इस प्रकार के कुछ प्रश्न मैंने पूछे थे, पर उसे यह नहीं सूझ पड़ा कि इनका क्या उत्तर दिया जाना चाहिए।

प्रश्न—क्यों भला ? उसने कुछ तो कहा होगा ?

उत्तर—उसने कहा—'मैं भला इसमें क्या समझ सकता हूँ ? मेरे लिए तो 'भैरव' और 'धुमकलास' और 'दादरा' सभी एकसे हैं। लोग कहते हैं कि अपनी

सारंगी की हार्मनी देखो व विलायती फिडल की सुन्दर हार्मनी देखो ! अब उसी एक ही राग को कितनी पीढ़ी तक और गाते रहना है ? परन्तु मैं कसम खाकर कहता हूँ पंडित जी ! मुझे न तो इधर का संगीत समझ में आता है और न उधर का। मैं तो अपने इस विषय में 'ढ' हूँ । लोग कहते हैं, इसलिए मैं भी कहता हूँ कि आजकल जब सभी बातों में सुधार हो रहा है, तो फिर संगीत में क्यों नहीं होना चाहिए ? परन्तु इसकी कठिनाइयों का मुझे पता ही क्या है ?' मैंने इस व्यक्ति को बिलकुल दोषी नहीं समझा।

प्रश्न—'धुमकलास' क्या कोई राग है।

उत्तर—नहीं-नहीं, मैं समझता हूँ उसने कहीं 'भीमपलास' नाम सुना होगा। कहने का तात्पर्य यह है कि संगीत में कौनसा व किस प्रकार का सुधार किया जाए, यह बताने का कार्य सरल नहीं है। यहाँ पाश्चात्यों का उपदेश भी कुछ अंशों में स्वीकार करना होगा। मेरा व्यक्तिगत मत यह है कि जैसे-जैसे हमारे संगीत को पाश्चात्यों द्वारा अच्छी तरह समझने के उदाहरण सामने आएँगे, वैसे-वैसे उनके कथन का परिणाम भी स्पष्ट होने लगेगा। यह तथ्य प्रसिद्ध ही है कि उपदेशक योग्य अधिकारी ही होना चाहिए। हमारे संगीत के उत्तम जानकार लोग जब तक सुधार के लिए न कहें, तब तक हमें रुक जाना होगा। हाँ, हमें इस समय इस प्रकार के सुधार चाहिए, देखो ! 'रागों को उत्तम रूप से व्यवस्थित करना चाहिए, जिससे वे सहज़ में सीखे व सिखाए जा सकें। तानबाजी का प्रमाण कुछ इस तरह नियत करना होगा, जिससे माधुर्य की वृद्धि हो। आवाज सुधारने का अपने यहाँ कोई उत्तम उपाय ज्ञात नहीं है, अतः उसकी जानकारी प्राप्त करनी चाहिए। हमारे गायक बाँके, तिरछे हाव-भाव करते हैं, चाहे जिस तरीके से गला मारते हैं, उसमें यह सुधार करना इष्ट होगा कि उनका लक्ष्य रस की ओर रहे। संगीत-शिक्षण पद्धति-युक्त रीति से होने के साधन खोजे जाएँ। यह एक स्वतंत्र विषय है कि संगीत कैसे सिखाया जाए, अभी मैं इस पर नहीं बोलूँगा। मेरा कथन इतना ही है कि जैसे भी हो, अपने संगीत की राष्ट्रीयता की रक्षा की जाए।' अब हमें विषयांतर में अधिक नहीं जाना चाहिए।

प्रश्न—ठीक है। Capt. Willard साहब ने इतना परिश्रम किया, यदि उन्हें श्रुति, मूर्च्छना, ग्राम, जाति पर अपने समय की उपलब्ध जानकारी मिली होती, तो कितना अच्छा होता। उनका ग्रंथ कब प्रकाशित हुआ ?

उत्तर—उनका ग्रंथ Treatise on the Music of Hindustan सन् १८३४ में कलकत्ता से प्रकाशित हुआ था। इस ग्रंथ को लिखने के पूर्व, दस-बीस वर्ष जानकारी प्राप्त करने में लगाए होंगे। यह दिखाई देता है कि उस समय ग्राम, मूर्च्छना-प्रकरण बहुत दुर्बोध हो गया होगा। उसके ग्रंथ में जो Glossary है, उसमें मूर्च्छना की व्याख्या इस प्रकार की है :—

Murchana—A term expressive of the full extent of the Hindu scale of Music, and as this extends to three octaves, there

are consequently twenty one Murchanas, having distinct names. A Murchana differs from a soor in this respect that there are twenty one of the former and only seven of the latter, so that every soor has the same name whether it belongs to the lowest, middle, or highest octave; whereas every individual sound through the whole range of three octaves has a distinct name where it is considered as Murchana, by which way of naming them the octave of any particular sound has a distinct appellative. Akhado Rag, for instance, extends to six soors or notes; but it may comprehend within its compass seven, eight or more Murchanas, according to the number of notes which are repeated in another octave.

मूर्च्छना के उक्त वर्णन से उन साहब का क्या समाधान हुआ होगा, यह ईश्वर जाने। सम्भवतः उन्हें कोई संगीत-व्यवसायी गप्पी मिल गया होगा। मुझे याद है कि कुछ वर्ष पूर्व मेरे पास एक बीनकार आता था। उससे मैंने श्रुति व स्वर में क्या भेद है, यह पूछा। उसने कहा—"पंडितजी ! यह भेद हमारे अनाड़ी लोग नहीं समझते हैं। आज मैं आपको बता रहा हूँ। 'सुरती' याने आप लोगों के 'वेद' हैं और 'सुर' तो साक्षात् परमेश्वर का नाम ही है। यह 'विद्या' बड़ी पवित्र है, यह इन्हीं दो प्रथम शब्दों से निश्चित हो जाता है। यह गम्भीर रहस्य हमारे लोग क्या समझेंगे ? 'सुरती' का गाना चाहे जिसको नहीं आता। जानकार लोग कभी-कभी 'सुरती' लगाकर गाते हैं और कभी-कभी घण्टों तक गाते रहेंगे, पर एक भी 'सुरती' नहीं लगाएँगे !"

प्रश्न—क्या आपने उससे दोनों प्रकार से गाकर दिखाने की प्रार्थना नहीं की ?

उत्तर—की थी। उसने भैरव का टुकड़ा गाकर दिखाया। एक बार बिलकुल मीड़, आंदोलन-रहित 'साग, मपधप, मगरे, सा' गाया, फिर वही टुकड़ा मीड़ आदि लेकर गाया तथा मुझे भेद पहचानने के लिए कहा। यह बेचारा तो अशिक्षित व्यक्ति था, परन्तु मुझे एक शहर में एक सामान्य शिक्षित हिंदू गायक पंडित मिले थे, उनका किया हुआ मूर्च्छना का स्पष्टीकरण सुनकर तो तुम्हें हँसी आएगी।

प्रश्न—जरा सुना दीजिए, क्या बात थी ?

उत्तर—वे ब्राह्मण थे। उन्होंने प्रथम शुद्ध रूप से 'क्रमात्स्वराणां सप्तानामारोहश्चावरोहणम्' इस श्लोक का पाठ किया और गंभीर मुद्रा से बोले—"अहा हा ! इसमें तो कुछ विचित्र ही रहस्य है !!" मैंने उनसे वह रहस्य बताने का आग्रह किया, तब उन्होंने इस प्रकार स्पष्टता की—"अजी ! सात स्वरों का आरोह व पुनः

अवरोह अर्थात् मूर्च्छना, यह ऊपरी शाब्दिक अर्थ तो स्पष्ट ही है। आगे रे, ग, म, प, ध, नि, स्वरों की मूर्च्छनाएँ भी बताई हैं। इतना होने पर अर्थात् इन स्वरों की मूर्च्छनाएँ पूर्ण होने पर अगले ऊपरी सप्तक के सप्त स्वरों की मूर्च्छनाएँ शुरू होंगी। यह पूरा होना पर अगले सप्तक की मूर्च्छनाएँ आएँगी। हम जिस षड्ज को लगाते हैं, उसका इक्कीसवाँ निषाद स्वर कितना ऊँचा जाएगा, इसकी तुम स्वयं कल्पना कर लो। वहाँ तक मूर्च्छना लगाने का काम मनुष्य द्वारा सम्भव नहीं।"

उनका यह स्पष्टीकरण सुनकर मुझे आश्चर्य तो हुआ ही, परन्तु यह उनके ध्यान में भी आ गया। वे तत्काल ही बोले—"अजी, तुम्हें मेरा कथन विचित्र जान पड़ता है, परन्तु तुम भूल रहे हो कि हम लोग कलियुग के बालिश्त-भर ऊँचाई के निर्बल मनुष्य हैं। यह मूर्च्छना प्राचीन काल की है। यह तो तुमने पढ़ा ही होगा कि सीता जी जमीन पर बैठकर नारियल तोड़ लेती थीं! उस काल में मनुष्यों की ऊँचाई सौ फीट थी। क्या यह तुमने नहीं सुना? ऐसे लोगों को ऐसी मूर्च्छना गाने में कठिनाई ही क्या थी? परन्तु हमारे ग्रंथकार भोले ठहरे! उन बेचारों ने यह आजकल के लिए असम्भव बात भी व्यर्थ ही अपने ग्रंथों में लिख छोड़ी है।"

प्रश्न—और ये सज्जन पढ़े-लिखे कहलाते थे?

उत्तर—यही तो आश्चर्य की बात है। एक दूसरे मुसलमान संगीत-शास्त्री मेरे एक शिष्य को उत्तर की ओर मिले थे। उनके संस्कृत-अध्ययन की गायक लोगों में बहुत प्रशंसा थी, इसलिए मेरे वे शिष्य उनसे विशेष रूप से मिलने गए थे। मूर्च्छना की व्याख्या उन 'खाँ पंडित' ने इस प्रकार की—"पंडित जी, कर्मात् सुराणां सप्तानां आरोहश्चावरोहश्चा, ये मूरछना का लच्छन गिरंथ लिखते हैं, मगर मैं केहता हूँ कि इस शलोक का लिखनेवाला बिलकुल कूड था। उसे संस्कीरत का कायदा बिलकुल खबर नहीं था। सब कोई विद्वान् जानता है की संस्कीरत भाशा में बिगर करता के कोई भी बाक्य सिद्ध हो नहीं सकता। अब यहाँ देखिए। येह शिलोक के लिखनेवाले नें करम के वास्ते तो लिख दिया, मगर करता का पता कहाँ है?"

प्रश्न—शाबाश! 'क्रम' को 'कर्म' समझ मारा?

उत्तर—हाँ। इन खाँ साहब की मुसलमान गायक इस प्रकार प्रसिद्धि बताते हैं कि इन्होंने बड़े-बड़े संस्कृतज्ञ हिन्दू पंडितों को परास्त कर दिया है। कहने का तात्पर्य यह है कि जानकारी एकत्र करने में उचित सहायता करनेवाले विद्वान् मिलने ही कठिन हैं। मैं समझता हूँ कि यदि कोई दक्षिण की ओर प्रवास कर परिश्रम से खोज करे, तो अभी भी कुछ उपयुक्त जानकारी मिलनी सम्भव है। मैं यह नहीं कहता कि इस प्रकार की जानकारी का प्रत्यक्ष उपयोग हिंदुस्तानी संगीत के लिए होगा ही, परन्तु मैं समझता हूँ कि प्राचीन ग्रंथों को समझने में वह जानकारी थोड़ी-बहुत उपयोगी अवश्य होगी। अपने 'गमक' को ही लो। दक्षिण की ओर अधिकांश 'गमकें' उनके ग्रंथोक्त वर्णन के अनुसार अभी भी प्रचलित हैं। उन्हीं में से कुछ गमक, हमारे

गायक 'उरप, तिरप, झुरत, फुरत, तुरप' आदि भ्रष्ट नामों से जानते हैं, परन्तु उनके लक्षण वे बिलकुल नहीं जानते। मैं यह नहीं कहता कि दक्षिण की ओर ग्रंथों का अध्ययन करनेवाले बहुत काफी व्यक्ति हैं, परन्तु मैं इतना ही बता रहा हूँ कि ग्रन्थों में वर्णित बातों में से कोई-कोई वहाँ अभी भी प्रचलित दिखाई देंगी। स्व० सुब्रह्म दीक्षित एक बहुत ही योग्य एवं विशेष जानकारी देनेवाले अभी ही हुए हैं। उनके-जैसे विद्वान् और भी वहाँ कहीं-कहीं निकल सकते हैं। अस्तु, अब हम अपने मूल विषय की ओर बढ़ें।

प्राचीन ग्रंथों में 'जोगिया' नाम नहीं दिखाई पड़ता, यह मैंने कहा ही था। टैगोर साहब अपने ग्रंथ में एक टिप्पणी इस प्रकार लिखते हैं—"इस राग का नाम 'योगिज्ञा' है तथा 'संगीतसर्वस्वसार' ग्रंथ में इसकी जाति संपूर्ण बताई है।" आगे कभी कलकत्ता जाने का तुम्हें अवसर मिले, तो इन राजा साहब के पुस्तकालय में 'सर्वस्वसार' देखना। केवल सम्पूर्ण जाति बता देने से ही हमारा काम पूर्ण नहीं हो सकता। तो भी यह जो कहा गया है 'योगिज्ञा भैरवोपांगी जातिस्तु पूर्ण का मता', विचार-करने योग्य है। चाहे हम जोगिया को सम्पूर्ण नहीं मानते हों, फिर भी यह आधार काफी मात्रा में हमारे लिए उपयोगी होगा। राग-स्वरूपों में अंतर पड़ता ही रहता है। वैसे भी किसी गायक ने अवरोह में गांधार लगाया, तो एक तरह से संपूर्ण जोगिया का उदाहरण कहा जाएगा। टैगोर साहब ने कहा ही है कि बंगाल में 'सम्पूर्ण' जोगिया गाया जाता है। हम गांधार वर्ज्य करते हैं। ऐसा करने से जोगिया, सावेरी, गुणक्री राग अच्छी तरह से अलग-अलग किए जा सकते हैं। जोगिया व सावेरी बहुत ही निकट के राग होने से गायक इन्हें परस्पर सरलता से मिला देते हैं, परन्तु यह कहने की आवश्यकता नहीं कि प्रत्येक राग के नियम अवश्य ज्ञात होने चाहिए। रागों का मिश्रण करना और स्वतः मिश्रण हो जाना, इन दोनों बातों में बहुत महत्त्वपूर्ण भेद समझा जाता है।

एक पंडित ने मुझे बताया कि दक्षिण के 'सावेरी' राग को ही उत्तर के गायक जोगिया कहते हैं। मैं समझता हूँ कि इसमें गांधार से होनेवाला भेद स्वीकार करना अधिक सुविधाजनक होगा। दक्षिण के ग्रंथों में 'योगिज्ञा' नाम नहीं दिखाई पड़ता। एक 'योगानन्दी' नाम प्राप्त होता है, परंतु उस राग-स्वरूप में तीव्र म, तीव्र ध और कोमल नि, इस प्रकार स्वर लगाए हैं। यह हमारा राग नहीं है। उर्दू-ग्रन्थों में जोगिया राग हमें दिखाई पड़ता है तथा वह भैरव ठाठ में ही प्राप्त होता है।

प्रश्न—जब प्राचीन संस्कृत-ग्रंथों में जोगिया नहीं प्राप्त होता, तब तो देशी भाषा के ग्रंथकारों का मत ही हमारे लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

उत्तर—ये ग्रंथ तुम पढ़ोगे ही, इसी लिए इनके उद्धरण मैं पढ़कर नहीं सुना रहा हूँ। जोगिया का ठाठ भैरव है, अतः इसके स्वर 'सा रे॒ ग म प ध॒ नि सां' निश्चित होंगे ही। इनमें आरोह करते समय गांधार व निषाद हमें छोड़ने पड़ेंगे व अवरोह में गांधार वर्ज्य करना होगा। ऐसा करने से इस राग की जाति औडुव-षाडव निश्चित होगी। जिन गायकों को नियमों का अच्छा ज्ञान नहीं होता, वे आरोह

में भी निषाद ले लेते हैं। इस राग में गांधार स्वर किस प्रकार गुप्त रूप से लग जाता है, यह तुम्हें बारीकी से देखना है। नियम से तो वह वर्ज्य ही माना जाता है, परन्तु अवरोह में बहुत स्वल्प मात्रा में इसका कहीं-कहीं स्पर्श हो जाता है। तुमने देखा ही है कि केदार में 'म रे सा' स्वर लेते हुए गांधार अपने-आप किस प्रकार सुन्दरता से लग जाया करता था। इसी प्रकार थोड़ा-सा इसमें भी करते हुए 'पधुम, रे॒सा' स्वर गाकर देखो, तो जोगिया की थोड़ी-सी 'पकड़' तुम्हारे ध्यान में आ जाएगी। मैं इसे दो-चार बार गाकर दिखा देता हूँ। यह राग प्रभातकालीन है, अतः यह अवरोह में अधिक प्रकट होकर खुलेगा। यह तुम्हारे नियमों के अनुसार ही है। आरोह में 'रे॒ म म, प प, ध॒ ध॒, सां' इस तरह व अवरोह में 'सां नि ध॒ प, ध॒ म रे॒ सा' इस प्रकार स्वर लेने से इस राग का स्वरूप उत्पन्न हो जाएगा। अवरोह में पंचम पर थोड़ा ठहरना पड़ता है। कोई-कोई 'सां नि ध॒ प, म प ध॒ म, रे॒ सा' इस प्रकार भी अवरोह करते हैं। यह भी अच्छा दिखाई देगा। आरोह की कुछ तानें इस प्रकार ध्यान में जमा लो—'सा रे॒ सा, म रे॒ सा, रे॒ म म, प प, ध॒, प, ध॒ म, रे॒ सा; म प ध॒ ध॒ प, नि॒ ध॒ प, ध॒ म, रें॒ सां, नि ध॒ प, म प ध॒ म, रे॒ सा।' इस राग में ऋषभ व धैवत स्वर आंदोलित नहीं रखे जाते, क्योंकि इन्हें आंदोलित करने में तुम भैरव में जा पहुँचोगे। भैरव में 'म, रे॒ सा' इस प्रकार की एक मीड़ मैंने तुम्हें बताई थी, उसमें भी गांधार आता था, परन्तु इसमें ऐसी मीड़ नहीं लग सकेगी। यहाँ 'म, रे॒ सा' इस स्वर-समुदाय में मध्यम लम्बा और खुला हुआ रखकर 'रे॒ सा' स्वर झटके से उच्चारित करने पर जोगिया का रंग अच्छा बन जाएगा। गुणक्री में भैरव की मीड़ ली जाएगी, तो शोभा देगी। इसमें जोगिया की तरह गांधार का 'कण' नहीं आने देना चाहिए। रामकली में तो स्पष्ट 'प, ग म रे॒ सा, प मं प ध॒, प ग म, रे॒ सा' इस प्रकार का स्वतंत्र अंग है। तुम्हें एक और खूबी बताता हूँ, उसे भी देखो। जैसे गांधार स्वर तुम म तथा रे॒ के मध्य में बेमालूम लगाओगे, वैसे ही ध॒ और म के बीच में पंचम लगाने में कुछ विचित्र आनन्द आएगा। 'प, ध॒, प म' यह प्रयोग वास्तव में है तो सही, परन्तु अंत के प, म स्वर शीघ्र उच्चारित होने चाहिए। यह मैं बार-बार कहता आया हूँ कि जलद तान लेते हुए इन नियमों का पालन अच्छी तरह से नहीं हो पाता। मैं तुम्हें रागों के मुख्य अंग इन स्वरों से बता रहा हूँ। इनकी सहायता से तुम्हें अच्छी तरह राग पहचानना आ जाएगा। 'रें॒, सां, ध॒ म, रे॒ सा' इतने स्वर यदि तुमने उचित रूप से गा दिए, तो श्रोता तत्काल तुम्हारा राग पहचान लेंगे। ऋषभ पर जोर देने की बात अच्छी तरह याद रखना। प्रचार में गायक प्रायः जोगिया में आसावरी का योग करते हैं, यह सुनकर तुम्हें आश्चर्य होगा, परन्तु मैं तुम्हें इसका कारण समझा देता हूँ। यह सत्य है कि हम आजकल प्रचार में आसावरी में तीव्र री का प्रयोग देखते हैं, परन्तु संस्कृत-ग्रंथों में आसावरी में 'कोमल रे' बताई है। इतना ही नहीं, बल्कि आसावरी के आरोह में ग, नि वर्ज्य करने की व्यवस्था भी ग्रंथकारों ने दी है।

प्रश्न—तो फिर जोगिया व आसावरी का अवश्य ही आसानी से मिश्रण हो सकेगा। सा, रे॒ रे॒ म म प, ध॒ सां, इस प्रकार का आरोह दोनों रागों में हो सकेगा,

परन्तु आसावरी में ग, नि स्वर कोमल हैं, इसलिए अवरोह नहीं मिल सकता। ठीक है न ?

उत्तर—बिलकुल ठीक। परन्तु तुम्हें यह सुनकर और भी आश्चर्य होगा कि संस्कृत-ग्रंथकारों ने आसावरी को भैरव ठाठ में ही माना है। ऐसा होने से 'जोगिया-आसावरी' ऐसा मिश्र राग सरलता से समझ में आ जाएगा। हमारे यहाँ 'जोगिया-आसावरी' राग में दोनों निषाद प्रयुक्त होते हैं और अवरोह में कोमल ग, नि का प्रयोग होता है, यह ठीक ही है। इस राग के संबंध में, मैं आगे बताऊँगा। अभी हमें केवल जोगिया के लिए आवश्यक बातों पर ही विचार करना है।

जोगिया में अवरोह करते हुए कभी-कभी तुम्हें कोमल निषाद भी ग्रहण किया हुआ दिखाई पड़ेगा। एक गायक ने 'जोगिया-आसावरी' का आरोह-अवरोह इस प्रकार गाकर दिखाया—सा रे॒ म प ध॒ सां। सां नि ध प, म प ध॒, म रे॒ सा। उसने कहा कि मैं पूर्वांग में जोगिया और उत्तरांग में आसावरी लेता हूँ। अच्छे-अच्छे गायक अभी भी आसावरी में 'सा रे॒ म प ध॒ सां। सां नि॒ ध॒ प, म ग॒ रे॒ सा' इस प्रकार आरोह-अवरोह मानते हैं। संस्कृत-ग्रंथकारों की आसावरी सा रे॒ म प ध॒ सां। सां नि ध॒ प म ग रे॒ सा। इस प्रकार दिखाई पड़ती है। अभी मैं यहाँ पर आसावरी का वर्णन नहीं करनेवाला हूँ। यह तो मैंने इसलिए बताया है कि 'मिश्रनाम कैसे उत्पन्न होते होंगे' इस तथ्य पर तर्क करने में तुम्हें सहायता मिले। दक्षिण की ओर प्रवास करते समय मैंने वहाँ के लोगों के सम्मुख जोगिया राग गाया था, उसे उन्होंने 'सावेरी' बताया, परन्तु गांधार स्वर न देखकर वे विचार में पड़ गए। उनकी पद्धति में 'सा रे॒ म प ध॒ सां' आरोह के सारंगनाट, मलहरी राग हैं, परन्तु उनके अवरोह क्रमशः 'सां नि सां ध॒ प म ग रे॒ सा' और 'सां ध॒ प म ग रे॒ सा' इस प्रकार हैं, इसलिए वे जोगिया से भिन्न हो ही जाते हैं। देखते हो, एक गांधार से कितना अंतर पड़ जाता है? प्रचार में गायक, नियमों की जानकारी के अभाव में गड़बड़ी कर देते हैं, परन्तु शास्त्र में रागों की परस्पर भिन्नता स्पष्ट दिखाई देने-योग्य होती है। जोगिया में वादी स्वर कोई मध्यम व कोई षड्ज मानते हैं। यह सत्य है कि इस राग में सा, म, प स्वर महत्त्व पाते हैं। यह राग उत्तरांगप्रधान होने से भैरव के ही गायन-काल में गाया जाता है।

प्रश्न—जोगिया का वर्णन लक्ष्यसंगीतकार ने कैसा किया है ?

उत्तर—वह इस प्रकार है। देखो :—

गौडमालवमेलोत्था जोगिया कथ्यते बुधैः।
उत्तरांगप्रधानत्वात्प्रातःकालोऽपि प्रस्फुटः॥
समयोरत्र संवादो भैरवे रिधयोस्त्वसौ।
निषादाकलनात्प्राज्ञैर्गुणक्रीभेद उच्यते॥

गांधारः सर्वथा त्याज्यो निस्त्यक्तश्चाधिरोहणे।
रिमयोर्धमयोर्वा स्यात्संगतिः सर्वरक्तिदा ॥
अवरोहक्रमे पोऽल्पो निषादे घर्षणं मतम्।
सुव्यस्तत्वं मध्यमस्य कस्य न स्यान्मनोहरम् ॥

कल्पद्रुमांकुरे :—

आरोहे न निरिह गस्तु वर्ज्य एव।
क्वाचित्को भवति च पंचमोऽवरोहे ॥
षड्जोंऽशो विलसति मध्यमश्च मंत्री।
सा योगिन्युषसि चकारित भैरवांगी ॥

चंद्रिकायाम् :—

गांधारहीना षड्जांशा मृदुधर्षभमध्यमा।
निषादरहिताऽऽरोहे योगिनी प्रातरेव हि ॥

चंद्रिकासार :—

भैरवमेलहि जोगिया नित गंधार तजेहि।
बादीसमसंबादि है आरोहत नि तजेहि ॥

यह सम्पूर्ण व्याख्या तुमको उपयोगी सिद्ध होगी। हम इसी प्रकार 'जोगिया' गाते हैं। जोगिया गाते हुए अवरोह में 'सां नि ध़ म, म, रे़ सा' इस प्रकार की मीड़ भी अच्छी दिखाई देती है। मैं इसे किस प्रकार लेता हूँ, उसे देखो और अच्छी तरह ध्यान में जमा लो। यदि कोमल निषाद प्रमाण से अधिक बढ़ जाएगा, तो आसावरी उत्पन्न हो जाएगी। सां, ऩि ध़ प, इस प्रकार खुले स्वर इस राग में कभी नहीं लगाने चाहिए। अब बताओ कि श्रोताओं के हृदय में इस राग का चित्र कैसे उत्पन्न कराओगे?

प्रश्न—हम इस प्रकार के स्वरसमुदाय गाएंगे। सा, रे़ म रे़ सा, म प, ध़ म, रे़ सा, रे़ म म प, प ध़ प ध़ म, रे़ सा, सा रे़ सा, ध़ ध़ प, म प ध़ म, रे़ सा, ऩि प ध़ म रे़ सा, आदि। क्या ये ठीक हैं?

उत्तर—हां ठीक हैं! एक बार इन्हें गा देने पर, फिर कहीं-कहीं आरोह में यदि तुमने निषाद लगा दिया, तो भी वह श्रोताओं को विरस नहीं ज्ञात होगा, क्योंकि

समस्त रागवैचित्र्य अवरोह वर्णों में ही है। 'प प ध़ सां, रें रें सां ध़ प ध़ म, रे सा', इस प्रकार यथास्थान दिखाते रहना पर्याप्त है। गुणकली में 'प प ध़, सां, रें, सां, सां ध़ प, म प, ध़ प, म, रे रे, सा' इन स्वरों को भैरव-अंग से गाया जाए। यह सब कृत्य बड़े रियाज से सध सकेगा। जैसे-जैसे रियाज करते जाओगे, वैसे-वैसे गला जोरदार व मधुर आवाज निकाल सकेगा। अवरोह में पंचम अपने-आप अल्प मात्रा में प्रयुक्त होने लगेगा, क्योंकि ध़, म की संगति होने लगेगी। जोगिया बिलकुल साधारण राग है। अपने कथावाचक प्राय: कीर्तन में साखी, पद आदि गीत इसी राग में गाते हुए अनेक बार पाए जाते हैं। कहीं-कहीं वे आसावरी अधिक मात्रा में मिश्रित कर देते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि शुद्ध जोगिया गाना थोड़ा कठिन ही पड़ेगा, परन्तु तो भी यह राग विशेष महत्त्वपूर्ण है। 'संगीतकल्पद्रुम' में जोगिया का वर्णन इस प्रकार किया गया है :—

जटाकलापाथ विभूतिधारी
त्रिशूलखर्पंच वीणादधान ॥
प्रचंडकोपा रसवीरयुक्ता
सा योगिनी योगशास्त्रैः प्रवीना ॥
गान्धारांशग्रहं न्यासं योगियासावरीतदा ।
वराग्यज्ञानसंयुक्ता ब्रह्मध्यानसुमिश्रिता ॥
देशीगान्धारसावरी च मिश्रितयोगिया भवेत् ।
दिवसे द्वँप्रहरार्धे च गीयते विद्वज्जनैः ॥

यह वर्णन 'जोगिया' शब्द को देखकर ही किया गया है। योगी के साथ जटाजूट, त्रिशूल, खप्पर, वीणा, प्रचण्डकोप, योगशास्त्र-ज्ञान आदि चीजें आँख मींचकर श्लोक में ठूँस दी जाती हैं। ऐसे श्लोकों का उपयोग मुस्लिम गायकों के द्वारा अधिक होता है। वे ऐसे श्लोक धड़ाधड़ बोलकर साधारण गायकों को घबराहट में डाल देते हैं। तुम्हारे-जैसे व्यक्तियों को उन्हें देखकर केवल हँसी आएगी। नादविनोदकार ने यह सम्पूर्ण शास्त्र अपने ग्रंथ में उद्धृत कर लिया, केवल रागस्वरूप प्रचलित बता दिए हैं। इसमें हमें कुछ आश्चर्य नहीं होता। क्या क्षेत्रमोहन स्वामी-जैसे विद्वान् ने 'संगीतसार' में थोड़ा-बहुत ऐसा ही नहीं किया? यह तो सत्य है कि उसने अशुद्ध श्लोक उद्धृत नहीं किए, परन्तु मर्मज्ञ पाठकों को यह सन्देह अवश्य उत्पन्न हो जाएगा कि ग्रंथों के श्लोक व मुसलमान गायकों के रागस्वरूप का मिश्रण 'संगीतसार' में कर दिया गया है। पं० भावभट्ट के ग्रंथों से ज्ञात होता है कि उसे भी 'जोगिया' नाम ज्ञात था। उसने कुछ मिश्र रागों का वर्णन किया है। उसमें 'जोगिया' नाम का स्पष्ट रूप से प्रयोग किया है। इससे सिद्ध होता है कि यह नाम उत्तरी भारत में बहुत वर्षों से प्रचलित है।

प्रश्न—पं० भावभट्ट का सम्पूर्ण राग-वर्गीकरण भी यदि हमें एक बार सुना दें, तो अच्छा होगा। प्रत्येक राग सुनाते समय उसका मत आप हमें सुनाएँगे ही, परन्तु एक बार सम्पूर्ण एकत्र रूप सुन लेने से उसकी समस्त राग-रचना हमारे ध्यान में आ जाएगी ?

उत्तर—यद्यपि यह कुछ विषयान्तर हो जाने जैसी बात है, परंतु चिन्ता नहीं, मैं सुना देता हूँ। 'अनूप-सङ्गीत-रत्नाकर' में भावभट्ट ने संगीत-ग्रंथकारों के भिन्न-भिन्न मत संक्षिप्त रीति से अपनी भाषा में बताए हैं। इसके पश्चात् फिर स्वयं की राग-व्यवस्था भी दी है। मैं समझता हूँ कि तुम्हें उसके वे श्लोक ही सुना दूँ, तो अच्छा रहेगा। हाँ, तो सुनो :—

त्रिंशत्तु ग्रामरागाः स्युर्नवोपरागकाः स्मृताः ।
रागाणां विंशतिः प्रोक्ता भाषाः षण्णवतिः स्मृताः ।
विभाषा विंशतिर्ज्ञेयाः शार्ङ्गदेवेन भाषिताः ।
चतस्त्रोऽन्तरभाषाः स्युः रागांगाष्टकमुच्यते ॥
भाषांगानां रुद्रसंख्या क्रियांगाणि त्रयदोश ।
उपांगत्रितयं प्रोक्तं देशीनां तु मितिर्नहि ॥
प्रसिद्धानां किलोद्देशे रागांगाणि त्रयोदश ।
भाषांगानि नवोक्तानि क्रियांगत्रितयं मतम् ॥
उपांगानां तु रागाणां सप्तविंशतिरुच्यते ।
रत्नाकरे चतुःषष्ट्या सहितं तु शतद्वयम् ॥

'रत्नाकर' के रागों का उपर्युक्त रूप से भावभट्ट ने संक्षिप्त वर्णन किया है। आगे कहता है :—

षट्षष्टिसंख्या रागाणां नृत्यनिर्णयसंज्ञके ।
चत्वारिंशद्रागबोधे संख्योक्ता द्व्यधिका बुधैः ॥
एकाधिका तु नवतिः संकीर्णानां प्रकीर्तिता ।
आद्यायां रागमालायां चत्वारिंशत्प्रकीर्तिता ॥
द्व्यधिका तु द्वितीयायां षट्त्रिंशत्कथिता बुधैः ।
चतुरशीतिरागाणां तृतीयायां बुधैः स्मृता ॥
रागमाला भूरिशः स्युः कपोलकल्पिताः किल ।
मूलं न दृश्यते तासां व्यभिचारः प्रवर्तते ॥

तस्मादाद्या रागमाला मन्यते शास्त्रकोविदैः ॥
पारिजातोक्तरागाणां विंशत्यासहितं शतम् ॥

इसके पश्चात् भावभट्ट ने 'रत्नाकर' का वर्गीकरण बताया है। उसके पास 'रत्नाकर' की कौनसी प्रति थी, यह नहीं कहा जा सकता। हमें प्रकाशित प्रति से कहीं-कहीं भिन्नता दिखाई देगी।

विख्याता मध्यमग्रामा भाषा ककुभटक्कयोः।
मधुरी ककुभे भाषा तस्यैव च विभाषिका ॥
भाषा प्रेंखकरागस्य मालवी कथिता बुधैः।
टक्ककैशिकभाषास्याट्टक्कस्यापि च मालवा ॥
कैशिकस्य विभाषा स्याद्वेसरी प्रेंखटक्कयोः।
भाषा प्रेंखकरागस्य भाषा मालवकैशिके ॥
मालवाद्या वेसरी च मांगली रागिणी पुनः।
बोट्टपंचमयोर्भाषा भाषा मालवकैशिके ॥
गौरी प्रेंखकरागस्य भाषा मालवकैशिके।
टक्कस्य पंचमस्यापि भाषा मालवकैशिके ॥
पूर्वाचार्यैः समाख्याता भिन्नषड्जस्य सैंधवी।
गांधारपंचमस्यापि सौवीरभिन्नषड्जयोः ॥
गांधारी कथिता भाषा भाषा च ललिता तथा।
टक्कस्य भिन्नषड्जस्य टक्कस्य पंचमस्य च ॥
त्रावणी भिन्नषड्जस्य भाविनी भाव्यतेऽधुना।
भाषा पंचमरागस्य भाषा मालवपञ्चमे ॥
टक्कस्य च विभाषा स्यादाभीरी पंचमस्य च।
ककुभस्य विभाषा स्याद्भाषा मालवकैशिके ॥
आंध्री पंचमभाषा स्याट्टक्कस्य च विभाषिका।
स्याद्विभाषा गुर्जरी मालवकैशिकटक्कयोः ॥
कैशिकी पंचमस्यैव स्याद्भाषा च विभाषिका।
स्याद्विभाषा च पौराली भाषा मालवकैशिके ॥
विभाषा भिन्नषड्जस्य टक्के देवारवर्धनी।
विद्वद्भिः कथिता सा विभाषा मालवकैशिके ॥
श्रीकंठी भिन्नषड्जस्य भाषा वेसरषाडवे।

विभाषा सैव संप्रोक्ता रागशास्त्रविशारदैः ॥
पौराली च विभाषा स्याद्भाषा मालवकैशिके ।
कांबोजी ककुभे भाषा ज्ञेया मालवकैशिके ॥
बंगालरागो रागांगं भाषांगमपि कथ्यते ।
रामक्री च क्रियांगं स्यादुपांगमपि कथ्यते ॥
कर्नाटोऽपि च भाषांगमुपांगमपि मन्यते ।
रागांगं दीपको ग्रामरागः हिंदोलकः स्मृतः ॥
टक्कोऽपि ग्रामरागः स्यादिति रागविनिर्णयः ॥

यह हिस्सा 'लक्ष्यसंगीत' के परिशिष्ट में अधिक स्पष्ट रूप से बताया गया है। अस्तु, आगे चलें :—

नाटास्तु षोडश प्रोक्ताः कर्णाटास्तु चतुर्दश ।
कर्णाटो दशधा त्रेधा वेलावल्यस्तु षोडश ॥
तोडिका नवधा प्रोक्ता गौरी चाष्टविधा स्मृता ।
गौडस्तु दशधा ख्यातो वराटी दशधा स्मृता ॥
सप्तधा पूरिया प्रोक्ता त्रिविधासावरी स्मृता ।
केदारस्त्रिविधः प्रोक्तो द्विधा विहंगडः स्मृतः ॥
सारंगोऽपि त्रिधा ख्यातो दशधा भैरवः स्मृतः ।
कामोदः सप्तधा ख्यातः सप्तधा गुर्जरी मता ॥
सैंधवी सप्तधा ख्याता मल्लारी त्रिविधा स्मृता ॥

अब ये भिन्न-भिन्न स्वरूप व उनके नाम सुनो। इसी वर्णन को लक्ष्य में रखकर कहा गया है :—

वेलावल्यथ कल्याणो नटसारंगगौडकाः ।
मल्लारः कानडाप्येते ह्युपांग जनकाः स्वयम् ॥

—लक्ष्यसंगीतम् ।

अथ नाटप्रभेदानामुद्देशः क्रियतेऽधुना ।
शुद्धनाटोऽथ सालंगनाटश्छायादिनाटकः ॥
केदारादिकनाटश्च तथा कल्याणनाटकः ।
तथाभीरकनाटश्च वराटीनाटकस्ततः ॥
ततः सारंगनाटश्च तथा कामोदनाटकः ।
वर्णनाटश्च बिभ्रारनाटो हंमीरनाटकः ॥

कद्म्बनाटकः पूर्यानाटः कर्णाटनाटकः ।
पूर्याकर्णाटकोऽप्यत्र नाटभेदो बुधैर्मतः ॥
एवं षोडशनाटाः स्युः ततः कर्नाटकान् ब्रुवे ।
शुद्धकर्णाटरागश्च कर्णाटो नायकी ततः ॥
वागीश्वर्यादिकर्णाटः कर्णाटोऽड्डाणपूर्वकः ।
ततः सहानाकर्णाटः पूर्यादिकस्ततःपरम् ।
ततो मुन्द्रिककर्णाटो गाराकर्णाटकस्ततः ॥
हुसेनीपूर्वकर्णाटः काफीकर्णाटकस्ततः ।
सोरटीपूर्वकर्णाटः खम्बावत्यादिकस्ततः ॥
ततः कर्णाटगौडः स्यात् कर्णाटीति चतुर्दश ॥

यह कहना पड़ेगा कि इन सभी रागों के लक्षण भावभट्ट ने नहीं दिए हैं, तो फिर उसने दिया ही क्या ? आगे चलो :—

शुद्धकल्याणरागश्च ततः कल्याणनाटकः ।
इत्यादि ।

ये सभी कल्याण के भेद, जो कुल तेरह हैं, मैं तुम्हें बता ही चुका हूँ ।

नट्टेन सहिताऽऽल्ह्या गौरा मारुविमिश्रिता ।
केदारमिश्रिता पूर्या नट्टा गौंडेन मिश्रिता ॥
देशाख्या स्यात् सुकर्णाटा पंचधा गदिता बुधैः ।
मल्लारमिश्रिता चैव मारुवेलावली स्मृता ॥
कल्याणेनैमनेनैव केदाराद्या द्विधा स्मृता ।
लक्ष्मीकामोदमिलिता कर्णाटाद्या प्रकीर्तिता ॥
सा केदारमलाराभ्यां कुडाईपूर्विका मता ।
देवगिर्यड्डानयुक्ता सूहवीपूर्विका तथा ॥
विहंगडपलाशिभ्यां मारुणा शिवभूषणा ।
भुंछिकाद्या प्रतापाद्या शुद्धा शुद्धस्वरूपिणी ॥
स्तम्भतीर्थी च छायाद्या वेलावल्यस्तु षोडश ॥

ये नाम जिस प्रकार मेरी प्रति में बताए हैं, उसी प्रकार मैं तुम्हें सुना रहा हूँ । यह न समझना चाहिए कि ये सभी राग भावभट्ट स्वयं गाता रहा होगा । उसने अन्य ग्रंथों से ये उद्धृत कर लिए हैं । उनका सारांश कहीं अपने श्लोकों में लिखा होगा ।

जिस प्रकार कि आज भी ऐसे लेखक हैं, जो 'रत्नाकर' के एक भी राग का ठाठ नहीं समझ सकते, फिर भी उसके सम्पूर्ण राग उद्धृत कर डालते हैं, ऐसे ही लेखक पहले भी थे। परन्तु हम यह अवश्य कहेंगे कि उसने यह संग्रह करके बहुत उपयोगी कार्य किया है। सम्भवतः उसके ग्रहण किए हुए सम्पूर्ण आधार-ग्रंथ हमें आज प्राप्त नहीं हो सकते। मैं यह हरगिज नहीं कहूँगा कि उसे प्रत्यक्ष संगीत आता ही न था। वह अपने समय का एक प्रसिद्ध गायक अथवा वादक भी रहा होगा। यह कैसे भुलाया जाएगा कि उसे 'संगीतराज' पदवी प्राप्त हुई थी? परन्तु इतने ही प्रमाण से यह मान लेना आवश्यक नहीं है कि वह सभी शास्त्रों में पारंगत था। आजकल भी अपने यहाँ कुछ शौकीन राजा-महाराजा सोने-चाँदी के 'पदक' पुरस्कार-रूप में देते हुए क्या नहीं दिखाई पड़ते? एक दिन तो मुझे किसी ने बताया था कि एक अमुक संस्था तो 'संगीत मुकुट मणि' 'संगीत पद्मराग' आदि पदवियाँ भी देती है! इससे हमें कोई काम नहीं। इसमें सन्देह नहीं कि भावभट्ट ने उत्तम संग्रह किया है। उसने अपने ग्रंथ में सहस्त्रों प्राचीन चीजें (गीत) भी संगृहीत कर दी हैं।

प्रश्न—इन चीजों का क्या कुछ उपयोग हो सकेगा?

उत्तर—हाँ, यदि कोई 'गीत-गोविंद' के अष्टपदी-जैसा उपयोग कर सके, तो हो सकता है। वास्तव में तो वह होने-योग्य ज्ञात नहीं होता, क्योंकि गीतों के स्वर नहीं लिखे होने से उन्हें योग्य रीति से और प्राचीन ढंग से कैसे गाया जा सकेगा? हमारे कुछ चंट गायक खींच-तानकर चाहें तो उन्हें जमा देंगे, परन्तु इन्हीं में से कोई चीज किसी प्राचीन गायक को आती हो, तो तत्काल ही असल नकल का झगड़ा खड़ा हो जाएगा। फिर उसे मिटानेवाला कौन? अपने गायक भी ऐसे ही निरे गीतों का संग्रह बना रखते हैं। परसों एक गायक मेरे पास आए थे, उन्होंने अपने एक भोले शिष्य की बात सुनाई, जिसे सुनकर मुझे बड़ा आनन्द आया।

प्रश्न—उन्होंने क्या सुनाया?

उत्तर—वे बोले—"मैं अपने लड़के को तालीम दे रहा था, इतने में मेरा एक शिष्य निकट आकर बैठ गया। जमीन पर मेरी ध्रुपद की कापी पड़ी हुई थी। उसकी ओर उसका ध्यान गया। उसने वह एकदम उठा ली और पढ़ने लगा। उस कापी में एक-एक राग की दस-दस बीस-बीस चीजें देखकर वह आश्चर्य-चकित हो गया तथा बड़े अनुरोधपूर्वक कहने लगा—"खाँ साहब! अब आप वृद्ध हो गए हैं, आप यह अपना भंडार लोगों को दिखा दें और उनकी दुआ लें। सब लोग अँधेरे में भटकते फिरते हैं, मैं इस कापी की कीमत इसी समय दो हजार रुपए आपको देता हूँ, और इन चीजों को छपवा कर प्रसिद्ध किए देता हूँ।" परन्तु मैंने उससे कहा कि नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। यदि तुम दो लाख रुपए की ढेरी भी मेरे सामने रख दो, तो भी मैं इन चीजों को छपने नहीं दूँगा।"

प्रश्न—शायद उनकी चीजें ताल, स्वर के साथ लिखी हुई होंगी?

उत्तर—नहीं, केवल 'बोल' (गीत के शब्द) ही उस कापी में लिखे थे, यही उन्होंने बताया था।

प्रश्न—शाबाश ! तो भी इतनी कीमत ! फिर आपने क्या कहा ?

उत्तर—मैंने कहा—"खाँ साहब ! आपने 'नहीं' कहकर बहुत ही सज्जनता दिखाई। वह बेचारा भोला व्यक्ति यह क्या समझे कि ऐसा गीत-संग्रह कौड़ियों के मूल्य का है ? जब तक वे चीजें ताल-स्वर के साथ नहीं थीं, तो उनका उपयोग भला कैसे हो सकता था ? यदि वह शिष्य आपसे पुनः मिले, तो आप उससे कह दीजिए कि 'संगीत-कल्पद्रुम' में लगभग एक लाख चीजें छपी हुई हैं। ये चीजें किसी के लिए विशेष उपयोगी नहीं होतीं। उसे यह भी कहिएगा कि यदि दस-बीस हजार प्राचीन चीजें ही वह नकल करना चाहता हो, तो मैं अपने 'कल्पद्रुम' की प्रति से मुफ्त में कर लेने दूँगा।" यह मैंने उनसे स्पष्ट रूप से कह दिया।

चीजों के ताल-स्वर बताए हों तथा राग की समुचित कल्पना हो, तो स्वर-ज्ञानवाला व्यक्ति उन चीजों को गाने का प्रयत्न कुछ मात्रा में कर सकेगा, किन्तु ताल-स्वर यदि न बताए हों, तो एक ही ध्रुपद चार रागों में सुनने का प्रसंग आ जाता है। कुछ गायक तो प्राचीन चीजों में से मूल रचनाकार का नाम हटाकर अपना नाम डाल देते हैं। उनका इस सम्बन्ध में यही सिद्धान्त होगा कि यह तो सार्वजनिक सम्पत्ति है ! इसका चाहे-जैसा उपयोग करने की मनाई कहाँ है ! 'महादेव शंकर जटाजूट' यह ध्रुपद मुझे तीन गायकों ने तीन रागों में सुनाया ! यह मूल रूप से किस राग का होगा, यह कौन जानता है ? ठीक है, परन्तु हम तो इस चर्चा में भावभट्ट को बिलकुल भूल ही गए ! आगे सुनो :—

प्रथमा स्याच्छुद्धतोडी देशीतोडी द्वितीयिका।
बहादुरी तृतीया स्यात्तुर्या गुर्जरिका मता ॥
छायातोडी पंचमी स्यात् षष्ठी तोडी वराटिका।
हुसेनी सप्तमी प्रोक्ता जौनपूरी तथाष्टमी॥
आसातोडी च नवमी नवधा कथिता बुधैः ॥

अब गौडी के भेद सुनो :—

प्रथमा शुद्धगौडीस्याद्गौडीभेदान् ब्रुवेऽधुना।
आसावरीमिश्रणेन जोगिया परिकीर्तिता ॥
नायकी पौरवीयुक्ता खूमरी नायकीयुता।
सैव चैत्रीतिविख्याता गौरी बिभ्रारसंयुता ॥
त्रावणीसहिता सैव कथिताऽऽधुनिकैर्बुधैः ॥
मालवी देवगांधारयुक्ता गौरी प्रकीर्तिता।

श्री गौरी पूर्विकायुक्ता द्विविधा परिकीर्तिता ॥
एवं चाष्टविधा गौरी गौडभेदान् प्रचक्ष्महे ॥

अब गौड के भेद देखो :—

प्रथमः शुद्धगौडः स्यात् कर्णाटाद्यो द्वितीयकः ।
देशवालस्तृतीयः स्याच्चौरुष्कस्तु तुरीयकः ॥
द्रविडाद्यः पंचमः स्यात् षष्ठो मालवगौडकः ।
केदाराद्यः सप्तमः स्यात् सारंगाद्यस्तथाष्टमः ॥
नवमो रीतिगौडः स्यान्नारायणादिकस्तथा ।
एवं दशविधो गौडः पूर्वाचार्यैः प्रकीर्तितः ॥

इनमें से कुछ नाम हमें 'रत्नाकर' में भी दिखाई पड़ते हैं। दक्षिण के ग्रंथों में इनमें से कुछ रागों के ठाठ स्पष्ट बताए गए हैं। अब वराटी के भेद सुनाता हूं :—

आद्या शुद्धवराटी स्याद्द्वितीया कौंतली मता ।
तृतीया द्राविडी प्रोक्ता चतुर्थी सैंधवी मता ॥
अपस्थाना पंचमी स्यात् षष्ठी हतस्वरा मता ।
प्रतापाद्या सप्तमी स्यादष्टमी तोडिकादिका ॥
नागवराटी नवमी पुन्नागा दशमी स्मृता ।
एकादशी तु वाशोका कल्याणी द्वादशी मता ॥
एवं द्वादशधा प्रोक्ता वराटी पूर्वसूरिभिः ॥

अब पूर्या के भेद सुनो :—

पूर्विका ललितायुक्ता हिंदोलांता तदा भवेत् ।
ललिताभैरवाभ्यां तु भैरवांता प्रकीर्तिता ॥
ललिताविहंगडाभ्यां स्यात् पूरियाविहंगडा ।
युता पूर्याधनाश्रीः स्याद्धिंदोलेन धनाश्रिका ॥
ललितेमनसंयोगे भवेत् पूर्येमनीरिता ।
सप्तमी शुद्धपूर्या स्यादेवं सप्तविधा स्मृता ॥

आसावरी के तीन भेद इस प्रकार भावभट्ट बताता है :—

प्रोक्ता सासावरी शुद्धा जोगिया नायकी त्रिधा ॥

केदार राग तीन प्रकार का बताया है :—

शुद्धसुल्तानिमल्लोहाकेदारस्त्रिविधः स्मृतः ।
केवलो नायकी चेति द्विधा विहंगडस्तथा ॥
शुद्धः सामंतपूर्वश्च वृन्दावनी चतुर्विधः ।
ख्यातः सारंगरागोऽसौ देवगिर्यादिकस्तथा ॥

ये 'विहंगड' व 'सारंग' के भेद हो गए।

औडवः षाडवश्चैव सम्पूर्णश्च त्रिधा मतः ।
वसंतनंदकानंदस्वर्णाकर्षणपूर्वकाः ॥
गांधारपंचमाद्यश्च बहुलीपूर्वकः स्मृतः ।
रागभैरव इत्येवं भैरवो दशधा मतः ॥

ये भैरव के भेद हो गए, अब कामोद के भेद सुनो :—

प्रथमं शुद्धकामोदः कल्याणाद्यो द्वितीयकः ।
सामंताद्यस्तृतीयः स्याच्चतुर्थस्तिलकादिकः ॥
नाटांतः पंचमः प्रोक्तश्चाडीकामोदकस्ततः ।
षष्ठः सिंहलिकामोदः सप्तधा परिकीर्तितः ॥

अब गुर्जरी के भेद बताए हैं :—

गुर्जरी प्रथमा शुद्धा द्वितीया बहुलादिका ।
तृतीया मंगलाख्या स्याच्चतुर्थी सामगुर्जरी ॥
पंचमी तु महाराष्ट्री षष्ठी सौराष्ट्रगुर्जरी ।
सप्तमी दाक्षिणात्या स्याद्द्राविडी चाष्टमी मता ॥
एवमष्टविधा प्रोक्ता गुर्जरी पूर्वसूरिभिः ॥

प्रश्न—इतने भेद-प्रभेद एकत्र करने में उस पंडित को कितना परिश्रम करना पड़ा होगा !

उत्तर—मैं समझता हूँ कि उसने विशेष प्रयास नहीं किया होगा। उसके पास रत्नाकर, दर्पण, रागमाला, चन्द्रोदय, मंजरी, हृदयप्रकाश आदि ग्रंथ थे ही। उनमें से उसने ये नाम ले लिए होंगे। क्या यह काम तुम स्वयं नहीं कर सकते ! हाँ, यह सत्य है कि उसने इन ग्रंथों को प्राप्त करने को श्रम अवश्य किया होगा। यदि वह इस सम्बन्ध में भी कुछ लिख देता कि ये समस्त मिश्र राग किस प्रकार गाए जाते हैं, तो अवश्य ही उसका ग्रंथ अद्वितीय हो जाता। मगर उसने ऐसा कुछ नहीं किया। उलटे कहीं-कहीं अन्य ग्रंथों का वर्गीकरण नकल कर 'भावभट्टेन कीर्तिताः' इस प्रकार नीचे

मोहर लगादी है। सारांश यह है कि जितना तुम समझते हो, उतना भारी काम भावभट्ट का नहीं है। रागों की जानकारी प्राप्त करने में उसे बड़े-बड़े गायकों का सत्संग वर्षों तक करना पड़ता और उत्तम स्वरज्ञान व रागज्ञान प्राप्त करना पड़ता। कोरे नाम उद्धृत कर लेने में व उन्हें संस्कृत-श्लोकों में ग्रथित कर देने में कौनसी बड़ी भारी विद्या खर्च होगी ? यह सत्य है कि उसने बड़ा भारी ग्रंथ लिखा, परन्तु उसे सम्पूर्ण पढ़ जाने के बाद यदि हम स्वतः से ही यह प्रश्न करें कि हमने इसमें से क्या-क्या सीखा है, तो मैं नहीं समझता कि हम संतोषपूर्ण उत्तर दे सकेंगे ! हां, उनके संग्रह की हम अवश्य प्रशंसा करेंगे। कोई यह कहेगा कि उसी प्रकार का संग्रह आप भी तो कर रहे हैं, परन्तु यह तुम देख ही रहे हो कि हम प्रत्येक राग में कहीं भी संदिग्ध अवस्था नहीं छोड़ते। मेरा खयाल है कि जिस प्रकार हम प्रत्येक राग का ठाठ, आरोह, अवरोह, वादी, विवादी, संगति, अन्य रागों का भिन्नत्व, मुख्य अंग आदि बातें देखते जाते हैं; उस प्रकार भावभट्ट ने नहीं किया। मैं यह बात अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए नहीं कह रहा हूँ। मैंने तो यह बताया है कि उसकी और हमारी विचारधारा में कौनसा भेद है। शायद भावभट्ट के समय में इन बातों को बताने की जरूरत न रही होगी, इसलिए उसने इन्हें विस्तृत रूप से नहीं कहा है। यद्यपि हम यह दम्भ कभी नहीं करेंगे कि हम प्राचीन ग्रंथकारों से अधिक चतुर हैं; तो भी मैं यह मानता हूँ कि उनके ग्रंथों में क्या-क्या कमी रह गई है, यह बताना अपना कर्तव्य है। अस्तु, गुर्जरी के भेद बताकर भावभट्ट सेंधवी के भेद इस प्रकार कहता है :—

टक्कभाषा च भाषा स्यात्पंचमस्य ततः परम् ।
भिन्नषड्जस्य भाषास्याद्भाषा मालवकैशिके ॥
शुद्धमेलोद्भवा षष्ठी प्रोक्ता हृदयभूभुजा ।

प्रश्न—यह 'हृदय' कौन है ?

उत्तर—कहा जाता है कि किसी 'हृदयनारायणदेव' नामक राजा ने 'हृदयप्रकाश' नामक ग्रंथ रचकर प्रकाशित किया था। इस राजा का इतिहास मैं कभी ऐतिहासिक विद्वानों से पूछकर तुम्हें बताऊँगा। 'हृदयप्रकाश' ग्रन्थ बीकानेर के संग्रह में है, आगे :—

एवं च षड्विधा प्रोक्ता सैंधवी पूर्वसूरिभिः ।
मल्लारी गौंडमल्लारी मेलमल्लारिका त्रिधा ॥
अष्टाधिकं सार्धशतमुपांगानि जगुर्बुधाः ॥

इस प्रकार कहा है। भावभट्ट ने अन्य ग्रंथों से भी कुछ राग-वर्गीकरण उद्धृत कर लिए हैं। 'रत्नाकर' का ग्राम राग आदि परिच्छेद उसने ग्रहण किया है, उसका ब्योरा नहीं बताऊँगा; क्योंकि अब 'रत्नाकर' ग्रंथ प्रकाशित हो गया है। दूसरा वर्गीकरण उसने इस प्रकार दिया है :—

सद्योजातात्तु श्रीरागो वामदेवाद्वसंतकः ।
अघोराद्भैरवोऽभूत्तत्पुरुषात्पंचमोऽभवत् ॥
ईशानाख्यान्मेघरागो नाट्यारम्भे शिवादभूत् ।
गिरिजाया मुखाल्लास्ये नट्टनारायणोऽभवत् ॥
नट्टनारायणस्यापि मेघस्य भैरवस्य च ।
श्रीरागस्य च संप्रोक्तं रागत्वं पूर्वसूरिभिः ॥
पंचमो ग्रामरागः स्यात् रागांगं च वसंतकः ।
शुद्धभैरवहिंदोलौ देशकारस्ततः परम् ॥
श्रीरागः शुद्धनाटश्च नट्टनारायणेति षट् ॥
हिंदोलो दीपकश्चैव भैरवो मालकौशिकः ।
श्रीरागो मेघरागश्च षडेते पुरुषाः स्मृताः ॥
भैरवः पंचमो नाटो मल्लारो मालवस्ततः ।
देशकारः षडेते स्युः रागा रागार्णवे मताः ॥
मालवी त्रिवणा गौडी केदारी मधुमाधवी ।
ततः पहाडिका चेति श्रीरागस्य वरांगनाः ॥
देशी देवगिरी चैव वराटी तोडिका तथा ।
ललिता चाथ हिंदोली वसंतस्य वरांगनाः ॥
विभासश्चाथ भूपाली कर्णाटी बडहंसिका ।
मंजरी चैव मालश्रीः पंचमस्य वरांगनाः ॥
भैरवी गुर्जरी रेवा गुणक्री बहुली तथा ।
बंगाली भैरवस्यैव षडेता योषितो मताः ॥
मल्लारी सोरटी चैव शंकराभरणेति षट् ।
रागिण्यो मेघरागस्य भावभट्टेन कीर्तिताः ॥
कामोदी नाटिकाहीरी कल्याणी च हमीरिका ।
नट्टनारायणस्यैव पंचैता योषितो मताः ॥
धन्नासी भैरवी चैव सैंधवी मालवी तथा ।
आसावरी च पंच स्युर्भैरवस्य वरांगनाः ॥
भैरवो ललितश्चैव परजः पंचमस्तथा ।
बंगालः पंच संप्रोक्ता भैरवस्य सुता इमे ॥
भूपाली च वराटी च तोडिका पटमंजरी ।

तुरुष्कतोडिका पंच हिंदोलस्य वरांगनाः ॥
कामोदः प्रथमः पुत्रः बंगालस्तु द्वितीयकः ।
वसंतस्तु तृतीयः स्यात्तुर्यः सामः प्रकीर्तितः ॥
सामंतः पंचमः प्रोक्ता हिंदोलस्य सुता इमे ॥
रामक्री बहुली देशी जेतश्रीश्चैव गुर्जरी ।
पंचैता देशकारस्य योषितः परिकल्पिताः ॥
ललितश्च विभासश्च सारंगस्त्रिवणस्तथा ।
कल्याणः पंचमः प्रोक्ता देशकारसुता इमे ॥
गौडी पाडी गुणक्री च नादरामक्रिगौंडिके ।
श्रीरागयोषितः पंच भावभट्टेन कीर्तिताः ॥
टक्कश्च देवगांधारो मालवो गौडकस्ततः ।
कर्णाटः पंचमः प्रोक्ताः श्रीरागस्य सुता इमे ॥
मालश्रीश्चैव देशाची देवक्री मधुमाधवी ।
अहीरी पंचमी प्रोक्ताः शुद्धनाटस्य योषितः ॥
जिजावंतश्च सालंगः कर्णाटः शुद्धनाटकः ।
छायानाटश्च पंचैते शुद्धनाटस्य सूनवः ॥
वेलावली च कांभोजी सावेरी सुहवी ततः ।
सोरटी पंचमी नट्टनारायणस्य योषितः ॥
मल्लारगौंडकेदाराः शंकराभरणास्ततः ।
विहंगडः सुताः पंच नट्टनारायणस्य च ॥

मध्यमादिर्भैरवी च बंगाली च वराटिका ।
सैंधवी पंचमी प्रोक्ता भैरवस्य वरांगनाः ॥
टोडी खंबावती गौडी गुणक्री ककुभा तथा ।
मालकौशिकरागस्य योषितः पंचकीर्तिताः ॥
वेलावली च रामक्री देशाची पटमंजरी ।
ललिता पंच संप्रोक्ता हिंदोलस्य वरांगनाः ॥
केदारिका च देशी च कामोदी नाटिका ततः ।
कर्णाटी पंच संप्रोक्ता दीपकस्य वरांगनाः ॥
वसंती मालवी मालश्रीः सावेरी धनाश्रिका ।

श्रीरागयोषितः पंच भावभट्टेन कीर्तिताः ॥
मल्लारी देशकारी च भूपाली गुर्जरी तथा ।
टक्का च पंच मेघस्य योषितः कीर्तिता बुधैः ॥
बंगाली भैरवी वेलावली पुण्याकिका ततः ।
स्नेही च पंच संप्रोक्ता भैरवस्य वरांगनाः ॥
बंगालः पंचमश्चैव ललितश्च मधूकरः ।
अष्टौ सुता भैरवस्य देशाख्यो हर्षमाधवौ ॥
गुणक्रीश्चैव गांधारी श्रीहर्षी चंद्रिका तथा ।
धनाश्रीः पंचमी प्रोक्ता मालकौशिकयोषितः ॥
मेवाडः खोखरो मारुर्वर्धनः चंद्रहासकः ।
मिष्टांगो नंदनश्चैव भ्रमरश्चाष्टमः सुताः ॥
मालवाद्यकौशिकस्य संप्रोक्ता भावसूरिणा ।
वसंती चैव तैलंगी देवक्री सिंदुरी तथा ॥
आभीरी पंचमी प्रोक्ता हिंदोलस्य वरांगनाः ।
मंगलश्च वसंतश्च विनोदश्च विभासकः ॥
शुभ्रांगश्चन्द्रबिंबश्च ह्यानंदः सुखवर्धनः ।
हिंदोलस्य सुता अष्टौ ते प्रोक्ता भावसूरिणा ॥
कावेरी गुर्जरी तोडी कामोदि पटमंजरी ।
दीपकस्य प्रियाः पंच हेमाडः कुसुमस्ततः ॥
रामरागः कुंतलश्च कमलो बहुलस्ततः ।
कलिंगश्चंपकश्चाष्टौ दीपकस्य सुता मताः ॥
वराटी चैव कर्णाटी सावेरी गौंडिका तथा ।
रामक्रीः सैंधवी चैव श्री रागस्य वरांगनाः ॥
गुणसागरनामा च कल्याणश्च विहंगडः ।
गौडमालवगंभीरौ कुम्भः सिंधुस्तथा गडः ॥
श्रीरागस्य सुताष्टौ ते कीर्तिता भावसूरिणा ।
मल्लारी सोरटी ह्यासावरी कौंतलिका ततः ॥
बहुली पंचमी प्रोक्ता मेघरागस्य योषितः ।
नट्टनारायणो गौडमल्लारस्तदनंतरम् ॥
कर्णाटश्चैव केदारः शंकराभरणस्ततः ।

नारायणश्च सारंगो जालंधरः सुतोष्टमः ।
मेघरागसुताः प्रोक्ताः श्रीजनार्दनसूनुना ॥

प्रिय मित्रो ! अब मैं तुम्हें 'अनूपरत्नाकर' का राग-वर्णन तथा भावभट्ट के आधार-ग्रंथ बता चुका हूँ। कदाचित् तुम यह पूछोगे कि इन सभी रागों के प्रत्यक्ष लक्षण कहाँ मिल सकेंगे ?

प्रश्न—जी हाँ, हम यही बात अब पूछनेवाले थे ?

उत्तर—इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन है। मुझे यह विश्वास नहीं कि संस्कृत-ग्रंथों में मिश्र रागों के समाधानकारक लक्षण मिल जाएँगे ! अपनी देशी भाषा के ग्रंथों में कुछ-कुछ इन रागों के स्वर बताने-जैसा उपक्रम किया हुआ मुझे दिखाई दिया, परन्तु साथ ही यह भी स्पष्ट दिखाई दिया कि उन ग्रंथकारों ने प्राचीन ग्रंथों के आधार ही प्राप्त नहीं किए हैं। स्वयं भावभट्ट के ग्रंथों में इन रागों की स्पष्टता योग्य रूप से नहीं मिलती। जो राग परिजात, रागविबोध, चन्द्रोदय आदि ग्रंथों में बताए हैं, उनके लक्षण तो सुबोध ही हैं। हाँ, 'राधागोविंद संगीतसार' में भावभट्ट के कुछ रागों के स्वर किसी प्रकार बताने का प्रयत्न किया है। प्रतापसिंह ने ऐसे रागों के स्वर अपने समय के गायकों के पास से संभवतः प्राप्त किए होंगे, परन्तु उसने इस तथ्य का कहीं भी उल्लेख नहीं किया। मुझे यह विश्वास नहीं कि अप्रसिद्ध रागों के विषय में तुम्हें प्रतापसिंह से कुछ अच्छी सहायता मिलेगी। प्रत्येक राग-वर्णन में उसने कहा है—'शास्त्र में तो अमुक सुरन सों गायो है।' परन्तु इससे विशेष अर्थ सिद्ध नहीं होता। यह मैं अपना व्यक्तिगत मत बता रहा हूँ, शायद यह गलत भी हो।

प्रश्न—क्या भावभट्ट ने अपना स्वतः का मत कहकर कोई राग-वर्गीकरण नहीं बताया ?

उत्तर—हाँ, इस प्रकार भी किया है। उसे भी मैं बता दूँ, तो अच्छा ही रहेगा। उसने मुख्य मेल (जनक ठाठ) बीस मानकार प्रचलित रागों को उन्हीं में व्यवस्थित किया है। प्रत्येक राग बताते हुए, अपने पास के ग्रंथों के लक्षण भी वह बताता गया है। मैंने तुम्हें अभी जो श्लोक बताए हैं, वे यद्यपि भावभट्ट के हैं, तो भी उनका विवरण प्रायः प्राचीन ग्रंथों से ही उसने ग्रहण किया है। भावभट्ट के ग्रंथों की समता 'संगीतसार' से कभी नहीं हो सकती। खैर, मैं उसके मेल बता रहा था न ? वे इस प्रकार हैं :—

टोडीगौडीवराटीनां केदारशुद्धनाटयोः ।
मालवाकौशिकाख्यस्य श्रीरागस्य ततः परम् ॥
हंमीराहेरिकल्याणदेशाक्षीदेशिकारकाः ।
सारंगस्य च कर्णाटः सकामोदहिजेजकः ॥
नादरामक्रिहिंदोलमुखारीसोमरागकाः ।

एतेषां, मेलसंजातरागाणां च यथाक्रमम् ॥
लक्षणं वक्ष्यते किंतु लोकवृत्तानुसारतः ॥

इन मेलों के स्वर व जन्यराग भावभट्ट इस प्रकार बताता है :—

तोडीमेलः प्रसिद्धः स्यादेकैकगतिकौ निगौ ।
मेलादतस्तोडिकाद्याः कतिचित्तु भवंति हि ॥

तोड़ी ।

निगौ तृतीयगतिकौ गौडीमेलः प्रकीर्तितः ।
मेलादतो गुर्जरी च बहुला रामक्रीस्तथा ॥
आसावरी च मारुश्च गुणक्री पटमंजरी ।
पचंमः शुद्धललितष्टक्को मालवगौडकः ॥
पूर्वी बंगालपाडीपरजाद्याः कतिचित् परे ।

गौडी ।

निगौ तृतीयगतिकौ वराटीमेल एव सः ।
अस्माद्वराट्यः सामादिवराट्याद्या अनेकशः ॥

वराटी ।

रिधौ द्वितीयगतिकौ तृतीयगतिकौ निगौ ।
एष केदारमेलः स्यादतो जाताश्च रागकाः ॥
केदारगौंडमल्हारनट्टनारायणास्ततः ।
केदारनाटादिकास्ते रागा अस्मिन् समुत्थिताः ॥

केदारः ।

तृतीयगतिकाः शुद्धनाटमेले रिधौ गनी ।
अस्मिन्मेले संभवंति शुद्धनाटादिकाः परे ॥

शुद्धनाटः ।

एकैकगतिकौ रिधौ निगौ मालवकौशिके ।
अस्मिन्मेले मालवश्रीर्धन्नासी भैरवी तथा ॥
सैंधवी देवगान्धार इत्याद्या ह्यपरे यथा ।

मालवकौशिकः ।

धरिन्येकैकगतिका गस्तृतीयगतिर्यथा ।
श्रीरागमेल एषः स्यात् श्रीरागाद्या अनेकशः ।

श्रीमेलः ।

द्वितीयगतिको रिश्च तृतीयगतिकौ निगौ ।
हमीरमेल एषः स्याद्धमीराद्या अनेकशः ॥

हमीरः ।

एकतृतीयगतिकौ गनीस्वरौ यथाक्रमम् ।
द्वितीयगतिको रिश्च त्वाहेरीमेल एव हि ॥

आहेरी ।

मनी तृतीयगतिकौ द्वितीयगतिकोऽपि रिः ।
एकैवगतिर्गांधार एष कल्याणमेलकः ॥
अतोऽपि मेलात् कल्याणप्रमुखास्ते भवंति हि ॥

कल्याणः ।

तृतीयगतिकौ रिगौ निश्च देशाक्षिमेलकः ।
अतोऽपि मेलाद्देशाक्षी प्रमुखाद्या भवंति हि ॥

देशाक्षीः ।

तृतीयगतिनिगमा देशकारस्य मेलकः ।
देशिकारस्तिरवणी देशी ललितदीपकौ ॥
विभासाद्याहिकेचित्तु संभवंत्यत्र मेलनात् ।

देशकारः ।

तृतीयगतिमनिधा द्वितीयगतिकोऽपि रिः ।
तुरीयगतिको गश्च मेलः सारंगरागजः ॥
मेलादतोऽपि सारंगप्रमुखाद्या भवंति च ।

सारंगः ।

तृतीयगतिगनिधा द्वितीयगतिकोऽपि रिः ।
तदा कर्णाटमेलः स्यात्तत्र संभूतरागकाः ॥
कर्णाटरागः सामंतः सौराष्ट्री छायनाटकः ।

कर्णाटमेलः ।

निगावेकैकगतिकौ तृतीयगतिकोऽपि मः ।
एष कामोदमेलः स्यादस्मादन्यतराः परे ॥

कामोदः ।

गनी ह्येकगती यत्र हिजेजाख्यस्य मेलकः ।
मेलादतो हिजेजश्च भैरवाद्याह्यनेकशः ॥

हिजेजः ।

निगावेकगती मेलो नादरामकृतेश्च सः ।
मेलादतो नादरामक्याद्याश्च कतिचित्परे ॥

नादरामकृतिः ।

द्वितीयगतिको रिधौ त्वेकैकगतिकौ गनी ।
तदा हिंदोलमेलः स्यात्तज्जो हिंदोलरागकः ॥
वसंतरागाद्यन्येऽपि केचित्केचिद्भवंति हि ।

हिंदोलः ।

सप्तस्वराः स्वभावस्था मुखारीमेलको भवेत् ।
मुखारीमेलतोऽन्येपि मुखार्याद्या भवंति च ॥

मुखारी ।

निरेकगतिकः सोमरागः सदाशिवप्रियः ।
अमुष्मादपि केचित्तु रागा नित्यं भवंति हि ॥

सोमः ।

पं० भावभट्ट के सम्पूर्ण बीस मेल मैंने ऊपर एकसाथ बताए हैं। तुम्हारे सम्मुख ये ही श्लोक बार-बार आते रहेंगे, जबकि मैं भिन्न-भिन्न रागों का वर्णन करते हुए स्थान-स्थान पर इनका उपयोग करूँगा। इसके पारिभाषिक नाम सरल हैं। यह कहा जा सकता है कि इसने प्रायः पुण्डरीक के ही पारिभाषिक नाम लिए हैं। तुम्हें याद होगा कि 'रागमाला' के स्वर समझाते हुए मैंने यह कहा था कि इसमें रे, ध, म, नि स्वर तीन-तीन गति के और केवल गांधार चार गति का बताया गया है। रे, ध, स्वरों की गति समझने में विद्यार्थियों को कुछ कठिनाई भी पड़ सकती है।

प्रश्न—यह हम समझ गए। ऋषभ की मूल अवस्था अर्थात् हिन्दुस्तानी का कोमल रे मान लें। धैवत को भी इसी प्रकार कोमल ध समझ लें। ग्रंथकार चतुःश्रुतिक रे, ध और पंचश्रुतिक रे, ध मानता है। पंचश्रुतिक रे, ध पुनः उसके ग, नि स्वर हो जाते हैं, यह भी हम जानते हैं। एक-एक गति के रे, ध को हम चतुःश्रुतिक रे, ध समझें और दो-दो गति के रे, ध पंचश्रुतिक रे, ध समझ लें।

उत्तर—परन्तु पंचश्रुतिक रे, ध तो हिन्दुस्तानी पद्धति के तीव्र रे, ध स्वर ही उच्चारित होने चाहिए।

प्रश्न—जी हाँ, हमें यह ज्ञात है। आपने बताया था कि ग्रंथकार ने वीणा के दूसरे परदे पर शुद्ध ग यानी पंचश्रुतिक रे माना है। इसी परदे पर मध्यम के तार के नीचे शुद्ध पंचम निकलता है, यह भी एक बड़ा महत्त्वपूर्ण चिह्न है। इसमें पंचश्रुतिक रे यानी शुद्ध ग का प्रमाण (२७० आन्दोलन) माना जाएगा। हमारे सितार पर यही परदा तीव्र रे का है। हमने अपने ध्यान में जमा रखा है कि जब आगे चलकर संगीत बारह स्वरों पर निर्भर हो गया, तब पंचश्रुतिक रे, ध, चतुःश्रुतिक रे, ध और शुद्ध ग, नि ये हिन्दुस्तानी में तीव्र रे, ध माने गए। गान्धार की तीन गति साधारण, अन्तर व मृदु म का हमें बोध है। आगे चलकर अन्तर व मृदु दोनों परस्पर मिल गए और अब दक्षिण की ओर एक ही नाम 'अन्तर ग' का प्रयोग होता है। इसी प्रकार काकली नि और मृदु सा मिलकर 'काकली नि' नाम अब प्रचार में है। ये स्वर हिन्दुस्तानी गायक तीव्र ग और तीव्र नि नामों से पहचानते हैं। हम समझते हैं कि यह सम्पूर्ण भाग अच्छी तरह हमारी समझ में आ गया है। चतुःश्रुतिक रे, ध भावभट्ट ने श्रीराग मेल में बताए हैं, यह हमारे ध्यान में जमा हुआ है। परन्तु हम समझते हैं कि प्रचार में तीव्र रे, ध स्वर ही यहाँ प्रयोग में आएँगे; क्योंकि दक्षिण के चतुःश्रुतिक रे, ध स्वर अपने रे, ध स्वरों से आज भी मिलते हैं, यह आपने भी कहा था।

उत्तर—शाबाश ! शाबाश !! ये सभी बातें तुमने बहुत अच्छी तरह ध्यान में जमा रखी हैं। परन्तु मित्रो ! हम लोग कहाँ-से-कहाँ आ निकले ? हमें अपने मुख्य विषय का बिलकुल ध्यान नहीं रहा। परन्तु यह अच्छा है कि तुम लोग भी मेरे-जैसे संगीत-प्रेमी हो, अन्यथा अन्य विद्यार्थी तो इन समस्त पुराणों से कभी के उकता गए होते। एक तरह से यह अच्छा ही हुआ कि तुमने इन सब बातों को धैर्यपूर्वक सुनकर ग्रहण कर लिया। क्योंकि भावभट्ट के ग्रंथ अभी तक प्रकाशित नहीं हुए और यह भी नहीं कहा जा सकता कि वे कब प्रकाशित होंगे, अतः इस सम्बन्ध में यह जानकारी प्राप्त कर लेना भी तुम्हारे लिए अच्छा ही हुआ है।

प्रश्न—अब आप हमें जोगिया राग का स्वरूप स्वरों में बताइए ?

उत्तर—वह इस प्रकार होगा :—

जोगिया

म, रेसा, रेरेमरेसा, रेम, मपप, धमरेसा; सारेसा; रेरेसा, निध, सा, मपधपधम, रेमरेसा, निधपधम, निधम, रेसा; सारेसा । सारेमम, पप, धधप, धसां, धपधम, सांनिधप, पधनिधप धमरेसा; सारेसा । धध, धधपप, धसांनिधप, मपधधम, सांनिधपम, धम, रेमपधम, निधम, पमरेसा; सारेसा ।

मम, पप, ध, सां, सांरेंसां, सांरेंमंमं, रेंरेंसां, सांरेंसांनिध, पसांनिधप, ममपप, धधमप, सांरेंसांनिधप, मपधप, निधपधम, रेरेसा; सारेसा । सारेसा, सारेमरेसा, धसा, रेरेसा, सारेमपधधममरेसा, निनिधध, मपधप, ममरेसा, सांनिध, रेंसांनिधमपधध, ममरेरेसा; सारेसा ।

स्थायी

सरगम : तीनताल

०				१				×				३			
म	म	प	ध	सां	नि	ध	नि	ध	प	ध	म	प	ऽ	ऽ	ऽ
म	म	प	प	ध	ध	म	प	म	प	ध	प	म	म	रे	सा
सा	सा	रे	रे	म	म	प	प	ध	ध	ध	म	म	म	प	ध

अंतरा

०				१				×				३			
म	म	प	ध	सां	ऽ	सां	ऽ	सां	रें	मं	मं	रें	रें	सां	ऽ
रें	रें	सां	नि	ध	प	ध	म	प	ध	सां	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
सां	रें	सां	नि	ध	प	ध	म	म	प	ध	प	म	म	रे	सा
सा	रे	म	म	म	म	प	प	प	प	ध	ध	म	म	प	ध

स्वयं मुझे भी उत्तर का संगीत ही अधिक पसन्द आता है, यह मैं बता ही चुका हूँ। मेरा समस्त अध्ययन भी इसी पद्धति का है। मेरे अनेक गुरु हुए और वे सब उत्तर-पद्धति के ही थे। मैं समझता हूँ कि दक्षिण की ओर संगीत-शिक्षण देने की पद्धति ही ऐसी है कि विद्यार्थियों को अच्छी तरह स्वर-ज्ञान हो जाता है। मद्रास, तंजोर, मैसूर, त्रिवेंद्रम आदि जो दक्षिण की ओर संगीत के लिए प्रसिद्ध नगर हैं, वहाँ जाकर प्रत्यक्ष देखी हुई स्थिति ही मैं बता रहा हूँ। मुझे स्वत: स्वर-ज्ञान है, यह तुम जानते ही हो। यह मुझे उत्तर के गायकों के सहवास से ही प्राप्त हुआ है, यह मैं प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करूँगा। यह कहना भी गलत नहीं है कि हमारे अनेक गायकों को स्वर-ज्ञान नहीं है। अस्तु एक बार एक गायक ने भैरव-अंग के निम्न स्वरसमुदाय गाकर मुझे 'सावेरी' राग सुनाया :—

'रेरेसा, ध, निध, सारेरेसा, मगरे, पमगरेसा; रे, मप, धधप, मप, मगरे, धपमगरे, पमगरेसा; निनिधधप, —धनिधप, धमप, धप, मगरे, सा।'

इस स्वर-समुदाय में 'पधम, रेसा; रेमप, धम, रेसा; इस प्रकार के स्वरों को उसने खास तौर से टाल दिया। शास्त्रीय दृष्टि से उसका राग भैरव राग से भिन्न हो ही जाता है, क्योंकि उसने आरोह में गांधार व निषाद वर्ज्य किए और 'रेम पधप' यह तान भी भैरव-प्रतिबंधक ग्रहण की। मैंने तुम्हें पहले ही बताया है कि गुणक्री, जोगिया और सावेरी राग बहुत ही पास-पास दिखाई देने वाले हैं। इन्हें अच्छी तरह नियमों को सँभालते हुए भिन्न-भिन्न करके गाना बड़ी कुशलता का काम है।

प्रश्न—तो फिर हमें यह बता दीजिए कि सावेरी राग हम कैसे गाएँ।

उत्तर—यह मैं बतानेवाला ही था। सावेरी में तुम जितनी मधुरता से भैरव और जोगिया का मिश्रण कर सको, उतना ही अच्छा होगा। जितना गांधार दिखाई पड़ेगा, उतना ही जोगिया दिखाई देगा। उसे आगे लाकर जब ऋषभ पर आंदोलन आएगा, तब भैरव सम्मुख हो जाएगा, यही सारी विशेषता है। 'सा, रेम, मप, धम, पधम, रेसा' इन स्वरों के गाए जाने पर कभी भी भैरव नहीं दिखाई देगा। भिन्न-भिन्न राग-स्वरूप आँखों के सम्मुख उपस्थित रहें और अपने-अपने नियमों से वे परस्पर भिन्न होते जाएँ, तो क्या यह आनन्द की बात नहीं है? अब इस स्वरसमुदाय से भैरव और जोगिया, इन दोनों रागों को दूर करने का प्रयत्न करता हूँ। देखो :—

'सा, रेम, पमप, मग, रेसा; सारेसा, धसा, गरेसा, रेसा, मरेसा, रेम, पधप, मगरेसा; सारेरेसा, ममप, निधप, पम, पमगरे, मगरेसा।'

बीच-बीच में किसी को 'कालिंगड़ा' (भैरव ठाठ का एक राग) का आभास हो सकता है, परन्तु कालिंगड़ा के आरोह में गांधार व निषाद बिलकुल वर्ज्य नहीं हैं।

मैं समझता हूँ कि इतने विवरण से इस राग का प्रत्यक्ष स्वरूप तुम्हारे ध्यान में सरलता से आ जाएगा।

प्रश्न—अब आप किस राग को लेंगे ?

उत्तर—अब मैं राग 'सावेरी' के सम्बन्ध में दो शब्द कहूँगा। इस राग को कोई-कोई दक्षिण का जोगिया समझते हैं, एक तरह से यह समझना स्वाभाविक भी है। यह मैंने तुम्हें बताया भी था कि जोगिया और सावेरी में बहुत अधिक साम्य है। सावेरी का ठाठ ग्रंथकारों ने मालवगौड ही माना है, अतः यह सहज ही ध्यान में आ जाएगा कि इस राग में ऋषभ और धैवत कोमल हैं। इसके आरोह में गांधार व निषाद स्वर वर्ज्य होते हैं, इसलिए सावेरी और जोगिया परस्पर बहुत निकट आ जाते हैं। अवरोह में गांधार लेने से यह राग जोगिया से भिन्न हो जाता है। गायक लोग वादी-संवादी स्वरों में भिन्नता मानकर भी इन दोनों रागों को अलग-अलग गाकर दिखा सकते हैं। 'वादिभेदेरागभेदः' यह हमारा प्रसिद्ध नियम ही है। जोगिया में 'समयोःसंवाद' मैंने बताया ही था। सावेरी में कोई पंचम और षड्ज वादी स्वर मानते हैं। जोगिया और सावेरी को अलग-अलग कर गाने में अवश्य ही कुशलता की आवश्यकता है। दक्षिण की ओर सावेरी प्रसिद्ध व लोकप्रिय राग है। यह अपने यहाँ भी कभी-कभी सुनाई पड़ जाता है। मैं समझता हूँ कि हिंदुस्तानी गायक इस राग को दक्षिण से ही इधर लाए होंगे। दक्षिण का गायक यदि सावेरी गाता होगा, तो भी वह तुम्हें जोगिया ही जान पड़ेगा। 'सा <u>रे</u> म, म प <u>ध</u> सां, सां <u>रें</u> सां। नि <u>ध</u> प, म प, <u>ध</u> प, म ग <u>रे</u> सा' इस प्रकार का आरोह-अवरोह तुम्हारे हृदय में जोगिया की मूर्ति तत्काल खड़ी कर देगा। 'म म प, <u>ध</u> सां <u>रें</u> सां' यह तान जोगिया और सावेरी, दोनों में समान है। जोगिया में हम '<u>ध</u> म <u>रे</u> सा' इस तरह लेते हैं, इस प्रकार न लेते हुए यदि '<u>ध</u> प, म ग, <u>रे</u> सा' इस प्रकार किया, तो सावेरी अलग हो जाएगी। दक्षिण में राग-लक्षणों की ओर बहुत अधिक ध्यान दिया जाता है। एकाधिक बार वे चाहे राग के माधुर्य की ओर कम ध्यान देंगे, परन्तु ठाठ और वर्ज्यावर्ज्य स्वरों की ओर से कभी भी दृष्टि नहीं हटाएँगे। तुम्हें याद ही होगा कि दक्षिण की ओर स्वर-ज्ञान पर अधिक ध्यान दिया जाता है, इस बात को मैं कह भी चुका हूँ। मेरा यह कहना नहीं है कि उत्तर की ओर के गायकों को बिलकुल ही स्वर-ज्ञान नहीं होता। इनमें कोई बहुत अच्छे स्वरज्ञाता भी हमें प्राप्त होते हैं। उनके रागविस्तार करने की विशेषता दक्षिण के गायकों में हमें दिखाई नहीं पड़ती। तो भी उत्तर के गायकों में जो-जो दोष हैं, उन्हें अस्वीकार कैसे किया जा सकेगा ? अपने रागों के ही नियम न जानना, नियम जाननेवालों का उपहास करना, सदैव बुरा बोलना, ये स्पष्ट दोष क्या अपने गायकों में हमें प्राप्त नहीं होते ? मैं तुमसे यह कहता ही आया हूँ कि अनियमित रूप से कभी कुछ भी नहीं गाना चाहिए। किसी प्रसिद्ध राग में चाहे जैसे एक-दो स्वर घुसेड़कर अप्रसिद्ध राग गाने का श्रेय गायक थोड़ी देर के लिए चाहे प्राप्त कर ले, परन्तु मर्मज्ञ श्रोता उस गायक की 'फिरत' (रागविस्तार करने का तरीका) ध्यान से देखकर उसके गायन का मूल्य निश्चित कर लेंगे। फिर

प्रश्न—आगे तार-स्थान में कैसे जाना होगा ?

उत्तर—वहाँ इस प्रकार करना पड़ेगा :—

'प, ध़ध़प, ध़सां, सांर्रेंगंर्रेंसां, निध़, निध़प, मप, र्रेंसांनिध़, प, निध़प, ध़मग, रे़म, गरे़सा।'

प्रश्न—गुरुजी ! वास्तव में यह मिश्रण कुछ निराला ही प्रतीत होता है। ठीक है, परन्तु पंचम स्वर को वादी दिखाना है, इसे किस प्रकार आगे रखा जाएगा ?

उत्तर—यह इस प्रकार किया जा सकता है :—

'सारे़म, पप, ध़पप, मप, निध़प, सांनिध़प, पध़मप, मगरे़, पमपमगरे़, गरे़, सा, साध़सा, मपध़प, सा, रे़सा, मगरे़, पमगरे़सा।'

मैं समझता हूँ कि इस प्रकार के स्वरसमुदाय अब तुम लोग भी धड़ल्ले से बना सकते हो, इसमें कोई विशेष कला नहीं चाहिए। सारी खूबी इतनी ही है कि राग की रंजकता नष्ट न होनी चाहिए। प्रत्येक राग के स्वरसमुदाय तो तुम कैसे और कितने कंठस्थ कर सकोगे ? मैं नमूने बता रहा हूँ, इन्हें बार-बार सुनकर समझ लेना पर्याप्त है। एक बार ये तुम्हें अच्छी तरह आने लगे कि मैं तुमसे ही ऐसे नवीन टुकड़े तैयार कराकर गाने के लिए कहूँगा। जहाँ ये बिगड़ जाएँगे, वहाँ तत्काल भूल समझा दूँगा और गलती दुरुस्त कर दिखाऊँगा। इस प्रकार से तुम स्वयं नवीन तानें उत्पन्न करना सीख जाओगे। विद्यार्थीगण तानों को शुरू-शुरू में बड़ा भारी हौआ समझते हैं। हमारे यहाँ उचित पद्धति से शिक्षण न होने से विद्यार्थियों की बुद्धि का उत्तम विकास नहीं होता। स्थायी व अंतरा गुरु द्वारा बता दिए जाने पर शिष्यों से नवीन तानें उत्पन्न करवानी चाहिए। अपने यहाँ कभी-कभी यदि कोई शिष्य ऐसा प्रयत्न गायक के सम्मुख करने लगता है, तो गायक उसे तत्काल डाँट-फटकार कर निरुत्साहित कर देते हैं, यह व्यवहार बिलकुल गलत है। ऐसे प्रयत्नों को तो उत्साह ही देना चाहिए। जहाँ पर गलती हो, या नीरसता हो, वहाँ गुरु को चाहिए कि वह शिष्य के प्रयत्न की प्रशंसा करते हुए होनेवाली गलती को दुरुस्त कर गाकर दिखाए और सुधारी हुई तान शिष्यों से उच्चारित करवा ले। यह सब अभ्यास की विद्या है। विद्यार्थियों में नवीन काम करने की स्फूर्ति होनी ही चाहिए। गुरु को उन लोगों के सम्मुख बार-बार गाना चाहिए। और उनसे अपना साथ कराना चाहिए। प्रथम गुरु को चाहिए कि राग के समस्त नियम अच्छी तरह समझा दे, फिर आरोह-अवरोह का उच्चारण कराए। यह भाग अच्छा तैयार हो जाने पर शांतिपूर्वक अनेक बार छोटे-छोटे हिस्सों से स्थायी सुनाए। इसे सौ-पचास बार अपने साथ शिष्यों से गवा ले, तब अंतरे की ओर बढ़े। चीज में रागवाचक जो तानें आती हों, उन्हें शिष्यों के हृदय में अच्छी तरह जमा दे। इस कार्य में शिष्यों से आरम्भ में अनेक स्थानों पर गलतियाँ होना सम्भव है, परन्तु इसके लिए उनका उपहास कभी न किया जाए, क्योंकि ऐसा करने से शिष्य खुले हृदय से नहीं गाते। मैं चिल्लाता हूँ, वैसे ही तू भी

चीख' यह तरीका सुशिक्षित विद्यार्थी कैसे पसन्द करेंगे ? गुरु को प्रत्येक बात इस तरह बतानी चाहिए कि वह विद्यार्थियों द्वारा उनकी स्मृति-पुस्तिका (नोट-बुक) में लिखी जा सके। शिक्षित शिष्यों के हेतु गुरु को अधिक श्रम नहीं करना पड़ता। थोड़ा-सा संकेत ही उन्हें पर्याप्त होता है। अस्तु,

पंचम स्वर का परिणाम किस तरह बढ़ाया जाता है, यह मैं तुम्हें बता चुका हूँ। सावेरी में मध्यम स्वर अधिक न बढ़ाया जाए, क्योंकि ऐसा करने से यह राग जोगिया को आगे ले आएगा ! संस्कृत-ग्रंथों में 'शुद्ध सावेरी' नामक जो राग हम देखते हैं, उसका ठाठ बिलावल है। अतः इस राग की गड़बड़ी अपने भैरव ठाठ की सावेरी से कभी नहीं हो सकती। तुम्हें याद ही होगा, मैंने तुम्हें आसावरी राग के सम्बन्ध में दो शब्द पहले बताए थे ?

प्रश्न—जी हाँ। आपने बताया था कि सभी ग्रंथकारों ने आसावरी को भैरव ठाठ में माना है और उसके आरोह में ग, नि स्वर वर्ज्य करने की व्यवस्था की है।

उत्तर—ठीक है। दक्षिण के ग्रंथकार सावेरी के स्वर इस प्रकार बताते हैं :—

'सा, रेरेसा, मपधप, धसां, धप, रेंरेंसां, मपधरेंसां, गंगंरेंसां, रेंसांनिध, पमप, मपधधसा, रेगरेसा, मपधपमगरेसा, सारेसा निध, निधप,
मगरे, गरेसा, ...'

यह स्वरूप तुम्हें ध्यान में जमा लेना चाहिए। मेरे गुरु ने इस राग का एक 'सरगम' मुझे इस प्रकार बताया था :—

स्थायी

सावेरी, झप ताल

ध	ध	। प	म	प	। ध	प	। म	ग	रे
ग	रे	। सा	रे	म	। प	प	। ध	म	प
ध	ध	। प	ध	सां	। रें	गं	। रें	सां	नि
ध	ध	। प	नि	ध	। प	म	। ग	रे	सा

अंतरा

म	प	। प	ध	ध	। सां	ऽ	। सां	रें	सां
सां	ध	। ध	सां	रें	। सां	ध	। नि	ध	प
म	प	। प	गं	रें	। सां	नि	। ध	नि	ध
प	म	। प	ध	प	। म	ग	। रे	रे	सा

इस राग का विस्तार करना तुम्हें इस प्रकार सरलता से आ जाएगा :—

'रेरेसा, धध, रेरेसा, पमपमगरेसा, रेमम, पपधमप, रेमप, धधनिधप, मपधपमप, मगरेसा। सारेसानिध, निधप, मपध, सा, रे, मपमग, रेसा; पपध, सां, रेंरेंसां,

सांरेंमंगंरेंसां, सांरेंसांनिध, निधप, मप, ध, गंमंगंरेंसां, निध, धप, मपधप, निधपमगरे, धपमगरे, सा, सारेसा।'

प्रश्न—यदि हम निम्न-प्रकार की कोई सरगम बना लें, तो क्या 'सावेरी' की हो जाएगी ?

सां	रें	सां	नि । ध	नि	ध	प । म	ग	रे	प । म	ग	रे	सा
रे	रे	सा	नि । ध	ध	सा	ऽ । म	ग	रे	प । म	ग	रे	सा
म	म	प	प । ध	ध	सां	ऽ । रें	गं	रें	पं । मं	गं	रें	सां
सां	नि	ध	नि । ध	प	ध	म । प	ध	प	म । ग	ग	रे	सा

उत्तर—इसमें रामकली व कालिंगड़ा मिले हुए दिखाई देते हैं। कुछ अधिक स्पष्ट जोगिया लाना हो, तो कैसा करोगे ? सा, म, प स्वर अधिक मात्रा में लिए गए तो अच्छा दीखेगा। ठीक है न ?

प्रश्न—तो फिर प्रथम झप ताल में जो सरगम आपने बताया है, उसमें इस प्रकार किया जाए :—

म	म । प	प	ध । सां	नि । ध	ध	प
म	प । ध	म	प । म	ग । रे	रे	सा
सा	रे । ग	रे	सा । नि	ध । सा	ऽ	सा
ध	ध । प	म	प । म	ग । रे	रे	सा

अंतरा

म	म । प	ध	प । सां	ऽ । सां	रें	सां
रें	रें । गं	रें	सां । रें	सां । नि	ध	प
म	प । ध	म	प । म	ग । रे	रे	सा

आरोह में गांधार नहीं है, अतः जोगिया की छाया कुछ-न-कुछ दुर्निवार हो जाती है। यह कैसे कहा जा सकता है कि शास्त्रीय दृष्टि से राग-भिन्नता नहीं है ? अपने गायक इन दोनों रागों को ठीक ही मिलाकर गाते हैं।

उत्तर—यह सत्य है। देश-सोरठ, परज-कालिंगड़ा, धनाश्री-भीमपलासी, काफी-सिंधुरा, आसावरी-जौनपुरी, पूर्या-मारवा, सूहा-सुघराई आदि मिश्रण अपने यहाँ हम सदैव सुनते हैं। लगभग पच्चीस जोड़े इस प्रकार निकाले जा सकते हैं। इनका मिश्रण जो समझदारी से करते हैं, वे गुणी कहलाए जाते हैं। समप्राकृतिक रागों का एक कोष्ठक मैं तुम्हें आगे चलकर बताऊँगा। यद्यपि दक्षिण की ओर अधिक सावधानी से राग-लक्षण सँभाले जाते हैं, तो भी वास्तविक कला की दृष्टि से

उधर के गायक अभी भी उत्तर के गायकों से पीछे हैं। मुझे याद है कि कुछ दिन पूर्व हमारी 'गायन-उत्तेजक मंडली' में दक्षिण का एक उत्तम स्वरज्ञानी गायक आया था। उसे उस तरफ के राजे-रजवाड़ों की ओर से बड़ी-बड़ी पदवियाँ भी प्राप्त हुई थीं, यह बात हमें उसके द्वारा बताए हुए सिफारिशी पत्रों से मालूम हुई। दक्षिण के प्रसिद्ध राग तो वह अच्छी तरह जानता ही था, परन्तु उत्तर के कुछ रागों की साधारण जानकारी भी उसने प्राप्त की थी। उसने अपने जलद तानों की सरगम भली प्रकार गा सुनाई। परन्तु उत्तर के गायकों की वह अत्यन्त मधुर, मीड़ व भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न रीतियों से वादी स्वर दिखाने की खूबी, बिना विशेष रूप से सिखाए उसे कैसे आ सकती थी? इसके सिवाय उसके वे गाने भी हमें हिंदुस्तानी पद्धति के मालूम नहीं होते थे। उसके वे टूटे-टूटे स्वर, चाहे जिस जगह पर रुकना, मात्रा के आधार पर तान लेना, उलटे-सीधे तरीके से आवाज को छोटा-बड़ा करना, यह सब बातें देखकर किसी को आनन्द नहीं आया।

प्रश्न—तो फिर वादी स्वरों की विशेषता अच्छी तरह जाने बिना उत्तम संगति करना भी उससे नहीं आ सका होगा? उससे आप प्रश्न पूछ देखते, तो बहुत अच्छा होता। उसने कौन-कौनसे राग गाए थे?

उत्तर—वह गायक कुछ चंट था, अतः उसने पहले अपने बड़े-बड़े हिंदुस्तानी रागों को गाने का रूपक गाँठा, किंतु वह कृत्य उससे अच्छी तरह नहीं सध सका। पूरिया, दरबारी, ललित राग उत्तम रूप से गाना बड़ी कुशलता का कार्य समझा जाता है। उसने यही राग हाथ में लिए, परंतु रंग जमता उसे दिखाई न दिया। श्रोताओं को अपना गायन कितना पसन्द आ रहा है, यह चतुर गायकों को तुरन्त ही मालूम हो जाता है। उसकी वादी स्वर की कल्पना जानने की मेरी इच्छा हुई, तो मैंने „उससे दस-पाँच रागों के (हिंदुस्तानी रागों के) वादी स्वर पूछे। तुमको यह जानकर आश्चर्य होगा कि उसने प्रत्येक राग का वादी स्वर षड्ज बताया। पूरिया, कल्याण, दरबारी, केदार तथा भैरव, इन सब रागों के वादी स्वर षड्ज बतानेवाले को हिंदुस्तानी पद्धति के तथ्यों की कितनी जानकारी होगी, इसकी कल्पना अब तुम सहज में ही कर सकते हो। ऐसे अज्ञ गायक अपने यहाँ भी निकलेंगे; किंतु वे अच्छे ठिकाने के सीखे हुए होने के कारण उनकी चीजें नियमबद्ध रची हुई होंगी तथा वे जब तक अपने ढंग से गाएँगे, तब तक उनका गायन विसंगत व कर्णकटु नहीं होगा।

प्रश्न—तो फिर उस गायक की वादी स्वर के विषय में क्या धारणा होगी?

उत्तर—मुझे ऐसा दिखाई दिया कि वादी का अर्थ Tonic (Key Note) मात्र ही वह समझता होगा। हम 'वादी' शब्द को भिन्न अर्थ में आजकल ग्रहण करते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि अपना व्यक्तिगत मत मैंने तुम्हें बार-बार इसी प्रकार बताया है कि दक्षिण के गायकों को, उत्तर के गायकों से सीखने-योग्य बहुत-सी बातें हैं। दक्षिण की ओर प्रवास करते समय एक बार मेरे सम्मान के हेतु उधर के

एक मित्र ने एक छोटा-सा 'जलसा' किया। उसमें उस शहर के कसबी लोगों को गायन-वादन के लिए आमन्त्रित किया। गायकों ने शंकराभरण, रीतिगौड़, धनाश्री, पूर्व्वीकल्याण आदि राग गाए। गायन समाप्त होने पर मैंने सरल हृदय से अपना मत उन मित्र महाशय को बताया, उसे सुनकर उन्हें कुछ आश्चर्य हुआ। दूसरे दिन मैंने हिन्दुस्तानी राग भिन्न-भिन्न अलंकारों से गाकर दिखाए तथा उनकी व उनके गायकों की सहानुभूति व संतोष प्राप्त किया। मेरा कथन उनके गायकों को तत्काल ही जँच गया और वे गायक बोले कि 'आजकल हमारे यहाँ हिंदुस्तानी संगीत तेजी से प्रवेश करता जा रहा है और वह हमारे प्रसिद्ध गायकों को भी पसन्द आने लगा है।' उनका यह कथन असत्य नहीं था। रेल की सुविधा हो जाने के कारण हमारी ओर के गायक आजकल सदैव दक्षिण की ओर जाते रहते हैं। मैंने सुना है कि मैसूर में तो कोई मुसलमान गायक सरकारी नौकरी में भी हैं। अब भी उधर लोगों की हमारी पद्धति अच्छी तरह समझ में नहीं आ पाती, क्योंकि उन्हें अशिक्षित गायक भला कैसे समझा सकते हैं। तथापि आजकल उपयोगी ग्रंथ प्रसिद्ध होने लगे हैं और कदाचित् शीघ्र ही उत्तर व दक्षिण-पद्धति का संयोग हो सकेगा। दक्षिण के ग्रंथ-शास्त्र और उत्तर की अद्वितीय कला, इनका संयोग एक तरह से अभीष्ट ही होगा। इस संयोग से प्रचार में नए-नए राग-रूप भी आने लगेंगे और फिर वे सब अपने-आप शास्त्रयुक्त ठहरने लगेंगे। परन्तु यह सब कार्य अभी हमें 'भावी-संगीत' शीर्षक के अन्तर्गत ही रखना है। 'सावेरी' राग अपने यहाँ नवीन ही है, अतः इसके विषय में, मैं तुम्हें अधिक क्या बता सकता हूँ? अपने ग्रंथ इस सम्बन्ध में क्या कहते हैं, वही मैं अभी तुम्हें बताता हूँ।

रागलक्षणे :—

मायामालवगौलाख्यमेलाज्जातः सुनामकः।
सावेरीराग इत्युक्तः सन्यासं सांशकग्रहम्॥
आरोहे गनिवर्जं चाप्यवरोहे समग्रकम्।

प्रश्न—यह तो बिलकुल अपने प्रचलित राग के ही लक्षण हुए?

उत्तर—हां, ऐसा ही है।

लक्ष्यसंगीते :—

मेलान्मालवगौलीयात्ख्याता सावेरिनामिका।
आरोहे गनिवर्जं स्यादवरोहे समग्रिका॥
पंचमोऽत्र मतो वादी संवादी षड्ज ईरितः।
गानमस्याः समादिष्टं प्रभाते गायनोत्तमैः॥
प्रचारोऽस्याः सुरागिण्याः कर्णाटकेऽधिको मतः।
कर्हिचित्सा श्रुताह्यत्र संगृहीतेह तन्मया॥

पूर्णत्वादवरोहस्य रागिण्यावपवारयेत् ।
गुणक्री जोगिये चैव स्फुटमेतत्तु तद्विदाम् ॥

प्रश्न—ये सब बातें तो आप हमें बता ही चुके हैं।

उत्तर—हाँ, बता चुका हूँ।

संगीत पारिजाते :—

सावेरी तीव्रगांधारा धैवतोद्ग्राहसंभवा ।
मध्यमांशा निहीना चारोहणे गनिवर्जिता ॥

यहाँ रे, ध स्वर शुद्ध हैं, अतः यह बिलावल ठाठ का 'शुद्ध सावेरी' राग समझा जाएगा।

स्वरमेलकलानिधौ :—

सावेरीरागो धन्यासो धांशो धग्रह एव च ।
औडुवो गनिलोपेन प्रगे गेयो विचक्षणैः ॥

परन्तु यह स्वरूप हमारा नहीं है, क्योंकि रामामात्य ने इस राग को सारंगनाट ठाठ में सम्मिलित किया है। यह ठाठ उसने इस प्रकार बताया है :—

पंचश्रुत्यृषभः शुद्धषड्जमध्यमपंचमाः ।
पंचश्रुतिर्धैवतश्च च्युतषड्जनिषादकः ॥
च्युतमध्यमगांधार एतैः सप्तस्वरैर्युतः ।
सारंगनाटमेलोऽयं रामामात्येन लक्षितः ॥

प्रश्न—यह तो बिलावल ठाठ का राग ही कहा जाएगा ?

उत्तर—हाँ, इसी प्रकार समझना चाहिए।

सद्रागचन्द्रोदये :—

धांशग्रहांता सपवर्जनीया ।
सावेरिका प्रातरियं नियोज्या ॥

यह राग पुण्डरीक ने केदार ठाठ में बताया है, अर्थात् यह भी बिलावल ठाठ ही हुआ। अपने कुछ ग्रन्थकार षड्ज वर्ज्य करने को कहते हैं, परन्तु यह स्वर कहाँ व किस प्रकार वर्ज्य किया जाए, इस सम्बन्ध में एक शब्द भी लिखा हुआ नहीं मिलता। अतः इस सम्बन्ध में पाठक ही कहने लगते हैं कि उनका ऐसा करने का कारण समझ में नहीं आया। किंतु हमें इस विवाद में पड़ने की आवश्यकता नहीं है, साथ ही ग्रंथकार का बचाव करने का अधिकार भी हमारा नहीं है।

इसी प्रकार शुद्ध तानों का विवरण देते हुए भी ग्रंथकारों ने ऐसी ही अस्पष्ट व्याख्या की है, जो प्राय: पाठकों की दृष्टि में खटकने लगती है। ग्रंथकार केवल इतना लिखते हैं कि शुद्ध तान ८४ हैं, उनके नाम-पते अमुक-अमुक हैं। परन्तु इन्हें किस प्रकार प्रयुक्त किया जाएगा, इस विषय पर पाठक चाहे-जैसी कल्पना लड़ाने के लिए स्वतन्त्र हैं! खैर, इसे जाने दो।

संगीतदर्पणे :—

मल्लारी सोरटी चैव सावेरी कौशिकी तथा।
गांधारी हरशृंगारा मेघरागस्य योषितः॥

संगीतसारसंग्रहे :—

सावेरी धैवतांता च गातव्या मंद्रमध्यमा।
ग्रहांशन्यासषड्जा च पहीना करुणे मता॥

इस ग्रंथ में 'शाविरी' नामक एक अन्य रागस्वरूप इस प्रकार और बताया है :—

शाविरी धैवतांता च गातव्या मन्द्रमध्यमा।
मग्रहांशाल्पषड्जा च पहीना करुणे मता॥

इन श्लोकों में जिस सावेरी का विवरण दिया है, उसे मेघ राग की रागिनी माना है। उसके स्वर कौनसे हैं, यह ग्रंथ में बिलकुल नहीं बताया गया।

'संगीतसारामृत' में सावेरी का वर्णन इस प्रकार किया गया है :—

मेलान्मालवगौलीयाच्छुद्धसावेरिकाभिधा।
गनिलोपादौडुवा सग्रहा गेया प्रगे बुधैः॥

यहां तुम्हें दिखाई देगा कि इस श्लोक में शुद्ध सावेरी नाम का प्रयोग हुआ है। इससे यह अवश्य दिखाई पड़ जाता है कि सावेरी और शुद्ध सावेरी नामों की ग्रंथकार भी कभी-कभी गड़बड़ कर देते हैं। इस 'सारामृत' का आधार हमारे लिए थोड़ा-बहुत उपयोगी हो सकेगा।

प्रश्न—परंतु यहां आरोह-अवरोह दोनों में ग, नि वर्ज्य करने को कहा है, जैसा कि हमें स्वीकार नहीं हो सकता।

उत्तर—यह ठीक है; क्योंकि फिर गुणक्री और सावेरी राग अलग-अलग गाने में झगड़े खड़े होंगे। हम अवरोह सम्पूर्ण मानते हैं, यह भी ठीक है। ऐसा दिखाई

देता है कि सारामृतकार को भी यह ज्ञात था कि प्रचार में इस राग का अवरोह संपूर्ण माना जाता है। इसी कारण वह शुद्ध सावेरी की व्याख्या देकर आगे कहता है :—

'अस्य रागस्यारोहे गांधारनिषादलंघनम् । अवरोहे स्वरगतिः ऋजुतयाऽऽगच्छति । उदाहरणम् । धुसा, रेमगरे, मपधुध, निधुप, म, पधुसां, निधुसां, निधुपम, रेसा, रेगरे, सानिध सा' इत्यादि।

प्रश्न—यह उदाहरण तो बिलकुल स्पष्ट और समझ में आने-योग्य है। ग्रंथकारों द्वारा यदि इस प्रकार स्पष्टता की जाए, तो फिर उन्हें कौन बुरा कह सकेगा? परन्तु कई जगह इस दृष्टि से निराशा ही प्राप्त होती है।

उत्तर—हाँ, यह सत्य ही है। सम्भवतः हमारे ग्रंथकारों को इस सम्बन्ध का उत्कृष्ट ज्ञान भी रहा हो, परन्तु इतने-मात्र से ही हमारा समाधान कैसे होगा? उनका काव्य-कौशल कितना ही उच्च कोटि का क्यों न हो, तो भी संगीत-जैसे विषय के लिए इतना-मात्र ही पर्याप्त नहीं होता। यह अर्थप्रधान विषय है, अतः पाठक स्वाभाविक रूप से कविता की अपेक्षा अर्थ की ओर अधिक ध्यान देगा। यह अलग से बताना आवश्यक नहीं कि उत्तम अर्थ भी उत्तम शब्दों द्वारा व्यक्त करना बहुत ही श्रेष्ठ कार्य हो जाता है। देखो, इस छोटे-से उद्धरण से तुम्हें अनुभव होगा कि नवीन विद्यार्थियों को संक्षेप में, परन्तु पद्धति से ये सिखाए जाने-योग्य बातें हैं :—

षड्जश्च ऋषभश्चैव गांधारो मध्यमस्तथा ।
पंचमो धैवतश्चैव निषाद इति सप्तधा ॥
षड्जं शिखावलो वक्ति ऋषभं वृषभो वदेत् ।
कूजत्यजस्तु गांधारं क्रौंचो वदति मध्यमम् ॥
कोकिलः पंचमं वक्ति निषादश्चोच्यते गजैः ।
इतिस्वभावसंभूतस्वरलक्ष्म प्रचक्षते ॥
षड्जस्त्वेकविधः प्रोक्त ऋषभस्त्रिविधः स्मृतः ।
गांधारो द्विविधः प्रोक्तः मध्यमो द्विविधः स्मृतः ॥
पंचमस्त्वेकधा प्रोक्तः धैवतो द्विविधः स्मृतः ।
निषादस्त्रिविधश्चैव शुद्धाशुद्धप्रभेदतः ॥
एतेषु रागा जायंते बहवः परिवर्तनात् ।
औडुवाः षाडवाश्चेति पूर्णाश्चेति त्रिधा भवेत् ॥
सप्तस्वरैः पूर्णरागः षड्भिः षाडव उच्यते ।
औडवः पंचभिः प्रोक्तो रागानुपारपारगैः ॥
एकैकपूर्णरागेतु स्वराणां परिवर्तनात् ।

सहस्रपंचकं चत्वारिंश× स ध्वनिर्भवेत् ॥
पूर्वोक्तस्वरभेदेन बहुधा भवति ध्वनिः ।
शुद्धमध्यमसम्बन्धाद्रागाः षट्त्रिंशदीरिताः ॥
अशुद्धमध्यमत्वाच्च रागाः षट्त्रिंशदीरिताः ।
इति मेलजुषो रागा द्वासप्ततिरितीरिताः ।
एतेषु जन्यरागास्तु बहवः प्रभवंति हि ॥
आरोहादवरोहाच्च स्वराणां तारतम्यतः ।
शुद्धाशुद्धस्वरत्वाच्च वक्ररागास्त्वनेकधा ।
औडवे षाडवेऽप्येवमूह्यो भेदो विचक्षणैः ॥
औडवे विंशतियुतशतधा स्वरवर्तनात् ।
षाडवे विंशतियुतशतानि स्युश्च सप्त च ॥
—स्वरप्रस्तारे

प्रश्न—वाह-वाह ! इन श्लोकों में कितनी ही बातें संक्षिप्त रूप से कह रखी हैं। छोटे-छोटे बालकों को ये श्लोक आरम्भ में कंठस्थ करा देने चाहिए।

उत्तर—मैं समझता हूँ कि उस समय इसी प्रकार की प्रथा रही होगी। क्या करें, आजकल ग्रंथ-सामग्री का अभाव होने से पद्धतिपूर्वक सीखना-सिखाना ही नहीं होता। किसी प्रकार उलटी-सीधी सौ-पचास चीजें गाने लगे कि बस हो गए संगीत-प्रवीण गवैये ! प्राचीन काल में आज-जैसी स्थिति वास्तव में नहीं होगी। आजकल तो संगीत के शास्त्रीय ज्ञान (Theory) का नाम विद्यार्थियों के सामने कहने-मात्र से उनके माथे पर बल पड़ने लगते हैं। यदि आगे कभी संगीत सिखाने का अवसर प्राप्त हो, तो तुम्हें पद्धतिरहित एक कदम भी नहीं रखना चाहिए। मेरे बताए हुए स्वर-प्रस्तार के श्लोक विद्यार्थियों को आरम्भ में बताकर फिर ठाठ-प्रस्तार, बहत्तर ठाठ कैसे होते हैं, यह सिखाया जाए। यह भाग भी मैं तुम्हें पिछली बार बता चुका हूँ। 'लक्ष्य-संगीत' में यह स्पष्ट रूप से दिया हुआ है। मैं यह बता ही चुका हूँ कि यह रचना व्यंकटमखी की है।

प्रश्न—यह सब हम समझ चुके हैं। पूर्वांग के छह मेलार्द्ध से उत्तरांग के मेलार्द्ध मिलाने से ये ठाठ उत्पन्न होते हैं। ठीक है न ?

उत्तर—हाँ, इसी बात को व्यंकटमखी इस प्रकार कहता है :—

अतः पूर्वांगभेदानां षण्णामपि पृथक् पृथक् ।
उत्तरांगस्थितैः षड्भिर्भेदैः संयोजने कृते ॥

षट्षण्मेलप्रकारेण मेलाः षट्त्रिंशदागताः ।
षट्त्रिंशन्मेलकेष्वेषु प्रतिमेलं च मध्यमः ॥
मसंज्ञो यदि मध्ये स्यात् पूर्वमेलाभिधास्तदा ।
एतेष्वेव तु षट्त्रिंशन्मेलेषु प्रतिमेलकम् ॥
मसंज्ञमध्यमस्थाने मिसंज्ञो यदि मध्यमः ।
निवेश्यते तदा तेषां भवेदुत्तरमेलता ॥
इत्यस्माभिः समुन्नीता जाता मेला द्विसप्ततिः ॥

इस विचारधारा पर आक्षेप करनेवालों का समाधान उस विद्वान् ने किस प्रकार किया है, देखो :—

ननु त्यक्त्वा मसंज्ञं तु केवलं मध्यमं पुनः ।
मिसंज्ञिकस्य तत्स्थाने मध्यमस्य निवेशनात् ॥
त एव पूर्वमेलाः किं भवंत्युत्तरमेलकाः ।
इति चेद्ब्रू सदृष्टांतं परिहारं प्रचक्ष्महे ॥
कटाहसंभृतं क्षीरं केवलं दधिबिंदुना ।
यथा संयोज्यमानं तद्दधिभावं प्रपद्यते ॥
तथैव पूर्वमेलास्ते मध्यमेन मिसंज्ञकाः ।
केवलेनापि संयुक्ता भजंत्युत्तरमेलताम् ॥

क्या हमारी हिंदुस्तानी संगीत-पद्धति में मध्यम स्वर का महत्त्व इसी प्रकार नहीं माना गया है? क्या सायंकाल कल्याण, प्रातःकाल बिलावल, सायंकाल पूर्वी, प्रातःकाल भैरव आदि चमत्कार मध्यम से उत्पन्न नहीं होते हैं? परन्तु यह विषय कठिन है और शायद विवादग्रस्त भी होगा। जो बातें मुझे आनन्ददायक ज्ञात हुईं, वे उत्साह से तुम्हारे सामने रख दी हैं। जितनी अच्छी ज्ञात हों, उतनी ही ग्रहण करना और बाकी को चाहो तो निराधार समझकर छोड़ देना। अस्तु, मैं सावेरी के स्वर-समुदाय का उदाहरण 'सारामृत' में से दे रहा था। आगे :—

'ममरेसा, ध, धधसा, रेरेमम, रेमपधप, मप, धसां। रेरेसाध, धसाधप, रेरेसाधसा। धसारेमपध, धसांधधपम, पमरे, मरेरे, सा, धधप, मपधधसा, धधपमरे, मरेसा।'

यह स्वरूप 'शुद्ध सावेरी' का ही ग्रंथकार बताता है। अर्थात् शुद्ध सावेरी और सावेरी वास्तव में भिन्न-भिन्न राग हैं, यह तथ्य समझाया गया है।

प्रश्न—परन्तु हम समझते हैं कि जिस अभिप्राय से हम गुणक्री में ग और नि स्वर पूर्ण रूप से वर्ज्य करते हैं, उसी अभिप्राय से इन स्वरों को सावेरी के अवरोह में रखते हैं; यही हम पसन्द करें। केवल वादी स्वर के अन्तर से श्रोताओं को भेद पहचानना कठिन ही हो जाएगा।

उत्तर—तुम्हारा यह कथन सत्य है। यह तुम जानते ही हो कि सारामृतकार की गुण्डक्रिया संपूर्ण है। उसने अपनी 'गुण्डक्रिया' का उदाहरण इस प्रकार दिया है :—

मपमगरे॒सा, गमप, सांनिम, पम, गमपग, रे॒सा। गमग, सारे॒सानि॒, सारे॒गमग, सारे॒सानि॒, गरे॒सा, निपमम, गरे॒सा।

इस उदाहरण का कोई विशेष अभिप्राय नहीं है, फिर भी मैंने तुम्हें यह बताया है कि ग्रंथकार ने किस प्रकार वर्णन किया है।

चतुर्दण्डिप्रकाशिकायाम् :—

गौलमेलसमुद्भूतः सावेरीराग ईरितः।
आरोहे गनिलोपोऽयं प्रातर्गीतो विचक्षणैः॥

यह आधार भी हमारे लिए अच्छा उपयोगी सिद्ध होगा। यह कहा जा सकता है कि अपने प्रचार को सहायता देनेवाले ग्रंथमत अब भी प्राप्य हैं। ग्रंथ-प्रमाण से सावेरी, आसावरी, शुद्धसावेरी राग भिन्न-भिन्न हैं, अभी इतना ही ध्यान में रखना पर्याप्त है।

रागमालायाम् :—

आद्यंतांशासपा या नयनगुणगती चात्र धांत्यौ रिगौ स्वः।
कस्तूरीबिंदुमाला मृगशिशुनयना चन्द्रवक्त्रा सुतन्वी॥
सावेरी हारकंठा सुशवरवसना पीतकूर्पासयुक्ता।
द्व्यष्टाढ्या श्यामवर्णा वरगजगमना सस्मिता सायमेति॥

कल्पद्रुमे :—

कस्तूरीतिलकं ललाटपटले राजीवपत्रानना।
चित्राभांबरधारिणी कुचतटे पीता तथा कंचुकी॥
श्यामा रंजितदंतिदंतवलया मुक्तास्रजं बिभ्रती।
सावेरी मदपूर्णहस्तिगमनी गेया दिनांते सदा॥

सावेरी के स्वर-स्वरूप मैं तुम्हें पहले ही बता चुका हूँ, इसलिए अब और फिर से क्यों सुनाना चाहिए।

प्रश्न—जी नहीं, वे हमारे ध्यान में अब अच्छी तरह आ चुके हैं।

उत्तर—तो फिर अब अगला राग हम आरम्भ करें।

प्रश्न—अब हमें आप कौनसा राग बताने वाले हैं ?

उत्तर—अब हम 'मेघरंजनी' नामक राग पर विचार करेंगे। यह नाम कानों को थोड़ा-सा अपरिचित ज्ञात होगा; किंतु इसमें संदेह नहीं कि यह बहुत ही विचित्र राग है। यह तो स्पष्ट ही है कि यह साधारण रागों में से नहीं है, उत्तम गायकों में से थोड़े ही गायक इसे अच्छी तरह गा पाते हैं। संस्कृत-ग्रंथों में यह राग-स्वरूप स्पष्ट नियमों से बताया गया है और अपने गायक भी उन्हीं नियमों के अनुसार सदैव गाते हैं। इस राग में तानबाजी को अधिक स्थान न मिल सकने के कारण इसका अधिक प्रचार नहीं दिखाई पड़ता। ऐसा होने पर भी तुम्हें इस राग को अवश्य सीखना चाहिए। संस्कृत-ग्रंथों में इस राग का ठाठ 'मालवगौड़' बताया गया है। आजकल इस राग की बहुत चर्चा होने लगी है और मेरा खयाल है कि अब यह राग तुम्हें अनेकों बार सुनने को मिलेगा। इसमें हमारे गायकों द्वारा संयोजित की हुई थोड़ी-सी चतुराई भी तुम्हें कभी-कभी दिखाई देगी।

प्रश्न—वह कौनसी ?

उत्तर—वे लोग इस राग में कभी-कभी क्वचित् तीव्र मध्यम का प्रयोग करते हैं। यह प्रयोग वे जान-बूझकर करते हैं और इस प्रयोग से राग भी नहीं बिगड़ पाता।

प्रश्न—अर्थात् 'सा रे॒ ग म॑ प' इस प्रकार तान लेते होंगे ?

उत्तर—नहीं-नहीं, ऐसा प्रयोग किया कि सम्पूर्ण राग-स्वरूप नष्ट हुआ। इस राग का प्राण कोमल मध्यम है। तीव्र मध्यम तो यहाँ एक अनावश्यक और आगन्तुक स्वर है। यह नहीं कि इस स्वर को अनिवार्य रूप से आना ही चाहिए, परन्तु यदि इसका प्रयोग ही किया, तो योग्य प्रमाण और योग्य तरीके से ही करना आवश्यक है। इस राग में कोमल मध्यम का खुला प्रयोग बहुत शोभा देता है। कोई-कोई तो कहते हैं कि इस राग की समस्त खूबी इसी स्वर में निहित है।

प्रश्न—तो फिर आरोह में तीव्र म और अवरोह में कोमल म ग्रहण करने का नियम मान लें, तो ?

उत्तर—नहीं-नहीं, इस प्रकार का नियम भी नहीं माना जा सकता। कोमल मध्यम स्वर आरोह व अवरोह, दोनों में है। उसमें ही कहीं-कहीं रंजकता की दृष्टि से तीव्र म जोड़ दिया जाता है।

प्रश्न—तो फिर केदार राग में किए हुए प्रयोग-जैसा ही थोड़ा-बहुत यह प्रयोग भी होगा ?

उत्तर—हाँ, कुछ अंशों में इस प्रकार कहना उचित हो सकता है।

प्रश्न—यदि इस राग का स्वरूप स्थूल मान से हमारे ध्यान में आ जाए, तो हम समझ लेंगे कि यह किस राग के समान है।

उत्तर—यह कहना गलत नहीं है कि इस राग में थोड़ा-सा 'ललित' राग का अंग है। ललित में तीव्र म का प्रमाण अधिक है, परन्तु यह सत्य है कि इस राग का उठाव प्रायः ललित-जैसा ही होता है। अभी तक मैंने तुम्हें 'ललित राग' नहीं बताया है।

प्रश्न—तो फिर कहा जाएगा कि इस राग में तीव्र म 'असत्प्राय' है।

उत्तर—हाँ-हाँ, इस शब्द से उस मध्यम का ठीक-ठीक प्रयोग निकल आएगा। यदि यह कहो कि इस स्वर का प्रयोग विवादी-जैसा होता है, तो भी समाधानकारक होगा।

प्रश्न—यही न कि यदि इस स्वर का प्रयोग किया तो रागवैचित्र्य बढ़ जाएगा, परन्तु यदि नहीं किया गया तो भी राग-हानि नहीं होगी।

उत्तर—हाँ, तुम ठीक-ठीक समझ गए।

प्रश्न—इस राग का गायन-समय कौनसा है? संभवतः यह तीव्र मध्यम की दिशा में ही स्वीकार किया जाता होगा?

उत्तर—ठीक है! इस तरफ तुम्हारा ध्यान पहुँच गया, यह अच्छा हुआ। यह राग रात्रि के अंतिम प्रहर में गाया जाता है। जब तक रात्रि समाप्त नहीं होती, तब-तक यह नहीं कि तीव्र मध्यम का प्रयोग नहीं किया जाता हो। तो भी जैसे-जैसे प्रातः-काल निकट आने लगता है, वैसे-वैसे कोमल म श्रोताओं का हृदय अपने-आप ही अपनी ओर आकर्षित करने लगता है। यह राग ललित-जैसा दिखाई देता है, परन्तु इसके नियम ललित से बिलकुल भिन्न हैं। यह हमारी संगीत-पद्धति की एक विशेषता ही है। यह न भूलना कि तीव्र मध्यम के प्रयोग के लिए ग्रंथों में आधार नहीं मिलता। यह बात भी नहीं है कि सम्पूर्ण संस्कृत-ग्रंथों में इस राग का विवरण दिया गया हो। अस्तु, अब अच्छी तरह ध्यान देकर देखो कि इस राग में तुम्हें किस-किस प्रकार से चलना है। यह मैं प्रथम ही बता चुका हूँ कि प्रचार में ग्रह स्वर के नियम का पालन कड़ाई से नहीं किया जाता। मेघरंजनी औडुव जाति का राग है। इसमें पंचम और धैवत स्वर वर्ज्य होते हैं।

प्रश्न—यह क्या? फिर तो कहना पड़ेगा कि यह राग बहुत ही कठिन है। क्या मध्यम और निषाद का फासला बहुत अधिक नहीं है? इतनी बड़ी उछाल गाते-गाते कैसे लगाई जा सकेगी?

उत्तर—तुम्हारी बताई हुई कठिनाई अवश्य उपस्थित होती है। इसी लिए इस राग में अपने गायक अधिक तानबाजी नहीं करते। फिर भी इस राग में 'नि सा रे ग म', ये पाँच स्वर एक के बाद एक आते ही हैं न? इनके आधार पर यह राग-स्वरूप मधुर हो सकता है। इसमें गम्भीर प्रकृति का गायन बहुत अच्छा दिखाई देगा।

इसमें देर तक लिया जानेवाला कोमल मध्यम कुछ-न-कुछ उत्तम परिणाम उत्पन्न करता ही है। प्रभात के समस्त राग मधुर होते हैं, परन्तु उनमें भी 'ललित-अंग' श्रेष्ठ समझा जाता है। इसका गांभीर्य अवर्णनीय है। यदि तुम 'नि़ रे॒ ग म, म' स्वर विलम्बित लय से गाने लगो, तो तुम स्वयं देख सकते हो कि तुम्हारे हृदय पर क्या परिणाम होता है। आगे चलकर तुम्हें ज्ञात होगा कि यही वह 'ललित-अंग' है। तीव्र रे और कोमल ग, नि स्वर वाले ठाठ को गाते-गाते हम इस संधिप्रकाश ठाठ तक आ जाते हैं और धीरे-धीरे प्रातःकाल की ओर बढ़ते हैं। इस पवित्र समय तक पहुँचानेवाले अंग भी बहुत विचित्र होते हैं। यह तुम जानते ही हो कि इस समय में षड्ज, मध्यम और पंचम स्वर का साम्राज्य हो जाता है। मेघरंजनी का उठाव मेरे बताए हुए ढंग से यदि किया गया, तो समाधानकारक होगा। अच्छा देखें, आगे बढ़ो।

प्रश्न—नि़ रे॒ ग ग, म, म ग, रे॒ ग, रे॒ सा, म, नि सां, रें॒ रें॒ सां, नि म, ग, म रे॒ ग रे॒ सा, नि़ रे॒ ग म—यदि इस प्रकार किया जाए, तो क्या शोभनीय होगा?

उत्तर—हाँ, ऐसा करने में कोई हानि नहीं। यह एक साधारण नियम है कि जैसे-जैसे प्रभातकाल निकट आता है, वैसे-वैसे ऋषभ का आरोह में प्रयोग क्रमशः अल्प मात्रा में होने लगता है; परन्तु उसका अधिकार प्रकाश होने पर अधिक दिखाई पड़ेगा। रात्रि के अन्तिम प्रहर में 'नि़ रे॒ ग' का प्रयोग प्रचार में तुमको बारम्बार दिखाई देगा। इस प्रयोग का विशेष महत्त्व नहीं है, फिर भी श्रोताओं के हृदय पर कोई विसंगत परिणाम नहीं होता। इस समय तो सम्पूर्ण रागवैचित्र्य उत्तरांग में पहुँच जाता है। श्रोता तो तार-षड्ज की ओर टकटकी लगाए बैठे रहते हैं, अतः वे इस ऋषभ की ओर ध्यान नहीं देते। गायकों को 'नि़ सा ग' की अपेक्षा 'नि़ रे॒ ग' की तान लेना अधिक सुविधाजनक होता है। एक बार वे मध्यम तक जा पहुँचे कि उनका राग ललित-अंग से शोभा देने लगता है। इन तथ्यों को सूक्ष्म दृष्टि से देखते जाना चाहिए।

प्रश्न—परंतु इस राग में तीव्र मध्यम किस प्रकार और कहाँ लगाया जाता है, यह बताइए न?

उत्तर—बताता हूँ, सुनो! 'नि़ रे॒ ग म, म, मं म ग, रे॒ ग, म, ग रे॒ सा' इस प्रकार लेना चाहिए। यह समस्त भाग ललित में भी आएगा, अतः इसे राग-वाचक नहीं कहा जा सकता। राग का मुख्य स्थान, धैवत छोड़कर मध्यम व निषाद की संगति करना है। यह बिलकुल स्वतन्त्र अंग है। यह स्वरूप तुम्हें किसी भी अन्य राग में नहीं दिखाई पड़ेगा। 'नि मं म, ग म, रे॒ ग म, नि़ रे॒ ग म, सां रें॒ सां, ग म, नि, म ग, नि़ रे॒ ग, म ग, रे॒ ग, म म, नि नि सां, म, रे॒ ग रे॒ सा, नि़ रे॒ ग म', यह 'चलन' ललित में नहीं है। मैंने अभी तक तुम्हें ललितांग के राग नहीं बताए हैं, अतः इस सम्बन्ध की चर्चा एक तरह से इस समय अप्रासंगिक होगी। 'सां, रें॒ सां, नि म ग, म ग, रे॒ सा' यह अवरोह तुम्हें अच्छी तरह ध्यान में जमा लेना चाहिए। निषाद और मध्यम मींड़ से लेकर फिर गांधार पर विश्रांति ठीक ही होती है। अपने कसबी गायक इस राग को अच्छी तरह गाते हैं। उनके गले उत्तम रूप से तैयार होते हैं, इस कारण उनके कण्ठ से यह राग बहुत रंजक हो जाता है। जिन्हें इस राग के

नियम ज्ञात नहीं होते, वे इसे एक प्रकार का 'ललित' या 'पंचम' (राग विशेष) ही समझते हैं, परंतु यह कभी न भूलना चाहिए कि 'ललित' और 'पंचम' दोनों रागों में धैवत वर्ज्य नहीं होता।

प्रश्न—शायद ललित में सभी स्वर लगते होंगे ?

उत्तर—नहीं, ललित षाडव राग है। इसमें पंचम वर्ज्य होता है। मेघरंजनी औडुव है, ललित का जीवभूत अंग, मंध, मंधसां, निध, मंध, मंमग, रेगरेसा है। इसी कारण मेघरंजनी में इस राग का संदेह नहीं किया जा सकता। मेघरंजनी में ललित की अपेक्षा प्रभात का अंग अधिक मात्रा में प्रयुक्त होता है, ऐसा भी कोई-कोई कहते हैं, परंतु मैं समझता हूँ कि यह कथन समाधानकारक नहीं हो सकता। प्रभात में ललित-अंग बिलकुल गौण है, वैसा इसमें नहीं।

प्रश्न—प्रभात में ललितांग गौण होने का अर्थ ?

उत्तर—'प्रभात' राग में भैरव का प्रमुख भाग अच्छी तरह सँभाल कर केवल रागभिन्नता बताने के हेतु वह अंग बहुत थोड़े प्रमाण में दिखाया जाता है। किंतु इस राग मेघरंजनी में ललित का अंग बहुत महत्व प्राप्त करता है। भैरव का अंग तो इस राग में आना संभव ही नहीं है, क्योंकि पंचम और धैवत दोनों स्वर वर्ज्य हैं। जिस तरह केदार, मालकंस आदि रागों में मध्यम वर्ज्य करना अनुचित होगा; उसी प्रकार भैरव में पंचम और धैवत वर्ज्य करना भी अयोग्य समझा जाएगा। मैंने अभी तक तुम्हें प्रभात राग नहीं बताया है, किंतु अभी उसकी रचना के सम्बन्ध में चर्चा करना मुझे पसन्द नहीं है। मेघरंजनी गाते हुए गायक प्रायः मंद्र-सप्तक में नहीं जाते, क्योंकि ऐसा करना बहुत असुविधाजनक हो जाता है। इस राग में प्रायः ध्रुवपद ही गाए जाते हैं।

प्रश्न—तो फिर अब मेघरंजनी के लक्षण संक्षिप्त रूप से हम इस प्रकार ध्यान में रखेंगे—'नि़ सा रे़ ग म, नि सां। सां नि म ग, रे़ सा' यह आरोहावरोह है। वादी स्वर मध्यम और संवादी षड्ज है। समय रात्रि का अंतिम प्रहर है। ललित-अंग इस राग में प्रधान है, और मध्यम व निषाद की संगति होती है! मध्य व तार-स्थान में चलन है। तीव्र मध्यम की स्वर-स्थिति विवादी स्वर जैसी है। गांधार ग्रहण करने और धैवत ग्रहण न करने से यह राग सहज में ही गुणक्री और जोगिया से भिन्न हो जाता है। यह अप्रसिद्ध रागस्वरूप है। क्या इतनी जानकारी इस समय पर्याप्त होगी ?

उत्तर—मैं समझता हूँ कि इतना जान लेना काफी है। इन बातों को ध्यान में रखने के लिए यदि चाहो, तो 'कल्पद्रुमांकुर' ग्रंथ का यह सुन्दर श्लोक याद रख सकते हो :—

भैरवस्य मेल एव मेघरंजनी मता।
पंचमेन धैवतेन वर्जिता सदौडुवा॥

षड्जमंत्रिणी समीरिता च वादिमध्यमा ।
गीयते विलंबितं बुधैर्निशांत्ययामके ॥

प्रश्न—ठीक है, यह श्लोक हमारे लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होगा। इसे हम कंठस्थ कर लेंगे। क्या बताएँ, यदि हमारे गायकों को भी नियमों का ज्ञान और महत्त्व का पता होता, तो संगीत का कितना अधिक हित होता ?

उत्तर—इस समय जो पुराने गायक हैं, उनसे तो संगीत-शास्त्र के नियमों के विषय में प्रोत्साहन मिलना थोड़ा कठिन ही है। जिन लोगों ने जीवन-भर उच्छृंखल रीति से स्वेच्छानुसार गायन किया हो, उन लोगों से सहायता की आशा व्यर्थ है; परन्तु अब उन्हें भी अपने सुशिक्षित एवं मार्मिक लोगों के सम्मुख गाना मुश्किल होने लगा है। चूँकि अब राग-नियम प्रसिद्ध होने लगे हैं और समाज में स्वर-ज्ञान बढ़ता जा रहा है, अतः गायकों की भी समक्ष में आने लगा है कि मनचाहा बेढंगा गाना गाकर समाज को खुश करना संभव नहीं है। ध्रुपद का खयाल बनाकर गाना, पुरानी चीज को चाहे जिस राग में गाना, उसमें मनचाहे स्वरों का प्रयोग कर नवीन राग दिखाने का प्रयत्न करना, दो-तीन रागों के टुकड़े उलटे-सीधे जोड़कर उस मिश्रण को अपनी ओर का ही कोई राग-नाम दे देना और यह कहना कि यह प्राचीन और सीखा हुआ राग है, आदि बातों का अब अपने यहाँ आदर नहीं हो सकता। गायक ने राग शुरू किया कि श्रोता उसके लक्षण देखने लगते हैं। जो गायक उन लक्षणों का उत्तम रूप से निर्वाह कर सके तथा उन लक्षणों के साथ मधुरतापूर्वक राग-गायन कर सके, उसे ही आगे चलकर सम्मान प्राप्त होगा। प्राचीन काल में कैसी स्थिति थी, यह कौन बता सकता है ? परन्तु मेरा अनुमान है कि भविष्य में इसी प्रकार की स्थिति होगी। निस्संदेह, यह हो सकता है कि हमारे-तुम्हारे जीवन-काल में यह स्थिति न हो पाए, परन्तु यह प्रत्येक व्यक्ति कह सकता है कि अब इसी रुख की हवा चलने लगी है। परसों मेरे एक परम मित्र उत्तर-भारत से आए थे। उन्होंने यहाँ बहुत-से संगीत-व्यवसायी व्यक्तियों को सुना। उन्होंने वापस जाते हुए मुझे बताया कि 'पंडित जी ! संगीत-चर्चा एवं तत्सम्बन्धी ज्ञान, जैसा आपके यहाँ मुझे दिखाई पड़ा, वैसा मुझे उत्तर और पूर्व के किसी भी शहर में दृष्टिगोचर नहीं हुआ।' ये सज्जन स्वयं एक धनाढ्य परन्तु संगीतज्ञ व्यक्ति थे। उनका अपने नगर के विषय में यह मत सुनकर मुझे बहुत संतोष प्राप्त हुआ। अस्तु, कल्पद्रुमांकुर-रचयिता का श्लोक तो मैं तुम्हें सुना ही चुका हूँ। यह ग्रंथकार भी लक्ष्यसंगीतकार के मत का ही है। अतः हम उसका मत पसन्द करेंगे।

प्रश्न—'लक्ष्यसंगीत' में मेघरंजनी का वर्णन किस प्रकार किया है ?

उत्तर—सुनो :—

भैरवस्यैव संमेलाद्रागिणी मेघरंजनी ।
औडुवा पधहीनाऽसौ मध्यमेन सुभूषिता ॥

व्यस्तमध्यमयोगोऽत्र ललितांगं प्रदर्शयेत् ।
प्रलुप्तत्वे धैवतस्य पुनस्तन्नैव संभवेत् ॥
तीव्रमस्य लवं केचिदादिशंति विचक्षणाः ।
रात्रिगेये विलोमे तद्दोषार्हं नैव मे मते ॥

इन श्लोकों में बताए हुए सिद्धांत मैं तुम्हें विस्तारपूर्वक समझा ही चुका हूँ। इस राग को ललित के पश्चात् गाने पर यह बहुत शोभनीय होगा। मैं समझता हूँ कि इस अप्रसिद्ध राग के सम्बन्ध में इससे अधिक जानकारी मैं नहीं दे सकूँगा। संगीतसारसंग्रहकर्ता ने इसका वर्णन इस प्रकार किया है :—

धपोज्झिता षड्जभवा च गेया ।
दिव्या च वीरे किल मेघरंजी ॥

इन लक्षणों के पश्चात् रागमूर्ति इस प्रकार बताई है :—

श्रुतौ दधाना नवकर्णिकार-
मारामगा केशरपुष्पकांची ।
अध्यापयंती स्वकरस्थसारिकां
श्रीरामरामेति च मेघरंगी ॥

इस ग्रंथकार ने मेघरंजनी के ठाठ का उल्लेख नहीं किया, अतः पाठकों को केवल तर्क के आधार पर इस राग के स्वर निश्चित करने पड़ेंगे। तर्क करने के लिए यह सत्र अधिक महत्त्वपूर्ण होगा कि पंचम और धैवत वर्ज्य बताए गए हैं। अनेक ग्रंथों का मत जानकर रागों के ठाठ निश्चित करने-योग्य सामर्थ्य प्राप्त होना असम्भव नहीं है। 'संगीतरत्नाकर' में जो राग बताए गए हैं, उनमें से बहुत-से राग इस ग्रंथ के पश्चात् लिखे गए ग्रंथों में हमें स्पष्ट और समझ में आने-योग्य लक्षणों से बताए हुए प्राप्त होते हैं। मजा यह है कि कहीं-कहीं तो शार्ङ्गदेव से परवर्ती ग्रंथकारों ने 'रत्नाकर' में वर्णित रागों का जन्य-जनक-सम्बन्ध बताया है। इससे विद्वान् व्यक्ति कभी-कभी शार्ङ्गदेव के राग-स्वरूपों के सम्बन्ध में युक्तिपूर्ण तर्क करते हैं। हम देखते हैं कि 'रत्नाकर' में भाषा, विभाषा, भाषांग, उपांग आदि नामों का प्रयोग जन्य-जनक-सम्बन्ध के हेतु हुआ है। परवर्ती ग्रंथकारों द्वारा इन नामों का ग्रहण करना नहीं पाया जाता। मैं समझता हूँ कि मेरा यह कथन तुम्हें किसी उदाहरण के माध्यम से शीघ्र ही समझ में आ जाएगा। तुम्हें यह ज्ञात ही है कि 'रत्नाकर' में 'टक्क' नामक एक ग्रामराग बताया गया है। यदि तुम इस टक्क राग के जन्य रागों को देखो और सावधानीपूर्वक यह मिलान करो कि परवर्ती ग्रंथकारों ने टक्क व इसी ठाठ के और दूसरे कौनसे राग बताए हैं, तो तुम्हें इसी प्रकार की बहुत-सी उपयोगी जानकारी प्राप्त होगी। सम्भवतः कहीं-कहीं यह दिखाई देगा कि 'रत्नाकर' के किसी मेल राग को परवर्ती ग्रंथकारों ने जन्य राग मान लिया है; परन्तु इतने-मात्र से अपनी विचारधारा को अधिक बाधा नहीं आ सकती। मैं समझता हूँ कि यदि कोई परिश्रमी अध्येता अर्वाचीन

वर्गीकरण को पद्धतिबद्ध लिखकर सूक्ष्मतापूर्वक खोज करे, तो शार्ङ्गदेव के राग-स्वरूपों के सम्बन्ध में बहुत-सा अनुमान कर सकेगा। चूँकि आज हमारा विषय 'रत्नाकर' नहीं है, अतः हम स्वयं इस प्रकार का प्रयत्न अभी नहीं करेंगे। इस समय तो हम अपने प्रचलित संगीत के सम्बन्ध में ही प्रमुख रूप से चर्चा करेंगे। ग्रंथ-संगीत में प्रवेश करनेवाले व्यक्ति के लिए ग्राम, मूर्च्छना, जाति आदि विषयों पर सम्पूर्णतः समाधानकारक जानकारी देनी आवश्यक होगी। यह मैं प्रथम ही बता चुका हूँ कि यह एक स्वतन्त्र भाग है और विवादग्रस्त भी है। मैं स्वीकार करता हूँ कि कहीं-कहीं मैं वाक्‌प्रवाह में अपने मन के तर्क भी बताता गया हूँ, परन्तु 'रत्नाकर' की इस प्रकार व्यवस्थित जानकारी देना एक स्वतन्त्र और उपयोगी कार्य है और वह योग्य अधिकारी व्यक्ति के द्वारा किया जाना चाहिए। 'संगीतसारामृत' में मेघरंजनी इस प्रकार बताई गई है :—

मेलान्मालवगौलीयान्मेघरंजः पधोज्झितः ।
औडुवः पर्जन्यकाले गेयः षड्जग्रहादिकः ॥

इस वर्णन में 'पर्जन्यकाले' कहा गया है, परन्तु अन्य ग्रंथकारों द्वारा इस प्रकार कुछ नहीं बताया गया। शायद इस ग्रंथकार ने राग के नाम की ओर देखकर यह कल्पना की होगी। नाम से राग-लक्षण बताने का सिद्धांत मेरे गुरु ने मुझे नहीं सिखाया। यह सिद्धांत सभी जगह लागू करना सुविधाजनक नहीं होगा। राग-नामों की धुन में लगकर किसी-किसी समय अनाड़ी गायक कैसी-कैसी अनर्गल बातें अपने श्रोताओं को सुनाते रहते हैं, इसका एक नमूना तुम्हें मैं सुनाता, परन्तु वह राग इस ठाठ का नहीं है, अतः कुछ अप्रासंगिक हो जाएगा।

प्रश्न—आप हमें सुना तो दीजिए। इस समय चर्चा के प्रवाह में बात आ निकली है, इसलिए हम आग्रह कर रहे हैं।

उत्तर—अच्छा, सुनाता हूँ। एक बार मैं दक्षिण के एक संगीत-प्रसिद्ध नगर में कुछ जानकारी एकत्र करने के लिए गया था। वहाँ मुझे एक हिंदू गायक से इस सम्बन्ध में चर्चा करने का अवसर प्राप्त हुआ। उस दिन मैं किसी अच्छे मुहूर्त से घर से नहीं निकला था, यह अनुभव मुझे घर लौटकर आने पर हुआ।

प्रश्न—क्यों भला? मालूम होता है कि शायद उस गायक की और आपकी कुछ गरमागरम तकरार हो गई होगी?

उत्तर—नहीं-नहीं, मुसाफिरी में मैं झगड़ा तो कभी भी किसी से नहीं करता। हाँ, केवल बहस करने में आगे-पीछे भी नहीं देखता, परन्तु मैं सदैव अपनी भाषा निर्भीकतापूर्ण रखने के साथ सभ्यतापूर्ण भी रखता हूँ। वहाँ होनेवाली घटना सुनाता हूँ। इस गुणी की ख्याति मैं बड़ी-बड़ी दूर तक सुन चुका था। यह प्रसिद्ध बात है कि जिस गुणी को राज्याश्रय प्राप्त हो, उसकी कीर्ति सहज में ही काफी दूर-दूर तक फैल जाती है। ऐसे प्रसिद्ध व्यक्ति की भेंट का लाभ मिलने का सुयोग पाकर मुझे बहुत अधिक हार्दिक आनन्द प्राप्त हो रहा था और वह हिंदू था, अतः

मुझे आशा थी कि उसमें सौजन्य, विनय आदि गुण भी होंगे। परन्तु भेंट के बाद बिलकुल विपरीत अनुभव हुआ। जब मैंने अपना उद्देश्य नम्रतापूर्वक उसे बताया कि मुझे संगीत-शास्त्र पर जानकारी चाहिए और इसे प्राप्त करने के लिए ही मैं नगर-नगर घूम रहा हूँ; तब उसने साधारणतः अक्खड़पन से मुझे उत्तर दिया कि 'तुम एक बार इस शहर में आ गए, यह बहुत अच्छा हुआ। यहाँ से तुम्हें गंडा बाँध-कर ही घर जाना होगा!'

प्रश्न—यह बात हम नहीं समझे। गंडा बाँधने का क्या अर्थ है?

उत्तर—यह बात बिना बताए हुए तुम नहीं समझ सकोगे। हमारे अशिक्षित अथवा अनाड़ी संगीत-व्यवसायी लोगों में किसी नवीन शिष्य को मूँड़ते हुए उसके हाथ में एक काले सूत का टुकड़ा बाँधने की प्रथा है। उसी सूत को 'गंडा' कहा जाता है। आजकल जहाँ-तहाँ संगीतशाला व संगीत-कक्षाएँ खुल जाने के कारण यह गंडा बाँधने का ढोंग बहुत पिछड़ गया है, फिर भी अशिक्षित लोगों में तुम्हें अब भी यह प्रथा दिखाई पड़ेगी, अस्तु।

मैं उस गायक के कथन का अभिप्राय समझ गया। मैंने उत्तर दिया—"महाराज! मुझे गंडा बँधवाने में शर्म नहीं आएगी। बात इतनी-सी है कि मेरे अनेक गुरु हो चुके हैं, उनमें एक और बढ़ जाएगा। जिसमें आप तो हिंदू हैं, आपके गंडे को तो मैं अपने लिए भूषण मानूँगा। मुझे तो योग्य जानकारी मिलनी चाहिए, फिर कोई बात नहीं है।"

प्रश्न—आपको उस गायक के उक्त कथन पर बहुत क्रोध आया होगा?

उत्तर—नहीं, मैं बिलकुल शांत था। यह मेरा पहला अनुभव नहीं था। अजी! उत्तम जानकारी प्राप्त करने के लिए एकाध सूत का टुकड़ा हाथ में बाँध ही लिया, तो क्या हुआ? मैं तो तुम लोगों से भी यही कहूँगा कि यदि कोई अधिकारी और योग्य गुरु हो, उसका आग्रह गंडा बाँधने का हो, तो बिना झिझक के बँधवा लेना। मैंने उन भावी गुरुदेव से कहा कि महाराज! आप किसी भी ग्रन्थ का अपना देखा हुआ राग-वर्णन करनेवाला श्लोक लेकर उसे मुझे समझा दीजिए, जिससे इस विषय की चर्चा करना सुगम हो सकेगा। यह सुनते ही—

नादाब्धेस्तु परं पारं न जानाति सरस्वती।
अद्यापि मज्जनभयात्तुंबं वहति वक्षसि॥
नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायंति तत्र तिष्ठामि नारद॥
पूर्णं चतुर्णां वेदानां सारमाकृष्य पद्मभूः।
इमं तु पंचमं वेदं संगीताख्यमकल्पयत्॥
नादेन व्यज्यते वर्णः पदं वर्णात्पदाद्वचः।
वचसो व्यवहारोऽयं नादाधीनमतो जगत्॥

इस प्रकार के श्लोक उसनें धड़ल्ले से सुनाने आरम्भ कर दिए, इतना ही नहीं अपितु नाद, पिंड, चक्र आदि के सम्बन्ध में भी उसकी बकबक चलने लगी। यह देखकर समय बचाने के हेतु मैंनें उससे स्पष्ट कह दिया कि 'इस प्रकार की जानकारी तो मैं प्राप्त कर चुका हूँ, इसलिए मुझे इनकी आवश्यकता नहीं है।'

प्रश्न—ऐसा आपने क्यों कहा ?

उत्तर—अजी ! ऐसी बेकार गप्पें इन अशिक्षित लोगों द्वारा सुनने से कौनसा अभिप्राय सिद्ध हो सकता है ? यह मुझे दिखाई पड़ चुका था कि उसे संस्कृत की गंध भी प्राप्त नहीं हुई थी। ऐसे व्यक्ति से—प्राणी क्यों जन्म लेता है, क्यों मरता है, प्रारब्ध क्या है, नादब्रह्म क्या है ? आदि विषयों पर—भला क्या जानकारी मिल सकेगी ? मैंने उससे रागलक्षण-वाचक कोई श्लोक बताने का आग्रह किया, तब—

षड्जादिमूर्च्छनोपेतः षड्जत्रयसमन्वितः।
गनिहीनोऽपि मल्लारो वर्षासु सुखदायकः॥

—यह 'पारिजात' का श्लोक उसने सुनाया।

प्रश्न—सम्भवतः 'षड्जत्रयसमन्वितः' पद में वह अटक गया होगा। ठीक है न ?

उत्तर—मैं समझता हूँ कि अपना संभाषण जैसा का तैसा तुम्हें सुना देना ही अच्छा होगा। ऐसा पंडित मुझे यह पहली बार ही मिला था।

प्रश्न—ठीक है, ऐसा ही कीजिए।

उत्तर—सुनो, सुनाता हूँ :—

"मैं—महाराज ! आपने यह बहुत ही अच्छा श्लोक पसन्द किया। मुझे आशा है कि यह श्लोक अच्छी तरह समझ जाने पर मेरी बहुत-सी कठिनाइयाँ दूर हो जाएँगी।

पंडित—परंतु यदि मैं तुम्हें यह श्लोक समझा दूँ, तो मुझे क्या इनाम दोगे ?

मैं—मैं आपकी बहुत प्रशंसा करूँगा और आपका उपकार मानूँगा। भला, इनाम क्या दे सकता हूँ ?

पंडित—अच्छा ! कोई बात नहीं। परंतु अब अच्छी तरह ध्यान देकर सुनो। इस श्लोक में 'षड्जादिमूर्च्छनोपेतः', यह चरण आरम्भ में ही रखने में ग्रंथकार ने क्या विशेषता की ? यह तुम्हारे ध्यान में नहीं आ सकता। अहाहा ! अहोबल पंडित क्या कोई सामान्य व्यक्ति था।

मैं—वास्तव में इसकी खूबी मेरे ध्यान में नहीं आई। कृपया अलग-अलग स्पष्ट रूप से समझा दीजिए ?

पंडित—अरे ! क्या तुम नहीं जानते कि प्रत्येक गायक जब अपना गाना गाता है, तो प्रारंभ में अपना षड्ज कायम करता है। इसलिए ग्रंथकार कहता है—'षड्-जादिमूर्च्छनोपेतः', अर्थात् गायक को सर्वप्रथम अपना षड्ज स्वर कायम करना चाहिए।

मैं—'षड्जादि' का अर्थ 'षड्ज स्वर प्रारंभ में', इस प्रकार होगा ?

पंडित—स्पष्ट ही है। इसे समझने के लिए बड़ी भारी विद्या की आवश्यकता नहीं है।

प्रश्न– यह सुनकर आपको तो हँसी आ गई होगी ? हम तो पेट पकड़कर हँस रहे हैं।

उत्तर—मैं बिलकुल नहीं हँसा। मुझे मजा जरूर आया, परंतु आगे और क्या आनंद आनेवाला है, यह भी मुझे देखना था। उसके शिष्य व मित्र भी उस समय जमे हुए थे। उनके सम्मुख उनका अपमान करने से शायद कोई अनिष्ट परिणाम भी उत्पन्न हो जाता। मैंने उसे स्वेच्छानुसार बहकनें दिया। उसने प्रथम पद का फैसला कर फिर अगले पद को लिया।

पंडित—अब 'षड्जत्रयसमन्वितः' इस पद को देखो। इसमें तो प्रथम पद की अपेक्षा और भी आनंद है। तुम जानते ही हो कि 'षड्जं वदति मयूरो' आदि, अर्थात् मोर षड्ज का उच्चारण करता है, बैल ऋषभ का, बकरा गांधार का उच्चारण करता है, आदि। इसमें बड़ा भारी गंभीर रहस्य है। तुम पूछोगे कि इन जानवरों से हमें क्या उपयोग लेना है ?

मैं—जी हाँ, यही मैं अब पूछनेवाला था।

पंडित—इसका रहस्य मैं बताता हूँ। देखो, 'ऋषभ' यह दूसरा स्वर है ही। परंतु समझ लो कि यदि हमने इसे षड्ज मान लिया, तो क्या हम ऐसा नहीं कर सकेंगे ? इसी तरह गांधार है। तब सा, रे, ग, ये तीनों स्वर कारणपरत्व से षड्ज हो सकते हैं। इसी लिए पंडित कहता है 'षड्जत्रयसमन्वितः'। मेरा कथन तुम्हारे मस्तिष्क में उतरने-योग्य नहीं दिखाई पड़ता, परंतु इसका क्या इलाज है ? (उसके शिष्य इस रहस्य को समझ लेने का अभिनय करने लगे और मेरी ओर दया से देखने लगे।)

मैं—महाराज ! यह मैं कुछ भी नहीं समझा। आप गांधार तक षड्जत्व साबित करके क्यों रुक गए ? यह मैं नहीं समझ पाया।

पंडित—तो फिर इसे जाने दो, अब आगे चलो। 'गनिहीनोऽपि मल्लारः' अहा-हा ! धन्य है यह ग्रंथकार ! रहस्य समझानेवाले की तो मौत है ! गांधार व निषाद क्यों वर्ज्य किए ? यह समझे क्या ? वह 'मेघमल्लार' है, इसमें ये 'सूर' (स्वर) ठीक ही वर्ज्य किए ? अब जरा ध्यान देकर देखो—'षड्जादिमूर्च्छनोपेतः'। हाँ, प्रथम मयूर की स्थापना की है। वह तो आवश्यक ही था। अरे भाई ! वर्षाकाल आ गया न ? आगे 'वृषभ' तत्काल उसका विवादी है ! ठीक ही है। मोर और बैल की जन्मजात शत्रुता है ही। गांधार ठीक ही वर्ज्य किया है। तुम चाहे जो करो, बकरे कभी पानी में नहीं उतरनेवाले हैं। तुम जाँचकर देख लो, वर्षाकाल में बकरी कभी बाहर नहीं फिरती। 'अजा वदति गान्धारम्' यह क्या झूठा कह दिया है ?

आगे और मजा देखो ! षड्ज का अनुवादी ग है, तंबूरा छेड़कर जाँच कर लो। षड्ज छेड़ा कि उसमें से ग निकल आएगा। इसी लिए इसे छोड़ दिया ! इसकी जगह मध्यम रख लिया; क्योंकि वह 'चातक' है। पंचम अपने आप संवादी हो गया; क्योंकि 'पिको वदति पंचमम्'। कोकिल को वर्षाकाल बहुत पसंद आता है। अब रह गए दो, घोड़ा और हाथी, इनमें से घोड़ा रख लिया और हाथी छोड़ दिया।

मैं—महाराज ! मैंने अनेक प्रदेशों की यात्रा की है, परंतु राग-स्वरूप सिद्ध करने की यह शैली प्रथम बार ही देख रहा हूँ।"

अब आगे का सम्भाषण रहने दो। वह भी इसी तरह का अनर्गल था। कहने का तात्पर्य इतना ही है कि राग के नाम-गाम से उसके स्वरों को निश्चित करना उचित नहीं हो सकता। यह समझने की आवश्यकता नहीं है कि मेघरंजनी का संबंध वर्षाकाल से स्थापित करना ही चाहिए।

प्रश्न—अभी तो हमें उस पंडित की बातों पर हँसी आ रही है। उसने भी कैसी-कैसी अद्भुत कल्पनाएँ लड़ाई थीं, गुरुजी !

उत्तर—ऐसे अनेक अर्द्धविक्षिप्त लोग तुम्हें मिलेंगे। भला, अशिक्षित लोगों से दूसरा और क्या स्पष्टीकरण हो सकता है ? ये लोग अपने शिष्यों के सम्मुख चाहे-जैसी बहकी-बहकी बातें कर जाते हैं तथा वे शिष्य उसमें और नमक-मिर्च लगाकर आगे बढ़ाते रहते हैं। मौखिक गप्पें हाँकना तो ठीक ही है, परंतु इसी प्रकार के गपोड़े तुम्हें अपने कुछ देशी भाषाओं के ग्रंथों में भी प्राप्त हो जाएँ, तो आश्चर्य नहीं। इस प्रकार के ग्रंथकारों में बहुत थोड़े ऐसे होते हैं, जो संस्कृत-ग्रंथों को समझ सके हों। ऐसे लेखकों द्वारा चाहे जैसे अनर्गल विधान प्रसिद्ध हो जाएँ, तो आश्चर्य ही क्या ? हमें तो उनका उपयोगी भाग स्वीकार करना और निरुपयोगी भाग छोड़ देना चाहिए। प्रत्यक्ष प्रचार में कभी-कभी उनका उपयोग भी हमारे लिए आवश्यक हो सकता है। हम उनकी निन्दा करना पसंद नहीं करेंगे। उन्होंने जो-जो गप्पें सुनी हैं, वे ही लिख दी हैं। मैं तुम्हें इस प्रकार के अनेक उदाहरण दे सकता हूँ, परंतु किसी भी लेखक से अकारण वैमनस्य उत्पन्न करना मुझे बिलकुल पसंद नहीं है। हमें तो इतना ही स्पष्टतापूर्वक देख लेना है कि हमारे लिए कौन-सा मत भला और खरा है। इतने-मात्र से ही अपना कर्तव्य पूर्ण हो जाता है। अस्तु, अब अपने विषय की ओर लौटना चाहिए ?

प्रश्न—जी हाँ, आप ग्रंथों का मत बता रहे थे।

उत्तर—रागलक्षणकार ने मेघरंजनी इस प्रकार बताई है :—

मायामालवगौलाख्यमेलाज्जाता सुनामिका।
सा मेघरंजनी तस्यां सन्यासं सांशकग्रहम्॥
आरोहेऽप्यवरोहे च पधवर्जं तथौडवम्॥

पंडित व्यंकटमखी के बताए हुए लक्षण इस प्रकार हैं :—

औडुवी पधवर्ज्या रीवक्रत्वमवरोहणे।
षड्जग्रहेण संयुक्ता गातव्या मेघरंजनी॥

Capt. Dey साहब ने अपनी सूची में यह राग मालवगौड़ ठाठ में बताया है। परन्तु इसके आरोह-अवरोह इस प्रकार बताए हैं—'सा रे॒ म प ध॒ नि सां। सां ध॒ प म ग रे॒ सा।' यह मैं तुम्हें बता ही चुका हूँ कि हमारा प्रचलित राग इस प्रकार नहीं है। इसलिए यह स्वरूप एक स्वतंत्र राग-रूप के समान प्रचार में चाहो तो आ सकता है, यह सुन्दर भी दिखाई देगा। जोगिया के अवरोह में निषाद होने पर गांधार नहीं है। सावेरी में अवरोह संपूर्ण है। गुणक्री में ग, नि बिलकुल नहीं हैं। मेघरंजनी में प, ध स्वर वर्ज्य हैं। इसी भिन्नता के कारण ये राग परस्पर भिन्न-भिन्न हो जाते हैं। ठीक है न? Captain साहब ने सावेरी का आरोह-अवरोह इस प्रकार बताया है—'सा रे॒ म प ध॒ सां। सां नि ध॒ प म ग रे॒ सा। यह मेरे बताए हुए जैसा ही है।

प्रश्न—मालूम होता है, इन्होंने गुणक्री के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा?

उत्तर—इन्होंने गुण्डक्रिया नाम दिया है और इस नाम के राग का आरोह-अवरोह, सारे॒गरे॒म, पनि॒ध॒निसां। सांनिध॒पमगरे॒गसा इस प्रकार बताया है। यह राग-स्वरूप अपना नहीं है। परसों एक गायक ने सम्पूर्ण शुद्ध स्वरों से, मेरे यहाँ आकर एक राग गाया और उसका नाम 'गौंडगिरी' बताया। उसमें गौड-मल्लार और बिलावल का मिश्रण दिखाई देता था। उसको राग के नियम बिलकुल ज्ञात नहीं थे, अतः उसे इस राग में 'फिरत' (राग-विस्तार) करना नहीं आया। किंतु तुम्हें इस मतभेद में पड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है। तुम्हारा यही निश्चय होना चाहिए कि जब स्पष्ट रूप से राग-नियम न दिखाई पड़ते हों, तो निराला राग नहीं माना जाए। यह तुम जानते ही हो कि कुछ रागों के आरोहावरोह वक्र व कुछ रागों के सरल होते हैं। वक्र रागों में फिरत करते हुए गायकों को बहुत कठिनाई होती है। ऐसी अवस्था में वे लोग कभी-कभी सरल स्वरों को लेकर भी तान लेते हुए दिखाई देते हैं। तो भी बीच-बीच में ऐसी तानें लेते जाते हैं, जिनमें रागों की वक्रता स्पष्ट हो जाती है। उदाहरणार्थ कल्याण ठाठ के दोनों मध्यम लगनेवाले राग देखो। इनमें गायक पंचम से आगे आनेवाले स्वरों की बार-बार सरल तान लेते हुए दिखाई पड़ेंगे। नियम की कठोरता की दृष्टि से यह कृत्य योग्य नहीं कहा जा सकता, परंतु उत्तरांग दुर्बल होने और मनाक् स्पर्श के न्याय से समाज इस प्रकार की तानें नापसंद नहीं करता। इस सम्बन्ध में मैं पहले भी बता चुका हूँ। तुम यह भी जानते हो कि इन दोनों मध्यमवाले रागों का वैचित्र्य षड्ज से पंचम तक के क्षेत्र में ही होता है। इन रागों के अंतरे में प्रायः चार टुकड़े आते हैं और उनमें से प्रथम दो टुकड़े 'प प, सां सां, सां रें सां, सां ध सां, रें सां, ध प' सदैव एकसे ही होते हैं, यह तथ्य भी तुम्हारे ध्यान में आ गया होगा। कहने का उद्देश्य यह है कि आजकल के तानप्रिय श्रोताओं को खुश करने के लिए अपने गायक कभी-कभी नियमों की ओर दुर्लक्ष्य करने लगें, तो आश्चर्य नहीं, तथापि यह सभी जानते हैं कि जिस गायक को राग-नियम ही ज्ञात न

हों, उसकी प्रशंसा समाज में कभी नहीं होती और न कभी होगी। राग-विस्तार करते समय आश्रय-राग की सहायता जान-बूझकर ग्रहण करना विशेष दोषपूर्ण नहीं होता, परन्तु यह भी सत्य है कि राग में मनमाने स्वरों का प्रयोग कर, नवीन राग का आभास करानेवाला गायक उच्च स्तर का कभी नहीं माना जा सकता।

प्रश्न—Capt. Willard साहब ने क्या मेघरंजनी का वर्णन किया है ?

उत्तर—नहीं। गुणकली या गुण्डकली, किन-किन रागों के मिश्रण से बन जाती है, यह बात उन्होंने अवश्य बताई है। गुणक्री के सम्बन्ध में बोलते हुए तुम्हें यह बात बतानी रह गई थी। इनके बताए हुए वर्णन से कुछ बोध होना भी संभव है। इनके मत से गुणकली में राग देशी, तोड़ी, ललित, आसावरी और गुर्जरी का मिश्रण होता है। मजा यह है कि संस्कृत-ग्रंथों में खोजकर देखें, तो 'देशी, ललित, आसावरी, देशकार, गुर्जरी', ये सब राग हमें संधिप्रकाश ठाठ में बताए हुए प्राप्त होंगे। इनमें कुछ तीव्र म वाले और कुछ कोमल म वाले राग चाहे हों, परन्तु रे कोमल और ग, नि तीव्र, यह निशानी अवश्य प्राप्त होगी। यह मैं स्वीकार करता हूँ कि तोड़ी का ठाठ स्वतंत्र है और आसावरी का ठाठ भी आजकल भिन्न माना जाता है; परन्तु अपनी गुणक्री या गुणकरी के स्वरों के सम्बन्ध में Captain साहब का मत अवश्य ही थोड़ा-बहुत प्रकाश डालने-योग्य है।

प्रश्न—आपका कथन यथार्थ है। इन साहब का 'राग-मिलाप' का कोष्ठक तो हम एक बार नकल ही कर लेंगे ? यह तो एक छोटा-सा कोश ही होगा। ठीक है न ?

उत्तर—हाँ, यही बात है। राजा साहब टैगोर के 'Hindu Music from various Authors' नामक ग्रंथ में यह कोष्ठक तुम्हें प्राप्त हो सकेगा। इसे Willard साहब ने न मालूम कहाँ से प्राप्त किया। अपने कुछ हिंदी-ग्रंथों में भी ऐसे कोष्ठक हैं। तुम्हें याद होगा कि पहले मैंने 'सुरतरंगिणी' नामक ग्रंथ के विषय में तुम्हें बताया था। इस ग्रंथ में भी इस प्रकार के राग-मिश्रण बताए गए हैं। यह ग्रंथ अब मेरे एक मित्र ने प्रकाशित करा दिया है और यह तुम्हें बाजार में मिल सकेगा। 'सुरतरंगिणी' ग्रंथ में सर्वसामान्य बाह्य बातें बहुत काफी मात्रा में हैं। रागों के भिन्न-भिन्न वर्गीकरण, उनकी मूर्तियाँ, 'रत्नाकर' के स्वराध्याय का हिंदी-दोहों में किया हुआ भाषांतर आदि अनेक बातें तुम्हें इसमें दिखाई पड़ेंगी।

प्रश्न—क्या इस ग्रंथ में रागों के ठाठ व लक्षणों के विषय की जानकारी मिल सकेगी ?

उत्तर—ये बातें नहीं मिलेंगी। इसमें तुम्हें स्वराध्याय और रागाध्याय में कुछ भी सम्बन्ध नहीं दिखाई देगा। तो भी इसमें बताए हुए 'राग-मिलाप' (राग-मिश्रण) का प्रकरण बिलकुल निरुपयोगी नहीं है। अन्य कई हिंदी-पुस्तकों की अपेक्षा यह पुस्तक मुझे वास्तव में अच्छी ज्ञात हुई और यह प्रकाशित हो गई है, यह भी बड़ा

अच्छा हुआ। इसके आधार पर कुछ राग-स्वरूप अपने गायक प्रचार में ला सकते हैं। इसी ग्रन्थ की एक हस्तलिखित प्रति मैंने काठियावाड़ के एक गुजराती सज्जन के पास देखी थी और उसे प्राप्त करने का मैं प्रयत्न करनेवाला था, परन्तु यह ग्रन्थ अब प्रकाशित हो गया है, अत: बड़ी सुविधा हो गई है। 'संगीतकल्पद्रुम' में भी एक प्रकरण राग-मिश्रण के सम्बन्ध में दिया गया है, जो तुम आगे चलकर देख ही लोगे।

प्रश्न—अब हमें यह बता दीजिए कि इस मेघरंजनी राग को हम कैसे गाएंगे ?

उत्तर—हाँ, बताता हूँ।

मेघरंजनी

नि़ सा, ग म, म, ग रे॒ ग म, ग, रे॒ सा, नि़ रे॒ सा, ग म, म॑ म, रे॒ ग म, ग रे॒ सा; सा रे॒ सा म ग रे॒ सा, सा रे॒ सा, नि़ रे॒ सा, रे॒ सा, ग म, म रे॒ ग म, म॑ म, रे॒ ग रे॒ सा, नि़ रे॒ सा नि़ रे॒ ग म रे॒, ग म, म॑ म, नि़ सा ग म, रे॒ ग, म नि सां नि म ग, रे॒ ग, म ग, रे॒ सा। म म, म ग, म नि सां, सां, नि रें॒ सां, नि रें॒ गं रें॒ सां, गं रें॒ सां, सां नि म ग, मं मं गं, रें॒ सां, नि म ग, म ग रे॒ सा; नि़ रे॒ सा।

स्थायी — सरगम, झप ताल

नि़	रे॒	।	ग	म	म	।	म	म	।	ग	म	म
म	ग	।	म	म॑	म	।	ग	ग	।	रे॒	ग	ग
म	ग	।	म	ऽ	म	।	नि	सां	।	रें॒	नि	सां
रें॒	रें॒	।	सां	नि	सां	।	म	म	।	ग	रे॒	म

अन्तरा

म	म	।	ग	म	म	।	सां	ऽ	।	सां	रें॒	सां
नि	रें॒	।	गं	गं	रें॒	।	सां	ऽ	।	नि	रें॒	सां
सां	सां	।	रें॒	रें॒	सां	।	गं	रें॒	।	सां	नि	सां
सां	नि	।	रें॒	रें॒	सां	।	म	ऽ	।	ग	रे॒	म

मैं समझता हूँ कि उक्त स्वर-समुदाय एवं गत से तुम्हें मेघरंजनी की थोड़ी-बहुत कल्पना हो जाएगी। इसमें स्वर कम हैं और प तथा ध, ये दोनों प्रमुख स्वर वर्ज्य हैं, अत: राग-विस्तार बहुत ही मर्यादित रूप में होता है। तो भी यदि गायक का कंठ मधुर हो और वह राग-नियम उत्तम रूप से निभा सके, तो यह राग भी अच्छा प्रभाव उत्पन्न कर सकता है।

प्रश्न—यह राग हम समझ गए। अब कोई दूसरा राग बताइए ?

उत्तर—ठीक है। अब हम 'प्रभात' राग पर विचार करेंगे। 'प्रभात' बिलकुल सामान्य शब्द है। इसका अर्थ प्रातःकाल होता है। संस्कृत में यह शब्द नपुंसकलिंग में है, परन्तु तुम्हें प्रचार में प्रभात राग या 'प्रभात' पुल्लिंग में प्रयोग किया हुआ दिखाई देगा। 'प्रभात' नाम कानों में पड़ते ही, यह कल्पना हो जाती है कि यह प्रातःकाल गाने का राग होगा। वास्तव में बात भी यही है, यह सचमुच ही प्रातःकालीन राग है। 'प्रभात' नाम केवल कालवाचक है, अतः यह सन्देह भी हो सकता है कि इस नाम को राग के लिए स्वीकार किया जाना चाहिए, अथवा नहीं। यह भी एक तर्क उत्पन्न होता है कि संस्कृत-ग्रन्थों में ऐसा नाम कहीं नहीं दिखाई पड़ता। मेरी समझ से इस राग के लिए यह कह देना अधिक सुविधाजनक होगा कि यह अपने गायकों द्वारा दो-तीन रागों का मिश्रण कर उत्पन्न किया हुआ नवीन राग-स्वरूप है। 'लक्ष्य-संगीत' आदि अर्वाचीन ग्रन्थों में इस राग का बताया जाना भी उचित ही है, क्योंकि ये ग्रन्थ प्रचलित हिन्दुस्तानी संगीत पर लिखे हुए हैं। यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि यह मिश्र स्वरूप मनोहर और कुछ अंशों में स्वतन्त्र भी है। इसमें प्रमुख रूप से भैरव, रामकली और ललित का सुन्दर संयोग दिखाई देता है।

इस राग का मुख्य अंग भैरव का है। इसलिए हमारे विद्वान् इसे भैरव ठाठ का ही मानते हैं। प्रत्येक राग किसी-न-किसी ठाठ में तो स्थान पाएगा ही, क्योंकि बिना इसके संगीत-पद्धति में बाधा उपस्थित हो जाएगी। जन्य-जनक तत्त्व तो सर्वत्र प्रसिद्ध ही हैं। 'राग' कहने पर उसका ठाठ भी बताना ही पड़ेगा। 'प्रभात' में स्वल्प रूप में तीव्र मध्यम का प्रयोग भी होता है। अतः इसके ठाठ के सम्बन्ध में किसी को सन्देह होना सम्भव है, परन्तु वह तीव्र मध्यम इस राग में बिलकुल गौण रूप में प्रयुक्त होता है, अतः इस राग को भैरव ठाठ में निश्चित करने का कार्य बिलकुल सरल हो जाता है। सन्धिप्रकाश के राग प्रातःकालीन व सायंकालीन होते हैं।

राग का समय उसके मुख्यांगों से तत्काल ही मर्मज्ञों को दिखाई पड़ जाता है। सायंकाल में दोनों मध्यम के प्रयोगवाले रागों में 'पूर्वी' राग प्रमुख है। अभी मैंने तुम्हें यह राग नहीं सिखाया है। 'प्रभात' और 'पूर्वी' में यह एक बड़ा भेद है कि प्रभात में तीव्र म गौण है और पूर्वी में कोमल म गौण है।

प्रश्न—ऐसा ही थोड़ा-बहुत रामकली में भी था। ठीक है न ?

प्रश्न—हाँ, यह तुमने अच्छा ध्यान रखा। 'प्रभात' में तीव्र म भिन्न रीति से प्रयुक्त किया जाता है। 'प्रभात' में कोमल मध्यम बहुत महत्त्व प्राप्त करता है। इस स्वर को इस राग का वादी कहना भी शोभनीय होगा। एक मात्र इसी लक्षण से ही यह राग सायंकालीन नहीं हो सकता। 'प्रभात' का धैवत कोमल है, क्योंकि यह भैरव ठाठ का ही एक राग है।

प्रश्न—आपने बताया है कि इस राग में भैरव-अंग प्रधान है, तब इसमें तीव्र मध्यम किस प्रकार दिखाया जाता होगा। क्या यह आप हमें बताएँगे ?

उत्तर—यह स्वर ललित-अंग से लिया जाता है।

प्रश्न—अर्थात् जिस प्रकार मेघरंजनी में लिया जाता है, उसी तरह ?

उत्तर—हाँ, तुम ठीक समझे। रामकली राग के समान इस राग में 'मं प धु प मं, ग रे सा' इस प्रकार अपने गायक नहीं करते, यथासम्भव वे भैरव-अंग को उत्तम रीति से दिखाते हैं। ललित-अंग दिखाने के लिए मध्यम का प्रयोग व्यस्त अर्थात् खुला आवश्यक होता है।

प्रश्न—तो इस राग की 'फिरत' गायक लोग किस प्रकार करते हैं ?

उत्तर—गायक लोग अधिकांश तानें भैरव की हो ग्रहण करते हैं, परन्तु बीच-बीच में वे ललित-अंग की निश्चित तानें लेकर राग-भेद दिखाया करते हैं। 'सा, रे रे सा, ग, म, ग रे सा, म म, ग म, प धु प, म, रे ग म मं, ग म, ग रे सा, धु, सा'। यदि इस प्रकार से तुम तानें लेते गए, तो 'प्रभात' राग दिखाई देगा। इस राग को तुम्हें मेघरंजनी और रामकली से सावधानीपूर्वक बचाना होगा।

प्रश्न—मेघरंजनी तो औडुव राग है, अतः यह तो अलग हो ही जाना चाहिए। परन्तु रामकली से बचाने में सचमुच कुछ कठिनाई होगी। 'मं प, धु नि धु प, मं प, म ग रे सा' यह रामकलो की तान हमें अच्छी तरह ध्यान में रखनी चाहिए, ठीक है न ? परन्तु रामकली में ललित-अंग कहाँ है ?

उत्तर—यदि रामकली में किसी ने मध्यम कुछ बढ़ा दिया, तो ललित-अंग नहीं आ पाएगा। यदि 'धु प म, ग रे सा' तान मध्यम पर ठहरते हुए ली गई, तो भी ललित-अंग नहीं आ सकता। 'प्रभात' राग में 'नि सा ग म म, ग, रे ग, म, ग म ग रे सा' यह भाग विचित्र ही है। इसे देखकर कोई-कोई सोचते हैं कि प्रभात राग में कालिंगड़ा का भी कुछ मिश्रण स्वीकार किया जाए। मैं यह नहीं कहूँगा कि इस कथन में कोई तथ्य नहीं है। यह ठीक है कि कुछ अंशों में प्रभात राग का मुख इसी प्रकार दिखाई देता है। परन्तु यह भी सत्य है कि अन्तरे में भैरव-अंग स्पष्ट दिखाई पड़ता है। प्रभात राग में मध्यम का प्रमाण अधिक होने से इसकी प्रकृति गम्भीर होनी ही चाहिए। भैरव-अंग माननेवाले गायक यह भी कहते हैं कि प्रभात राग के रे, ध स्वर कालिंगड़ा की अपेक्षा अधिक कोमल होते हैं। परन्तु हम इस प्रकार के भेदों में नहीं जाएँगे; क्योंकि रागों में अन्तर दिखानेवाले अन्य लक्षण भी हमारे पास हैं। कालिंगड़ा में ललित-अंग कभी नहीं आ सकता और इसी प्रकार भैरव-अंग। इसके विपरीत गायक इसे टालने का प्रयत्न ही सदैव करते हैं। प्रभात राग का अन्तरा तो प्रायः भैरव की छाया ही दिखाता है।

प्रश्न—तो फिर अभी हम इस प्रकार प्रभात राग का स्वरूप अपने ध्यान में रख लेते हैं कि यह एक भैरव ठाठ का राग है, इसमें दोनों मध्यम हैं, परन्तु शुद्ध मध्यम वादी स्वर है, इसमें ललित का एक टुकड़ा आ जाने पर रामकली राग इससे अलग हो जाता है। कालिंगड़ा का उठाव ग्रहण करने पर भैरव निराला हो जाता है। अन्तरा भैरव-जैसा ग्रहण करने पर और ललित-अंग ग्रहण करने पर कालिंगड़ा अलग हो जाता है। यह ठीक होगा न ?

उत्तर—ठीक रहेगा। मेघरंजनी और गुणकली रागों में तो दो-दो स्वर छोड़े जाते हैं, अतः वे सरलता से अलग किए जा सकते हैं। प्रभात सम्पूर्ण जाति का राग है। इस राग को तुम सहज में पहचान सको, इसके लिए एक बात और बता देता हूँ। अपने वैष्णव-मन्दिरों में इस राग के पद 'उठ प्रभात सुमिर लिए', 'जागिए गोपाल लाल' इस प्रकार के गाए जाते हैं। हमारे कुछ प्राचीन घरानों में स्त्रियाँ भी प्रातःकाल इस प्रकार के पद गाती हैं। आजकल सुधारवादी घरानों में, मूर्ति-पूजा का कार्य पिछड़ जाने से यह नहीं जान पड़ता कि कोई जल्दी प्रातःकाल के समय जागकर इस प्रकार के पद गाते हों। प्रभात और सावेरी का अन्तर तो तुम जान ही गए होगे ?

प्रश्न—आपने बताया है कि सावेरी के आरोह में ग, नि स्वर वर्ज्य हैं और अवरोह में सम्पूर्ण स्वर लगते हैं।

उत्तर—यह ठीक है। तो फिर तुम यह देख ही रहे हो कि भैरव ठाठ में खुले मध्यम का प्रयोग ग्रहण करनेवाले अनेक राग हैं, परन्तु वे सब अपने-अपने भिन्न लक्षणों द्वारा स्वतन्त्र हैं। इस ठाठ के रागों में ललित-अंग ग्रहण करनेवाले रागों का एक छोटासा वर्ग ही अलग मान लेना उचित होगा। प्रातःकाल के समय शुद्ध मध्यम एक महत्त्वपूर्ण स्वर हो जाता है, और यह अनेक रागों में चमकता हुआ पाया जाता है। संध्या के समय इससे भिन्न स्थिति होती है, इस समय तीव्र मध्यम का बड़ा महत्त्व है। आगे चलकर तुम यह समझने लगोगे कि जिन रागों में यह स्वर नहीं होता, उन रागों में थोड़ा-सा अभाव खटकने लगता है। 'प्रभात' में ललित-अंग है, यह कहने से शायद तुम यह पूछोगे कि इस राग को 'ललित' से अलग कैसे किया जाता है। बड़े-बड़े गायक प्रभात, माँड़, धानी, पीलू, बरवा आदि रागों को अधिक सम्मान नहीं देते। कोई-कोई तो इन्हें एक 'धुन' मात्र ही मानते हैं, परन्तु हम तो इन सभी को राग ही मानेंगे। लक्ष्यसंगीतकार ने भी इसी प्रकार माने हैं और हम उसी मत के अनुयायी हैं।

प्रश्न—'लक्ष्यसंगीत' में 'प्रभात' राग का वर्णन किस प्रकार बताया है ?

उत्तर—सुनो :—

भैरवे मेलके प्रोक्तः प्रभाताख्यो मनीषिभिः।
मध्यमांशः प्रभातार्हो ललितांगविभूषितः॥
भैरवस्थरिधावत्र प्रातःकालप्रसूचकौ।
बादित्वान्मध्यमस्यैव तद्भिन्नत्वं परिस्फुटम्॥
प्रयोगः पंचमस्यात्र ललितांगनिवारकः।
भक्तिमार्गसुप्रयुक्तो नूनं स्याद्भुक्तिमुक्तिदः॥

इस राग को कुछ सावकाश रीति से गाया जाए, तो वास्तव में विलक्षण प्रभाव उत्पन्न होता है।

प्रश्न—यह राग सूर्योदय के कुछ पहले ही आजकल गाया जाता होगा, क्योंकि इसमें स्वल्प रूप में तीव्र मध्यम प्रयुक्त होता है ?

उत्तर—खूब बताया। इस राग का समय अरुणोदय काल माना जाता है। दोनों मध्यम के चिह्न खूब तुम्हारे ध्यान में रहे।

प्रश्न—आपने संस्कृत-ग्रन्थों में दोनों मध्यमवाले कौन-कौनसे राग भैरव ठाठ में बताए थे ?

उत्तर—सम्भवतः यह बात मैं पहले भी बता चुका हूँ कि प्राचीन संस्कृत-ग्रन्थों में अधिकतर दोनों मध्यम ग्रहण करनेवाले राग ही प्राप्त नहीं होते। हाँ, कुछ ग्रन्थों में शुद्ध मध्यम को अति तीव्रतम ग बताकर सारंग आदि राग बताए हैं, परन्तु ऐसे राग बहुत थोड़े हैं और वे मेरे बताए हुए नियम को ही सिद्ध करते हैं। कोई-कोई तो कहते हैं कि यह नियम ही उत्तर व दक्षिण-पद्धति का मुख्य भेद समझा जाता है। तुम जानते ही हो कि दक्षिण की ओर ७२ ठाठों की रचना है। इसमें शुद्ध म वाले और तीव्र म वाले राग भिन्न-भिन्न हैं। आजकल अपने गायक भी दक्षिण की ओर जाने लगे हैं, इसलिए वहाँ के गायक भी इनका थोड़ा-बहुत अनुकरण करने लगे हैं। तो भी यह ध्यान में रखने की बात है कि यह (दोनों मध्यमों का एक ही राग में प्रयोग) वहाँ के संगीत-शास्त्र की दृष्टि से मान्य नहीं है। 'संगीत-पारिजात' में सारंग, सौदामिनी, कुरंग आदि राग दोनों मध्यमवाले बताए हैं। छायानट में भी अहोबल ने 'अनेकमध्यमः' ऐसा एक पद डाल रखा है। तुमने मुझसे भैरव ठाठ के दोनों मध्यमवाले रागों के विषय में पूछा था। इसके उत्तर में मेरा यही कथन पर्याप्त है कि इस ठाठ में दोनों मध्यम ग्रहण करनेवाले राग संस्कृत-ग्रन्थों में नहीं बताए गए हैं।

प्रश्न—आपने यह बताया था कि 'रागतरंगिणी' ग्रन्थ का शुद्ध ठाठ काफी है। कौन जाने शायद इस ग्रन्थकार ने दोनों मध्यमवाले राग भी बताए हों।

उत्तर—अच्छी याद दिलाई ! तुम्हें 'गौड़सारंग' राग बताते हुए इस ग्रन्थ का 'मेघ' ठाठ मैंने बताया था, ठीक है न ? इस ठाठ में वास्तव में दोनों मध्यमवाले राग बताए हैं। यह स्वीकार करना पड़ेगा कि उत्तर-भारत में यह प्रचार प्राचीन काल से चला आ रहा है। उत्तर-पद्धति के प्राचीन ग्रन्थ उपलब्ध न होने से हम उत्तम और विश्वस्त जानकारी देने का साहस नहीं कर सकते। दक्षिण के प्रचार का हमें अभी कुछ भी नहीं करना है।

प्रश्न—दक्षिण के गायक भैरव ठाठ में अधिकतर कौन-से राग गाते हैं ?

उत्तर—इस ठाठ में उधर के लोकप्रिय राग 'गौल' नादरामक्री, सावेरी, परज बहुली आदि हैं। उधर ललित, बसन्त सौराष्ट्र भी गाए जाते हैं, परन्तु इन रागों में वे तीव्र धैवत ग्रहण करते हैं। तीव्र धैवत ग्रहण करनेवाले रागों का वर्ग अभी तक हमने अपने हाथ में नहीं लिया। इस ठाठ के राग आगे आएँगे ही। दक्षिण में रागस्वरूपों से, अपने रागस्वरूपों का साम्य कहीं-कहीं नहीं हो सकेगा। दूर क्यों जाते हो, अपने इस भैरव राग को ही लो न ?

यह राग हमारे यहाँ इतना अधिक प्रसिद्ध है कि हम यह सोचने लगते हैं कि यह राग समस्त देश में इसी प्रकार गाया जाता होगा। परन्तु हमारी यह कल्पना निश्चय ही गलत सिद्ध हो जाएगी। दक्षिण के कुछ ग्रन्थों में भैरव को तीव्र धैवतयुक्त राग बताया है। यह सुनकर हमारे अतिकोमल धैवत के अभिमानी पंडित एकदम सकपका जाएँगे। यदि सोमनाथ का शुद्ध ध चौथे परदे पर स्थापित किया, तो इसका भैरव भी क्या तीव्र धैवत ग्रहण करनेवाला नहीं हो जाता? किंतु इन मतभेदों में अब हम बिलकुल नहीं पड़नेवाले हैं। हमें तो अपने प्रचार को ग्रहण कर आगे बढ़ना ही पर्याप्त है। हमें अपने मत को डाँवाडोल नहीं रखना चाहिए। यह अवश्य कहा जाएगा कि मतभेदों का बिलकुल अभाव होना भी अशक्य है। आजकल रेल की सुविधा होने से देश के भिन्न-भिन्न भागों के गायकों का मेल-जोल बढ़ जाने के कारण राग-स्वरूपों में परिवर्तन होना अवश्यंभावी है, और अगर ऐसा हुआ भी, तो क्या हुआ? हमें तो अपना मत स्पष्ट और नियमबद्ध रूप से कहना ही उचित है। क्या अपने यहाँ अब हंसध्वनि, नागस्वरावली, प्रतापवराली, देशगौड़, सावेरो, मेघरंजनी, कांभोजी, नीलाम्बरी आदि राग स्थायी रूप से प्रतिष्ठित नहीं हो गए हैं। ये बहुत मधुर राग-रूप हैं, अतः अपने यहाँ भी लोगों को पसन्द हैं। जिन गायकों को ये राग नहीं आते, वे गायक और उनके अनुयायी थोड़े दिनों तक नाक-भौं सिकोड़ेंगे, परन्तु मेरा मत है कि 'गुणसुन्दरी' आदि नाम रखकर दो-तीन पुराने रागों की अजीब तोड़-मरोड़ कर मिश्रण करने की अपेक्षा, ये संस्कृत ग्रन्थोक्त सुन्दर नियमों के राग-स्वरूप, जो अनायास प्राप्य हैं, अधिक पसन्द आने योग्य हैं। दक्षिण के राग भी हमारे उत्तर के गायक अच्छी प्रकार से गा लेते हैं। यह समझ में नहीं आता, जबकि दक्षिण के उपयोग में आनेवाले बारह स्वर ही हम उधर के गायकों द्वारा गायन में प्रयोग किए हुए देखते हैं, फिर हमें दक्षिण के रागों का क्यों तिरस्कार करना चाहिए? यदि हमें दक्षिण की गायकी पसन्द न हो, तो उत्तर की गायकी ही रखें, परन्तु वर्ज्यावर्ज्य नियमों से बँधे हुए राग-स्वरूपों के लिए यह दोष कैसे दिया जा सकेगा? आजकल कहीं-कहीं हमारे यहाँ नवीन-नवीन राग-स्वरूप प्रचलित करने की प्रवृत्ति होती जा रही है। उस दिन मुझे एक मुस्लिम गायक ने 'देश गौड़' राग गाकर सुनाया। मुझे वह राग भी बहुत पसन्द आया।

प्रश्न—वह राग उसने कैसे गाया था?

उत्तर—उसके गाए हुए गीत के 'बोल' तो अब मुझे याद नहीं है, परन्तु उसके स्वर इस प्रकार थे :—

सा, रे रे सा, ध़ ध़ प़ प़, ध़ ध़, नि़ सा, रे रे सा। सा रे सा, प, रे ध ध प, ध नि ध प, रे प, रे सा। ध ध प नि, सां, सां, सां, रें रें सां, ध, नि सां रें, सां नि ध प, रे प प ध ध प, सां नि ध प, नि ध प रे, प रे सा।

इन स्वरों के आधार पर तुम भी एक 'सरगम' अपनी जानकारी के लिए तैयार कर लो, इतना ही यथेष्ट होगा।

प्रश्न—ज्ञात होता है कि इस राग-स्वरूप में गान्धार और मध्यम वर्ज्य होते होंगे?

उत्तर—हां, यह औडुव राग है। ग, म स्वर वर्ज्य होने के कारण ऋषभ और पंचम की संगति हो जाएगी। यहाँ तुम्हें थोड़ा-सा श्री राग का आभास हो सकता है। यदि धैवत स्वर पर जोर दिया और पंचम को संवादित्व दिया, तो यह श्री-अंग का ही कोई राग-स्वरूप दिखाई देगा। इस राग के आरोह-अवरोह ग्रन्थों में 'सा रे॒ सा, प ध॒ नि सां। सां नि ध॒ प, सा रे॒ सा' दिए हैं। इसमें ऋषभ वक्र है, परन्तु गाते समय वक्रत्व नहीं रखा जाता।

प्रश्न—क्या हमें इस राग की एक छोटी-सी 'सरगम' बनाकर दे सकेंगे ?

उत्तर—देता हूँ, लो:—

स्थायी **तीव्रा**

देश गौड़

रे॒	रे॒	सा	रे॒	रे॒	सा	सा	ध़॒	ध़॒	ध़॒	नि़	नि़	सा	सा
×			१		२		×			१		२	
रे॒	रे॒	सा	प	प	ध॒	प	रे॒	रे॒	प	रे॒	रे॒	सा	ऽ
×													
नि़	रे॒	नि़	ध़॒	ध़॒	प़	प़	ध़॒	सा	ऽ	रे॒	रे॒	सा	ऽ
×													
सा	रे॒	सा	प	प	ध॒	प	रे॒	रे॒	प	रे॒	रे॒	सा	सा
×													

अंतरा

प	प	प	ध॒	ध॒	नि	नि	सां	ऽ	सां	रें॒	रें॒	सां	ऽ
×							×						
सां	ध॒	ध॒	नि	नि	सां	ऽ	रें॒	रें॒	सां	ध॒	ध॒	प	प
रें॒	रें॒	रें॒	सां	सां	ध॒	प	ध॒	सां	ऽ	नि	ध॒	प	प
×													
प	प	ध॒	नि	ध॒	प	प	रे॒	प	प	रे॒	रे॒	सा	सा
×													

मैं तुम्हें यह स्थूल रूप बता रहा हूँ। उस गायक ने अपनी चीज बहुत अच्छी तरह गाई थी। यदि गायक कुशल हो, तो वह अपना गायन रंजक बना सकता है। केवल उसमें गायकों के लिए आवश्यक होनेवाली तीन बातों में से एक-दो तो होनी ही चाहिए।

प्रश्न—वे कौनसी बातें हैं ?

उत्तर—अपने अशिक्षित गायक हमें बताते हैं कि गायक में 'आदत, जिगर और हिसाब' इनमें से कम-से-कम पहली दो बातें तो होनी ही चाहिए। यह नहीं कि इन शब्दों का कोई बड़ा भारी गहन अर्थ है। उत्तम रियाज कर अच्छी तरह तान लेने की सामर्थ्य प्राप्त करना 'आदत' समझी जाती है। 'जिगर' अर्थात् Musical Temperament 'अंग स्वभाव' समझा जाता है। 'हिसाब' अर्थात् राग व ताल के शास्त्रीय नियम आदि का ज्ञान रहना चाहिए। यह नहीं कि ये तीनों बातें एक ही गायक में सदैव होती ही हैं। किसी-किसी गायक को बड़ी-बड़ी तानें लेकर 'सम' पर उत्तम रूप से मिलना आता है, परन्तु वह बेचारा 'हिसाब' के नाम-गाँव को नहीं जानता। यह तान लेना उसकी 'आदत' मानी जा सकती है। यह स्पष्टीकरण मैं तुम्हें गायकों की दृष्टि से और भाषा की दृष्टि से समझा रहा हूँ। तबलची अपने तबले को ठोक-ठोक कर तम्बूरे से मिला लेता है, परन्तु उसे दूसरे स्वर समझ में नहीं आते, यह उसकी 'आदत' है। अस्तु,

राग 'देश गौड़' तुम्हारे कानों में बार-बार सुनाई पड़ने-योग्य राग-स्वरूप है, इसलिए इसे विस्तृत रूप से मैंने बताया है। इसमें ऋषभ पर से एकदम पंचम स्वर पर उछाल मारनी पड़ती है। इसी तरह थोड़ा-सा श्री राग में भी हम प्रयोग करते हैं, परन्तु श्री राग के अवरोह में ग, म लिए जाते हैं। ऐसे स्वरूप गायक लोग तैयार करके अपने लिए रख छोड़ते हैं। अब हम अपने राग की ओर पुनः लौट चलें।

मैं तुम्हें प्रभात राग की अधिकांश जानकारी अब दे ही चुका हूँ। धीरे-धीरे आलाप के मधुर अक्षरों से छोटे-छोटे स्वरसमुदाय गाकर बीच-बीच में 'सम' दिखानें-जैसा रूप बताते हुए राग-विस्तार करते जाना उचित है।

प्रश्न—आलाप के शब्द अर्थात् 'अनन्त हरि' के टुकड़े ही न ? हमने तो यही ध्यान में रख छोड़ा है कि कानों को अक्षर कर्कश न लगें, इतनी ही विचारधारा गायकों को पसन्द रही होगी ?

उत्तर—हाँ, ऐसा मान लेने में कोई हानि नहीं। गायक लोग कुछ अक्षरों का संग्रह कंठस्थ करके सदैव युक्ति से प्रयोग किया करते हैं। वे 'गतानुगतिक' मनोवृत्ति के होने के कारण ऐसे अक्षरों का भी बड़ा महत्त्व समझते हैं।

प्रश्न—यदि ऐसे कुछ निश्चित अक्षर हों, तो हम भी उन्हें लिख डालें ?

उत्तर—ऐसे रूप तुम्हें 'कल्पद्रुम' में मिल सकते हैं। एक-दो गायकों ने यह मेरे पास से खास तौर पर माँग लिए थे, वे सभी तो मैं तुम्हें नहीं बताऊँगा, परन्तु थोड़ेसे बता रहा हूँ। यदि तुम चाहो, तो इन्हें भी लिख लो !

'न न न री न न आ न न उ न न आ न न अ द त न री त न री त न उ न न आ न न री न न री न न, ता ना तो म। अ द न तुं अ न न तुं ता न न री न न आ न त न त नु त नु त री न त नो म री र न ने ता न ना न त न री न त नुं न न न न ना न न ता नुं त न न री न न, ता ना तो म। री र न नि ता न ना न न आ न न न री र न तु इ०।

अब और अधिक बताने की आवश्यकता नहीं। समस्त खूबी इसी में है कि तुम्हारी जीभ कैसी चलती है। यह अनुभवपूर्ण तथ्य है कि निरे 'आ'कार की तानें उच्चारण करने में कुछ कठिनाई पड़ती है, इसलिए गायक लोग इन अक्षरों का प्रयोग करते हैं। यदि कोई कुछ अक्षर बदल ले, तो तुम्हें आश्चर्य करने की आवश्यकता नहीं है। आलाप में प्रयुक्त होनेवाले अक्षर किसी परिश्रमी गायक द्वारा एक ध्रुवपद में इस प्रकार जमाए हुए भी देखे थे :—

ध्रुवपद-चौताल; यमन

त न री इ ना ता न री ई न न उ अ न तृ म तु म अ द न तु म अ द न तुं त द नु तुं री न र ना न र न न तुं री न र ना न रा न न न त न न न इ न न उ न न त न र ना न त ना न त नुं त नुं।

आलाप करते हुए एक तरह की 'लय' उत्पन्न करके इन अक्षरों को राग की रूप-रेखा पर गाने की आदत डालनी चाहिए। यह मैं किस प्रकार करता हूँ, इसे देखो तो यह कृत्य सरलता से सध जाएगा। श्रोता तुम्हारे 'अ न न न त न न न' की ओर नहीं देखते, वे तो राग के माधुर्य की ओर देखते हैं। समस्त खूबी यही है कि तुम्हारी जीभ अटकनी नहीं चाहिए और क्रम से लय बढ़ती जानी चाहिए। उदयपुर के गायक इस आलाप के विषय में बहुत ही प्रसिद्ध हैं। गायकों में भी यह मान्यता है कि ऐसे लोग इस देश में बहुत थोड़े निकलेंगे। तुम भी यदि उन तन्तकारों के निकट जा पाओ और वहाँ जोड़ बजाते हुए वे एक प्रकार की जो लय उत्पन्न करते हैं, उसे देखो, तो तुम्हारे ध्यान में यह बात अच्छी तरह आ जाएगी। अक्षरों की उलट-पलट हो जाए, अथवा एक-दो अक्षर कम-अधिक हो जाएँ, तो इसका कोई विधि-निषेध नहीं है। परिणाम उत्तम होना ही सब कुछ है। यह मैं कह चुका हूँ कि आलाप को ताल की आवश्यकता नहीं होती, और अब मैं एक तरह की लय उत्पन्न करने की बात कह रहा हूँ, इससे कोई विरोधाभास नहीं समझना चाहिए। हम जिन अक्षरों का उच्चारण करते हैं, उन्हें 'काल' की आवश्यकता तो है ही। ये ही चार-चार, तीन-तीन के समूह के रूप में उच्चारित किए गए, तो एक प्रकार की लय उत्पन्न हो जाती है; यह सहज ही समझ में आ जाएगा। यह वर्णन कुछ कठिन ज्ञात होगा, परन्तु यह कृत्य प्रत्यक्ष रूप में बिलकुल सरल है। 'न न न न न' इस प्रकार एक-से अक्षर उच्चारित करना शोभनीय नहीं होता, अतः इन्हें गायक बदल डालते हैं और उनके विभाग बना लेते हैं।

प्रश्न—'प्रभात' का आरम्भ किस प्रकार से करना चाहिए या किस प्रकार किया जाता है, यह बात यदि स्पष्ट रूप से आप कह सुनाएं, तो अच्छा होगा ?

उत्तर—देखो! कहता हूँ। 'ग म ग रे॒, सा, सा धृ, नि॒ सा; सा रे॒ ग, रे॒ ग म, म म, रे॒ प म म, ग म ग रे॒ सा, धृ नि॒ सा।'

ललित का अंग मध्य में इस प्रकार लाया जाता है—'म म, म ग म, ग म मं, ग म ग, रे॒, सा', आगे अंतरा धृ धृ प, म ग, रे॒, ग, म मं, ग म ग, रे॒, सा',

इस तरह लेना चाहिए—प, प, ध॒ ध॒, नि सां, सां, ध॒ नि सां, रें॒ रें॒, सां नि ध॒ प। इस प्रकार के स्वर गाकर पुनः स्थायी का ललित-अंग दाखिल किया जाए और राग पूर्ण किया जाए। यह ध्यान में रखने-योग्य बात है कि जब तक अन्तरे में भैरव-अंग नहीं आएगा, तब तक श्रोताओं को ललित और कालिंगड़ा का मिश्रण दिखाई देगा। कोई-कोई यहाँ कालिंगड़ा की जगह गौरी का योग मानते हैं।

प्रश्न—क्यों भला ? मालूम होता है कि गौरी में और कालिंगड़ा में कुछ साम्य है ?

उत्तर—कोई-कोई गायक तो गौरी में कालिंगड़ा का अंग ही मानते हैं, परन्तु यह चर्चा गौरी राग का विचार करते समय आएगी। 'प्रभात' के गीत तुम्हें अनेक बार 'दादरा' ताल में प्राप्त होंगे। यह भी कह सकते हो कि ये गीत इस राग में शोभा भी देते हैं। अब इस राग की पकड़ 'ग म मं, ग म ग रे॒, सा, नि़ नि़ सा' ध्यान में जमा लो, इतना काफी है। यह सत्य है कि अधिकतर श्रोता इस स्वर-समूह के सम्मुख आते ही और 'नि़ नि़ सा' स्वर कानों में पड़ते ही, 'प्रभात' राग पहचान सकते हैं। 'प्रभात' के लक्षण अन्य आधुनिक ग्रन्थों में इस प्रकार बताए गए हैं :—

संस्थाने किल भैरवस्य कथितो रागः प्रभाताभिधः।
संपूर्णस्वरमंडितश्च ललितांगेन प्रयुक्तः सदा ॥
वादी मध्यम ईरितो मधुरसंवादी च षड्जस्वरो।
गायंति ध्रुवमेनमत्र सुधियः प्रत्यूषकाले मुदा ॥

—कल्पद्रुमांकुरे

अस्मिन्भैरवसंस्थाने प्रभातो वादिमध्यमः।
षड्जसंवाद्यनुगतो ललितांगेन गीयते ॥

—रागचन्द्रिकायाम्

प्रश्न—हम समझते हैं कि अब हमें इस राग के स्वरूप की यथेष्ट कल्पना होती जा रही है। बस, एक बार इसे स्वरों में गाकर और सुना दीजिए ?

उत्तर—ठीक है, सुनो :—

सरगम

स्थायी

झप ताल

×
ग म । ग रे॒ सा । नि़ सा । ध़ नि़ सा

×												
ग	म	।	ध	ध	प	।	म	ग	।	रे	ग	म
×												
म	ग	।	म	ध	नि	।	सां	ऽ	।	ध	नि	सां
×												
सां	नि	।	ध	प	म	।	ग	रे	।	ग	म	मं

अंतरा—

×												
म	प	।	प	ध	ध	।	नि	नि	।	सां	नि	सां
×												
ध	ध	।	ध	नि	सां	।	रें	सां	।	नि	ध	प
×												
म	म	।	ग	म	म	।	ध	ध	।	प	म	म
×												
सां	नि	।	ध	प	म	।	ग	रे	।	ग	म	मं

साधारण चलन—

म ग रे, सा, ध़ ध़ नि़ सा, रे सा ग म, रे ग ग म म
मं, ग म ग रे, सा; सा रे सा नि़ सा ग म; रे ग म, ध
ध प म, ग म, रे ग म मं, ग म ग रे सा; सा रे सा
ध़ ध़ नि़ ध़ प़, ध़ ध़ नि़ सा, रे रे, सा, ग म ग रे, सा,
ग म मं ग म, रे ग म प, म ग रे सा; नि़ सा ग म
प प, ध ध प म, रे ग म मं, ग म ग रे, सा, ध़ नि़ सा,
ग म प म, ग, म ग रे सा; प प ध ध नि नि सां, ध
नि सां, रें रें सां, नि ध प, म, म मं म, ग रे ग म, ध
प म, रे ग म मं, ग म ग रे सा, नि़, सा।

इस राग को भैरव, रामकली, कालिंगड़ा, गौरी, ललित, आदि रागों से बचा लेने में ही सम्पूर्ण विशेषता है। यह सदैव ध्यान में रखना चाहिए कि इस राग में उक्त समस्त रागों की छाया आती है, फिर भी यह स्वतन्त्र राग-स्वरूप है।

प्रश्न—अब हम इस राग को अच्छी तरह समझ गए। अब अगला राग लीजिए !

उत्तर—ठीक है। अब हम 'कालिंगड़ा' राग लें। भैरव ठाठ के जन्य रागों में 'कालिंगड़ा' बहुत सरल और साधारण राग-स्वरूप समझा जाता है। यह मैं कह ही चुका हूँ कि कुछ लोग इसे आश्रय राग मानने की सिफारिश भी करते हैं; किन्तु यह मत हमें क्यों स्वीकार नहीं है, यह बात भी मैं तुम्हें बता चुका हूँ। अस्तु, यह राग सरल और सुविधापूर्ण होने से अनेक लोगों को आता है, तो भी इसे शुद्ध और रंजक रूप से गाना कुशलता का काम है।

प्रश्न—सरल और सुविधापूर्ण होने पर फिर कठिनाई कहाँ रह जाती है ?

उत्तर—मैं कठिन नहीं कह रहा हूँ। प्रचार में प्राय: अपने गायक कालिंगड़ा और परज का मिश्रण कर जाते हैं। इनमें किसी को यह नहीं ज्ञात होता कि हम मिश्रण कर रहे हैं। मेरे गुरु के मतानुसार कालिंगड़ा में तीव्र मध्यम बिलकुल नहीं लिया जाता।

प्रश्न—तब इसका गायन-समय प्रात:काल माना गया होगा ?

उत्तर—हाँ, तुमने ठीक तर्क किया।

प्रश्न—प्रचार में इस राग का गायन-समय कौनसा माना जाता है ?

उत्तर—रात्रि के उत्तर-भाग में दो-तीन बजे कालिंगड़ा गाया हुआ मैंने अनेक बार सुना है, परन्तु इसमें गायकों द्वारा दोनों मध्यम का प्रयोग करते हुए देखा है। मैं यह नहीं कहूँगा कि यह स्वरूप बुरा ही है। 'परज' में तीव्र म होता है, अत: इस प्रकार दोनों मध्यम ग्रहण करनेवाले राग-स्वरूप को 'परज-कालिंगड़ा' जैसा मिश्र नाम देना उचित होगा। यदि एक शुद्ध मध्यम ही लेकर राग गाया हो, तो उसे केवल कालिंगड़ा नाम देना और गायन-समय प्रात:काल मानना उत्तम पक्ष दिखाई देता है। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि प्रचार में कालिंगड़ा का समय रात्रि के दो-तीन बजे माना जाता है। लक्ष्यसंगीतकार ने भी इसी प्रकार स्पष्ट कहा है। 'परज' का योग कालिंगड़ा से सदैव होता है, यह भी लक्ष्यसंगीतकार ने बताया है। जैसे :—

लक्ष्याध्वनि दृश्यतेऽसौ कलिंगेन विमिश्रितः।
मिश्रणं तन्न रक्तिघ्नं निश्चयेन सतां मते॥

प्रश्न—तीव्र मध्यम-रहित कालिंगड़ा भी भैरव, रामकली आदि प्रात:कालीन रागों-जैसा थोड़ा-बहुत दिखाई देगा।

उत्तर—स्पष्ट ही है। तो भी भैरव में रे॒, ध॒ स्वर एक विशिष्ट प्रकार से आंदोलन पाते हैं। कालिंगड़ा में ऐसा नहीं होता। इसलिए यह राग स्पष्ट रूप में भिन्न पहचाना जा सकता है।

प्रश्न—कालिंगड़ा को प्राय: किस प्रकार आरम्भ करते हैं ?

उत्तर—इसका उठाव कभी-कभी 'म प, ध॒ प, म ग, म म, प प, ध॒ ध॒, पध॒, म प' इस प्रकार होता है। कोई-कोई इसे 'नि़, सा रे॒ ग, म म, ध॒ प म ग, म ग रे॒ सा' इस प्रकार भी लेते हैं। मेरे गुरु ने मुझे बताया है कि भैरव के अवरोह में जैसे हम कभी-कभी कोमल निषाद का स्पर्श दिखाते हैं, वैसा कालिंगड़ा में नहीं करना चाहिए, और जहाँ-तहाँ पंचम स्वर चमकता हुआ रखना चाहिए, इससे रागभिन्नता अच्छी तरह दीख पड़ेगी। यह भी एक प्रमुख तत्त्व है कि इसमें रे॒ ध॒ स्वर आंदोलित नहीं होते। रामकली में तो तुम्हें दोनों म और दोनों निषाद दिखाई देते हैं, अत: तुम रामकली से कालिंगड़ा को सहज ही अलग कर सकते हो। कालिंगड़ा में रे॒, ध॒, बढ़ाकर भैरव में जाते हुए तुम अनेक गायकों को देखोगे, क्योंकि वे इस मर्म को ठीक रूप

से समझे हुए नहीं होते। कालिंगड़ा एक उत्तरांगप्रधान राग है, अतः इसके गायन में इस अंग को सदैव प्रधानता देने की सावधानी रखनी चाहिए। यदि ऐसा न हुआ, तो तत्काल ही तुम एक प्रकार की गौरी श्रोताओं के आगे प्रस्तुत करने लगोगे।

प्रश्न—ऐसा किस जगह होना सम्भव है ?

उत्तर—देखो, बताता हूँ। 'नि़, सा, रे॒ ग, रे॒ म ग, रे॒, सा, नि़ ध़॒, म़ प़, नि़, सा रे॒, सा म, रे॒ ग, रे॒ सा; इस प्रकार का स्वर-समूह तुमने लिया कि तत्काल गौरी दिखाई देगी।

प्रश्न—कालिंगड़ा राग सुविधाजनक और सरल होने के कारण अपने गायक सदैव गाते रहते होंगे ?

उत्तर—नहीं, यह राग सदैव नहीं गाया जाता। गायक इसे एक क्षुद्र प्रकार मानते हैं। वास्तव में तो इस राग को निम्न-कोटि का समझने का कोई कारण नहीं है। भैरव, रामकली और विभास के समय में ही अच्छी रीति से यदि कालिंगड़ा गाया जाए, तो मैं समझता हूँ कि बहुत मनोहर हो जाएगा। यह सत्य है कि भैरव की अपेक्षा कालिंगड़ा में गंभीरता कम है, परन्तु इसमें संदेह नहीं कि यह भी एक मधुर राग है। यदि कालिंगड़ा को विलंबित लय में गाया जाए, तो भैरव में पहुँचने का अधिक भय रहता है। तथापि जिसे अच्छी तरह पंचम का वादित्व सँभालना आता हो, वह चाहे तो इसे विलंबित लय में भी शोभनीय बना सकता है।

प्रश्न—कालिंगड़ा के विस्तार में हमें कौन-से स्वर-समुदाय अधिक दिखाई पड़ेंगे ?

उत्तर—तुम इन स्वर-समुदायों को ध्यान में रख लो :—

नि़, सा रे॒ ग, ग म ग, ध॒ ध॒ प म ग, म ग रे॒ सा; प ध॒ नि ध॒ प, ग म प ध॒ म प, म ग; नि़ सा ग म, ध॒ ध॒ प ध॒ म प ध॒ प म ग, म ग रे॒ सा।

प्रश्न—इस राग का अंतरा कैसे शुरू किया जाता है ?

उत्तर—प ध॒, प ध॒, नि नि सां, ध॒ नि सां रें॒ सां नि ध॒ प, ग म प ध॒, नि सां नि ध॒ प, ग म प ध॒, प म ग; इस प्रकार से अधिकतर शुरू किया जाता है। कालिंगड़ा में प्रायः खयाल, ध्रुपद नहीं गाए जाते। यथासम्भव बड़ी-बड़ी महफिलों में कालिंगड़ा, झिंझोटी, मांड़, पीलू आदि रागों की फरमाइश नहीं की जाती।

प्रश्न—क्यों भला ? ये राग तो बड़े मधुर हैं ?

उत्तर—शायद श्रोताओं को यह भय रहता होगा कि गायक हमारा मूल्यांकन कम करेंगे। यह बात सत्य है कि यदि किसी ने इस प्रकार की फरमाइश की, तो

गायक मुँह टेढ़ा-बाँका कर 'अच्छा साहेब' बड़े कष्ट से कहकर आस-पास के श्रोताओं को यह आभास करा देते हैं कि फरमाइश करनेवाला बेचारा बिलकुल दया का पात्र और अल्पज्ञ है और यह फरमाइश उसकी प्रतिष्ठा एवं स्तर के लिए शोभनीय नहीं है। ऐसे प्रसंग अनेक बार मैं देख चुका हूँ। अनेक बार तो ऐसे मुँह बिचकानेवाले गायक तृतीय श्रेणी के भी नहीं होते! फिर भी उन्हें कालिंगड़ा की फरमाइश हलकी जान पड़ती है। मुझे स्मरण है कि मैंने अपने गुरु से एक बार प्रातःकाल के समय यह राग गाने की प्रार्थना की थी। उन्होंने पंचम को वादी बनाकर इस राग को इतना सुन्दर गाया कि उस दिन की याद मुझे आगे कितने ही महीनों तक रही थी।

'ध॒, प, ध॒ म प, म ग, म प, ध॒ म, ग म रे॒ ग, प ध॒ प, ग म ग, नि सां नि ध॒ प, म प, ध॒ प म ग, नि़, सा रे॒ ग, म ध॒ प म ग, प प, ध॒ प, ग म, प प, सां रे॒ं सां नि ध॒ प, म प, ध॒ प म ग।' आदि स्वर-समुदाय उन्होंने बहुत ही युक्ति से गाकर अन्य समकालीन रागों से इसे भिन्न कर दिखाया। उन्हें मेरी फरमाइश से बिलकुल रोष नहीं हुआ।

प्रश्न—तो फिर मजलिस में फरमाइश करना कुछ जोखम का ही कार्य कहना पड़ेगा?

उत्तर—एक तरह से यह सत्य है। हम लोग गायन की बैठकों में जाते हैं, वहाँ प्राय: तीन-चार प्रकार के श्रोता हमें दिखाई पड़ने सम्भव हैं—१. मार्मिक, २. अर्द्धशिक्षित समझदार, ३. भोले, परन्तु संगीत-प्रेमी इत्यादि। जो अर्द्धशिक्षित समझदार होते हैं, वे यद्यपि 'वाह वा' देने में बहुत भाग लेते हैं, तथापि वे सहसा फरमाइश करने के झंझट में नहीं पड़ा करते हैं।

प्रश्न—यह क्यों?

उत्तर—उनकी स्थिति अपने-आप ही कुछ विलक्षण-सी हुआ करती है। 'वाह वा' करने की आदत होने से उनसे चुप रहा नहीं जाता। परन्तु उनके वाह-वाह की झड़ी लगाने से अन्य श्रोताओं के हृदय में उनके सम्बन्ध में संगीतज्ञ होने का बड़ा विश्वास बना हुआ होता है। इसमें भी वे बताएँ वही राग का नाम, वे कहें उतना ही गायक का मूल्य, वे बताएँ वहीं गायन थम जाना, आदि बातों तक उनका महत्त्व बढ़ा हुआ होता है। परन्तु कुछ-कुछ कठिनाई उन्हें भी आती है।

प्रश्न—कैसी?

उत्तर—मान लो, किसी गायक ने कोई ऐसा राग गाया, जिसे वे लोग नहीं पहचान सके और यही बात बार-बार होने लगे तो उस राग का नाम, उसके नियम आदि वे गायक से कैसे पूछ सकते हैं?

प्रश्न—क्यों, ऐसा करने से क्या गायक रुष्ट हो जाता है?

उत्तर—गायक के रुष्ट होने की बात तो अलग ही रहती है। अभी अन्य श्रोता क्या कहेंगे ? 'अरे रे ! क्या ये भी हमारे-जैसे ही हैं ? जिस प्रकार यमन, भूप, केदार, बिहाग, दरबारी, मालकोश, भैरवी आदि के आगे के रागों में हम गड़बड़ा जाते और ठप्प हो जाते हैं, इसी प्रकार क्या इनकी भी स्थिति है ?' क्या इस प्रकार उन्हें महसूस नहीं होता होगा ?

प्रश्न—फिर ?

उत्तर—ऐसे व्यक्ति चालाक होने के कारण यहाँ कोई युक्ति निकाल लेते हैं। वे किसी पास में बैठे हुए व्यक्ति के नाम से गायक से राग का नाम पूछते हैं। परन्तु तुम इस प्रकार कभी मत करना। यदि तुम्हें कोई कठिनाई उत्पन्न होती हो, तो गायन समाप्त होने पर गायक से प्रसन्नतापूर्वक अपनी शंका का समाधान कर लेना चाहिए। यह कहने में लज्जित होने की आवश्यकता नहीं कि अमुक बात की जानकारी मुझे नहीं थी। फिर भी मैं एक बार अजीब कठिनाई में फँस गया था, वह मजेदार बात तुम्हें अनुभव से लाभ लेने के लिए सुनाता हूँ।

एक बार मैं एक गायन की महफिल में गया था। गायक 'काफी' राग का एक गीत गा रहा था। वह अपने राग में गान्धार व निषाद स्वर इस प्रकार लगाने लगा कि मुझे गायक की चीज किसी कानड़ा के प्रकार-जैसी जान पड़ी। मेरे पास बैठे हुए सज्जन ने मुझसे राग का नाम बताने का तकाजा करना आरम्भ किया, किन्तु मुझसे राग का नाम निश्चित नहीं हो रहा था। उस गायक के सम्बन्ध में यह प्रसिद्धि भी मैं सुन चुका था कि वे कभी-कभी प्राचीन रागों के स्वरों को उलट-पलटकर, अथवा एक-दो रागों का मिश्रण कर नवीन राग पैदा कर लिया करते हैं। अतः राग निश्चय करने की मेरी कठिनाई और भी बढ़ गई थी।

प्रश्न—किन्तु आपने यह क्यों नहीं कह दिया कि भाई ! मुझे इस राग के नाम का निश्चय नहीं हो रहा है।

उत्तर—यह तो मैं दो बार कह चुका था। परन्तु या तो ऐसे उत्तर सुनने की उसे आदत न रही हो, अथवा कोई अन्य कारण हो, वह मुझे छोड़ ही नहीं रहा था। अन्त में उससे मैंने कहा कि गान्धार स्वर के प्रयोग से मुझे तो यह राग कानड़ा का कोई प्रकार जान पड़ता है।

प्रश्न—फिर उसने क्या कहा ?

उत्तर—उसने मेरा उत्तर कुछ देर तक स्वीकार कर लिया, परन्तु थोड़ी देर बाद उसने वही प्रश्न वहाँ उपस्थित एक अन्य समझदार व्यक्ति से मेरी गैर-जानकारी में, परन्तु मेरे एक मित्र के सम्मुख पूछ लिया।

प्रश्न—यह तो व्यर्थ का हस्तक्षेप करनेवाले व्यक्ति जान पड़े।

उत्तर—ऐसे लोग भी कभी-कभी श्रोतृ-समूह में हम लोगों को दिखाई पड़ते रहते हैं। अस्तु, वे समझदार बड़े धूर्त थे। उन्होंने फिर गाना समाप्त होने पर

यही प्रश्न स्वयं खाँ साहब से किया कि आपके अमुक बोल की चीज का राग ये पूछ रहे हैं।

प्रश्न--तब क्या खाँ साहब ने नाम बता दिया ?

उत्तर---खाँ साहब के सम्मुख तो ऐसे प्रसंग सदैव आते ही रहे होंगे। उसने उलटा प्रश्न किया कि आपको यह कौनसा राग जान पड़ा ? तब उसको यह बताना पड़ा कि मैंने उसे एक प्रकार का कानड़ा बताया है। फिर क्या पूछते हो, गायक पेट पकड़ कर हँसने लगे और यह देखकर वे 'समझदार' महोदय भी वैसा ही करने लगे। हँसी थम जाने के उपरांत गायक ने कहा—'देखिए, ये तो बड़े लोग हैं और 'शाश्तर' जानते हैं। भला इन्हें कौन गलत कहेगा ? हम तो अपने बेचारे बड़े-बूढ़ों की सिखाई चीजों को गानेवाले अनाड़ी 'गवय्ये' ठहरे, हमें कौन सच्चा कहेगा ?'

प्रश्न—इसपर वे जानकार महाशय क्या बोले ?

उत्तर—वे बोले, 'खाँ साहब ! मैं तो इस राग को समझ गया हूँ। अभी नाम नहीं बता रहा हूँ ! 'मैं समझ गया हूँ' इतना कहने के साथ-साथ उन्होंने गायक के हाथ पर समझदारी-सूचक ताली भी मार दी।

प्रश्न—परन्तु प्रश्नकर्ता को क्या उत्तर दिया गया ?

उत्तर—उसका समाधान इस प्रकार कर दिया गया। गायक बोले—"महाराज ! वह राग कानड़ा-वानड़ा नहीं था, वहाँ तो कानड़ा की हवा भी नहीं थी। वह तो एक अजीब राग है। शास्त्रवाले लोगों की बात कभी मत सुनो। वे तुमको व्यर्थ ही सिर्फ बहकाने का कार्य करेंगे। ये तुम्हारे मित्र तुम्हें उस राग का नाम कभी-न-कभी बता देंगे।"

प्रश्न—आगे फिर क्या उस जानकार सज्जन ने राग का नाम काफी बताया ?

उत्तर—नहीं, उसने आज बता दूँगा, कल बता दूँगा, इस तरह लुका-छिपी आरंभ कर दी। अंत में प्रश्न पूछनेवाले सज्जन ही उकता गए और वे चुप हो कर बैठ गए। मेरे स्नेही मित्र ने (जो वहीं उपस्थित थे) भी उस सज्जन से अनेक बार राग का नाम पूछा, परन्तु उसने नहीं बताया।

प्रश्न—भला नाम बताने में इतनी अधिक क्या दिक्कत थी ? हम तो समझते हैं कि वे महाशय इस नाम को जानते ही न होंगे।

उत्तर—कुछ भी रहा हो, मैंने तो तुम्हें जो बात हुई, वही बताई है। यह सत्य है कि इस घटना से उस प्रश्नकर्ता व्यक्ति के हृदय में मेरा मूल्य अवश्य कम हो गया होगा, परन्तु इसमें मैं क्या कर सकता हूँ ? मुझे इस बात का दुःख नहीं कि उसने यह

समझा हो कि मुझे अधिक ज्ञान नहीं है, परंतु मुझे तो इतना संतोष है कि वह यह नहीं समझा कि मैंने भी उसे गायक लोगों की तरह कुछ कहकर ठग लिया हो।

प्रश्न—ठीक है, परंतु फिर यह कैसे निश्चय हुआ कि वह चीज 'काफी' राग की ही थी ?

उत्तर—इस घटना के कुछ दिनों पश्चात् यही चीज एक दूसरे बड़े गायक ने गाकर सुनाई। उसने यह चीज काफी राग में उत्तम रूप से गाई और राग का नाम भी बताया। अस्तु, अब मैं कालिंगड़ा की ओर चलूँ। प्रातःकालीन रागों के स्थूल मान की परख तुम्हें इसी प्रकार करते चलना है। जब यह निश्चित हो जाए कि अमुक राग भैरव ठाठ का है, फिर यह देखना चाहिए कि इसमें कहीं तीव्र मध्यम का प्रयोग थोड़ा-बहुत किया जाता है या नहीं। वह जाँच लेने पर वर्ज्यावर्ज्य स्वरों के नियम और वादी-संवादी के नियम देखने चाहिए। यदि कोई बिलकुल नया राग-स्वरूप हो, तो उसके मुख्य नियमों को ढूँढ़ निकालना चाहिए। जहाँ संदेह हो, वहाँ गायक से ही पूछ लेना चाहिए। यह अपना सिद्धांत ही है कि नियमों के अभाव में 'राग' स्वीकार नहीं किया जाए। जहाँ नियम नहीं हैं, वहाँ पद्धति नहीं हो सकती। अनेक बार अपने अशिक्षित गायक वास्तविक रूप में शास्त्र व पद्धति के हिमायती होने पर भी मूर्खतावश उसे धिक्कारते पाए जाते हैं। मुझे इसी सम्बन्ध की एक घटना याद है, क्या उसे सुना दूँ ?

प्रश्न—अवश्य सुनाइए, क्या बात हुई ? ऐसी मनोरंजक बातें हमें बहुत पसंद आती हैं ?

उत्तर—एक बार मुझे मेरे एक मित्र ने गाना सुनने के लिए आमंत्रित किया। मैं वहाँ पहुँचा। गायक मेरे साधारण जाने-पहचाने ही थे। मुझे बाद में यह ज्ञात हुआ कि मेरे आने के पूर्व ही उन्हें बता दिया था कि मुझे संगीत-शास्त्र के ग्रंथों को देखने-समझने का चस्का है।

प्रातःकाल का समय था। अतः भैरव, भैरवी आदि राग ठीक ही जमे। जब गायन थोड़ी देर के लिए थम गया, तब मैंने उस गायक की सभ्य समाज के अनुरूप उचित प्रशंसा की। उसने यह देखकर कि मुझे उसका गायन पसन्द आया है, धीरे-धीरे बड़बड़ाना आरम्भ किया।

प्रश्न—अच्छा! तो फिर उसने क्या कहा ?

उत्तर—वही बता रहा हूँ। सदैव खराब तन्दुरुस्ती रहना, नजदीकी रिश्तेदारों की मृत्यु होना, बहुत दिनों से रियाज न होना, आजकल कद्रदान व्यक्तियों का न होना, कृतघ्न शिष्य मिलना, अपने समान घरानेदार गायक अब थोड़े रहना, बड़े-बड़े राजे-रजवाड़ों की ओर से नौकरी की प्रार्थना करने पर, स्वतंत्रता की इच्छा से उनकी प्रार्थना ठुकरा देना, जहाँ-तहाँ गायन अद्वितीय ठहराया जाना, श्रोताओं के अधिक विश्वास-सम्पादन के हेतु कुरान आदि धर्म-ग्रंथों की शपथ लेना, आदि-आदि जितने भी आसान प्रकार हो सकते हैं, वे प्रायः हम सुनते ही रहते हैं; उसी तरह के इसके भी

थे। अतः इन बातों की ओर मैंने विशेष ध्यान नहीं दिया। धीरे-धीरे देखा कि वह मेरी ओर झुककर मुझे सम्बोधित कर कहने लगा—"पंडित जी! मैं सच कहता हूँ, मैं तुम्हारे शास्त्रों और ग्रंथों को बिलकुल नहीं मानता। मैं ग्रंथ-शास्त्र की कीमत एक 'कौड़ी' जितनी भी नहीं समझता। मैं तो उस तंबूरे को मानता हूँ। मुझे जो गले से अदा कर दिखा दे, उसे ही मैं मानूँगा। मैं ऐसे कितने ही 'गिरन्थवाले पंडित' देख चुका हूँ। मुझे स्वयं को ठीक-ठीक पढ़ना-लिखना नहीं आता। 'शास्तर' की गप्पें लगानेवालों को कोई मेरे पास लाकर 'सा से सा' तो मिलवाकर दिखा दे!"

प्रश्न—'सा से सा' मिलाने का क्या अर्थ ?

उत्तर—इसका कोई विशेष अर्थ नहीं है। जब गायक अधिक ऐंठ में आ जाते हैं, तब कुछ देर के लिए अपना अस्तित्व भूलकर इसी प्रकार कुछ-कुछ बर्राने लगते हैं। आगे चलकर सम्भवतः तुम्हें भी इस तरह का अनुभव होगा। मैं समझता हूँ कि जब तक यह विद्या अपने सुशिक्षित व्यक्तियों के हाथों में न आ जाए, तब तक ऐसी बातें दिखाई पड़ेंगी। तो भी ऐसे गायकों से हमें झगड़ा करने का कष्ट नहीं उठाना चाहिए। कुछ समय में वे अपने-आप शांत हो जाते हैं। 'सा से सा' मिलाना, अर्थात् उस गायक के सम्मुख बैठकर गाने का साहस करना, इतना ही अर्थ समझना चाहिए। गायक लोगों को यह भ्रम होता है कि शास्त्रों का विचार करनेवाले संगीत (क्रियात्मक संगीत) जानते ही नहीं। मैं समझता हूँ कि अब थोड़े ही दिनों में उनका भ्रम दूर हो जाएगा। बादशाही युग में, उनके विचार के अनुसार स्थिति चाहे जैसी रही हो, परन्तु यह दिखाई नहीं पड़ता कि अब आजकल के हमारे विद्वान् भी इन गायकों से इस प्रकार डरेंगे। उन्हें तो अब सुशिक्षित समाज का ही बहुत सहारा है। गायक से निरर्थक शास्त्र-चर्चा करनी भी नहीं चाहिए।

प्रश्न—फिर आपने उस गायक से क्या कहा ?

उत्तर—मैंने शांतिपूर्वक कहा—"खाँ साहेब! आप व्यर्थ ही रुष्ट हो रहे हैं। आपको पढ़ना-लिखना नहीं आता, यह बात जानकर भी भला कौन आपसे शास्त्र-चर्चा करने को तैयार होगा?" इसपर उस गायक ने कहा—"मैं एक ऐसी तान मारूँगा कि पंडित अपनी 'पोथी-वोथी' छोड़कर भाग जाएगा।"

प्रश्न—मालूम होता है, यह तो बड़ा ही उन्मत्त व्यक्ति था ?

उत्तर—अशिक्षित गायकों की व्यर्थ प्रशंसा होती रहने से उनकी वृत्ति इसी प्रकार की हो जाती है। अस्तु, आगे मैंने धीरे-धीरे उसे शांत किया और उससे इस प्रकार की बातें कीं:—

मैं—खाँ साहब! आप भैरव में जो ऋषभ और धैवत स्वर लगाते हैं, वे तीव्र लेते हैं या कोमल ?

खाँ—वे तो हम कोमल ही लेते हैं। गांधार और निषाद स्वर अवश्य तीव्र लेते हैं।

मैं—फिर भैरव और कालिंगड़ा में भिन्नता किस प्रकार रखते हैं ?

उत्तर—यह क्या कहते हो ? भैरव में रे, ध आंदोलित लगते हैं, इस प्रकार कालिंगड़ा में नहीं लगाए जाते। धैवत तो भैरव की जान ही है।

मैं—भैरव का गायन-समय कौनसा है ?

उत्तर—वह प्रातःकाल का राग है, यह बात प्रसिद्ध ही है।

मैं—तो फिर खाँ साहब ! आप व्यर्थ ही ग्रंथों को बदनाम करते हैं। सच पूछो तो आप स्वयं भी बिलकुल ग्रंथों के अनुसार ही गाते हैं। यह एक शास्त्र का श्लोक देखो :—

रागादिर्भैरवाख्यो मृदुऋषभमधस्तीव्रगांधारनिः स्यात् ।
वाद्यस्मिन् धैवतोसावृषभ इह तु संवादिरूपोऽभिगीतः ॥

इस श्लोक की प्रत्येक बात का आप प्रत्यक्ष उपयोग करते हैं। यह आश्चर्य है कि ऐसा होने पर भी आप ग्रंथों को बुरा कहते हैं। मैं तो कहूँगा कि आप स्वयं 'शास्त्रप्रमाण' से गाते हैं। सम्भवतः ग्रन्थों में क्या कहा गया है, यह बात किसी ने आपको नहीं समझाई, इसी से आपको गलतफहमी हो गई होगी। जयपुर के बहराम खाँ के लिए तो आप-जैसे गायकों में बड़ा सम्मान है। उन्हें तो ग्रंथ बहुत ही पसन्द आते थे। वे एक हिंदू पंडित के ही शिष्य थे और उन्हीं बहराम खाँ के नाम से आज आपके गायक लोग हमें बड़ी-बड़ी बातें सुनाया करते हैं। अब कालक्रम से यदि आपका गायन ग्रंथों से भिन्न हो गया हो तो भी सचमुच यह न्याय नहीं कहा जा सकता कि इससे आप ग्रन्थ पढ़नेवालों से द्वेष करें। आप स्वयं ग्रंथों के नियम तोड़-मरोड़ दें और फिर ग्रंथकारों को गाली देने लगें, यह कैसे हो सकेगा ? यदि किसी ने आपको ग्रन्थोक्त नियमों से कोई राग अच्छी तरह गाकर दिखा दिया, तो भला फिर आपकी स्थिति कैसी हो जाएगी ? खैर, ग्रंथों को छोड़ दो। परन्तु क्या आप यह विश्वास दिला सकते हैं कि आज जो-जो राग आप गाते हैं, वे समस्त देश में आपके समान ही गाए जाते हैं ? यह आप जानते ही हैं कि गायक लोगों के अनेक भिन्न-भिन्न घराने माने जाते हैं। क्या जयपुर के गायकों के सम्पूर्ण राग ग्वालियर के गायकों से मिल सकेंगे ? क्या पंजाब के गायकों के राग आपके गायकों से मिल सकेंगे ? इतना ही क्यों ? पटमंजरी, पटदीपकी, लच्छासाख, मंगलभैरव, नन्दभैरव, अहीरभैरव, झीलफ, हिजाज, जंगला, भटियार, भंखार, कौंसी, हुसैनी, देवसाख, मालगुंज, चैती, दरबारी-तोड़ी, बहादुरीतोड़ी, बिलासखानीतोड़ी, छायातोड़ी आदि बीस राग ही उदाहरण के लिए लेता हूँ। ये सभी राग मुझे मेरे गुरु ने बताए हैं और शायद आपको भी आते होंगे। यदि अब इन्हें हम मिलाकर देखें, तो क्या आपके नियम और मेरे नियमों में कहीं-कहीं अन्तर होना सम्भव नहीं है ? और यदि ऐसा हुआ, और मैंने आपके रागों को गलत बताया, तो भला आपको कैसा लगेगा ? हाँ, मेरा यह भी मत है कि सुशिक्षितों का अशिक्षितों को गाली देना बिलकुल अनुचित है। अपने ग्रंथकार उच्च कोटि

के गायक-वादक भी रहे होंगे। यह कहना तो मूर्खता ही होगी कि उनके नियम तुमसे नहीं सध सके, इसलिए वे मूर्ख थे और तुम सयाने हो। उन ग्रंथकारों ने अपने नियम अच्छी तरह लिखकर रख छोड़े, तो क्या यह उन्होंने कोई पाप किया ?

प्रश्न—फिर ?

उत्तर—फिर क्या, वे गायक महाशय तत्काल ही ठंडे पड़ गए और कहने लगे, "नहीं, नहीं, पंडितजी ! विद्वान् लोगों को मैं बुरा कैसे कहूँगा ? ग्रंथों को भी मैं 'झूठ' नहीं कह सकता। ग्रंथकर्त्ता भी तो हमारे पूर्वज हैं। हम भी कौन हैं ? मूल रूप में तो हम भी हिंदू ही हैं। हमारे बाप-दादा सदैव ग्रंथों को मानते आए हैं। समस्त ग्रंथों में 'नाद बिरह्म' ही बताया है। 'नाद सागर अपार, सरसती न पायो पार' आदि बातें पंडितों ने जो शास्त्रों में 'लिखकर' रख दी हैं, वे सत्य हैं। हमारे पुराने घरों में अभी भी कहीं-कहीं कुछ ग्रंथ छिपे हुए निकल सकते हैं।"

यह घटना मैंने तुम्हें अपनी प्रशंसा के लिए नहीं, अपितु इसलिए सुनाई है कि यदि इस प्रकार के प्रसंग तुम्हारे सम्मुख उपस्थित हों, तो वहाँ तुम्हें किस प्रकार का बर्ताव करना चाहिए, यह बात तुम समझ सको। अब कालिंगड़ा की ओर मैं पुनः चलता हूँ।

कालिंगड़ा में हमें सदैव क्षुद्र गीत सुनने को मिलेंगे, यह बात मैं बता ही चुका हूँ। यथासम्भव इस राग में गायक मीड़ का काम नहीं करते। इस राग के वादी स्वर के विषय में गायकों में मतभेद पाया जाता है। कोई-कोई वादी स्वर गांधार मानने के लिए कहते हैं और कोई-कोई मध्यम स्वर को वादी मानने की बात सुझाते हैं। मध्य-रात्रि के उपरांत गांधार को वादी बनाना मुझे भी पसन्द नहीं। यह नहीं कि यदि 'नि़, सा रे ग, ग म प ध प, म ग' इस प्रकार का टुकड़ा बार-बार आता हो, तो इतने से वादित्व गांधार को ही देना चाहिए। मेरे गुरु द्वारा बताया हुआ पंचम स्वर का वादित्व यदि तुम्हें स्वीकार हो, तो मेरे मत से चल सकेगा। यदि रात्रि के बीतते-बीतते कालिंगड़ा गाना हो तो परज और कालिंगड़ा का मिश्रण कर गाना अच्छा दिखाई देगा। और गायक लोग प्रायः इसी प्रकार करते भी हैं। जो लोग कालिंगड़ा में मध्यम को बढ़ाते हैं, वे उस स्वर को इस प्रकार आगे लाया करते हैं :—

'नि़, सा रे ग म, ग म, प ध प म, रे ग, म ग रे सा; ध प ध प म ग, रे ग म, ग म ध प म, रे ग, नि़ सा, ग म प, ध ध, नि ध प, म, प ध प म ग, रे ग म ग रे सा, नि़, सा रे ग म।'

प्रश्न—यदि कालिंगड़ा में तीव्र मध्यम प्रयुक्त करना हो तो यह स्वर कहाँ पर और किस प्रकार लिया जाएगा ? क्या 'नि़ सा रे ग, मं प, ध नि सां' इस प्रकार आरोह हो सकेगा ?

उत्तर—तुमने यह प्रश्न बड़ा अच्छा पूछ लिया। कालिंगड़ा में ऐसा आरोह नहीं होता। यहाँ तो कोमल मध्यम ही लेना पड़ेगा। 'नि़ सा ग म प, ध नि सां' इस प्रकार के स्वर गाए कि श्रोताओं को किसी सायंकालीन राग का आभास हो जाएगा। कालिंगड़ा में तीव्र म बहुत थोड़ा प्रयुक्त होता है। प्रायः यह स्वर 'मं ध मं ध नि नि

सा' इस प्रकार अन्तरा आरम्भ करते हुए उपयोग में लिया जाता है और यहीं परज का मिश्रण होता है। तुम्हें तो कालिंगड़ा में तीव्र मध्यम न लगाने की आदत बना लेनी चाहिए। सम्पूर्ण खूबी उत्तरांग में दिखाने की सावधानी रखनी चाहिए।

'ध़ नि सां नि ध़ प, नि ध़ प, ध़ प, ग म ग, ध़ ध़, ग म ग' यह स्वर-समुदाय इस राग में बार-बार दिखाई पड़ेगा।

प्रश्न—यह अब हमारे ध्यान में आ गया। 'कालिंगड़ा' नाम कानों को थोड़ा विलक्षण जान पड़ता है। है न ऐसा? क्या यह बताया जा सकता है कि यह नाम कहाँ से आया होगा?

उत्तर—इस नाम में 'ड़' अक्षर सचमुच कुछ अपरिचित-सा जान पड़ता है। 'कलिंग' तो अवश्य ही एक प्राचीन नाम है। हमारे देश के प्राचीन इतिहास में यह एक पूर्व की ओर के प्रदेश का नाम बताया है। Early History नामक ग्रंथ में एक जगह इस प्रकार कहा गया है:—

"In the twelfth year of his reign or the ninth as reckoned from the coronation, Ashoka embarked upon the one aggressive war of his life and rounded off his dominion by the conquest of the kingdom of Kalinga, the strip of territory extending along the coast of the Bay of Bengal from the Mahanadi to the Godavari."

सम्भवत: इस 'कलिंग' देश की ओर से ही यह कालिंगड़ा राग आया होगा। 'ड़ा' अक्षर आगे भी तुम्हें कुछ राग-नामों में जोड़ा हुआ दिखाई देगा। हालांकि 'कलिंग' नाम प्राचीन है, तो भी यह समझना चाहिए कि 'कालिंगड़ा' समस्त प्राचीन ग्रंथों में बताया गया है। एक 'रागमाला' नामक ग्रंथ में इस प्रकार बताया है:—

सारंगी गुर्जरी तोड़ी कामोदी पटमंजरी।
रागांगना इमाः पंच दीपकस्यैव वल्लभाः॥
कालिंगः कुंतलो रामः कमलः कुसुमस्तथा।
पंचमो लाहुहेमाली दीपकस्याष्ट पुत्रकाः॥

इन कोरे राग-नामों से तुम्हें विशेष सहायता प्राप्त होनी संभव नहीं है; क्योंकि इन सभी रागों के लक्षणों को प्राप्त करने की तुम्हारी आवश्यकता बनी ही रहेगी। एक दूसरी 'रागमाला' में इस प्रकार बताया गया है:—

कामोदी पटमंजरी च परजस्तोडी तथा गुर्जरी।
सारंगी वरबुद्धयोऽपि जगतो गायंति पंचांगनाः॥
अप्यष्टौ कमलाह्वयोऽथ कुसुमो रामः सुतः कुंतलः।
कालिंगो बहुलोऽपि पंचम इतो हेमालको दीपके॥

रागलक्षणे :—

गायकप्रियमेलाच्च जातः कलिंगडस्तथा ।
सन्यासं सांशकं चैव सषड्जग्रहमुच्यते ॥
आरोहेऽप्यवरोहे च मवर्जं षाडवं तथा ।
सा रे ग प ध सां । सां नि ध प ग रे सा ॥

हम कालिंगड़ा को भैरव ठाठ में मानते हैं. किंतु यहाँ धैवत स्वर तीव्र बताया गया है। और भी एक मजेदार वर्णन सुनो :—

प्रायः शंसति गुर्जरीं मृगवधुर्वेलावलं हारिणो ।
हंसो वै ललितं च सारसगणो ब्रूते निशं सोरटीम् ॥
कुंतं चित्रगलः कलंकषरवः कालिंगरागं तथा ।
कीरः खोखररागमेव बहुलं हेमाद्रिजो मूषकः ॥

अपने ग्रंथकारों का ऐसा उद्योग देखकर कभी-कभी बड़ा मनोरंजन होता है।

रागमालायाम् :—

तांबूलवक्त्रो धृतखड्गहस्तश्चित्रांबरः कुंकुमलिप्तभालः ।
कृपाणकोपेतकटिश्च गौरः सर्वप्रियोऽप्यस्ति कलिंगरागः ॥

यह स्पष्ट ही है कि इस वर्णन का प्रत्यक्ष उपयोग कुछ भी नहीं हो सकता। कल्पद्रुमकार ने कलिंग को हिंदोल का एक पुत्र माना है। उसका श्लोक (यदि इसे श्लोक कहना पड़े तो) सुनाता हूँ।

शंकराभरन अरन आभीरः सोमहंसकलिंगः पंचम सोहनमोहन हिंदोलपुत्रक ।

इस श्लोक में हिंदोल के आठ पुत्र बताए हैं। इसने ही फिर एक दूसरा मत इस प्रकार बताया है :—

कालिंगकुंतलो रामः कमलकुसुममालश्रीलाहनं चैव हेमलं दीपकस्य च नंदनाः॥

प्रश्न—मालूम होता है कल्पद्रुमकार ने कलिंग के लक्षण अलग से नहीं दिए ?

उत्तर—उसने 'रागमाला' के लक्षण ही दिए हैं, जैसे 'तांबूलवक्त्रो धृतखड्गहस्तः' इत्यादि। यह मैं तुम्हें पहले ही बता चुका हूँ। अहोबल, लोचन, सोमनाथ, रामामात्य, पुण्डरीक आदि ने यह राग बताया ही नहीं है। 'राधागोविंदसंगीतसार' में इस प्रकार कहा गया है :—

'अथ दीपक को पाँचवो पुत्र कलिंग याको लौकिक में कलिंगडो कहे है ताकी उत्पत्ति लिख्यते। शिवजी नें प्रसन्न होके उन रागन में सों विभाग

करिवेकों। सद्योजात नाम मुखसों गाईके दीपक की छाया युक्ति देखि। वाको कलिंग नाम करिके दीपक को पुत्र दीनो। अथ कलिंग को स्वरूप लिख्यते। गोरो जाको अंग है। केसरी की खोल जाके ललाट में है। मुख में बीडा खाय है। रंगबिरंगे वस्त्र पेहेरे है। बांई कोर कमर में जाके कटारी है। और हाथन में जाके खड्ग है। जाके मन में क्रोध है। युद्ध के लिए सिंहनाद करे है। जाके रूपकूँ देख वैरिन के हिय धरके है। बडो बलवन्त है। युद्ध के लिए बाँह जाकी फरके है। ऐसो जो राग ताँहि कलिंग जानिए।'

प्रश्न—क्या यह वर्णन भी 'तांबूल वक्त्रो' इत्यादि श्लोक के आधार पर किया हुआ नहीं दिखाई पड़ता ? निस्संदेह कुछ बातें श्लोक के बाहर की भी हैं, यह स्वीकार किया जाएगा।

उत्तर—तुम्हारा अनुमान सत्य है। जो बातें श्लोक में नहीं हैं, वे राजा साहब ने कल्पना से सम्मिलित कर ली होंगी। हाथों में खड्ग और कमर में कटार होने पर क्रोध, सिंहनाद, बाहुस्फुरण आदि वर्णन खुशी से मिलाया जा सकता है। यह बात किसी शूर राजपूत राजा को सिखाने की आवश्यकता ही क्या है ?

प्रश्न—ठीक है, परन्तु कलिंग के स्वर श्लोक में नहीं दिए गए हैं, वहाँ क्या किया है ?

उत्तर—वह भाग मैं अब सुनानेवाला ही था। वह इस प्रकार है :—

'शास्त्र में तो यह सात सुरन सों गायो है। म ग रे सा सा रे ग म प ध नि सा। यातें सम्पूर्ण है। याको रात्रि के चौथे पेहेर में गावनो। यह तो याको बखत है। दिन के दोय पेहेरताँई चाहो तब गावो।

प्रश्न—तो फिर आपके गुरु ने जो गायन-समय प्रातःकाल बताया है, उस कथन में अवश्य ही तथ्य है। इस ग्रन्थकार ने कलिंग की 'आलापचारी' किस प्रकार बताई है ?

उत्तर—वह ऐसी दी गई है, देखो :—

ग—गांधार चढ़ी
म—मध्यम चढ़ी
प—पंचम असली
ध—धैवत उतरी
म—मध्यम उतरी

नि—निषाद चढ़ी
ध—धैवत उतरी
प—पंचम असली
म—मध्यम चढ़ी
ग—गांधार चढ़ी

प्रश्न—इसमें दोनों मध्यम ग्रहण करने का प्रकार बताया हुआ जान पड़ता है ?

उत्तर—हाँ ! यह व्यवहार मैं बता ही चुका हूँ। अब यह नहीं कहा जा सकता कि प्रतापसिंह को राग-नियमों की कितनी मात्रा में जानकारी रही थी। उसकी

आलापचारी के लिए यह आवश्यक नहीं माना जा सकता कि उसके लिए ग्रन्थाधार मिल ही सकेंगे। यह मैं कह चुका हूँ कि उसने 'आलापचारी' अपने गायकों की सहायता से लिखी होगी। 'संगीतसार' ग्रन्थ सौ वर्ष से ऊपर का है, अतः उस समय का प्रचार कहीं-कहीं देख लेना उपयोगी होगा। मुझे जहाँ योग्य जान पड़ेगा, वहाँ मैं इस ग्रन्थ का उपयोग करूँगा ही।

प्रश्न— ठीक है। अब हमें कालिंगड़ा का स्वरूप स्वरों में और दिखा दीजिए, तो यह राग भी समाप्त हुआ।

उत्तर—ठीक है, यही करता हूँ।

कालिंगड़ा

निनिसारेग, रेग, मग, ममग, गमपधमप, धपमग, रेगमग, रेसा, धधनिसा, धनिसा, निनिसा, गगमम, रेग, गमधप, गमग, मगरेसा, गमगमप, धधप, धमप, धनिसांनिधप, गमपध, पमग, मग, रेसा, सारेगम, रेगम, मपगम, गमपधनिधपधमपधपमग, मगरेसा, पपमग, ममपप, धधपधमप, गमगरे, गमपप, गमपग, मगरेसा, निसागम, रेगमप, धनिसांनि, धपधम, पपमग, ममपप, धधपप, धधपध, निनिसांसां, धनिसांरें, सांनिधप, सांनिधनि, धपगम, धपगम, गरेसा, निसागम, पगमप, सांरेंसांनि, धपधम, पपमग, ममपप, धधपप।

निसा, गम, रेगम, गमपगम, धधप, गम, निध, सांनिधप, गमप-गम, रेगमगरेसा, निसागम।

गमपधमप, धधपधमप, गमप, निनिधप, धनिसांरेंसांनिधप, गमप, रेंरेंसांनिधप, धध, ममग, सारेग, म, पमग, रेसा।

मैं समझता हूँ कि इतने से इस राग का चलन तुम्हारे ध्यान में सरलता से आ जाएगा।

प्रश्न—अब आप कौनसा राग हाथ में लेंगे ?

उत्तर—अब हम 'बंगाल' राग पर विचार करेंगे। बंगाल नाम तो स्पष्ट ही देशवाचक है, ठीक है न ? इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि यह राग बंगाल प्रांत में बिलकुल साधारण होगा। यह राग अप्रसिद्ध रागों में से एक माना जाता है, इसका वर्णन ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न प्रकार से किया हुआ है। अतः इसके बारे में समाज में मतभेद भी दिखाई पड़ना सम्भव है। यह भी सत्य है कि हमारे गायक भिन्न-भिन्न प्रकार से 'बंगाल' राग गाते हैं।

प्रश्न—तो हमें कौनसा प्रकार स्वीकार करना चाहिए ?

उत्तर—यह मैं अभी बतानेवाला ही था। भैरव ठाठ में जो प्रकार है, हम उसी स्वरूप को स्वीकार करेंगे। इस स्वरूप को गायक लोग 'बंगाल-भैरव' कहते हैं। यह नाम भी बहुत ही सुविधाजनक है। निरे 'बंगाल' नाम को स्वीकार कर यदि

किसी ने अपना राग किसी अन्य ठाठ के स्वरों में भी गाया, तो उससे हमारा बिलकुल विरोध नहीं होगा। मैंने इस प्रकार से भी गाते हुए सुना है।

प्रश्न—आपने किन-किन ठाठों में इसे गाते हुए सुना है ?

उत्तर—मैंने 'काफी' और 'बिलावल' ठाठों में भी बंगाल राग गाते हुए सुना था। यद्यपि वे राग-स्वरूप मुझे अधिक अच्छे नहीं लगे, परन्तु मैं यह नहीं कहूँगा कि जो मुझे पसन्द नहीं, वे राग अशुद्ध ही हैं या अयोग्य हैं।

प्रश्न—बंगाल-भैरव संयुक्त नाम से यह राग भैरव का ही एक भेद समझा जाता होगा।

उत्तर—हाँ, ऐसा समझ लेना भी अनुचित नहीं है। पहले मैंने भावभट्ट के ग्रंथों में वर्णित भैरव के जो भेद बताए थे, उनमें यह भेद नहीं था। यह एक निराला ही राग-स्वरूप है। यदि व्यवस्थित राग-नियम हों तथा रागस्वरूप रंजक हो, तो हमें नवीन राग-स्वरूप स्वीकार करने में कोई हिचकिचाहट नहीं हैं। बंगाल-भैरव में हमें निषाद स्वर बिलकुल वर्ज्य मानना है और अवरोह में गांधार को वक्र रखना है। गांधार की यह वक्रता तानबाजो के लिए कुछ असुविधाजनक होने के कारण अनेक गायक इसकी ओर ध्यान नहीं देते, परन्तु ध्रुवपद-गायक ये दोनों नियम अच्छी तरह सँभाल सकते हैं। प्रचार में तुम्हें अनेक गायक अनेक बार बंगाल-भैरव राग सम्पूर्ण रूप में गाते दिखाई पड़ेंगे। ये लोग अपने राग की 'भैरव' से भिन्नता दिखाने के लिए इसके मुखड़े में एकाध स्वर व्यर्थ ही बढ़ाते हुए दिखाई देंगे; परन्तु मैं नहीं समझता कि वे इसके लिए कोई वास्तविक राग-नियम बता सकें। यह बात मैं प्रत्यक्ष अनुभव से कह रहा हूँ। जिस गायक ने मुझे सम्पूर्ण प्रकार सुनाया था, उसको मैंने खास तौर से अपने 'बंगाल-भैरव' के नियम बताए और देखा कि वह क्या कहता है।

प्रश्न—क्या उसने अपने सम्पूर्ण प्रकार के लिए कोई आधार बताया था ?

उत्तर—उसने कहा कि 'मेरे गुरु ने मुझे यह चीज इसी प्रकार बताई है। यह बहुत पुरानी चीज है।' आगे चलकर वह कुछ ठसक से बोला कि 'पंडित जी ! रागों के ये सब कायदे क्या हम नहीं जानते ? मगर वैसे गाने से राग का मजा सब जाता रहता है, क्योंकि वैसी 'फिरत' हो नहीं सकती।' यह ठीक है कि तानबाजी करनेवाले गायकों को राग-नियमों का पालन करने में कठिनाई पड़ती है, परन्तु इस कठिनाई के लिए नियमों को समूल हटाते हुए टालते जाना कैसे पसन्द किया जा सकेगा ? मुझे यह दिखाई पड़ा कि इस गायक को 'बंगाल' के कोई भी नियम ज्ञात नहीं थे।

प्रश्न—क्या संस्कृत-ग्रंथकार 'बंगाल-भैरव' इस प्रकार का संयुक्त नाम बताते हैं ?

उत्तर—यह मुझे कहीं नहीं दिखाई दिया। मैं समझता हूँ कि यह नाम गायकों ने सुविधा के लिए प्रचार में ग्रहण कर लिया है। ग्रंथों में बंगाल, शुद्ध बंगाल,

बंगाल आदि नाम दिखाई पड़ते हैं। भैरव ठाठ के बंगाल को कन्नड़बंगाल, कर्णाट-बंगाल, इस प्रकार के नाम भी दिए हुए दिखाई पड़ेंगे। ग्रंथों में राग-नियम कौन-कौनसे बताए हैं, यह मैं अब बतानेवाला ही हूँ।

प्रश्न—बंगालभैरव का वादी स्वर कौनसा है ?

उत्तर—वादी धैवत स्वर माना जाए। इसके स्वतन्त्र नियम होने से यह राग भैरव से भिन्न हो ही जाएगा। कुछ ग्रंथों में वादी षड्ज बताया गया है। कोई-कोई गायक इस राग में मध्यम बढ़ाकर राग-भिन्नत्व दिखाया करते हैं। कोई-कोई 'रेम' 'निप' इस प्रकार की स्वर-संगति कहीं-कहीं ग्रहण करना पसंद करते हैं। इस राग के सम्पूर्ण प्रकार को गानेवाले व्यक्ति ही ऐसी युक्तियाँ अधिक प्रयुक्त करते हैं, यह बात भी ध्यान देने-योग्य है। यह 'बंगाल-भैरव' राग भैरव-अंग से गाया जाए, क्योंकि इसमें भी रे, ध स्वर आंदोलन पाते हैं। कोई-कोई कहते हैं कि ये स्वर 'अति कोमल' ग्रहण करने चाहिए।

प्रश्न—यह आप बता ही चुके हैं कि हमें 'अति कोमल' की उलझन में नहीं पड़ना है। क्या भैरव-ठाठ के रागों में और भी कोई दूसरा राग ऐसा है, जो बंगाल-भैरव की शंका उत्पन्न कर देता हो ?

उत्तर—संभवतः तुम्हें प्रचार में ऐसा कोई राग-स्वरूप प्राप्त नहीं होगा। 'बंगाल' का एक प्रसिद्ध उठाव 'ध, ध, प, ग, मगमरे, सा' इस प्रकार ध्यान में जमा लो। धैवत को देर तक उठावदार रखना शोभनीय होगा। आगे मंद्र-सप्तक में इस प्रकार जाना चाहिए—'सारेसा, ध, सा, रे, सा'।

प्रश्न—तो फिर, हम बंगालभैरव का साधारण स्वरूप यदि इस प्रकार समझ लें, तो कैसा रहेगा :—

'ध, प, गमग, गमरे, सासारेसा, सा, धप, मप, धरे, सा, गमप, मगमरे, सा।'

उत्तर—ठीक है, चल जाएगा। आगे अंतरा इस प्रकार शुरू करना चाहिए—'धध, सां, सांरेंसां, सांध, रेंरेंसांध, प'। भैरव में हम प्रायः अनेक बार इस प्रकार अंतरा आरम्भ करते हैं—'पमध, निसां, सां, सांध, निसां, रेंरें, सांध, प'। इसमें निषाद छोड़ दिया जाए, तो स्वाभाविक ही कुछ निराला राग-प्रभाव अपने-आप हो जाएगा। निषाद का नियम पालन करते हुए और खुला मध्यम बीच-बीच में दिखाते हुए यदि तुमने इस खूबी से रागभिन्नता श्रोताओं के सम्मुख उपस्थित की, तो तुम्हारी प्रशंसा ही होगी। जो भी काम किया जाए, उसे समझ-बूझकर अपने राग को भ्रष्ट न करते हुए किया जाए, यही ध्यान रखना पर्याप्त होगा। कोई-कोई कहते हैं कि इसमें बीच-बीच में 'रेम' स्वरों की संगति दिखाई जानी चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से भैरव का प्रभाव कम होता जाएगा। कोई-कोई कुशल गायक तो निषाद स्वर लगाकर भी 'बंगालभैरव' का स्वरूप नहीं बिगड़ने देते। यह सुनकर तुम्हें आश्चर्य होता होगा, परंतु ऐसा करने की भी एक युक्ति है।

प्रश्न—वह कौनसी युक्ति है।

उत्तर—इस निषाद को स्थायी में नहीं लिया जाए। अंतरा लेते हुए एक-दो जगह थोड़े प्रमाण में लेना पर्याप्त है। वास्तविक दृष्टि से तो यह काम नियम भंग करता है, परंतु यह गलत नहीं है कि इस प्रकार का प्रयोग आरोह में किया हुआ कभी-कभी दिखाई पड़ जाता है। यह प्रत्येक व्यक्ति कहेगा कि ग्रंथों में 'बंगाल' को सम्पूर्ण राग बताया ही है और 'बंगालभैरव' प्रातःकालीन राग होने से इसका समस्त रस अवरोह ही में आ जाएगा।

प्रश्न—तनिक हम भी देखें कि आरोह में निषाद स्वर किस प्रकार व कहाँ लगाया जाता है ?

उत्तर—मैंने इस स्वर का प्रयोग इस प्रकार करते देखा है—'धु, नि सां, सां, सां धु, नि सां, रें, रें, सां, धु, प, म प धु सां, धु, प म ग, म रे, सा'। इसमें मैंने निषाद स्वर किस प्रकार गौण रूप में रखने का प्रयत्न किया, वह देखते हो न ? स्थायी के भाग में इसे नहीं लाना चाहिए। तो अब 'बंगाल-भैरव' का स्वरूप तुम मुझे गाकर दिखाओ, देखें कैसा गाते हो ?

प्रश्न—हम इस प्रकार गाएंगे, देखिए—धु, धु प, ग, ग म प म ग, म रे, सा, धु धु, प, ग म धु, प, ग, म प ग म, रे सा, सा धु सा, धु प, सां धु प, ग म प, ग म रे, सा'।

उत्तर—शाबास ! आगे अंतरा किस प्रकार लोगे ?

प्रश्न—'धु, नि सां, निसां' अथवा 'धु, धु, सां, रें सां', इस प्रकार आरम्भ करके आगे इस प्रकार स्वर लेंगे—'धु, सां रें, रें सां, धु सां, धु, प, ग, मप, धु, रें सां, रें सां धु, प, ग, म प, ग मरे, सा,' आपने कहा था कि कोई-कोई गायक मध्यम स्वर को बढ़ाते हैं और रे, म, इन स्वरों की संगति कहीं-कहीं दिखाते हैं। यह किस प्रकार किया जाता है ?

उत्तर—देखो बताता हूँ—'धु प, ग म प, ग म, रे सा, धु प, ग म रे, ग म प ग म रे सा, सा धु, सा, रे रे सा, रे म, ग म, प म, रे सा, सा रे म, प प धु प, ग म, धु प ग म रे, रे, सा'।

इसमें कुछ जोगिया का आभास होना सम्भव है; वहाँ अवश्य ध्यान देना है।

प्रश्न—यहाँ गान्धार को स्पष्ट रूप से आगे नहीं लाया जाएगा क्या ?

उत्तर—हाँ, यह तुमने ठीक बताया। परन्तु यह गांधार भी युक्तिपूर्वक दिखाना पड़ेगा।

प्रश्न—अवरोह में इस स्वर का वक्रत्व है, इसी लिए आप यह कह रहे होंगे। हम इसे अच्छी तरह सम्हाल सकेंगे।

'सा रे̱ रे̱, सा, रे̱ म, ग म, ध̱ प, ग म, सां ध̱ प, ग म, रे̱, सा' इस प्रकार की तान में जोगिया छिपाया जा सकेगा ?

उत्तर—हाँ, यह ठीक है। मैं समझता हूँ कि अब तुम्हें 'बंगाल' राग अच्छी तरह गाना आ जाएगा। अब कुछ ग्रंथों का मत बताता हूँ, उसे सुनो :—

षाडवादेव बंगालो ग्रहांशन्यासमध्यमः ।
प्रहर्षे विनियोक्तव्यः प्रोक्तः सोढलसूनुना ॥

'षाडव' यह शार्ङ्गदेव का एक ग्रामराग है और इसके लक्षण 'रत्नाकर' में इस प्रकार बताए गए हैं :—

विकारिमध्यमोद्भूतः षाडवो गपदुर्बलः ।
न्यासांशमध्यमस्तारमध्यमग्रहसंयुतः ॥
काकल्यंतरयुक्तश्च मध्यमादिकमूर्च्छनः ।
अवरोह्यादिवर्णेन प्रसन्नान्तेन भूषितः ॥

प्रश्न—हमें इसमें 'काकल्यंतरयुक्तश्च' पद मनोरंजक ज्ञात होता है। इसकी आवश्यकता भी हम महसूस कर रहे थे। किंतु 'विकारिमध्यमा' यह एक फिर नई अड़चन आ गई ! यहाँ क्या मार्ग निकलेगा ? शुद्ध 'षाडव' का ठाठ ठीक ठीक लगेगा, तो आगे की बात ?

उत्तर—वह तो है ही। समझ लो कि किसी ने शंकराभरण-जैसा ठाठ स्थापित किया, तो भी फिर सारे राग-लक्षण प्राप्त करने रह जाते हैं।

प्रश्न—परन्तु किसी ने आपको 'बंगाल' राग, बिलावल ठाठ में भी गाकर दिखाया न ?

उत्तर—हाँ। परन्तु मित्रो ! हमने 'रत्नाकर' के लक्षणों की ढूँढ़-खोज तो स्थगित कर दी है न ? यह कार्य तो हम योग्य अधिकारी व्यक्ति को सौंप रहे हैं। यही उचित होगा कि उसे सफलता मिलने पर हम उससे ही 'रत्नाकर' का स्पष्टीकरण ग्रहण करें। अभी तो यही यही ठीक है कि तुम शार्ङ्गदेव के लक्षण केवल सुन लो। 'विकारिमध्यमोद्भूत:' इस पद की कल्लिनाथ ने इस प्रकार टीका की है :—

मध्यमाया जातेः शुद्धभेद एकः। विकृतभेदास्त्रयोविंशतिः।
तत्र शुद्धावस्थां परित्यज्य विकृतावस्थापन्ना
मध्यमा विकारिमध्यमा तस्यामुद्भूतः ।

प्रश्न—क्या यह संक्षेप में कहा जा सकता है कि शार्ङ्गदेव ने शुद्ध व विकृत जाति के भेद किस प्रकार निश्चित किए हैं ?

उत्तर—यह विवरण 'रत्नाकर' के स्वराध्याय के सप्तम प्रकरण में है। मैं तुम्हें सुझा चुका हूँ कि 'रत्नाकर' के जाति-प्रकरण की स्पष्ट एवं व्यवस्थित व्याख्या अगले विद्वानों ने अपने ग्रंथों में नहीं की। अर्थात् उनकी समझ में यह आया ही नहीं, अतः यह टीका भी इस दृष्टि से योग्य नहीं हुई। केवल 'रत्नाकर' का विधान अपनी भाषा में कह देना अथवा उसका भाषांतर प्रस्तुत करना अध्येताओं की वास्तविक सहायता करना नहीं कहा जा सकता। जो व्यक्ति उत्तम प्रमाणों से यह समझा दे कि अमुक 'जाति' अमुक स्वरांतर हुआ, उसके लिए तुम कह सकते हो कि 'रत्नाकर' उसकी समझ में आ गया है। मुझे विश्वास है कि इस संबंध में तुम केवल लंबी-चौड़ी गप्पें सुनकर माननेवाले नहीं हो। आज तो पंडितों को इसी में कठिनाई हो रही है कि 'रत्नाकर' का शुद्ध स्वर-ठाठ अब किस प्रकार सिद्ध किया जाए। हिंदुस्तानी संगीत-पद्धति में आजकल जाति-प्रकरण महत्त्वहीन हो गया है, अतः यह विभाग दुर्बोध हो गया है। यह मैं तुम्हें पहले ही बता चुका हूँ कि हमारे अर्वाचीन विद्वानों ने शार्ङ्गदेव का शुद्ध ठाठ कौनसा माना है? उनका दावा तो इस प्रकार है कि हम आज भी शार्ङ्गदेव का संगीत ही गाते हैं! यह बात असत्य नहीं है कि हमारे अनेक राग 'रत्नाकर' के 'उपांग' शीर्षकांतर्गत वर्णित प्राप्त होते हैं।

प्रश्न—तब तो अब इतना ही बाकी रह गया है कि तत्काल ही उनके ठाठ व विशेष लक्षण हिंदुस्तानी ठाठ व लक्षणों से अच्छी तरह मिला दिए जाएँ।

उत्तर—स्पष्ट ही है! परंतु उसे छोड़ो। हाँ, मैं तुम्हें शार्ङ्गदेव के शुद्ध, विकृत जाति-भेद का विवरण सुना रहा था न? सुनो :—

> शुद्धाः स्युर्जातयः सप्त ताः षड्जादिस्वराभिः ।
> षाड्ज्यार्षभी च गांधारी मध्यमा पंचमी तथा ॥
> धैवती चाथ नैषादी शुद्धतालक्ष्म कथ्यते ।
> यासां नामस्वरो न्यासोऽपन्यासोंऽशो ग्रहस्तथा ।
> तारन्यासविहीनास्ताः पूर्णाः शुद्धाभिधा मताः ॥

इससे तुम्हारे ध्यान में यह आ जाएगा कि पंडित शार्ङ्गदेव ने शुद्ध जातियाँ सात मानी हैं और उन्हें अपने प्रसिद्ध सप्त स्वरों के नाम ही दिए हैं। शुद्ध जाति के लक्षण वह इस प्रकार बताता है—'जिस जाति में न्यास-अपन्यास, अंश और ग्रह, ये सभी स्थान जाति के नाम-स्वर पर आते हों, जो सदैव संपूर्ण हो, और जिसमें न्यास कभी भी तार-स्थान में नहीं जाता हो, वह जाति शुद्ध होगी।"

प्रश्न—और जाति में विकृत रूप कैसे आएगा?

उत्तर—पंडित कहता है—'विकृता न्यासवर्ज्यैतल्लक्ष्महीना भवंत्यमूः ॥' अर्थात् न्यास का नियम न तोडते हुए, अन्य बातों में अंतर डाला गया कि जाति विकृत हुई। उसे 'शुद्ध-विकृत' इस प्रकार विशेषण लगाया जाएगा। कल्लिनाथ कहते हैं :—

नामस्वरमेव न्यासं कृत्वाऽपन्यासादीन्स्वरान्तराणि कुर्यात्। एवं कृता यदि तदा विकृतावस्थापन्ना भवंति। न तु विकृतसंसर्गजातिवद्व्यपदेशांतरे सारभाज इत्यर्थः। अत्र न्यासनियमस्य परित्यागो नेष्टः। तस्मिन्नपि परित्यक्ते सति विकृतासु जात्यंतरभेदकत्वेन प्रधानभूतावयवानुवृत्तौ तासां तत्तच्छुद्धजातिभेदत्वप्रतीतिर्न स्यात्।

प्रश्न—मालूम होता है कि आगे 'विकृत संसर्गज' जाति का वर्णन आया होगा?

प्रश्न—हाँ, एक-एक शुद्ध जाति के अनेक विकृत भेद हो सकते हैं, यह दिखाई पड़ेगा।

रत्नाकरे :—

संपूर्णत्वग्रहांशापन्यासेष्वेकैकवर्जनात्।
भवन्ति भेदाश्चत्वारो द्वयोस्त्यागे तु षण्मताः॥
त्यागे त्रयाणां चत्वार एकस्त्यक्ते चतुष्टये।
भेदाः पंचदशैवैते षाड्ज्याः सद्भिर्निरूपिताः॥
तत्राष्टौ पूर्णताहीनाः षाडवौडुवभेदतः।
अतोऽष्टावधिका आर्षभ्यादिष्वौडुवजातिषु॥
अतस्त्रयोविंशतिधा षट्सु प्रत्येकमीरिताः॥

इस विवरण पर सिंहभूपाल ने इस प्रकार टीका की है :—

शुद्धजातीनां चत्वारि लक्षणानि—नामस्वरग्रहत्वं, नामस्वरांशत्वं नामस्वरापन्यासत्वं, संपूर्णत्वं सप्तस्वरत्वं चेति। तत्र संपूर्णत्वपरित्यागेनैको विकृतभेदः, ग्रहपरित्यागेनैकः, अंशपरित्यागेनैकः, अपन्यासपरित्यागेनैकः, एवमेकैकपरित्यागे चत्वारो भेदाः। संपूर्णत्वग्रहत्वपरित्यागेनैकः, संपूर्णत्वांशपरित्यागेनैकः।

प्रश्न—इस विचारधारा को हम अच्छी तरह समझ गए। इस प्रकार षाड्जी जाति से पंद्रह भेद अवश्य हो जाएँगे, आगे?

उत्तर—आगे टीकाकार कहता है :—

तेषु पूर्णताहीना अष्टौ। इतरलक्षणहीनाः सप्त। किन्तु षाड्ज्याः षाडवत्वेनैव असंपूर्णत्वम्। अन्येषां षाडवत्वेनौडुवत्वेनैव च भेदाधिक्यं मतम्।

प्रश्न—समझ गए ! अर्थात् आर्षभी आदि छह जातियों के तेईस-तेईस प्रकार और षाड्जी के पन्द्रह प्रकार बताए गए। कुल मिलाकर ६×२३=१३८; १३८+१५ =१५३ प्रकार हुए।

प्रश्न—यह हिसाब तुम ठीक तरह से समझ गए; परन्तु संगीत-विषय में निरे हिसाब का महत्त्व नहीं है।

प्रश्न—आपका यही उद्देश्य है न कि श्रुति, ग्राम, मूर्च्छना, जाति, ग्रामराग, जन्य राग और प्रचार की सरल तथा सन्तोषजनक संगति होनी चाहिए ?

उत्तर—तुमने ठीक तर्क किया। 'संसर्गज विकृत जाति' ग्यारह बताई गई हैं।

विकृतानां तु संसर्गाज्जाता एकादश स्मृताः। —रत्नाकरे।

पहले तुम जिन विकृत जातियों को देख चुके हो, वे 'शुद्ध-विकृत' थीं। 'रत्नाकर' का जाति-प्रकरण बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। शार्ङ्गदेव ने अपना वीणा-प्रकरण स्पष्ट नहीं लिखा, इसलिए उसके संगीत का अच्छी तरह स्पष्टीकरण नहीं हो पाता। वह अपने मेरु पर आरम्भ में तार कैसे मिलाता है, यहीं पाठक को कठिनाई पैदा हो जाती है। दक्षिण के ग्रन्थकारों के लेखों से यह सहज में दिखाई देता है कि वे 'सा, प, सा, म' इस प्रकार तार मिलाते थे। कोई-कोई कहते हैं कि शार्ङ्गदेव भी ऐसा करता ही होगा, क्योंकि उसने अपने वाद्याध्याय में 'आलापिनी' और 'किन्नरी' वीणा बताते हुए 'मुक्त तन्त्री' स्वर 'षड्ज' और 'मध्यम' कहीं-कहीं बताए हैं; जैसे :—

मध्यमो मुक्तया तंत्र्या तर्जन्याद्यंगुलीत्रयात्। वामस्यानामिकावर्ज्यास्त्रयः
स्युः पंचमादयः। आगे मुक्ततंत्र्याऽथ षड्जः स्यादृषभस्तर्जनीभवः। गान्धारो
मध्यमांगुल्या दक्षिणेनाथ वादनम्॥

इस प्रकार 'आलापिनी' के लक्षणों में कहा है। किन्नरीवीणा के वर्णन में भी एक जगह इस प्रकार का विवरण मिलता है :—

मुक्ततंत्रीभवं कृत्वा स्वरमाद्यं चतुर्दशम्।
स्वराः परे स्युः सारीणां चतुर्दशभिरंतरैः॥
सप्तकद्वयमेवं स्यादेकतारस्वराधिकम्।
यथास्वं स्वरदेशांशैः श्रुतिस्तस्या विचिन्वते॥
द्वित्रास्ततोऽधिकाः सारीर्निबध्नीयात्परे त्विह।
लक्षयंत्यंतराण्यासां स्वराविर्भावतो बुधाः॥
श्रीशार्ङ्गदेवोपदेशात्तद्बोधः सुलभो नृणाम्।
केचित् त्रयोदशैवात्र सारीर्निदधते बुधाः॥
बृहती किंनरीत्येषा शार्ङ्गदेवेन कीर्तिता॥

परन्तु यही अच्छा है कि अभी हम इस विभाग पर अपना मत स्थिर नहीं करें, क्योंकि ऐसा करने लगेंगे, तो चाहे जिस विषय में प्रवाह में बह जाने का भय हमारे लिए रहेगा। मैं यह तुम्हें सुझा चुका हूँ कि कुछ विद्वानों का मत है कि प्राचीन काल में मेरु पर 'सा, प, सा, म' स्वरों में तार नहीं मिलाए जाते थे। उनका मत है कि 'रत्नाकर' में इसी कारण से मूर्च्छना, जाति, साधारण आदि उलझनें हैं। वे अपना स्पष्टीकरण अब प्रकाशित करेंगे ही, तभी वह देखा जा सकेगा।

प्रश्न—परन्तु ये लोग मुख्य बाईस श्रुतियाँ और शुद्ध स्वरमेल भी नए प्रकार से स्वीकार करेंगे। ठीक है न?

उत्तर—स्पष्ट है। यह तो आगे दिखाई देगा ही कि उनको कितनी सफलता मिलती है और उनका मत समाज को कितना ग्राह्य होता है। यदि उनका मत योग्य होगा, तो प्राचीन संगीत का निर्णय अपने-आप हो जाएगा। खैर, अब हमें अपने 'बंगाल' की ओर लौटना चाहिए न?

प्रश्न—जी हाँ, आप ग्रन्थ-मत बता रहे थे?

उत्तर—हाँ 'रत्नाकर' में 'बंगाली' नाम एक जगह दिखाई पड़ता है। उसका वर्णन इस प्रकार है :—

धन्यासांशग्रहा भाषा बंगाली भिन्नषड्जजा ।
गापन्यासा दीर्घरिमा धमंद्रोद्दीपने भवेत् ॥

भाषांग रागों में शार्ङ्गदेव ने 'कर्णाट बंगाल' नामक एक राग-प्रकार बताया है :—

अंगं कर्णाटबंगालं वेगरंज्याः पवर्जितम् ।
गांशं सांतं च शृङ्गारे वक्ति श्रीकरणेश्वरः ॥

'वेगरंजी' को 'टक्क' की भाषा बताया है। टक्क की व्याख्या मैं तुम्हें बता ही चुका हूँ। दक्षिण की ओर 'टक्क' और 'कन्नड़बंगाल', इन दोनों का ठाठ मालवगौड़ माना जाता है। शार्ङ्गदेव ने और भी 'बंगाल' बताए हैं :—

षड्जग्रामे मंद्रहीनः षड्जमध्यमया कृतः ।
बंगालोंऽशग्रहन्यासषड्जस्तुल्याखिलस्वरः ॥
मध्यमे कैशिकीजातः षड्जन्यासांशकग्रहः ।
बंगालस्तारमध्यस्थलपंचमः स्यात् समस्वरः ॥

इस सम्पूर्ण मतभेद का स्पष्टीकरण होगा तब हो जाएगा, इसकी चिन्ता आज हमें क्यों हो। रामामात्य 'स्वरमेलकलानिधि' में कहता है :—

राग: कन्नडबंगालो गांधारग्रःकांशकः ।
गन्यासऋषभन्यूनः प्रातर्गेयः स षाडवः ॥

इस राग का ठाठ यहाँ भी मालवगौड़ ही बताया गया है, अर्थात् यह हमारा भैरव ठाठ होगा। रागविबोधे :—

बंगालः शाश्वतिकः पूर्णः सांशग्रहश्च सन्यासः ॥
—मालवगौड़मेले

शुचिबंगालः पूर्णो मांशन्यासग्रहो व्युष्टे ।
—कर्णाटमेले

ये दो भिन्न-भिन्न प्रकार हैं, यह सरलता से समझ में आ जाएगा। कर्णाटमेल अर्थात् :—

कर्णाटगौडमेले शुचिसमपास्तीव्रतमरिमृदुमौ च ।
तीव्रधकैशिकिनी स्युः × × × ॥

सारामृते :—

मेलान्मालवगौलीयाद्बंगालः कन्नडादिकः ।
जातो भाषांगो निवर्ज्यः प्रातर्गेयश्च गग्रहः ॥
आरोहे गांधारलंघनम् । अवरोहे क्रमवक्रतया गांधारः ।

चतुर्दंडिप्रकाशिकायाम् :—

रागः कर्णाटबंगालो भाषांगं गौलमेलजः ।
प्रातःकाले प्रगातव्यः षाडवोऽयं निवर्जितः ॥

यह कहा जा सकता है कि ये दोनों आधार अपने वर्तमान प्रचार के बहुत निकट हैं। यह मान लिया जाएगा कि जिसे हम 'बंगालभैरव' कहते हैं, उसे ही ये ग्रन्थकार 'कर्णाटबगाल' कहते हैं। व्यंकटमखी के समय में 'रत्नाकर' बिलकुल दुर्बोध हो गया होगा, ऐसा दिखाई देता है; क्योंकि वह कहता है :—

तत्र रत्नाकरग्रन्थे शार्ङ्गदेवेन धीमता ।
चतुःषष्ट्यधिकं रागशतद्वयमुदीरितम् ॥
लक्ष्यंते ते न कुत्रापि लक्ष्यवर्त्मनि संप्रति ।
ततः प्रसिद्धिवैधुर्यात्त्यक्त्वा रागांस्तु तान् पुनः ॥
सर्वत्र लक्ष्यमार्गेऽत्र संप्रति प्रचरंति ये ।
तानस्मत्परमाचार्यतानप्पार्यसमुद्धृतान् ॥

रागान्निरूपयिष्यामि लक्ष्यलक्षणसम्मतान् ।
ग्रहांशन्यासमंद्रादिव्यवस्था तेषु यद्यपि ॥
देशीत्वात्सर्वरागेषु नैकांतेन प्रवर्तते ।
तथापि लक्ष्यमाश्रित्य गानलक्ष्मानुसृत्य च ॥
रागाणां लक्षणं ब्रूमो संप्रति प्रचरंति ये ।

संगीतदर्पणे :—

बंगाली ह्यौडुवा ज्ञेया ग्रहांशन्यासषड्जभाक् ।
रिधहीना च विज्ञेया मूर्च्छना प्रथमा मता ॥
पूर्णा वा मत्रयोपेता कल्लिनाथेन भाषिता ।
कक्षानिवेशितकरंडधरायताक्षी
भास्वत्त्रिशूलपरिमंडितवामहस्ता ॥
भस्मोज्ज्वला निबिडबद्धजटाकलापा
बंगालिकेत्यभिहिता तरुणार्कवर्णा ॥

अनूपविलासे :—

बंगाली रिधहीना स्यात् मतीव्रतरसंयुता ।
नितीव्रेणापि संयुक्ता सस्वरोत्थितमूर्च्छना ॥
सांशग्रहांतः सकलस्वरश्च ।
सदैव बंगालकनामधेयः ॥
—चंद्रोदये

मध्यमे कैशिकीजातः षड्जन्यासांशकग्रहः ।
बंगालस्तारमध्यस्थपंचमः स्यात्समस्वरः ॥
—रत्नाकरे

रागमंजर्याम् :—

सदाकालः सत्रिकश्च बंगालः सकलस्वरः ॥

चंदोदये—

सांशग्रहांतो रिविवर्जितश्च
कर्णाटबंगाल उपस्युपात्तः ॥
—मालवगौडमेले

नृत्यनिर्णये :—

श्यामं तांबूलहस्तं करधृतकुसुदं मालवीमेलजातम् ।
पत्रिं चारिं सुरेशं पिकमृदुवचनं वैणुकं पीतवस्त्रम् ॥
लिप्तांगं पद्मपंकैः शिरसि समुकुटं बालचंद्रार्कवर्णम् ।

पुंडरीक ने अपनी 'रागमाला' में जो तीन भेद बताए हैं, वे इस प्रकार हैं :—

अंत्यो गश्च स्वरी स्तः त्रिनयनगतिको सत्रिकाधश्च पूर्णो ।
वामे पाणौ सुमालां शशधरमणिभां शुभ्रवस्त्रं दधानः ॥
बंगालः पानपात्रं विशदकनकजं सव्यहस्ताग्रभागे ।
विद्वान् संगीतवेदं पठति च नितरां गद्‌गदैः कंपभेदैः ॥
जातः कर्णाटमेले स्वरसकलरतो मत्रिकः पूर्णकायः ।
शुभ्रांगः पीतवासामणिगणरचिते कुंडले कर्णयोः स्तः ॥
आस्ते मौलौ किरीटः करतलकमलः कुंकुमालिप्तदेहः ।
प्रातर्याच्यः प्रमत्तो युवजनसहितः शुद्धबंगालकोऽसौ ॥
बंगालांतश्च कर्णाट इति रिरहितो गादिमध्यांतकोऽयं ।
गौडीसंमेलभूतः कमलकरतलः पुष्पयष्टिं दधानः ॥
गौरांगः शुक्लवासाः कटकमुकुटकेयूरकाढ्यः ×
× धारी परिजनसहितो याति पूर्वाह्णकाले ॥

बंगाल के भिन्न-भिन्न प्रकार देखते हो न ? यह भी एक मजा ही है ! मूर्ख गायक कौन ? जिसे अपने स्वतः के राग के स्वर-नियम ज्ञात नहीं हों । पहले तुम 'पारिजात' में वर्णन किया हुआ प्रकार देख ही चुके हो ?

प्रश्न—जी हाँ, गुरु जी ! वह तो 'नि़ सा ग म॑ प नि सां । सां नि प म॑ ग नि़ सा ।' प्रायः ऐसा ही स्वरूप था । क्या यह एक नवीन प्रकार नहीं हो सकता ? इसमें वादी पंचम अच्छा दिखाई देगा ।

उत्तर—हाँ, हाँ, यह हो सकता है । इस प्रकार के स्वरूप सध सकें, तो उन्हें बेशक प्रचलित करना । प्राचीन नाम व नवीन रूप देखकर तो गायक नाचने लगेंगे, परन्तु यदि तुम्हारा राग आधारपूर्ण एवं रंजक हुआ, तो उन्हें भी अंगीकार करना ही पड़ेगा । अस्तु, राजा साहब टैगोर अपने 'संगीतसार' में इस राग के संपूर्णत्व पर सोमेश्वर, नारायण, सिंहभूपाल आदि पंडितों की सम्मति बताकर आगे प्रचलित भैरव ठाठ का 'बंगाल' बताते हैं । प्रतापसिंह ने अपने 'संगीत-सार' में क्या मजा किया है, उसे जरा ध्यानपूर्वक देखना । उसकी विचारशैली के विषय में मैं पहले ही बता चुका हूँ ।

"अथ भैरव राग की तीसरी बंगाली रागनी ताकी उत्पत्ति लिख्यते । शिवजी नें बाकी रागनीन में सों विभाग करिवे को अघोरमुख सों गायके तीसरी बंगाली नाम रागनी भैरव की छाया जुक्ति देखी भैरव को दीनी । स्वरूप । गौर रंग मनोहर जाकी मूर्ति है । अरु सुन्दर मुंज की कणगती पेहेरे हे । और वृक्ष की वल्क के वस्त्र पेहेरे हैं । लम्बो जाको शरीर हे और बडो जामें क्रोध हे । अरु सामवेद को गान करत हे । शास्त्र में तो यह पांच स्वरन सों गाई हे । सा ग म प नि सा । अथवा म प ध नि सा रे ग म यातें संपूरन है । याको दिन ऊगतें ले घड़ी एक दिन चढे जहाँ ताईं गावनी ।—इत्यादि ।"

उक्त वर्णन करने के बाद ग्रंथकार ने रागिनी की आलापचारी इस प्रकार बताई है :—

'ध नि सा म ग म प म ध प म ग रे ग म ग प म ग रे ग म ग रे सा ।'

प्रश्न—अर्थात् वह बंगाली का ठाठ भैरवी मानता है ?

उत्तर—हाँ, यही दिखाई पड़ता है। उसने वर्णन में 'ओडव व संपूरन है' इस प्रकार कहा है। जिस शास्त्र का उसने उल्लेख किया है, वह 'संगीत-दर्पण' है। इस ग्रंथ के सम्बन्ध में मैं आगे बताऊँगा।

संगीतरागकल्पद्रुमे :—

मनोज्ञमुक्तागुणभूषितांगी शुकं दधाना धरणीधरस्था ॥
प्रांशुः कुमारी कमनीयमूर्तिः बंगालिकेयं शुचिहास्यमाना ॥

इसके आगे 'दर्पण' के श्लोक आड़े-तिरछे नकल कर, पाठकों को राग-स्वरूप की कुछ कल्पना कराने के लिए 'टोडीवराडी जयतश्रीश्च त्रयमिलापबंगालिका' इस प्रकार का श्लोकार्ध रचकर रख दिया है!

प्रश्न—अब हमें बंगाल-भैरव के प्रचलित रूप का समर्थन करनेवाले आधार बताइए ?

उत्तर—हाँ, सुनाता हूँ :—

भैरवे मेलके तत्र बंगालोत्पत्तिरीरिता ।
भैरवस्यैव भेदोऽसाविति तज्ज्ञैः सुनिश्चितम् ॥
आरोहे चावरोहेऽत्र निषादो वर्जितस्वरः ।
अवरोहे समादिष्टा गांधारे वक्रता क्वचित् ॥
भैरवस्य प्रभेदत्वात्तदंगं स्यात् सुसंमतम् ।
निवर्ज्यत्वाद्गवक्रत्वाद्भैरवस्य स्फुटा भिदा ॥
गांधारस्य परित्यागे स्वर्णाकर्षणकाह्वयः ।
भेदः स्याद्भैरवस्यान्यः षाडवो मध्यमांशकः ॥
संगतिः सधयोर्नूनं रागेऽस्मिन् रक्तिदायिनी ।
गानमभिमतं चास्य प्रथमप्रहरोचितम् ॥

—लक्ष्यसंगीते

संभेदः किल भैरवस्य कथितो बंगालसंज्ञोबुधैः-
रारोहेऽप्यवरोहणे च नियतं वर्ज्यो निषादस्वरः ॥

अन्यद्भैरवतुल्यमेव सकलं वक्रोऽवरोहे तु गो।
गायंति प्रचुरं प्रभातसमये षड्भिः स्वरैर्गायकाः॥
—कल्पद्रुमांकुरे

यदि भैरवरागेऽस्मिन् निषादः परिवर्जितः।
गांधारस्य च वक्रत्वं भवेद्बंगालभैरवः॥
—चंद्रिकायाम्

याही भैरव राग में सुर निखाद जब नाहिं।
वक्र होय गंधार सुर, कहत बंगाला ताहिं॥
—चंद्रिकासार

प्रश्न—अब हमें यह राग स्वरों में गाकर दिखा दीजिए। इसके विषय में और अधिक जानकारी नहीं चाहिए।

उत्तर—अच्छी बात है, सुनो :—

सरगम : झपताल (सम से शुरू)

स्थायी

ध॒	ध॒। प	ग	म। प	ग। म	रे॒	सा
सा	रे॒। सा	ध़	सा। ग	म। रे॒	रे॒	सा
सा	रे॒। सा	ग	म। प	प। ध॒	ध॒	प
ध॒	ध॒। सां	ध॒	प। ग	म। रे॒	रे॒	सा

अंतरा

म	प। प	ध॒	ध॒। सां	ऽ। सां	रें॒	सां
सां	ध॒। ध॒	सां	सां। रें॒	सां। सां	ध॒	प
म	ग। म	रे॒	सा। ध॒	ध॒। सां	ध॒	प
रें॒	रें॒। सां	ध॒	प। ग	म। रे॒	रे॒	सा

पं० व्यंकटमखी ने 'संगीत-संप्रदाय-प्रदर्शिनी' में ऐसा ही एक मत बताया है :—

रागः कन्नडबंगालः षाडवो गग्रहान्वितः।
निवर्जः प्रातरुद्गेय आरोहे गच्युतः क्वचित्॥

बंगाल-भैरव का विस्तार तुम इस प्रकार आसानी से कर सकते हो :—

'धुधु, प, गमप, गमरे, सा, सारेसा, धुसा, रेरेसा, गमरेपगमरे, सा;

गमपप, धुधु, प, गमप, रेगमप, गमरे, सा, सारेसा, धु, साधु, मपधु, सा, सारेगम, रेगम, पमगप, रेपगमरेरे, सा; गमपधुप, धुपसांधुप, मप, रेगमप, सांधुप, गमपगमरे, सा; सारेसा, रेमगम, रे, पगमरे, सा, धुधुसा, गमधुधु, प, गमरेसा; मपधु, सां, सांरे, सां, सांधु, सां, रेंरेंसांधुप, मपधु, रेंसां, गमधुपगमरे, पगमरे, सा; सारेसा।'

यह राग तुम्हारे ध्यान में अच्छी तरह आ गया है, यह मैं पहले ही समझ चुका हूँ। तो भी तुम्हारी अधिक सहायता करने के ध्येय से यह स्वर-विस्तार बताना पसंद किया है।

प्रश्न—जो लोग स्वल्प रूप में निषाद का प्रयोग करते हैं, वे किस प्रकार विस्तार करते हैं?

उत्तर—वे इस प्रकार करते हैं :—

धुधु, प, गमपमग, मरेसा, धु, धु, पगम, धु, प, गमपगमरेसा, साधु, रे, रे, सा।

धु, निसां, सां, सांधु, निसां, निसांरें, रें, सां, निसांधु, धु, प, मप, धुधु, सां, रेंसांनिसांधुप, गमगमप, गमरे, सा। धुधुप, गमपगमरेसा॥

रेरे, गमपगमरे, सा, धुधुपगम, गमपगमरे, सा, सांधुधु, पगम, धुसांधुपगम, धुप, गमपगमरे, सा। धु, पगमपगमरेसा॥

इनके गायन में निषाद स्वर को गौण करने का प्रयत्न समझदारों को आसानी से दिखाई पड़ जाता है। तुम्हारे लिए तो निषाद वर्ज्य करने का क्रम निश्चित करना उचित होगा। मेरे इतना कहने का भाव यह है कि जो भी काम करो, उसे नियमित रीति से व समझ-बूझकर करना चाहिए।

प्रश्न—अब कौनसा राग बता रहे हैं?

उत्तर—अब हम भैरव ठाठ के 'विभास' राग को लेंगे।

प्रश्न—मालूम होता है कि शायद विभास राग अन्य ठाठों में भी गाया जाता है।

उत्तर—हाँ, देशकार राग का विवरण बताते हुए मैं इस सम्बन्ध में कुछ संकेत कर भी चुका हूँ। शायद वह तुम्हें विस्मृत हो गया है। कोई हानि नहीं। अपने गायक विभास राग को दो-तीन तरह से गाते हैं। अपने-अपने तरीके से प्रत्येक प्रकार ठीक ही होता है। यह कहना चाहिए कि जिसकी जैसी रुचि हो। मेरे गुरु ने मुझे भैरव और मारवा ठाठ के प्रकार बताए हैं और ये दोनों प्रकार ही मैं तुम्हें बतानेवाला हूँ। अभी हम जिस विभास को देख रहे हैं, वह भैरव ठाठ का औडव राग-स्वरूप है। इसमें मध्यम और निषाद स्वर वर्ज्य किए जाते हैं। कोई-कोई विद्वान् केवल मध्यम वर्ज्य करने की व्यवस्था देते हैं। वे कहते हैं कि इतने मात्र से यह राग

अन्य समप्राकृतिक रागों से सहज में ही भिन्न दिखाया जा सकेगा। यह मत भी अवश्य
विचारणीय है। इसके लिए भी ग्रंथों का आधार निकल आएगा। थोड़ा-सा
निषाद का प्रयोग करते हुए विभास राग गानेवाले गायकों को भी मैंने सुना है। मैंने
देखा कि उन्होंने इस स्वर का प्रयोग अवरोह में किया था। यह विशेष बुरा नहीं
दिखाई दिया। मेरे गुरु 'विभास' को औडव-रूप में गाते थे। 'मारवा' ठाठ का
प्रकार वे अवश्य सम्पूर्ण गाते थे। पूर्वी ठाठ में भी एक प्रकार का विभास गायक
कभी-कभी गाते रहते हैं।

प्रथम तो तुम्हारे मन में यही प्रश्न उत्पन्न होता होगा कि 'विभास' नाम क्या
है ? 'विभास' एक प्रकाशवाचक शब्द ज्ञात होता है। 'विभावसु' एक सूर्य का नाम है।
कदाचित् इस शब्द से ही इस विभास नाम का थोड़ा-बहुत संबंध स्थापित किया जा
सके। यह हम भी देखते हैं कि इस राग का गायन-समय सूर्योदय-काल माना जाता
है। यह बहुमत है कि विभास की प्रकृति बहुत गंभीर है। प्रथम तो प्रातःकाल का
समय ही गंभीर रागों के अनुकूल होता है, ठीक है न ? इस पवित्र समय में उत्तम
संस्कारवाले गायक ने यदि भक्तिरसपूर्ण कोई गीत सुनाया, तो निश्चय ही उसका
परिणाम अच्छा होगा। मेरे कहने का उद्देश्य यह हरगिज नहीं है कि विभास में
शृंगारिक पद्य कभी कोई नहीं गाते। अपने बड़े-बड़े गायक तो अधिकांश रूप में इसी
के ही गीत सुनाते हैं, परन्तु मैं इस समय का माहात्म्य बता रहा था।

प्रश्न—विभास में वादी स्वर कौनसा मानना चाहिए ?

उत्तर—वादी धैवत मानते हैं। उस वादी स्वर पर देर तक ठहरकर आगे पंचम
पर आकर जब गायक विश्रांति लेता है, तब श्रोताओं के हृदय पर कुछ विलक्षण ही
परिणाम होता है। यह तुम्हें स्मरण ही होगा कि यही ध, प की जोड़ी देशकार में
भी मैंने महत्त्वपूर्ण बताई थी। कोई-कोई गायक अपना अनुभव सुनाते हैं कि विभास
के रे, ध स्वर भैरव के रे, ध स्वरों से कुछ ऊँचे होते हैं। उनके कथन में कितना तथ्य
है, यह अवकाश के समय तुम्हें देखना होगा। राग के अलंकार पसन्द करना गायक की
खुशी पर निर्भर है। अभी तो मेरा कथन इतना ही है कि विभास के ऋषभ, धैवत
कोमल हैं, अर्थात् तीव्र नहीं हैं। इस मत से सूक्ष्म स्वरवादी पंडितों को भी विरोध
होने का संदेह नहीं रहता। 'ध, प' स्वर सुन्दर रूप में आगे बढ़ाकर गाना सीख लो,
फिर तुम्हें कोई दूसरी उलझन नहीं है। मैं इसे किस प्रकार उच्चारित करता हूँ, उसे
ध्यानपूर्वक देख लो, जिससे तुम्हें अच्छी तरह अनुकरण करना आ जाएगा। सूक्ष्म
अथवा आलंकारिक स्वर सावकाश गाई चीजों में थोड़े-बहुत देखे जा सकते हैं, परन्तु
तानबाजी में गायक के स्वर सदैव कितने आंदोलन के रहते हैं, यह शोध करना
तुम्हारे-जैसों को कठिन ही होगा। हाँ, कितनी ही जलद लय में कोई क्यों नहीं गाए,
तो भी स्वरज्ञानी श्रोता को इतना तो तत्काल समझ में आ जाएगा कि उसके स्वर
कोमल हैं या तीव्र।

प्रश्न—भला, यह किस प्रकार समझा जाता होगा कि द्रुत गायन में गायक
के स्वर ठीक स्थान पर लगते हैं या नहीं ?

उत्तर—रागों के नियमित अंग, नियमित स्वर-समुदाय में आते हैं और वे बार-बार सुनने से श्रोताओं के हृदय में जम जाया करते हैं। राग का सम्पूर्ण प्रभाव श्रोताओं के कानों पर तत्काल हो जाता है और वे यह समझ लेते हैं कि यह ठीक है अथवा दोषयुक्त है। मैं यह नहीं कहता कि यही कसौटी सर्वथा समाधानकारक है, परन्तु आन्दोलनों से स्थापित किए हुए स्वरों से सीखे हुए गायक आजकल हमारे यहाँ नहीं हैं और न ऐसे श्रोता ही हैं, जो कि आन्दोलनों की तराजू लेकर रागों की परीक्षा करते हों। अतः यह कहना गलत नहीं कि रागों की उपयुक्तता-अनुपयुक्तता उसके प्रभाव पर अथवा परिणाम पर निर्भर हो जाती है। अब इसके आगे रागों के श्रुति-कोष्ठक प्रसिद्ध होंगे, जो समाज में निर्विवाद रूप से लोकप्रिय होंगे। उन्हें स्वीकार कर गायक तैयार होंगे। समस्त देश में एक ही स्वरूप की संगीत-पद्धति होगी। बारह स्वरों की सहायता से संगीत-पद्धति का वर्णन करनेवाले प्राचीन एवं अर्वाचीन पंडित अज्ञ ठहराए जाएँगे। परन्तु अभी इस बात को बहुत समय लगेगा। अभी तुम्हें इसकी चिन्ता नहीं होनी चाहिए। प्रथम तो जलद तानों के स्वर पहचाननेवाले ही थोड़े मिलते हैं, फिर उन स्वरों के आन्दोलनों को तो शायद ही कोई परखता होगा। तो भी हम ऐसी कोई बात नहीं कहेंगे, जो शास्त्रीय प्रगति के लिए घातक हो।

विभास राग में पंचम स्वर बहुत मधुरतापूर्वक लगाना सीखना चाहिए। इसके लिए गायक कहते हैं कि 'यह स्वर चमकता हुआ होना चाहिए'। एक दिन एक गायक ने इस स्वर को वर्ज्य कर इस राग को गाने का साहस किया, परन्तु उसका प्रयत्न बिलकुल बेकार दिखाई दिया। श्रोताओं का बहुमत यही निश्चित हुआ कि यह गायक की ज्यादती ही थी। प्रथम तो श्रोतागण कोई नवीन राग-स्वरूप समझकर स्तब्ध बैठे रहे, परन्तु आगे देखते हैं कि उस उस्ताद ने प्रसिद्ध ध्रुवपद को आजादी से तोड़-मरोड़कर उसे खयाल के रूप में उपस्थित किया और उसमें अट-शंट तानें लगाने लगे! यह गीत एक बहुत प्राचीन विभास का ध्रुवपद था और श्रोताओं में से दो-चार व्यक्तियों को मालूम भी था। यदि प्रसिद्धि-प्राप्त गायक न होता, तो वास्तव में लोग वह चीज वहीं पर प्रत्यक्ष में गा दिखाते और उसको परेशान कर देते।

प्रश्न—क्यों गुरु जी! इस तरह से तो ये गायक लोग श्रोताओं की श्रद्धा का फायदा उठा लेते हैं! हमें उसकी भाषा चाहे समझ में न आती हो, परन्तु वह चाहे जो-कुछ बड़बड़ाता रहे और हम सिर हिलाते रहें। पंचम वर्ज्य करने से आगे उसका राग कैसा क्या रहा?

उत्तर—पंचम वर्ज्य करने से तीव्र म और तीव्र ध स्वर उसे ग्रहण करने पड़े। इनसे तानबाजी कैसे हो सकेगी? कोमल म और कोमल ध एक के बाद एक उससे गाते नहीं बने। परिणाम यह हुआ कि उसका राग हिंडोल और सोहनी का एक बेढब मिश्रण दिखाई देने लगा। गायन का रंग नहीं जमा। जिन लोगों का ध्यान तबले के सम की ओर अधिक था, वे प्रत्येक सम पर सिर हिलाते थे, परन्तु आगे जाकर स्वयं गायक ही रुक गए। कहने का तात्पर्य सिर्फ इतना ही है कि विभास यदि गाया जाए, तो पंचम स्वर अवश्य लिया जाए। इस राग में गान्धार और पंचम की संगति बहुत

मधुर होती है। विभास राग का स्वरूप स्मरण रखने के लिए एक सरल युक्ति है। स्थूल मान से यह स्मरण रखना चाहिए कि भैरव ठाठ में विभास का संपूर्ण 'चलन' देशकार राग-जैसा है। देशकार में रे, ध स्वर हम तीव्र मानते हैं और ये ही स्वर विभास में कोमल हैं। जिस तरह कोई-कोई विभास में निषाद ग्रहण करना पसंद करते हैं, उसी प्रकार देशकार में भी निषाद लगानेवाले निकल आएँगे। ऋषभ और धैवत स्वर कोमल तथा मध्यम और निषाद वर्ज्य करनेवाला एक सायंकालीन राग 'रेवा' और भी है, परंतु वह विभास से सरलता से अलग किया जा सकता है। उसका वर्णन आगे आएगा।

प्रश्न—मालूम होता है, इस राग में वादी कोई पूर्वांग का ही स्वर होगा ?

उत्तर—हाँ, इस राग का वादी स्वर षड्ज या गांधार माना जाता है। इसे मान लेने पर राग पर प्रातःकाल की छाया बिलकुल नहीं पड़ती। अपने संगीत की अनेक खूबियों में से यह भी एक खूबी है। ऐसे अनेक उदाहरण प्राप्त हो सकते हैं। मेरे गुरुदेव का सदा कहना रहा है कि प्रभात व संध्या के रागों का योग्य वर्गीकरण मध्यम स्वर और वादी स्वर की सहायता से किया जा सकता है। इसे करने से पद्धति में बहुत-कुछ सरलता हो जाएगी। उनका यह कथन मुझे भी सत्य प्रतीत हुआ, परंतु यह कार्य साध्य होने के लिए समाज को पहले राग-स्वरूपों के विषय में एकमत होना चाहिए। हमारे अज्ञ गायकों ने कुछ राग व्यर्थ ही भ्रष्ट कर डाले हैं और केवल अपने कंठ की तैयारी के बल से थोड़े-बहुत लोकप्रिय कर लिए हैं, यह हमें दिखाई पड़ता है। इन रागों को वास्तविक मूल रूप देने का कार्य अब बहुत ही जोखिम का होगा। अभी तो हम इतना ही समाज के सम्मुख नम्रतापूर्वक प्रस्तुत करने का प्रयत्न करें कि प्रचार कैसा है और शास्त्र में क्या है ? अपने पास का हम कुछ भी नहीं कहनेवाले हैं। एक बार यह समझ लिया गया कि सुधार होना आवश्यक है, फिर यह अपने-आप समझ लिया जाएगा कि वह कहाँ और किस प्रकार किया जाना चाहिए। अस्तु,

प्रश्न—विभास का कौनसा मुख्य अंग हमें ध्यान में रखना है ?

उत्तर—ऐसा याद रखो—'ध ध प, ग प ध प ग रे सा' इस प्रकार से यदि तुमने अपने राग का उठाव किया, तो तत्काल ही श्रोताओं को विभास जान पड़ेगा। धैवत को अच्छी तरह लंबा करना है। इसे भैरव के धैवत-जैसा आंदोलित नहीं करना चाहिए। 'प, प, प ध ग' यह टुकड़ा भी तुम्हें बार-बार दिखाई देना सम्भव है। गांधार और पंचम की संगति बहुत मधुर होने के कारण 'ग प, प, ध प, ग प ग रे सा' स्वर अधिक आएँगे। प्रातःकालीन राग होने के कारण इसका उत्तरांग प्रबल है। मेरे गुरु ने एक बार सूर्योदय के समय शांत चित्त से और बड़ी गम्भीर आवाज से 'ध ध, सां सां ध प, प ध, प, ग रे सा' इस प्रकार एक चीज शुरू कर यह राग, भैरव से किस प्रकार भिन्न किया जाता है, यह दिखाया था। 'प, ग रे सा' स्वर-समुदाय गाने में उन्होंने बड़ी कुशलता दिखाई थी। इन स्वरों को झटके से उच्चारित करने में ही सारी खूबी दिखाई दी। ऋषभ पर किंचित् मात्र आंदोलन लेना उपयोगी नहीं होता। इसी कारण से कोई-कोई कहते हैं कि विभास में संवादित्व गांधार को

देना चाहिए। ऋषभ की अपेक्षा यही स्वर अधिक उपयोग में आता है और शोभनीय भी होता है। विभास में अधिकांश पंचमान्त तानें लेनी चाहिए, इसमें श्रोताओं पर इसका प्रभाव अच्छा होगा।

प्रश्न—क्या इस प्रकार की तानें शोभनीय होंगी :—

धुधुप, गप, धुप, गरेसा; सारेसा, गपधुप, गपधुसांधुप, धुधुप, सारेगप, सांधुरेंसांधुप, गपधुप, गरेसा, धु, प।

उत्तर—हाँ, ये अच्छी रहेंगी। आगे अन्तरा कैसे लोगे ?

प्रश्न—वह इस प्रकार लेंगे—गप, धुसां, सां, सांरेंसां, रेंगंरेंसां, सांधुप, पधुगप, सांधुप, गपधुप, गरेसा। क्या यह ठीक रहेगा ?

उत्तर—ठीक है ! जोगिया में निषाद स्वर आरोह में वर्ज्य होता है। यह मालूम है न ?

प्रश्न—यह हमारे ध्यान में है। जोगिया के अन्तरे में 'प प धु सां, सां रें रें सां, मं रें सां, नि धु, नि धु प,' इस प्रकार किया जाएगा। विभास में 'प ग प प धु धु, सां, सां, रें सां, सां धु सां, रें रें सां, धु प, ग प धु धु, सां, धु प, ग धु प प ग, ग रे सा' इस प्रकार से जोगिया बिलकुल टाला जा सकेगा। भैरव तो सम्पूर्ण ही है और गुणक्री, सावेरी, रामकली आदि रागों में मध्यम स्वर पर ही बहुत-कुछ राग-वैचित्र्य निर्भर है। अतः इन रागों से विभास की गड़बड़ नहीं हो सकती।

उत्तर—इन सभी महत्त्वपूर्ण बातों को तुमने अच्छी तरह ध्यान में रखा है। यह मैं कह चुका हूँ कि कोई-कोई गायक अवरोह में निषाद का थोड़ा-सा उपयोग करते हैं। यदि तुम्हें भी इसका प्रयोग करना हो, तो आरोह में बिलकुल नहीं किया जाए, तभी अच्छा रहेगा। अवरोह में 'धु नि धु प, सां धु, प ग प, ग रे सा' इस प्रकार यदि इस स्वर को लिया गया, तो यह विशेष राग-हानि नहीं कर सकेगा। तार-षड्ज पर थोड़ा ठहरकर फिर धैवत पर आ जाने से निषाद का संसर्ग हटकर इष्ट परिणाम हो जाएगा। यह मैं किस प्रकार से करता हूँ, इसे ध्यान से देख लो, तो तुम्हें तत्काल ही सब आ जाएगा। 'ग प धु प, ग, रे सा, गप धु, प' इतने ही स्वर प्रथम अच्छी तरह तैयार कर लेने चाहिए, क्योंकि विभास की पकड़ 'ग प, धु, प' है। आगे फिर छोटी-छोटी तानों से राग-विस्तार किया जाए। देखें तुम किस प्रकार करते हो ?

प्रश्न—सा, ग प धु प, ग ग धु प ग प ग रे सा; प़ सा रे सा, ग प धु प ग रे सा, सा रे सा, धु, नि धु प, सां धु प, ग प, रें सां धु प, धु धु प ग, प, धु प ग रे सा, धु, धु, प; सा सा रे सा धु़, सा धु़ प़, प़ धु़, सा, ग प धु प ग रे सा।

उत्तर—शाबास ! शाबास !! मेरा कथन अच्छी तरह तुम्हारी समझ में आता जा रहा है। राग की गंभीरता अवश्य अच्छी तरह सँभालते रहना चाहिए। 'धु प, धु प, ग प धु, सां धु, प, रे ग प, रें, सां, धु, सां धु प, धु धु प ग रे, सा।' ये स्वर सावकाश रीति से गाने पर मनःस्थिति कुछ विलक्षण ही हो जाती है। तार-स्थान में गांधार के ऊपर जाने की आवश्यकता नहीं है, यहाँ यदि खींच-तानकर धैवत, पंचम लगाएँ, तो भी शायद उतने मधुर नहीं हो सकेंगे। कोई यह भी कहेगा कि प्रातःकाल के समय तार-स्थान का वैचित्र्य अब समाप्त होता जा रहा है। विभास का आरोह-अवरोह—'सा रे ग प धु सां। सां धु प ग रे सा।' इतना ही अभी तुम्हें ध्यान में रखना चाहिए, क्योंकि अपना विभास औडव है। यहाँ बीच में ही मैं एक प्रश्न पूछता हूँ। यदि मैं विभास में 'सा, रे रे सा, रे ग रे प ग रे सा, रे ग, प ग धु प ग रे ग रे सा।' इस प्रकार का स्वर-भाग अधिक आगे लाऊँ, तो बताओ क्या हो जाएगा ?

प्रश्न—यहाँ श्रोताओं को किसी सायंकालीन राग का आभास होगा। हम अभी यह तो विश्वासपूर्वक नहीं बता सकेंगे कि अमुक राग होगा, परंतु यह अवश्य कहेंगे कि प्रातःकाल का रंग अवश्य ही कम हो जाएगा।

उत्तर—यह तुमने ठीक बताया है। ऋषभ बढ़ा देने से हिंदुस्तानी 'श्री' राग आगे आ जाएगा और गांधार बढ़ा देने से 'रेवा' राग दिखाई देगा। विभास राग में जिस प्रकार तार-सप्तक की अधिक आवश्यकता नहीं रहती, उसी तरह मंद्र-सप्तक में भी अधिक नीचे नहीं जाना पड़ता। उत्तम गायकों को सुनकर इस बात को ध्यान में जमा लेना चाहिए। परंतु वे गायक अपनी चीजें संपूर्ण व वास्तविक रूप से गाने वाले अवश्य होने चाहिए।

प्रश्न—यह आप क्या कह रहे हैं ? मालूम होता है कि अधूरे गीत गानेवाले गायक भी मिल सकते हैं ?

उत्तर—हाँ, यह स्वीकार करना पड़ेगा कि आजकल इस प्रकार के गायक भी दिखाई देने लगे हैं। ये लोग खुशी-खुशी घंटे-दो-घंटे तक चीखते रहेंगे और इतनी अवधि में चार-पाँच रागों की लँगडी-लूली चीजें भी गाने का प्रयत्न करेंगे, परन्तु मजा यह है कि उकता देनेवाली पुनरुक्ति-युक्ति तानबाजी करते हुए ये प्रत्येक चीज अधूरी रख देंगे। ये ऐसा क्यों करते हैं ? इस प्रकार का उत्तर अनेक प्रकार से दिया जा सकता है। जैसे, उन्हें स्वतः को उत्तम प्रकार से तालीम नहीं प्राप्त हुई होगी, समाज में गाते समय मन-चाहे शब्दों को लेकर वे गाते होंगे। किसी प्राचीन और प्रसिद्ध चीज को रूपांतरित करते हुए गाने में उन्हें यह भी भय रहता होगा कि श्रोताओं में से किसी को मूल चीज आती होगी, साथ ही उन्हें यह डर भी रहता होगा कि कोई हमारी चीज सुनकर नहीं उड़ा लें, या अंतरे में रागभिन्नता सँभालना नहीं आता होगा, आदि अनेक कारण अधूरी चीज गाने के हो सकते हैं। इस प्रकार

के गायकों को हम कभी भी उच्च स्तर का नहीं मान सकेंगे और उनके इस प्रकार के कार्य को कभी भी प्रोत्साहन नहीं देंगे। अंतरा व स्थायी आदि गीतों के अवयव उत्तम घरानेदार गायक अपने-अपने घरानों के प्रसिद्ध ढंग से गाते हैं। किसी अधूरे गायक का भ्रष्ट गायन सुनकर महफिल से बाहर होने पर श्रोतागणों को आपस में इस प्रकार चर्चा करते हुए मैंने सुना है—"क्यों जी! इस गायक ने जो दूसरी चीज गाई थी, वह कैसी थी? मैंने यही चीज अमुक खाँ के मुँह से अमुक राग में सुनी थी। परन्तु इसने तो अंतरा ही नहीं गाया। इसमें कहीं-कहीं दोनों ऋषभ लगाता गया, और एक-दो बार तो तीव्र धैवत भी इसमें धकेल दिया। यह तो मुझे अजीब ही अनुभव हुआ। कौन जाने, उसका यह कौनसा राग था।" यदि गायक ने अपने राग के संपूर्ण नियम अच्छी तरह पालन किए हों, तो श्रोताओं में इस प्रकार निरुत्साह नहीं जान पड़ेगा। मैं तुम्हें बार-बार यह सुझाता हूँ कि प्रत्येक उत्तम गायक, यदि हो सके तो अपनी चीज गाने के पूर्व, राग का नाम, उसके मुख्य नियम, उसमें दिखा देनेवाले समप्राकृतिक राग, राग के अंग आदि बातें श्रोताओं को स्पष्ट बता दे, तो समाज में संगीत-ज्ञान बहुत-कुछ बढ़ जाएगा। कम-से-कम तुमसे तो मैं कहूँगा कि ऐसा करते रहना चाहिए। अस्तु, रामकली का एक औडव-सम्पूर्ण प्रकार मैं तुम्हें बता चुका हूँ, उसका तुम्हें स्मरण होगा ही।

प्रश्न—जी हाँ, उसके आरोह में मध्यम व निषाद वर्ज्य हैं।

उत्तर—हाँ, उसके आरोह और विभास के आरोह में कुछ सादृश्य दीख पड़ेगा, परन्तु यह भी भिन्न करके दिखाया जा सकता है। अवरोह संपूर्ण होने का भेद तो स्पष्ट ही है। रामकली में 'ध़, प' इस प्रकार विश्रांति नहीं ली जा सकती और सदैव भैरव-अंग दिखाने का प्रयत्न होता है। विभास में मध्यम स्वर न होने के कारण भैरव व रामकली उत्पन्न होने का महत्त्वपूर्ण साधन ही नष्ट हो जाता है। यह 'मगरेसा' स्वरों की शरीर को रोमांचित करनेवाली मीड़, भैरव की एक पकड़ ही हो गई है। कुछ रागों में कुछ नियमित स्वर-भाग इतने स्पष्ट होते हैं कि यदि वे राग में नहीं हैं, तो बहुत-कुछ साहस के साथ कहा जा सकता है कि फिर वह राग ही नहीं है। तुम्हारे इस विभास में 'ध़ प' यह छोटा-सा टुकड़ा इसी प्रकार माना जाता है। मध्यम का अभाव होने से प्रभात राग भी दूर ही हो जाएगा। तुम्हारे-जैसे मर्मज्ञ और चतुर अध्येताओं को लंबे-चौड़े उपदेश देने की आवश्यकता नहीं है। रागों के मर्मस्थान गुरु द्वारा शिष्य को अवश्य बताए जाने चाहिए, इसी लिए मैं यह बता रहा हूँ। यद्यपि मैं स्वीकार करता हूँ कि इस समय सीखने-सिखाने का ढंग बदल गया है, तथापि मैं कुछ मात्रा में अपने प्राचीन ढंग से चल रहा हूँ। प्राचीन काल का 'गुरुशुश्रूषया विद्या पुष्कलेन धनेन वा', यह मार्ग मैं पसंद नहीं करता, क्योंकि अब ऐसा करने की इतनी अधिक आवश्यकता नहीं दिखाई पड़ती। आज भी अपने कुछ प्रसिद्ध गायक इसी मार्ग का अवलंबन करते हुए दिखाई पड़ते हैं और 'या तो कायदा, नहीं तो फायदा' इस प्रकार का सिद्धांत हमें बताते हैं, परंतु इस सिद्धांत को अमल में लाने-योग्य कला उनमें नहीं होती।

प्रश्न—'कायदा, नहीं तो फायदा' अर्थात्?

उत्तर—इसमें कोई बड़ा भारी रहस्य नहीं है। मैंने तुम्हें अभी जो संस्कृत-श्लोकार्द्ध सुनाया है, उसी का यह रूपांतर समझना चाहिए। इसको संगीत की परिभाषा में 'उस्तादी-शागिर्दी' कहते हैं। हम इसे गुरु-शिष्य का नाता कहेंगे। कायदे से सीखनेवाले शिष्य अपने गुरु के घर का काम नौकर के समान करते हैं। इस प्रकार सीखनेवाले शिष्यों को प्रथम 'सुर भरना', फिर कुछ छोटे व सरल पलटे सिखाए जाते हैं। इसके पश्चात् दस-पाँच ध्रुवपद या 'अस्थाई' (ख़याल) बताए जाते हैं। गुरु गाने लगे कि उसके साथ-साथ इन्हें भी चाहे-जैसी तान लगाने की छुट्टी रहती है। इस प्रकार करने से दो बातें सध जाती हैं। प्रथम तो शिष्यों की झिझक दूर हो जाती है और वे लोगों में थोड़े आगे आने लगते हैं, दूसरे उनकी इच्छित तानों से गुरु के गायन का रंग अधिक जम जाता है। गुरु को विश्रांति मिलती है, यह तो और भी एक लाभ है। जो गुरु कपटी होते हैं, वे अपनी चीजें जितने मुक्त हृदय से अपने लड़के, बच्चों को सिखाते हैं, उस प्रकार इन पराए पुत्र शिष्यों को नहीं बताते। वे कहते हैं—"औलाद का हिस्सा औलाद को ही मिलेगा!" बाहरी शिष्यों से गुलामी कराने की लज्जा उन्हें बिलकुल नहीं होती। अनेक गायक जो बाँकी-टेढ़ी तानबाजी कर पेट भरनेवाले हमें दिखाई पड़ते हैं, उन्हें इसी प्रकार के फँसे हुए शिष्यों में से समझना चाहिए। वे टूटी-फूटी हिंदुस्तानी भाषा बोलकर उत्तर हिंदुस्तान से सीखकर आने का ढोंग करते हैं, यह सत्य है; परंतु उनमें बहुत ही कम कला होती है। उनसे यदि किसी ने दो-चार मुद्दे के प्रश्न पूछे, तो वे तत्काल ही गड़बड़ा जाते हैं; परंतु वे सब ऐसा ही करते रहते हैं।

विभास के सम्बन्ध में मैं तुम्हें बहुत-कुछ महत्त्वपूर्ण बातें बता चुका हूँ। यह प्रात:कालीन राग है। इस प्रकार ग्रंथकार भी कहते हैं। ग्रंथों में जहाँ राग-समय योग्य जान पड़े, वहाँ वह निस्संदेह स्वीकार कर लेना है। जहाँ पर असंबद्धता हो, वहाँ प्रचार को ग्रहण करते हुए चलना ही अधिक सुविधापूर्ण होगा।

प्रश्न—अपने हिंदुस्तानी संगीत-पद्धति के रागों का गायन बतानेवाला एक कोष्ठक यदि कोई बना लें, तो अच्छा होगा। ठीक है न?

उत्तर—संगीतकल्पद्रुमकार ने इस प्रकार एक प्रयत्न किया है, और अपने मत को इंद्रप्रस्थ-मत' के नाम से बताया है। यह ग्रंथकार अधिक पुराना नहीं है, अत: मैं समझता हूँ कि उसका मत आज के प्रचार के लिए काम आ जाने-योग्य है।

प्रश्न—तो फिर हमें उसका मत बता दीजिए! उसका जितना उपयोग हो सके, उतना ही हम कर लें।

उत्तर—ठीक है, सुनाता हूँ। इसमें कविता की ओर ध्यान न देकर, आशय की ओर लक्ष्य रखना ही अच्छा होगा :—

पहिले भैरव राग है दूजे कौशिक जान।
तृतीय हिंडोल बखानिये चौथे दीपक मान॥

पंचम श्रीराग पुनि कहे छठ्ठे मेघ प्रमान ।
पाँच-पाँच भार्या कहीं अष्ट पुत्र प्रति जान ॥
भैरवी रामकरी पुनि टोडि गुर्जरी नारि ।
भैरव राग कि रागिणी मत संगीत हो सारि ॥
खंबावति वागीश्वरी ककुभ परज मनमान ।
कह्यो मत संगीत तें और शोभनी जान ॥
प्रथम बसंती पंचमी बेलावली विचारि ।
ललित देशाखी संग है हिंडोलहि की नारि ॥
धन्नाश्री मुलतानि नटि जयतश्री पुनि जान ।
भीमपलासी रागिणी दीपक संग बखान ॥
मालवि त्रिवणी गौरिका पूरवि टंकी ठान ।
श्रीराग की रागिणी संगीत मत मन मान ॥
सोरट मल्लारी लिये सारंग बहुरी मान ।
बड़हंसी मधुमाधवी मेघ जोषिता जान ॥

अब रागों का समय सुनो :—

प्रातसमे में गाइये भैरव प्रथम सुराग ।
ललित भैरवी रामकली खट गुनकली अनुराग ॥
देशकार बीभास पुनि भटियारी भंखार ।
बसंत बहार पंचम पुनि हिंदोल अरु हीलार ॥
बेलावली अलायिका सरपरदा काकूभ ।
देवगिरी शुक्ला शुभा प्रहर चढ़े दिन धूप ॥
लच्छशाख भूशाख पुनि रामशाख देशाख ।
सुहा सुघरै सूही शुभा देवगंधारी भाख ॥
डेढ़ प्रहर दिन चढ़त ही टोड़ी गुर्जरि गान ।
देशी आसा जौनपुरि टोड़ि बरारी जान ॥
सारंग सुध विन्द्रावनी बड़हंसी सामंत ।
लंकदहन लुम लूहरी दो पहरे मेवंत ॥
मेघमलारी गौड़ पुनि गौड़गिरी जलधार ।
नटमल्लारी सूर पुनि रामदासि मल्लार ॥

मुलतानी अरु धनासिरि भीमपलासी जान ।
बरवा धानि अहीरिका तृतिय प्रहर कर गान ॥
जंगला मंगल पीलु पुनि सिंधु तिलंग प्रदीप ।
दीपक दीपकि काफि पुनि चौथे प्रहर प्रलीप ॥
जैतश्री श्री मालसिरि मालश्री गौराह ।
गौड़सारंग अरु मारवा पूर्वी और पूर्व्याह ॥
त्रिवणी श्रीगौरी बहुरि चैती टंकी मान ।
चौथे प्रहर दिन अंत में श्रीटंकी कर गान ॥
प्रथम जाम रजनी समै कल्याणी सुध गान ।
हेम खेम एमन पुनि शाम हमीरहि जान ॥
जेत भुपाली पूरिया कामोदी कर गान ।
प्रहर रजनि जातें गुनी छायानाट बखान ॥
डेढ़ प्रहर निसि के समै नायकि बखत प्रमान ।
अष्टादश है कानरा कौशिक कान्हर जान ॥
अड़ाना शहाना शोभना सोहन सोहनि मान ।
केदारा मलुहा पुनि नाटकेदार बखान ॥
बिहंग बिहारि बिहागरा बिहाग पुनि विनोद ।
भरन अरन संकीर्ण अरु शंकरा आमोद ॥
सोरट देश सौराष्ट्रिका सिंदूरा सावेरि ।
परज खंबावति सुखावती कलिंगरा आभेरि ॥
मालकोश और कौशिकी कुसुमकास कर्णाटि ।
ललित कलिंग लिलावती अरुणोदय में बाँटि ॥
सोलै सहस्र और आठसौ राग-रागिनी जान ।
वृंदावनहरि रास में गोपिन किए हैं गान ॥
देश-देश के भेद में भिन्न-भिन्न है नाम ।
मारग ब्रह्मादिक कहे देशी दशहूँ धाम ॥

इसमें अधिकांश राग अपनी हिंदुस्तानी पद्धति के हैं। इतना ही नहीं, अपितु इनका समय भी हमारे गायकों को स्वीकृत हो जाएगा। कल्पद्रुमकार का शुद्ध स्वर ठाठ बिलावल ही होगा, यह इस ग्रंथ के पाठकों को अनुभव होने लगता है। वह कुछ भी रहा हो, परन्तु उसने अपने प्रचलित संगीत पर जो उपयुक्त जानकारी प्राप्त की होगी, उसे हम हृदय से स्वीकार करेंगे और इसके लिए उसका आभार भी मानेंगे।

जहाँ उसने प्राचीन ग्रंथों के उद्धरण व्यर्थ ही तोड़-मरोड़ दिए हैं तथा उनमें अपने पास से कुछ जोड़ दिया है, वहाँ हम उसकी प्रशंसा कैसे कर सकेंगे ? इस प्रकार से मिथ्या प्रशंसा करने पर उस ग्रन्थकार के प्रति बड़ा अन्याय होगा और हमारी गुण-ग्राहकता की भी बहुत-कुछ परीक्षा हो जाएगी। एकाध बार स्वल्प गुणों की अधिक प्रशंसा खप जाएगी, परन्तु दुर्गुण की थोड़ी-सी प्रशंसा भी शोभनीय नहीं हो सकेगी। 'संगीत-कल्पद्रुम' में 'राग-मिलाप' शीर्षक के अंतर्गत कुछ हिंदी-दोहे दिए गए हैं; वे भी कहीं-कहीं उपयोग में आने-योग्य हैं। ये दोहे एकसाथ की अपेक्षा भिन्न-भिन्न राग बताते हुए, तुम्हें सुनाते जाना अधिक सुविधाजनक होगा।

प्रश्न—तो फिर जो राग आप हमें बता चुके हैं, उनके दोहे भी सुना दीजिए !

उत्तर—ठीक है, सुनाता हूँ :—

टोडी गौरी मिलत ही रामकली सुर होय।
संपूरन है सप्तस्वर प्रथमहि भैरव जोय ॥
भैरव गुर्जरि टोडि मिलि रामकली प्रकटाय।
देशकार मार्वा मिली गौरासुरहुँ मिलाय ॥
गुनकली तासों कहे तृतीय प्रहरोत्तर गान।
परजरु ललिता सम मिले भटियारी सम भाग।
राग कलिंगा होत है उपजत है अनुराग ॥

—किंतु इन दोहों की ओर देखकर तुम्हें अपने राग का नियम भ्रष्ट नहीं करना चाहिए। यह तो तुम्हारे मनोरंजनार्थ सुना रहा हूँ। यह बात नहीं है कि इनका लेखक कोई अधिकारी व्यक्ति रहा होगा। ये दोहे कल्पद्रुमकार ने कहीं से उद्धृत कर लिए होंगे। संस्कृत-ग्रंथों में भी हमें रागमिश्रण दिखाई पड़ता है। उदाहरणार्थ 'रागतरंगिणी' ही देखो न ! इस ग्रंथ में इस प्रकार के अनेक श्लोक प्राप्त होते हैं। ये सभी श्लोक मैं कभी-न-कभी आगे सुना दूँगा। फिलहाल उन श्लोकों के बिना हमें कुछ भी अड़चन नहीं है। 'कल्पद्रुम' में भी रागमिश्रण-प्रकरण संस्कृत में लिखा हुआ मैंने देखा है। आगे कभी अवकाश निकालकर उसे तुम्हारा पढ़ लेना ही पर्याप्त है। मैं बीच-बीच में दोहे सुनाना केवल इसी लिए पसन्द कर रहा हूँ कि अब 'कल्पद्रुम' ग्रंथ सहज में प्राप्त होने-योग्य नहीं है, और यह भी सम्भव नहीं कि वह निकट भविष्य में पुनः प्रकाशित हो सके। अच्छा, अब अपने विभास राग के सम्बन्ध में सारामृतकार क्या कहता है, यह भी सुनो :—

मेलान्मालवगौलीयादुत्पन्नोऽयं विभासकः ।
मह्रीनः षाडवः सांशग्रहः प्रातः प्रगीयते ॥

यह आधार हमारे लिए विशेष उपयोगी है। इसमें विभास का ठाठ मालवगौड़ बताया है, वह ठीक ही है। हम औडव प्रकार गाते हैं और यह षाडव है। इस विषय में मैं भी बता ही चुका हूँ।

प्रश्न—अब हमें प्रचलित राग-स्वरूप के समर्थन करनेवाले ग्रंथाधार सुना दीजिए !

उत्तर—वे इस प्रकार हैं :—

मेले भैरवके प्रोक्तो मनिहीनो विभासकः ॥
औडवो धैवतांशोऽपि पंचमन्यासमंडितः ॥
संगतिर्गपयोश्चित्रा सुशान्तप्रकृतिस्तथा ।
उत्तरांगप्रधानोऽयं प्रभाताहों मतः सताम् ॥
धैवतात्पंचमे न्यासो रागेऽस्मिन् क्रियते यदा ।
न कोऽपि शक्नुयात् ख्यातुं श्रोतृचित्तगतं सुखम् ॥
—लक्ष्यसंगीते

चतुर पंडित का किया हुआ यह लक्षणों का विवेचन यथायोग्य ही हुआ है। यह पंडित आगे कहता है :—

अवरोहे मनित्यागे कृतो रामकली भवेत् ।
न कोऽप्यन्यो मनित्यक्तो रागः प्रातः सुलक्ष्यते ॥

प्रश्न—इस पंडित का यह कथन ठीक है। यह सब हमारे ध्यान में अच्छी तरह आ गया है। यह युक्ति इस राग को ध्यान में रखने के लिए उत्तम है।

उत्तर—हाँ, आगे देखो :—

सायंकाले यथा रेवा तथा प्रातर्विभासकः ।
गांशिकाद्या मता तज्ज्ञैर्द्वितीयो धांशको मतः ॥
भैरवस्तु सुसंपूर्णो गुणक्रीः स्यान्निगोज्झिता।
रामकेली मनित्यक्ता ह्यनुलोमे सुसंमता ॥

प्रश्न—यह सब हमें अक्षरशः ठीक मालूम होता जा रहा है।

उत्तर—ठीक है, अब ये एक-दो आधार और भी सुनो :—

विभास इह वर्ज्यमध्यमनिषादकस्त्वौडुवो ।
रिकोमलधकोमलो भवति तीव्रगान्धारकः ॥
अमात्यऋषभस्वरो भवति धैवतोंऽशस्वरो ।
मनो हरति शृण्वतामुषसि पंचमन्यासतः ॥
—कल्पद्रुमांकुरे

विभासो मनिहीनस्तु कोमलर्षभधैवतः ।
धवाद्यृषभसंवादी गीयते प्रातरौडुवः ॥

—रागचंद्रिकायाम्

प्रश्न—अब हमें विभास राग का स्वर-विस्तार कर दिखाइए !

उत्तर—ठीक है, दिखाता हूँ :—

विभास

धधपप, गपधप, गरेसा, सारेसा, गप, प, ध, प, सा, रेगप, धधप, गपधप, गरेसा, धध, प ।

सारेसा, धधपप, धसा, रेरेसा, गपधपगरेसा । धध, प । सारेसा, गरेसा, गगपपगरे, सा, सारेगर, गप, धधप, गपध, धप, सां, धप, रेग, प, धधप, पग, रेसा; धध, प ।

रेरेसा, गपधध, सां, धध, प, रेंसां, धधप, गपध, सां, धप, रेगप, धधप, गपधपगरेसा; ध, ध, प ।

पगप, धध, सां, सां, सांरेंसां, सांरेंगंरेंसां, सांरेंसां, ध, प, गगपपध, सां, धधप, गपधप, गरेसा; ध, ध, प ।

सारेसा, सारेगरेसा, सारेगपगरेसा, गपधपगसांरेंसां, धप, गपध, रेंसां, ध, प, पधगप, सांसां, धपगपधपगरेसा; ध, ध, प ।

सासा, धध, पधधप, गपध, सांधधप, सागप, रेंसां, धप, गपधप, गरेसा; धध, प ।

सरगम : झप ताल

स्थायी

×						
ध	ध । प	ध	प । ग	प । ग	रे	सा
रे	रे । सा	ग	प । ध	ध । प	ध	प
प	ग । प	ध	ध । सां	ऽ । सां	रें	सां
सां	रें । सां	ध	प । ध	प । ग	रे	सा

अंतरा

×						
ग	ग । प	ध	ध । सां	ऽ । सां	रें	सां

रें	रें। सां	गं	रें। सां	रें। सां	ध	प
प	ध। ग	प	ध। रें	रें। सां	ध	प
सां	रें। सां	ध	प। ध	प। ग	रे	सा

प्रश्न—अब आप कौनसा राग आरम्भ कर रहे हैं ?

उत्तर—अब हम 'शिवमतभैरव' को लेंगे। यह एक बिलकुल अप्रसिद्ध राग है। यह तुम्हें क्वचित् ही सुनने को मिलेगा। प्रथम तो 'शिवमत' विशेषण ही श्रोताओं को कुछ विचित्र-सा लगता है। अपने प्राचीन ग्रंथों में कहीं भी 'शिवमतभैरव' नाम नहीं दिखाई पड़ता।

प्रश्न—हम भी यह पूछनेवाले थे कि 'शिवमत' कौनसा मत है !

उत्तर—ऐसे प्रश्नों का सन्तोषजनक उत्तर देना कुछ कठिन ही होगा। प्रचार में हमारे गायक भिन्न-भिन्न मतों के नाम सुनाते रहते हैं, परंतु कोरी नाम-सूची के अतिरिक्त उनके कथन में विशेष तथ्य नहीं पाया जाता; क्योंकि वास्तविक रूप में उन्हें एक भी मत की यथार्थ जानकारी नहीं होती। अपने पुराणों के प्रत्येक देवता के साथ एक-एक संगीत-मत बाँध देने से कौनसा कार्य सिद्ध हो जाएगा ? कल्पद्रुमकार ने इस प्रकार के अनेक मतों के केवल नाम बताए हैं; जैसे—शिव-मत, भरत-मत, हनुमन्मत, नारद-मत, ब्रह्मा-मत, विष्णु-मत, महेश-मत, पार्वती-मत, लक्ष्मी-मत, हाहा हूहू-मत, सोमनाथ-मत, कल्लिनाथ-मत, इंद्रप्रस्थ-मत, नंदिकेश्वर-मत, भैरव-नाथ-मत इत्यादि। इन नामों का क्या उपयोग हो सकता है ? यदि तुम समस्त देश में पर्यटन करो, तो तुम्हें ऐसा पंडित क्वचित् ही दिखाई पड़ेगा, जिसे इनमें से किसी एक मत की भी अच्छी जानकारी हो। इतने पर भी, जहाँ दो गायक एकत्र हुए कि वे परस्पर प्रश्न करते हैं 'आपका कौन-सा मत ?', यह सुनकर बड़ी हँसी आती है। उनके इस प्रकार के प्रश्नोत्तरों का कुछ भी अर्थ नहीं होता।

प्रश्न—परंतु आपके बताए हुए इस प्रश्न का उत्तर गायक क्या दिया करते हैं।

उत्तर—वे निरर्थक रूप से शान में आकर उत्तर देते रहते हैं कि हम 'हनुमन्मत' गाते हैं। इन सभी मतों की अपेक्षा रत्नाकर-मत, कलानिधि-मत, रागविबोध-मत, चंद्रोदय-मत, रागमाला-मत, अनूप-मत, तरंगिणी-मत, पारिजात-मत आदि कहना अधिक शोभनीय होगा, क्योंकि ये सब अच्छे व्यवस्थित पद्धति-ग्रन्थ तो हैं। 'कल्पद्रुम' के समर्थन में 'शिवमत' है, परंतु इस मत का कौन-सा ग्रंथ है और उस ग्रंथ को कब तथा किसने लिखा, इन प्रश्नों का उत्तर इस ग्रंथ में बिलकुल नहीं मिलता। यह जानकारी एकत्र करने का प्रयत्न मैंने किया था, परंतु मुझे इसमें विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई। मुझे याद है, बंगाल प्रांत में प्रवास करते समय मेरी भेंट वहाँ के एक प्रसिद्ध विद्वान् से हुई थी। मेरी भेंट होने के पश्चात् उस पंडित ने मुझसे सर्वप्रथम यही प्रश्न किया कि 'आप कौनसा मत मानते हैं ?' मैंने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया—"महाराज ! जो मत सुव्यवस्थित और सुनियमित होगा, वह मेरे लिए सदैव आदरणीय है।" यह सुनकर वह पंडित कहने लगा—"मैं संगीत-महेश मत के सिवाय

अन्य सभी मतों को भूँठा समझता हूँ। रत्नाकर-वत्नाकर उसके सामने मैं कौड़ियों की कीमत का समझता हूँ! नाद-शास्त्र के पाश्चिमात्य सभी ग्रंथ मैं देख चुका हूँ। Helmholtz, Tyndal, Huxley आदि विद्वानों की गलतियाँ दिखा सकता हूँ।" उसके इस कथन की अतिशयोक्ति मुझे सहज ही समझ में आ गई, क्योंकि उसे स्पष्ट रूप से इंगलिश बोलना भी नहीं आता था। अल्प शिक्षा होने पर भी सम्भवतः उसके संग्रह में कोई महत्त्वपूर्ण जानकारी दिखाई पड़ जाए, इस हेतु से मैंने उससे वर्तालाप जारी रखा। उससे मैंने उसके आधार-ग्रंथ 'संगीत-महेश' दिखाने का बहुत आग्रह किया, परंतु वह व्यर्थ गया। अंत में मेरी समझ में यह आया कि ये महाशय संगीत के सहारे उदर-पोषण करनेवाले एक मध्यम स्थिति के कलावन्त हैं, परंतु उनके पास उल्लेख करने-योग्य विद्या आदि नहीं है। जिस हेतु से मैं उससे शास्त्र-चर्चा करने की गलती कर गया था, उस हेतु उसके गायन-वादन सुनने का कोई अच्छा अवसर मुझे प्राप्त न हो सका। अपने इस अनुभव से मैं तुम्हें भी सावधान कर रहा हूँ कि जिस व्यक्ति से तुम संगीत के विषयों में वार्तालाप कर रहे हो, उसकी आरंभ से यह अच्छी तरह परख करते जाओ कि उसका इस विषय पर कितना अधिकार है। दूसरे संगीत-चर्चा करनेवाले एक और वर्ग के व्यक्ति भी होते हैं; देखो—"क्या आपको इंगलिश आती है? आती है, मगर साधारण काम-काज करने योग्य आती है। बचपन में पाँच-छह पुस्तकें पढ़ ली थीं, परन्तु अब अभ्यास न होने से अच्छी तरह लिखना-बोलना नहीं आता। क्या आपको संस्कृत आती है? हाँ, परंतु पद्धति से सीखा हुआ नहीं हूँ। इधर-उधर से कुछ जानकारी प्राप्त कर ली है। क्या आपने संस्कृत के संगीत-ग्रंथों का अध्ययन किया है? ऐसा कुछ अध्ययन तो नहीं किया, परंतु उन ग्रंथों के कुछ रागों की जानकारी किसी-किसी के पास से कुछ मात्रा में ग्रहण कर ली है। मैंने स्वतः तो अधिक अध्ययन नहीं किया, परंतु वैसे ही कुछ बातों का कुछ सामान्य ज्ञान प्राप्त कर लिया है। क्या आपको गायन आता है? गायन आता है, यह तो नहीं कहा जा सकता। हाँ कुछ रागों के स्वर वैसे ही गुनगुना लिया करता हूँ। चार आदमियों में बैठकर गाने के लिए कहा जाने पर यह नहीं कर सकता। किसी गायक के पास रहकर मैंने नहीं सीखा। वैसे ही गायन सुन-सुनकर कुछ कानों का संस्कार हो गया है। क्या आपको वाद्य बजाना आता है? वैसे ही सितार पर हाथ फेरता हूँ, तालीम प्राप्त नहीं की। कुछ-कुछ नकल करता रहता हूँ, हाथ बिलकुल तैयार नहीं है। किसी तरह स्वयं अपने को खुश कर लिया करता हूँ।" पंडितों का यह वर्ग, जो प्रायः समाज में प्राप्त होता रहता है, उससे सदैव दूर रहना होगा। यदि ऐसा वर्ग रुष्ट भी होता है, तो भी इन्हें अपने ऊपर हावी नहीं होने देना चाहिए। अस्तु,

उत्तर की ओर प्रवास करते समय एक धूर्त पंडित से मेरी भेंट हुई थी। वे संस्कृत जाननेवाले थे और उनसे मेरा बहुत-कुछ वार्तालाप हुआ था। उस पंडित का प्रधान आधार-ग्रंथ 'शिव-संगीत' ही था।

प्रश्न—क्या आप हमें सुनाएँगे कि उनसे आपका वार्तालाप क्या हुआ था?

उत्तर—यह कुछ विषयांतर तो हो जाएगा, परन्तु मेरा निश्चय तुम्हें अपने अनुभव सुना देने का भी रहा है, अतः उस वार्तालाप का कुछ अंश सुना देता हूँ। सुनो—

मैं—महाराज ! आप अपने संगीत का आधार-ग्रंथ कौन-सा मानते हैं ?

महाराज—मैं 'शिव-संगीत' का अनुयायी हूँ। वह स्वयं शिवजी का ग्रंथ है।

मैं—उस ग्रंथ में क्या जन्य-जनक राग-व्यवस्था है ?

महाराज—नहीं, केवल ऐसी व्यवस्था नहीं है।

मैं—तो फिर कैसी व्यवस्था है ? उसमें कुछ मुख्य राग तो माने ही गए होंगे न ?

महाराज—महादेव के पाँचों मुखों से पाँच राग उत्पन्न हुए, वे पाँच 'ग्रामराग' हुए। 'शिव-संगीत' ग्रंथ योगशास्त्र पर है और इस शास्त्र को जाननेवाले को ही उसमें संगीत-संबंधी जानकारी मिल सकती है। अन्य व्यक्तियों को इसमें कुछ पता नहीं लग सकता।

मैं—चलिए, मेरा वह परिश्रम बच जाएगा; क्योंकि मुझे यह जानकारी आपकी ओर से विस्तृत रूप से मिल जाएगी। मुझे योगशास्त्र नहीं आता, और अब इस अवस्था में वह शास्त्र सीखना कष्टसाध्य ही कहना चाहिए। आप 'शिव-संगीत' ग्रंथ मुझे दिखाएँगे, तो दो-चार दिन उसपर परिश्रम कर देखूँगा। जहाँ कठिनाई होगी, वहाँ आपसे पूछ लूँगा। आपने 'रत्नाकर' तो देखा ही होगा ?

महाराज—निस्सन्देह। 'रत्नाकर' में शार्ङ्गदेव ने अनेक गलतियाँ की हैं।

मैं—शार्ङ्गदेव का शुद्ध स्वर-ठाठ कौन-सा होगा ?

महाराज—यह प्रश्न तुमने बड़ा 'विकट' पूछा है। यह कुन्जी मैं किसी को नहीं बताता, परंतु तुम्हारा उत्साह देखकर यह बात तुम्हें बताने की मुझे प्रेरणा हो रही है। यह जानकारी किसी दूसरे को हरगिज न बताना। 'रत्नाकर' का शुद्ध ठाठ 'काफी' है।

मैं—अर्थात् उसमें रे, ध तीव्र और ग, नि कोमल होंगे ?

महाराज—स्पष्ट ही है। उसका 'षड्ज-ग्राम' समझ लो। यह षाड्जी जाति भी है।

मैं—षाड्जी जाति को धैवत की मूर्च्छना बताया है। भला इसमें क्या खूबी होगी ? प्रथम मूर्च्छना हुई या जाति ? इनका सम्बन्ध मुझे बता दीजिए !

महाराज—शार्ङ्गदेव ने जाति और मूर्च्छना का सारा विषय गड़बड़ कर लिख मारा है। उसके लिखने से ज्ञात होता है कि उसे प्राचीन शास्त्र अच्छी तरह समझ में नहीं आए थे। यह मेरा मत है।

मैं—महाराज पहले आपने पाँच ग्रामराग बताए, इसके पश्चात् ?

महाराज—इसके पश्चात् प्रत्येक राग की पाँच-पाँच रागिनी हैं। शार्ङ्गदेव का ग्राम-राग-प्रपंच यथार्थ नहीं है। उसने न जाने कहाँ से कुछ बातें उद्धृत कर दी हैं।

मैं—'शिव-संगीत' में रागवर्गीकरण किन-किन तत्त्वों पर हुआ है ?

महाराज—उसमें स्वरों के तीन प्रकार माने गए हैं। १. तीव्र, २. कोमल और ३. समान; इन्हीं पर राग-वर्गीकरण किया गया है। जिस राग में सभी स्वर तीव्र अथवा कोमल हों, उसे 'शुद्ध' राग कहा गया है। जिस राग में कुछ तीव्र और कुछ कोमल ऐसे मिश्रित स्वर आते हों, उसे 'विकृत' राग माना गया है। भैरवी, कल्याण, हिंदोल, मालकंस, ये सब शुद्ध राग हैं। शार्ङ्गदेव इन रागों के अलग ही नाम देता है। उसका भैरव, वह अपना 'मालकंस'; उसका हिंदोल, वह अपना विहाग; यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए। प्रत्येक स्वर के दो भाग अर्थात् अर्धान्तर हो जाते हैं। भैरवी को कल्याण की अर्द्धांगी (भार्या या रागिनी) शास्त्रों में इसी लिए बताई है। कल्याण में पूर्ण स्वर हैं और भैरवी में अर्द्धस्वर हैं। परंतु पहले 'स्वर' शब्द का अर्थ देखो—'स्वतो रंजयतीति स्वरः' मैं तो पाणिनि का अर्थ ही स्वीकार करूँगा। आजकल देखते हैं कि व्यञ्जनों को भी स्वर कहा जाता है। स रि ग म प ध नि, ये सभी व्यञ्जन हैं, स्वर नहीं हैं। यह रहस्य किसी के ध्यान में नहीं आया है।

मैं—परंतु क्या शार्ङ्गदेव भी इन्हें स्वर नहीं कहता है?

महाराज—अजी, मैं तुम्हारे शार्ङ्गदेव को जानता हूँ। वह काश्मीर का एक ब्राह्मण था। दक्षिण की ओर जाकर इधर-उधर से एकत्र करके उसने अपना 'रत्नाकर' खड़ा कर दिया। क्या उसे वास्तविक संगीत आता था? उसकी अनर्गल व्याख्या और चाहे जैसे असम्बन्धित वर्णनों को देखकर प्रत्येक समझ लेगा कि उसे अधिक बोध नहीं था।

मैं—महाराज! यह कथन आपके-जैसे महान् विद्वानों को शोभा देगा, परंतु यदि मैं भी इसी प्रकार कहने लगूँ, तो मेरी गणना पागलों में होने लगे। प्रथम तो मुझमें वैसा कहने का साहस ही नहीं हो सकता। हमारी ओर तो इस समय शार्ङ्गदेव एक देवता के रूप में पूज्य हो गया है।

महाराज—अजी! ऐसी क्या बात है? व्याकरण के अ, आ, इ, ई, आदि स्वर क्या तुम नहीं जानते? तब क्या स, रे, ग, म ये व्यंजन नहीं हो सकते?

मैं—अहा हा! आपका कथन अब मेरी समझ में आ गया। अच्छा महाराज, क्या आप मुझे समझा दीजिएगा कि संगीत में ग्रामों की आवश्यकता कहाँ और कैसे हो जाती है?

महाराज—'ग्राम' शब्द गाँववाचक है। 'स्वराणां समूहो ग्रामः' स्वरों का समूह ही ग्राम है अतः 'सा रे ग म प ध नि' यह समूह 'ग्राम' हो गया।

मैं—इसका क्या उपयोग है? ये तीन ही क्यों माने गए? क्या इन्हें आप ठाठ समझते हैं?

महाराज—यह बात शार्ङ्गदेव समझ ही न पाया। यहाँ भी उसने कहीं से कुछ-न-कुछ अनर्गल बातें नकल करली हैं। मेरे मत से प्रत्येक स्वर 'ग्राम' हो सकेगा।

मैं—किंतु ग्राम की पहले आवश्यकता ही क्यों हुई? इसके बिना हमें क्या रुकावट होती है?

महाराज—'यथा कुटुम्बिनः सर्वे एकीभूता वसंति हि ।', इस प्रकार शास्त्र में कहा गया है और वह स्पष्ट है ।

मैं—मुझे यह बात समझनी है कि ग्राम मूर्च्छना का आधार किस प्रकार हो जाता है। ग्राम शब्द का अर्थ इस दृष्टिकोण से किए जाने पर मुझे अपने-आप ही समझ में आ जाएगा। मूर्च्छना की व्याख्या 'क्रमात्स्वराणां सप्तानां' इत्यादि मैंने पढ़ी है ।

महाराज--यह व्याख्या बिलकुल 'गलत' (अशुद्ध) है। 'मूर्च्छा' आना, अर्थात 'गिर पड़ना' (नीचे गिरना) यह अर्थ प्रत्येक के ध्यान में आ जाने-योग्य है। मूर्च्छना का अर्थ स्वरों को 'मूर्च्छित करना' इतना ही होगा। इसे न कहते हुए 'सप्त स्वरों का आरोह-अवरोह यानी मूर्च्छना ।' मैं कहूँगा कि ऐसा कथन शार्ङ्गदेव का घोर अज्ञान है। वह था वैदिक ब्राह्मण, उसे दक्षिण के ग्रंथों ने संदेह में डाल दिया। यदि वह केवल उत्तर की पद्धति को पकड़े रहता, तो ऐसी गड़बड़ में नहीं पड़ता। उसने दक्षिण की अनेक बातें बिना समझे-बूझे व्यर्थ ही 'रत्नाकर' में सम्मिलित कर दी हैं।

मैं—कुछ न समझते हुए भी उसने इतना प्रचंड ग्रंथ लिख दिया, यह बात सचमुच आश्चर्य करने-योग्य है। अच्छा, अभी पहले बोलते-बोलते आप नारद-संहिता, भृगु-संहिता, बाल्मीकि-संहिता—ये नाम बोल गए। क्या सचमुच इन ग्रंथों का आज के हिंदुस्तानी संगीत से कुछ साम्य हो जाता है ?

महाराज—भला, यह संगति कैसी होगी! इस समय सम्पूर्ण 'मनमौजी' (स्वेच्छानुसार) संगीत चल गया है। इसका मेल किसी भी शास्त्र से नहीं हो सकता। मैं तो कहूँगा कि यह स्थिति मुसलमान गायकों के कारण ही हमारे संगीत की हुई है। फिर भी यह बात नहीं कि योग्य शोधक को प्राचीन शास्त्र बिलकुल ही प्राप्त न हो सकें। उसे 'रत्नाकर' के पूर्ववर्ती ग्रंथ अवश्य देखने पड़ेंगे। शार्ङ्गदेव को मैं पुराने पंडितों में बिलकुल नहीं मानता।

मैं—शार्ङ्गदेव के बारह स्वर वे ही हैं न, जिन्हें हम बाजे (हारमोनियम) पर बजाते हैं ?

महाराज—हाँ, वे ही। दूसरे कहाँ के हो सकते हैं!

मैं—महाराज ! मूर्च्छना का एकाध उदाहरण भी यदि आप बता दें, तो वह मेरे ध्यान में शीघ्र बैठ जाएगा। यह सम्पूर्ण विषय नाद का है, इसलिए आपसे कह रहा हूँ।

महाराज—सुनो ! दरबारीकानड़ा में गांधार, धैवत स्वर मूर्च्छित हैं। अब देखो शार्ङ्गदेव क्या कहता है—"ऐसा स्वर-समूह, जिसमें वर्ण और अलंकार हैं, मूर्च्छना कहा जाता है।" अजी ! आरोह और अवरोह हो गए, तो क्या तान नहीं हो जाएगी ?

मैं—आपका कथन मैं समझ गया। भला, ग्राम दो ही क्यों हैं? इस प्रश्न पर कल्लिनाथ कहता है :—

ननु समूहित्वाविशेषेण समानामपि स्वराणां ग्रामव्यपदेशकत्वसंभवे कथं धरातले द्वौ ? उच्यते, शुद्धविकृतरूपेण द्विविधस्वरप्रयोगवशात्। 'द्वौ

ग्रामौ विश्रुतौ लोके षड्जमध्यमसंज्ञकौ' इति मुनिवचनात्। शुद्धाश्रयत्वात्षड्ज-ग्राम आदिमो विकृताश्रयत्वाद्द्वितीयो मध्यमग्राम इति उपपद्यते।

क्या उसके इस कथन में आपको कोई गूढ़ार्थ दिखाई पड़ता है? क्या कल्लिनाथ की समझ में प्राचीन ग्रामों का रहस्य आ गया होगा?

महाराज—कुछ नहीं! मेरा मत है कि ये लोग इन बातों को कुछ समझे ही नहीं।

मैं—अपने गायक आज अति कोमल, तीव्रतर आदि सूक्ष्म स्वर मानते हैं। क्या आप भी इसी प्रकार मानते हैं?

महाराज—निस्सन्देह! मुझे यह व्यवहार अस्वीकार नहीं।

मैं—परन्तु आपके मत का शास्त्रीय आधार कौन-सा है?

महाराज—प्रथम तो कोमल और तीव्र नाम ही अयोग्य हैं। 'विकृत' नाम ही योग्य है। 'च्युत खरज', 'अच्युत खरज' ऐसे नाम शास्त्रोक्त हैं। 'साधारण खरज' अर्थात् निषाद समझा जाए। यह खंड बहुत ही गहन है। एकदम समझ में नहीं आएगा।

मैं—हाँ, बड़ी अच्छी याद आई। ग्रंथों में 'साधारण प्रकरण' किसलिए डाला जाता है?

महाराज—उसमें बड़ी विशेषता है। षड्ज स्वर साधारण ऋषभ है। तीव्र म, पंचम की विकृति है। ये बातें मैं पहले ही कह चुका हूँ न, वे तुम्हारे ध्यान में एकदम नहीं आएँगी।

मैं—अच्छा! मूर्च्छना चार प्रकार की क्यों मानी हैं; जैसे—सांतरा, सकाकली आदि?

महाराज—यह भाग भी शार्ङ्गदेव की समझ में आया हुआ नहीं दिखाई पड़ता। उसने तो नवीन-प्राचीन बातों का 'गोलमाल' (मिश्रण) करके रख दिया है। कभी-कभी मुझे उसपर बहुत क्रोध आ जाता है।

मैं—महाराज! संगीत की 'जाति' के विषय में आपका क्या मत है? क्या उसका इस समय कुछ उपयोग हो सकेगा? शार्ङ्गदेव के समय 'जाति' का कुछ उपयोग होता था? यदि होता था, तो कौन-सा?

महाराज—मैं तो कहूँगा कि 'जाति' का अर्थ सारे ग्राम ही हैं। षाड्जी, आर्षभी आदि सात ग्राम ही मैं मानूँगा।

मैं—आपने 'संगीत-दर्पण' देखा ही होगा। क्या उसके राग आज हम गाते हैं?

महाराज—निस्सन्देह, गाते हैं।

मैं—क्या अपने राग-रूप उसमें वर्णित लक्षणों के अनुसार ही हैं?

महाराज—नहीं, रागलक्षण हम वैसे नहीं रखते। रागों के नाम वे ही हैं।

मैं—तो फिर हम भी 'मनमौजी' संगीत ही गानेवाले हुए। आपके कथन का भाव इस प्रकार दिखाई पड़ता है कि जो ग्रंथ उपलब्ध हैं, वे अशुद्ध व निरुपयोगी हैं, और जो ग्रंथ शुद्ध और उपयोगी हैं, वे मिलते नहीं हैं।

महाराज—क्यों ? कोई 'सामवेद' तक खोज करे, तो पता लगेगा। शोधक चाहिए !

मैं—किस प्रकार की खोज की जानी चाहिए ? किन-किन ग्रंथों की अथवा किस संगीत की ?

महाराज—मेरी बताई हुई भिन्न-भिन्न संहिताओं की शोध होनी चाहिए। इनके लेखक ऋषि बड़े-बड़े आचार्य हो गए हैं। दर्पणकार तो बेचारा बिलकुल अनाड़ी था। वह स्वयं स्वीकार करता है 'न रागाणां न तालानामंतः कुत्रापि वर्तते' फिर क्या कहा जाए ?

मैं—महाराज ! अपने संगीत की श्रुतियों के संबंध का मेरा भ्रम क्या आप दूर कर सकेंगे ? इनमें क्या रहस्य है ? इन्हें किस प्रकार प्राप्त किया जाए, नाप कैसी की जाए, और उपयोग कहाँ पर, क्यों, और कैसे किया जाए ? इस बात का स्पष्टीकरण कोई भी अच्छी तरह नहीं करता है। किसी से यदि पूछा जाए, तो व्यर्थ की गप्पें लगा दिया करते हैं। प्रथम स्वर या प्रथम श्रुति ?

महाराज—इसे अब अच्छी तरह समझ लो। एक बात अच्छी तरह से ध्यान में जमा लो कि स्वर कोमल अथवा तीव्र होने से बिलकुल भी ऊँचा या नीचा नहीं होता। कोमल करने के लिए उसका उच्चार अवश्य धीमे रूप में किया जाता है, तीव्र अर्थात् तेज, बड़े रूप में उच्चारित हो, इतना ही समझ लेना चाहिए। यही इन शब्दों का वास्तविक अर्थ है।

मैं—आपका यह कथन मैं नहीं समझा। जरा ठहरिए, आप कल्पना करें कि मेरी उँगली सितार के सातवें परदे 'षड्ज' पर है। अब दाहिने हाथ से मैं धीरे अथवा जोर से तार पर आघात करने लगा, तो क्या खटा-खट भिन्न-भिन्न श्रुतियाँ बनने लगेंगी ? परदा नहीं बदला जाए, मीड़ आदि नहीं ली जाए, केवल आघात छोटा-बड़ा किया जाए। तो फिर षड्ज की चार श्रुतियों के भिन्न-भिन्न जोर के चार आघात लगेंगे। यही बात है न ? यह कल्पना मेरे लिए बहुत ही नवीन है।

महाराज—तुम ठीक-ठीक समझ गए। इसी तरह ऋषभ आदि स्वरों को भी समझ लो। सितार पर जो विकृत भिन्न-भिन्न परदे होते हैं, वे श्रुति नहीं होते। तुम जहाँ भिन्न-भिन्न श्रुतियों के भिन्न-भिन्न नाद मानने लगे कि फँसे। तीव्रा, कुमुद्वती, मंदा, इन शब्दों की ओर देखो। आवाज कर्कश हुई कि 'तीव्रा' हुई। धीमी और मधुर आवाज हुई कि 'मंदा' हुई। इसी प्रकार आयता, करुणा आदि श्रुतियाँ 'सार्थ' समझ लेनी चाहिए। यह बहुत सूक्ष्म बात है, मैं इसे किसी को नहीं बताता।

मैं—महाराज ! मुझे तो ऐसा खयाल होता है कि आयता, करुणा आदि श्रुतियों की जाति हैं। इनके तो पुनः स्वतन्त्र ही नाम हैं।

महाराज—यह सारा भाग वही हैं। 'श्रुति' शब्द का अर्थ ठीक न समझ पाने के कारण अनेक लोग गड़बड़ी में पड़ जाते हैं। तुम्हारी भी ऐसी ही स्थिति देखकर मुझे बिलकुल आश्चर्य नहीं हो रहा है।

मैं—'जाति' के सम्बन्ध में पुनः एक बार पूछ रहा हूँ। आपने पहले सब जातियों के सम्बन्ध में बताया। 'रत्नाकर' में जाति का उपयोग रागों में किया हुआ दिखाई पड़ता है। शार्ङ्गदेव ने अठारह जाति बताई हैं और उन्हें दो ग्रामों में विभाजित कर दिया है। रागों में जाति क्या कार्य करती है, यही मैं आपसे समझना चाहता हूँ। यह जानकारी आप-जैसे व्यक्तियों से थोड़ी-बहुत प्राप्त होना संभव है। अनाड़ी और अशिक्षित गायकों के पास तो 'वालिद' का आधार और गाली, कदाचित् यही शास्त्र है। परन्तु मेरे-जैसों के लिए इसका क्या उपयोग हो सकेगा? आप संस्कृत-ग्रन्थों के अध्येता प्रतीत होते हैं और आप ग्रन्थकार भी हैं, यह भी मैं सुनता हूँ। 'शुद्धसाधारित' राग 'षड्जमध्यमया सृष्टः' बताया गया है। आप मुझे प्रत्यक्ष उदाहरण से बता दीजिए कि यह कौनसी जाति है और इसके स्वर कौनसे हैं। फिर मुझे शंका उत्पन्न नहीं हो सकेगी।

महाराज—अच्छा सुनाता हूँ। 'षड्जमध्यमया सृष्टः' इस प्रकार जो कहा गया है, तो यहाँ धैवत कोमल होगा।

मैं—कोमल का अर्थ आपके पहले बताए हुए अर्थ से ही समझना है न? भैरव में हम कोमल ध ग्रहण करते हैं, ऐसा अर्थ तो नहीं लेना है न?

महाराज—मालूम होता है, तुम मुझे 'रत्नाकर' के रागों के ठाठों की व्याख्या करने के लिए कह रहे हो। तो ठहरो; प्रथम तो 'षड्जमध्यमा' यह विकृत जाति है, शुद्ध नहीं है। शार्ङ्गदेव का 'जाति' नाम ही अनुचित है। यहाँ 'जातित्व' कहाँ है? 'समान धर्म' कहाँ है? मैं उसे एक क्षण में कुण्ठित कर सकता हूँ।

मैं—महाराज! इतनी गहरी चर्चा में भाग लेने का मुझे अधिकार ही क्या है? मैं तो आपका साधारण विद्यार्थी हूँ। हमारे महाराष्ट्र के पाठक आपकी-जितनी सूक्ष्म दृष्टि भी नहीं रखते। 'रत्नाकर' के राग कौनसे स्वरों से व कैसे गाने चाहिए, इतना ही वे समझ जाएँ, तो संतुष्ट हो जाएँगे, ऐसा मुझे विश्वास है। साथ ही यह बात भी नहीं है कि इस 'जाति' शब्द का प्रयोग केवल शार्ङ्गदेव ने ही किया हो। ये ही अठारह जाति भरत की भी हैं और दोनों का वर्णन भी बहुत ही निकट है। आप तो उस राग को ही अभी समझा दें।

महाराज—ठीक है। 'चतुश्चतुश्चतुश्चैव षड्जमध्यमपंचमाः' यह शुद्ध स्वर-व्यवस्था तो तुम्हें ज्ञात ही होगी? यह सब तो अपने संगीत की जड़ ही है।

मैं—जी हाँ, आगे?

महाराज—यह मध्यमा जाति है, तब मध्यम का 'सा' हुआ और पंचम का ऋषभ हुआ। तीसरा स्वर कोमल धैवत हुआ, क्योंकि ऋषभ के आगे गांधार दो श्रुतियों पर है, ठीक है न?

मैं—यह मैं अच्छी तरह समझ नहीं पाया। मध्यमा जाति के स्वर 'काफी' के हैं, क्या आप ऐसा कह रहे हैं? परन्तु यह जाति 'षड्जमध्यमा' है, केवल 'मध्यमा' नहीं है।

महाराज—हाँ, हाँ, इसी लिए मैंने कहा कि 'षाड्जी' का स्वरांतर 'मध्यमा' से लगाया जाएगा और वह 'षाड्जी चतुश्चतुश्चतुश्चैव' इत्यादि है। इस प्रमाण से मध्यम को षड्ज मानकर चलने पर मेरे बताए हुए स्वर हो जाएँगे।

मैं—यह सब मेरे लिए नवीन होने के कारण समझने में थोड़ा विलम्ब हो जाए तो कृपा कर आप रुष्ट न होइएगा। सौभाग्य से यह तो 'षड्ज-मध्यमा' नामक जाति है; परन्तु आंध्री, नन्दयंती, कार्मारवी, इस प्रकार के जो नाम हैं, वहाँ बहुत कठिनाई होगी। उदाहरणार्थ 'कैशिकी' जाति देखिए। इसके सम्बन्ध में सिंहभूपाल कहता है—'षाड्जीगांधारीमध्यमापांचमीनैषादीभ्य: जायते सा कैशिकी' इस जाति का ठाठ और नियम यदि हम प्राप्त करना चाहें, तो क्या करना पड़ेगा? शुष्क वर्णन-मात्र पढ़कर हृदय निराश-सा हो जाता है।

महाराज—क्या तुम्हें संस्कृत आती है?

मैं—जी हाँ, 'रत्नाकर' आदि ग्रन्थ मैंने शास्त्रियों की मदद से पढ़ रखे हैं। शास्त्री लोगों को प्रत्यक्ष संगीत नहीं आता, अतः उनसे भी जाति-प्रकरण की स्पष्टता ठीक प्रकार में नहीं हो सकी। इसमें तो संस्कृत भाषा और प्रत्यक्ष संगीत जाननेवालों की मदद ही उपयोगी हो सकती है।

महाराज—तुम्हारा यह कथन उचित है। इसमें शास्त्री क्या अपना सिर बताएगा? इसमें तो वही सच्चा विद्वान् कहा जाएगा, जो समझा दे कि यह ग्रंथवाक्य, यह उसका अर्थ और ये स्वर हैं।

मैं—यह तो आपने बिलकुल मेरे मन की बात कह दी। इसी प्रकार की जानकारी मुझे चाहिए। यह ग्राम, यह मूर्च्छना, यह जाति, यह ठाठ और यह राग, इस प्रकार एक बार स्पष्टीकरण हो जाए, तो फिर हृदय में किसी प्रकार का संदेह नहीं रहता। इसी तरह का स्पष्टीकरण मैं चाहता हूँ। ठीक है, परन्तु 'रत्नाकर' में वर्णन की हुई जातियाँ क्या सचमुच आपके शिवसंगीत में भी हैं।

महाराज—कुछ हैं, कुछ शार्ङ्गदेव ने अपने पास से मिला दी हैं।

मैं—उसने नहीं मिलाई होंगी, क्योंकि वे ही भरत ने भी बताई हैं। यह कहा जाता है कि भरत उसके पाँचसौ वर्ष पूर्व हो गया है। अस्तु, शुद्ध जाति का क्या अर्थ है?

महाराज—यह भी एक बड़ा भारी संगीत-रहस्य है। यह भी मैं किसी को नहीं बताता। तुम योग्य दिखाई पड़ते हो, अतः यह तुम्हें बताने की मुझे प्रेरणा होती है।

मैं—मैं आपका आभारी हूँ। आपसे प्राप्त जानकारी का मैं अवश्य उपयोग करूँगा।

महाराज—शुद्ध जाति के स्वर अर्थात् तुम्हारा 'काफी' ठाठ है, यही समझो। इसी मान्यता से सभी जाति हल कर ली जाती हैं। आर्षभी जाति कहने पर ऋषभ से काफी का ठाठ आरम्भ किया जावे। आर्षभी का ठाठ निकालने के लिए षाड्जी का ठाठ लेकर उसमें ऋषभ को षड्जत्व दिया जावे और आगे चला जावे।

मैं—क्या यह कुन्जी शिवसंगीत में है?

महाराज—हाँ, मेरा संपूर्ण आधार वही है। वही प्रामाणिक ग्रंथ है। मैं 'रत्नाकर' को दक्षिण-पद्धति का ग्रंथ समझता हूँ। यह ग्रंथ उत्तर-पद्धति के लिए अधिक उपयोगी नहीं है।

मैं—महाराज! मेरे-जैसे अपरिचित व्यक्ति पर आप इतनी कृपा कर रहे हैं, इसलिए मैं आपका बहुत कृतज्ञ हूँ। अब आप इस आर्षभी का ठाठ एक बार लेकर मुझे प्रत्यक्ष सिद्ध कर दिखा दीजिए तो शंका नहीं रहेगी।

महाराज—ठीक है, काफी का ठाठ ऋषभ से ऋषभ तक कायम करो, आर्षभी की दृष्टि से तो यह 'शुद्ध' ही है। ठीक है न? षाड्जी की दृष्टि से यह अवश्य विकृत है। अथवा 'शुद्धार्षभी' को 'विकृत-षाड्जी' थोड़ी देर के लिए समझ लो। आता है कुछ ध्यान में?

मैं—ज़रा ठहरिए! एक मुख्य प्रश्न वैसा ही रह गया। यदि किसी ने यह प्रश्न किया कि मूल षाड्जी का ठाठ काफी कैसे हुआ, तो फिर? यह बात भी आपसे पूछ लेना अच्छा है।

महाराज—'चतुश्चतुश्चतुश्चैव'........श्लोक से यही ठाठ होगा।

मैं—आपकी श्रुति की व्याख्या निराली थी, इसलिए मुझे सन्देह हुआ था। अस्तु, यदि यही श्लोक आधारभूत हो, तो फिर यह प्रश्न ही नहीं उठता। एक दूसरी बात पूछता हूँ। षाड्जी जाति को धैवत की मूर्च्छना बताने में भला क्या अर्थ होगा? मंद्र-धैवत पर षड्जत्व खींचकर क्यों व कैसे रखा जाएगा? इसका सम्बन्ध किससे होगा? इसे आप कैसा समझते हैं?

महाराज—मैं तो इसे शार्ङ्गदेव की अज्ञानता समझता हूँ। यह उसने कहीं से उद्धृत किया होगा।

मैं—कोई हर्ज नहीं, हम इस बात को ही छोड़ दें। आप मुझे अपने तरीके से ही इस समय एक-दो जाति के ठाठ समझा दीजिए, इतना ही पर्याप्त होगा।

महाराज—जाति किस प्रकार हल की जाए, यह मैं पहले ही समझा चुका हूँ उसी प्रकार से चलने पर हो जाएगा।

मैं—महाराज! मैं सत्य एवं स्पष्ट कहता हूँ कि थोड़े-से समझाने या संकेत-मात्र से स्वयमेव मार्ग खोज निकालने-योग्य तीक्ष्ण बुद्धि ईश्वर ने मुझे प्रदान नहीं की। आप ही यदि वे सभी स्पष्ट रूप से समझा दें, तो अच्छा होगा। कष्ट तो आपको सचमुच होगा, परन्तु मेरा सदैव के लिए भला हो जाएगा।

महाराज—ठीक है। तो इस पुस्तक (पोथी) में यह सभी विषय मैंने स्पष्ट लिख रखा है। तुम चाहो तो वह उद्धृत कर लो।

प्रश्न—वह पुस्तक किस प्रकार की थी ?

उत्तर—'रत्नाकर' में वर्णित जातियों व ग्रामरागों का स्पष्टीकरण उन्होंने लिखा था। उनके मनमें अपने ग्रंथ को प्रकाशित करने की अभिलाषा थी, परन्तु अब उनका स्वर्गवास हो जाने के कारण शायद तुम्हें वह पुस्तक दिखाई नहीं पड़ सकेगी। उस पुस्तक के एक-दो उद्धरण मैंने ले रखे हैं। वे ये हैं; देखो :—

शुद्धार्षभी जाति

शुद्धार्षभी जातिमों अनुवादी ये चार।
रिखब षड्ज यहाँ होत है रिखब तीव्र गंधार॥
पुनि कोमल गंधार है जुगश्रुति मध्यम सार।
पंचम सो मध्यम भयो धैवत पंचम रूप।
त्यौं निषाद धैवत भई संज्ञा तीव्र अनूप॥
जुगश्रुतिनको सा यहाँ भयो है निषाद।
शुद्धार्षभी जातिमों गावत मिटे विवाद॥

सा—रे + ग—म—प—ध + नि—सा—रे
सा—रे + ग—म—प—ध + नि—सा

शुद्धसाधारित राग

शुद्धसाधारित राग षड्ज ग्राम को है। षड्जमध्यमा स्वरजाती सें उत्पन्न है। तार-षड्ज है ग्रह अंश जामें। द्विश्रुति निषाद गांधार थोड़े लगते हैं। मध्यम समाप्ति कर न्यास है। षड्जस्वर आदि में है, ऐसी उत्तरमंद्रा मूर्च्छना है। सातों स्वरों का राग है। अवरोही प्रसन्नांत संज्ञक वर्णालंकार सें भूषित है। सूर्य देवता है। वीर रौद्र रस है। दिवस के प्रथम प्रहर में प्रयोग है। इस राग में तीव्र ऋषभ, कोमल गंधार, कोमल मध्यम, शुद्ध पंचम, तीव्र धैवत, कोमल निषाद ये स्वर लगते हैं। देव कुल, ब्राह्मण जाति, रक्त वर्ण, जंबु द्वीप, अग्नि ऋषि इ० इ० यह राग अनेक दोषों से मुक्त करता है। गानैश्रवणसें मंगल होता है।

उसने 'रत्नाकर' की मुख्य सात जातियों के ठाठ अपनी पोथी में इस तरह लिख रखे थे :—

षाड्जी····सा रे ग म प ध नि। आर्षभी····सा रे ग म प ध नि।
गांधारी····सा रे ग म मं प ध नि। मध्यमा····सा रे ग म प ध नि।
पंचमी····सा रे ग म प ध नि। धैवती····सा रे ग म प ध नि।
नैषादी····सा रे ग म प ध नि।

हम उसके इन ठाठों के औचित्य-अनौचित्य का विचार नहीं करनेवाले हैं। उसकी पोथी देखकर मैं भी प्रथम दर्शन में कुछ प्रभावित हुआ था, परन्तु कहते हैं न कि 'अधिक परिचय से अधिक ज्ञान होता जाता है।' इसी के अनुसार दो-तीन दिन उनसे चर्चा करने का समय मिल जाने से मुझे सहज में यह दिखाई देने लगा कि इन सज्जन को 'रत्नाकर' का जाति-प्रकरण और ग्राम-राग-प्रपंच समझ में नहीं आ सका है। इन्होंने मुझे 'सामवेद' के मंत्र भी गाकर दिखाए। वे इन्होंने खमाज राग के स्वरों में गाए और उनमें टप्पे-जैसी सैकड़ों तानें लगाईं। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ, तब उन्होंने कहा—'शिव-संगीत में स्वयं महादेव ने मार्ग और देशी, इस तरह दोनों भेद बताए हैं।' जबकि वे सज्जन अब जीवित नहीं हैं, तब उनकी चर्चा अब हम यहीं समाप्त करेंगे। शिव-मत का मुख्य ग्रन्थ कौनसा है और उसमें क्या है, इसी मुद्दे पर से हम इस चर्चा में पड़ गए थे, ठीक है न? मैं तुम्हें बीच-बीच में अपने अनुभव की बातें सुनाता जा रहा हूँ, इनसे तुम्हारा मनोरंजन भी होगा और कभी उनका उपयोग भी हो सकेगा। और कुछ नहीं, तो इन बातों से तुम अधिक सावधान अवश्य हो जाओगे। अस्तु,

किसी का मत है कि ग्रन्थों में जिसे सोमेश्वर-मत बताया गया है, उसे ही शिवमत समझना चाहिए। कोई कहते हैं कि 'संगीत-दर्पण' में 'के रागाः काश्चरागिण्यः' इस पार्वती के प्रश्न का उत्तर देते हुए महादेवजी ने जो राग-कुटुम्ब बताया है, वह सम्पूर्ण वर्णन 'शिवमत' शीर्षक के अंतर्गत माना जाएगा। इस विधान पर आक्षेप करनेवाले कहते हैं कि यदि ऐसा ही है, तो फिर भैरव के आगे ही 'शिवमत' का उपपद क्यों लगाया जाता है? मैं समझता हूँ कि शिवमत शब्द के इतिहास में अधिक गहरे जाने से हमें विशेष लाभ नहीं होनेवाला है।

प्रश्न—जबकि संस्कृत-ग्रन्थकारों ने इस सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा, तब हमें व्यर्थ तर्क करने का श्रम क्यों करना चाहिए?

उत्तर—तुमने बिलकुल ठीक कहा, यही मैं भी कहनेवाला था। यह तुम सहज में समझ जाओगे कि शिवमत-भैरव भी भैरव का एक प्रकार है, अतः यह राग प्रातर्गेय है। एक पंडित ने मुझे यह भी सुझाया था कि संस्कृत-ग्रन्थों के शुद्ध भैरव को ही आगे चलकर गायक 'शिवमत भैरव' कहने लगे होंगे। ग्रंथोक्त शुद्ध भैरव में गांधार व निषाद कोमल हैं और अपने 'शिवमत भैरव' में दोनों ग और नि लगते हैं, यह बात भी विचारणीय है। 'नाद-विनोद' ग्रंथ में शिवमत भैरव, भैरवी ठाठ में बताया गया है। मेरे गुरु ने मुझे दोनों ग, नि लगाकर यह राग गाना सिखाया है। इस प्रकार करने पर इस राग में भैरव-अंग अच्छी तरह दिखाया जा सकता है। भैरवी ठाठवाले स्वरूप में भैरव-अंग बिलकुल नहीं दिखाई पड़ेगा। मुझे स्मरण है कि एक बार एक गायक ने शिवमत भैरव मेरे सम्मुख भैरव ठाठ में रे, प वर्ज्य करते हुए गाया था।

प्रश्न—वह उसने किस प्रकार गाया था?

उत्तर—उसकी चीज की स्थायी के स्वर इस प्रकार थे, देखो :—

×						
सा	ध़।ध़	नि़	सा।ध़	ध़।नि़	सा	सा
सा	ग।म	ध॒	नि।ध॒	म।ग	ग	सा
नि़	ध़।ध़	नि़	ध़।सा	म।ग	म	ध॒
नि	सां।नि	ध॒	म।ग	म।ध़	नि़	सा

प्रश्न—इस राग-स्वरूप को गाने में बहुत प्रयास अपेक्षित होगा, क्यों ठीक है न ?

उत्तर—तुमने ठीक कहा। यह हुआ ही ! किसी पंडित ने यह रूप उस गायक को बता दिया होगा। वह गायक वृद्ध और अनुभवी था। उसने यह राग 'शास्तर का भैरों' कहकर सुनाया था। मगर इसमें उसे 'फिरत' करना नहीं आया।

प्रश्न—न जाने किसने उसके गले से यह संकट क्यों बांध दिया ?

उत्तर—इन गायकों को नए-नए राग-स्वरूप अपने संग्रह में रखने की सदैव उत्कट लालसा रहती है। अत: ये गायक भी किसी पंडित के पास संस्कृत-भैरव समझने-सीखने गए होंगे। उस पंडित ने 'संगीतदर्पण' में 'धैवतांशग्रहन्यासो रिपहीनत्वमागत:' देखकर और श्लोक के नीचे दी हुई मूर्च्छना 'ध नि सा ग म ध' देखकर यह रूप कर दिया होगा। इसे गाकर रंजक बनाने की जवाबदेही उसने गायक को सौंप दी होगी।

प्रश्न—परन्तु क्या यह नहीं दिखाई देता कि वह पंडित भैरव का ठाठ खुशो-खुशी आजकल का हिन्दुस्तानी समझकर ही आगे बढ़ गया है ?

उत्तर—यह तो स्पष्ट ही है ! ग्रंथों का ठाठ बिलावल माननेवाले असंख्य पंडित तुम्हें मिल जाएँगे। परन्तु उनको सिवाय 'पारिजात' के एक भी ग्रंथ समझा हुआ नहीं होगा। 'पारिजात' में कोमल और तीव्र संज्ञाएँ हैं, इसी लिए कोई-कोई राग उन्हें इच्छित रूप से मिल जाएँगे; तो भी यह खयाल उन्हें स्वप्न में भी नहीं आएगा कि 'पारिजात' का शुद्ध स्वरमेल कौनसा था ?

मेरा यह मत नहीं कि ग्रंथोक्त रूपों को प्रचार में लाना बुरी बात है। यह तो होना ही चाहिए, परन्तु यह कार्य योग्य एवं अधिकारी व्यक्तियों का है। कुछ ग्रंथोक्त राग इस समय प्रचलित होने लगे हैं और उन्हें लोकप्रियता भी प्राप्त हुई है। इस समय गायकों को भी अच्छी दिशा की ओर मोड़ने का उत्तम अवसर है। गायकों के कंठ उत्तम रूप से तैयार होते हैं और नवीन राग-स्वरूप सीखने की उन्हें उत्कंठा भी रहती है। यदि उन्हें उचित सहायता प्राप्त हो, तो वे थोड़े ही दिनों में पाँच-पचास बिलकुल नवीन राग-स्वरूप प्रचार में ला सकते हैं। इन स्वरूपों को उत्तम नियमों और शास्त्र का समर्थन प्राप्त होने पर समाज द्वारा भी आदर प्राप्त हो सकता है। तानसेन आदि गायकों के समाप्त होने से देश का संपूर्ण संगीत ही सदैव के लिए डूब गया, यह बात फिर कोई कैसे कह सकेगा और ऐसा कहना कैसे शोभनीय होगा ? हम गायकों को अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार नए-नए रागस्वरूप उत्पन्न करते हुए देखते हैं, परन्तु

उन्हें इन स्वरूपों को नाम देने और उनके नियम स्थिर करने की उलझन रहती है। उनके इन रूपों को जाँचकर उन्हें ग्रंथों से मिलाने का प्रयत्न यदि कोई व्यक्ति करे, तो वास्तव में संगीत की उन्नति होगी। पूर्वकथित उस गायक ने मेरी सहायता से भैरव के दो-तीन बिलकुल नए प्रकार तैयार करके गाए और वे मुझे भी पसंद आए। परंतु वे आज तुम्हें नहीं बता रहा हूँ, क्योंकि वे अभी तक प्रचार में नहीं आए। अस्तु, पुण्डरीक की 'रागमाला' में शुद्ध भैरव 'प्रथमगतिगनिः' होने के कारण वह अपने भैरवी ठाठ में ही जाएगा।

प्रश्न—क्या आप पुण्डरीक की वह दूसरी संपूर्ण नवीन राग-रचना हमें सुना रहे हैं ?

उत्तर—तुम चाहते हो, तो सुना देता हूँ; सुनो :—

शुद्धभैरवहिंदोलौ देशिकारस्ततःपरम्।
श्रीरागः शुद्धनाटश्च नट्टनारायणश्च षट्॥
रागा देवमथाख्यातास्तद्धेतुः कथ्यतेऽधुना।
सद्योजातोद्भवः शुद्धभैरवो वामदेवतः॥
हिंदोलो देशिकाराख्यस्त्वभूत्तत्पुरुषाह्वयात्।
श्रीरागः शुद्धनाटाख्योऽपीशानवदनोद्भवः॥
नटनारायणो रागो गिरिजामुखजस्ततः।
एतेषां वनिताः पुत्राः पंच पंच क्रमाद् ब्रुवे॥
धन्नासी भैरवी चैव सैंधवी मारवी तथा।
आसावरीति पंचैताः शुद्धभैरवसुभ्रुवः॥
भैरवः शुद्धललितः पंचमः परजस्तथा।
बंगालश्चेति पंचैते शुद्धभैरवसूनवः॥
भूपाली च वराटी च तोडी प्रथममंजरी।
तुरुष्कतोडिका चेति हिंदोलस्य हि नारिकाः॥
वसंतः शुद्धबंगालः श्यामः सामंतकस्तथा।
कामोदश्चेति पंचैते हिंदोलस्य सुता इमे॥
रामक्री बहुली देशी जयन्तश्रीश्च गुर्जरी।
देशिकारस्य पंचैता विख्याताश्च वरांगनाः॥
ललितश्च विभासश्च सारंगस्त्रिवणस्तथा।
कल्याण इति पंचैते देशिकारस्य सूनवः॥
गौडी पाडी गुणकरी नादरामक्रिया तथा।

गुंडक्री चाथ पंचैताः श्रीरागे हि समाश्रिताः ॥

टक्कश्च देवगांधारो मालवः शुद्धगौडकः ।
कर्णाटबंगाल इति श्रीरागस्य तनूद्भवाः ॥
मालवश्रीश्च देशाची देवक्री मधुमाधवी ।
आहीरी चेति विख्याताः शुद्धनाटवरस्त्रियः ॥
जिजावन्तश्च सालंगनाटः कर्णाटनाटकः ।
छायानाटो हमीरादिनाटो नाटस्यसूनवः ॥
वेलावली च कांभोजी सावेरी सुहवी तथा ।
सौराष्ट्री चेति पंचैता नटनरायणस्त्रियः ॥
मल्लारगौंडकेदारशंकराभरणास्ततः ।
बिहागडश्चेति सुता नटनारायणस्य च ॥
अथैषां लक्षणं वक्ष्ये मूर्त्याभरणपूर्वकम् ।
चन्द्रनेत्रादिकां संज्ञां जानातु लोकतः सुधीः ॥

यह 'रागमाला' ग्रंथ शीघ्र ही प्रकाशित होना सम्भव है, अतः इसके सम्बन्ध में अधिक नहीं बता रहा हूँ। भिन्न-भिन्न रागों का विचार करते समय इस ग्रंथ में लक्षणों पर भी विचार किया जाएगा। इस ग्रंथ की आवश्यक जानकारी मैं तुम्हें देता रहूँगा।

प्रश्न—तो अब यही समझ लेना चाहिए कि शुद्ध भैरव का आजकल प्रचार नहीं है?

उत्तर—वास्तव में यही कहा जाएगा। भैरवी ठाठ में रे, प-वर्जित स्वरूप मालकंस-जैसा दिखाई देगा। यह सत्य है कि इसमें वादी स्वर भिन्न रहेगा, परन्तु कुल मिलाकर राग-स्वरूप इसी प्रकार दिखाई देगा। पुण्डरीक 'अरिः' कहता है। यह स्वरूप कुछ भिन्न हो जाएगा। मैंने स्वयं जो शिवमतभैरव सीखा है, वह 'लक्ष्यसंगीत' में बताए हुए विवरण से मिल जाएगा, यह मैं पहले भी कह चुका हूँ। इस राग में दोनों गांधार व निषाद लेकर भैरव-अंग कायम रखने में सारी खूबी है। कोमल ग, नि स्वर अवरोह में प्रयुक्त होते हैं, इसलिए उन्हें उचित मात्रा में ही रखना बहुत कुशलतापूर्ण कार्य है। यह प्रातःकालीन राग है, अतः अवरोह की ओर विशेष ध्यान देना पड़ेगा। अवरोह में कोमल निषाद ग्रहण करने की स्वीकृति है, परन्तु 'सां, नि, ध, प' इस प्रकार स्वर कभी नहीं चल सकेंगे, क्योंकि इन्हें सावकाश रूप से गाने पर

आसावरी और जौनपुरी राग आगे आ जाएँगे और जलद (द्रुत) लय में गाने पर भैरवी आगे आ जाएगी।

प्रश्न—यह ठीक है, क्योंकि उस ठाठ का वह उत्तरांग हमें भी ज्ञात है। फिर क्या किया जाएगा?

उत्तर—यहाँ कोई युक्ति आवश्यक है, इसलिए गायक यहाँ पर 'नि, सा, धुनिप' इस प्रकार मार्ग निकाल लेते हैं। इसी तरह गांधार (कोमल) लगाते समय 'निसा, गुरेसा' इस प्रकार एक टुकड़ा अपने भैरव में गा दिया करते हैं। ये दोनों टुकड़े आ जाने पर अपने कानों पर कुछ भिन्न ही प्रभाव होता है। मैं इन्हें किस प्रकार लेता हूँ; यह देखो :—

'सा, ग, गमरे, ग, पमगमरे, सा, निसा, गुरेसा, निसा, धुनिप गगमरे, रेग, म, पमगरे, सा।'

इसमें ऋषभ का प्रसिद्ध आंदोलन और 'मगरेसा' यह भैरव की प्रमुख तान मैं कितनी सावधानी से सँभालता हूँ, यह देखते हो न?

प्रश्न—ऐसे रागों में गायक 'फिरत' किस प्रकार करते होंगे?

उत्तर—मिश्र रागों में प्राय: गायक मुख्य राग, की 'फिरत' ही करते हैं। इस राग में भैरव की 'फिरत' की जाती है। कहीं-कहीं 'सा, गुरेसा' और 'धुनिप' 'प, धुनिधुप' इस प्रकार टुकड़े सम्मिलित कर लेते हैं और तत्काल इन्हें छोड़कर पुन: भैरग-अंग घिसने लगते हैं। मिश्र रागों में राग-नियमों की ओर लक्ष्य रखते हुए रचे गए ध्रुवपद-गीत उत्तम होते हैं; परन्तु इस समय यह कहना गलत नहीं होगा कि ख्यालों ने ध्रुवपदों को बहुत पीछे डाल दिया है। ख्याल-गायकों की 'फिरत' अनेक बार दोषपूर्ण समझी जाती है। इन लोगों में यह बात नहीं है कि उत्तम गुणी नहीं हों, परन्तु यह भी असत्य नहीं है कि अधिकतर आँखें बन्दकर दौड़नेवाले ही मिलते हैं। ऐसे लोग तुमसे शायद यह कहेंगे कि 'तुम लोग हमारे-जैसी 'फिरत' नहीं कर सकते, इसी लिए तुम तानबाजी की निन्दा करते हो।' परन्तु इस उत्तर में कुछ भी तथ्य नहीं है। हम 'फिरत' के विरुद्ध हरगिज नहीं हैं। हम राग-नियम सँभालकर और समझदारी से की जानेवाली 'फिरत' तो आवश्यक समझते हैं। गायकी के संपूर्ण गुण-धर्म निभाते हुए, जो अपना राग उत्तम रूप से सँभालता रहे, वही उच्च कोटि का गायक है। अस्तु,

शिवमत भैरव में 'निसा, गुरेसा' इस जगह टोड़ी से इसे बचाना है और 'धुनिप' अथवा 'धुनिधुप' यहाँ भैरवी या आसावरी से बचाना है। अत: यह भाग मैं किस प्रकार गाता हूँ, उसे अच्छी तरह देखकर सीख लो। शिवमत भैरव तुम्हें इस प्रकार से शुरू करना है—'सा, ग, गमरे, रेगमगमरे, सा, सा, निसा, गुरेसा, निसा, धुनिप, मप, धु, निसा, गमगरे, सा।'

भैरव राग समझाते समय मैं तुम्हें यह बता ही चुका हूँ कि इसमें गायक कोमल निषाद का प्रयोग किस प्रकार करते हैं। वही युक्ति इस राग में भी योजित की

जाए। 'प, निधप, गमग, रेसा' इस प्रकार का स्वर-भाग अशुद्ध नहीं होगा। 'निसा, रेगरेसा' इस प्रकार लेने से तोड़ी अधिक स्पष्ट दिखाई पड़ेगी, इसलिए 'निसा, रेग' इस प्रकार न लेते हुए 'निसा, गरेसा' इस प्रकार स्वर लिए जाएँ। भैरव जहाँ-तहाँ भरपूर रखा जाए। देखें, इसे तुम किस प्रकार करोगे ?

प्रश्न—'सारेरेसा, गमपमगरेसा, निसा, गरेसा, धपगमपगमरे, सा, धपगम, रे, गमधप, गमरे, सा, ग, गमरे, गपमगरे, सा, निसागरेसा, निसा, ध, निधनिप, मपध, निसा, गमरे, गपमग, रे, सा।' इस प्रकार स्वर-विस्तार करना उचित होगा ?

उत्तर—हाँ, ठीक रहेगा। सदैव यह बात ध्यान में रखकर चलना पर्याप्त होगा कि टोड़ी का वह टुकड़ा केवल रागभिन्नता के लिए प्रयुक्त करना है। मेरे गुरु ने मुझसे कहा था कि यह राग जितना सावकाश गाया जाए, उतना अधिक शोभनीय होगा। पहले ही हम भैरव राग को गम्भीर प्रकृति का मान चुके हैं, अत: उनका यह कथन भी यथार्थ है। एक गायक ने मुझे अपने शिवमत भैरव में दोनों धैवत लगाकर दिखाए थे, परन्तु उसने अपना तीव्र धैवत ध्रुवपद के आभोग में एक जगह प्रयुक्त किया था और वह भी आरोह में ही रखा था। यह विशेषता ध्यान में रखी जाए।

प्रश्न—वह आभोग उसने किस तरह गाया था ?

उत्तर—'सासा, धधप, प, पधनिसां, धप, गमरे, गपमगमरे सा; (संचारी) पध, निसां, निसां, धनिसां, गंरेंसांनिसां, धनिप, पधनिसां, धप, निधप, गमपग मगरे, सा।'

इस प्रकार उसने अपना आभोग गाया था। यह भी सुनने में बुरा नहीं लगता। तुमने ध्यान दिया कि वह तीव्र ध इस उत्तर राग में आरोह में रखा गया है ? यह मैं कह चुका हूँ कि कुछ ग्रन्थकार भैरव में तीव्र ध माननेवाले भी निकल आएँगे। तीव्र ध लेकर और आरोह में रे, प वर्ज्य कर एक गायक ने मुझे इस प्रकार भैरव सुनाया था—मम, गमप, मगरेरेसा। सासागगमगगरेरेसा। सासागमपगमधधप। गमधमपगमरेरेसा। ममगममधनिसांरेंसां। सांगंमंपंमंगंगंरेंरेंसां। सांरेंसांनिधपम-धपम। गमनिधपमगरेरेसा।

हम इस स्वरूप को भैरव नहीं कहेंगे, यह तो एक भिन्न राग हो जाएगा। यदि भैरव में पंचम वर्ज्य कर रे, ध स्वर आंदोलित गाए जाएँ, तो गायक कहते हैं कि वह 'ललितभैरव' हो जाता है। जबकि पंचम वर्ज्य करना है और ललित-अंग बनाए रखना है, तो उसमें मध्यम अवश्य ही महत्त्व प्राप्त करेगा। ललित में दोनों मध्यम लगते हैं, परन्तु ललितभैरव में इस प्रकार नहीं लिए जाते, इसलिए भी यह राग भिन्न दिखाई देगा। एक बार मैंने एक गायक को अपना राग 'रामकली का औडुव-सम्पूर्ण' प्रकार गाकर सुनाया था। इसे उसने 'भोली-भैरव' बताया; परन्तु इसमें उसने निषाद वर्ज्य न करने की सूचना दी। उसने एक प्रधान विशेषता यह बताई कि आरोह में भिन्न-भिन्न स्वर वर्ज्य कर अवरोह स्पष्ट रूप से भैरव का रखने पर भिन्न-

भिन्न राग उत्पन्न हो जाते हैं। अवरोह में उत्तम रूप से आंदोलित रे, धु स्वर दिखाए गए कि श्रोतागण भैरव की ओर आए। मध्यम या धैवत स्वर वादी बनाया जाए, गांधार, निषाद को आगे बढ़ाया कि प्रभात का प्रभाव नष्ट हो जाएगा। मुझे इस गायक का कथन बहुत सार्थक प्रतीत हुआ।

तो फिर अब एक बार मुझे यह बताओ कि तुम शिवमतभैरव के लक्षण किस प्रकार ध्यान में रखोगे ?

प्रश्न—हम इस राग को इस प्रकार याद रखेंगे—शिवमतभैरव एक सम्पूर्ण राग है। इसका अधिकांश स्वरूप भैरव के समकक्ष होता है। आरोह में ग, नि स्वर तीव्र ही लिए जाएँ। अवरोह में तोड़ी की झलक-मात्र दिखाई पड़ेगी, परन्तु श्रोताओं को यह राग तोड़ी का प्रकार ज्ञात नहीं होना चाहिए। आंदोलित रे, धु योग्य स्थलों पर उचित प्रमाण से दिखाई देने चाहिए। वादी स्वर धैवत रखा जाए।

उत्तर—मैं समझता हूँ कि अभी इतनी जानकारी पर्याप्त होगी। यह राग विवादग्रस्त रागों में से एक है; क्योंकि यह अप्रसिद्ध राग है। अर्वाचीन ग्रंथकार इस राग के सम्बन्ध में अधिक जानकारी नहीं दे सकते और यह बात समझ में आने-योग्य भी है। ये लोग अपना स्वतः का मत बताकर, निर्णय पाठकों पर ही छोड़ देते हैं। यह बात सदैव प्रचार के अनुसार ही रहनेवाली है। स्थानभिन्नता के कारण प्रचार में भी भिन्नता हो सकती है, तो भी प्रत्येक गायक द्वारा अपनी पद्धति को दृढ़ता से पकड़े रहना सदैव हितकारी ही होगा।

प्रश्न—लक्ष्यसंगीतकार ने शिवमतभैरव का वर्णन किस प्रकार किया है ?

उत्तर—मैंने उसी के मत के अनुसार तुम्हें यह बताया है। वह कहता है :—

भैरवस्यैव संस्थाने भैरवः शिवपूर्वकः।
नियुक्तो नित्यमाचार्यैर्मिश्रमेलसमुद्भवः ॥
आरोहे गनितीव्रत्वं भैरवांगं प्रदर्शयेत्।
अवरोहे तन्मृदुत्वं तोडीभेदं प्रसूचयेत् ॥
प्रसिद्धिविधुरत्वात्स्याद्रागोऽयं वादमूलकः।
लक्ष्यमार्गमनुसृत्य कुर्यादिह सुनिर्णयम् ॥
भैरवांगरिधौ योज्यौ रागेऽस्मिन् गायकोत्तमैः।
यदंगं तत्त्वतो येन सुव्यक्तं प्रकटीभवेत् ॥

रागकल्पद्रुमकार का मत भी ऐसा ही है। वह कहता है :—

संस्थान एवाजनि भैरवस्य।
मिश्रस्वरूपः शिवभैरवोऽसौ ॥

भेदस्त्वियान् भैरवतोऽस्य दृष्टो-
वरोहणे यन्निगयोर्मृदुत्वम् ॥

शार्ङ्गदेव ने 'शुद्धभैरव' राग का वर्णन 'रत्नाकर' में इस प्रकार किया है :—

धैवतांशग्रहन्याससंयुतः स्यात्समस्वरः ।
तारमंद्रोऽयमाषड्जगान्धारं शुद्धभैरवः ॥

प्रश्न—इसे उसने किस ग्रामराग का 'जन्यराग' माना है ?

उत्तर—ऐसा कुछ नहीं बताया। उसने जो दशविध रागवर्ग माने हैं, उसमें 'राग' शीर्षक के नीचे उसने बीस नाम दिए हैं, उन्हीं में एक शुद्धभैरव है। लक्षणों में जाति, ग्राम, मूर्च्छना आदि कुछ नहीं बताए गए। शार्ङ्गदेव के ये बीस राग अगले कुछ ग्रंथकारों द्वारा व्यर्थ ही उद्धृत किए हुए प्राप्त होते हैं।

प्रश्न—भला, ऐसी जगह भाषांतरकार विश्वनाथ ने कैसा किया है ?

उत्तर—उसने केवल भाषांतर-मात्र किया है। जैसे :—

शुद्ध भैरव जो राग है सो धैवत अंश ग्रहन्यास स्वर ताकरिके भली-भांति युक्त है, समान है स्वर जामे, षड्ज और गांधार जे स्वर तिन्हें अवधि करके तार और मंद्र स्वर है जामे ऐसो है।

इस भाषांतर से भला क्या खुलासा होगा ?

प्रश्न—धन्य है गुरुजी, इन लोगों को! इस विश्वनाथ ने सम्पूर्ण 'रत्नाकर' का इसी प्रकार नमूनेदार भाषांतर कर रखा है न ?

उत्तर—मैं तो इसे ऐसा ही समझता हूँ। कदाचित् किसी राजा ने उससे यह टीका कराई होगी।

प्रश्न—यदि कोई इसे प्रकाशित करना चाहे, तो हजारों रुपए लग जाएँगे, ठीक है न ?

उत्तर—यह सत्य है, परन्तु यह श्रम भला कौन करने जाएगा ? जिसमें अब तो 'राधा-गोविंद संगीतसार' प्रकाशित हो ही गया है। मैं समझता हूँ, उसका अभी हिंदी-भाषांतर करने की आवश्यकता नहीं है। जब 'संगीतसार' से शिक्षा लेकर गायक तैयार होने लगेंगे और उन्हें कठिनाई होगी, तब फिर अन्य हिंदी-ग्रन्थों की आवश्यकता हो सकती है। वह समय अभी बहुत दूर है।

भैरवस्यावरोहे तु कोमलौ भवतो गनी ।
शिवभैरवमाहुस्तं तदा गीतविशारदाः ॥
—चंद्रिकायाम्

दक्षिण की ओर शिवमत भैरव का प्रचार नहीं है। अपना हिंदुस्तानी भैरव उस तरफ अब बहुत प्रिय हो रहा है। अपने यहाँ कुछ अप्रसिद्ध रागों के सम्बन्ध में

मैंने उधर बहुत खोज की, परन्तु कोई उल्लेखनीय जानकारी प्राप्त न हो सकी। उस ओर भी इस समय प्राचीन संगीत का अधिक ज्ञान नहीं दिखाई पड़ता। अनेक जगह तो व्यंकटमखी के नाम का भी पता नहीं था। जिस प्रकार अपने यहाँ नवीन और प्राचीन कल्पनाओं का मिश्रण हो गया है, उसी प्रकार उधर भी पाया जाता है। त्यागय्या (त्यागराज) के पाँच-पच्चीस कीर्तन गाने आए कि उस व्यक्ति को उधर बड़ी भारी कीर्ति मिल जाती है। 'मेल कर्ता' और कुछ जन्यराग समझ गए कि 'शास्त्र-ज्ञान' उत्तम हो गया, इस प्रकार की मान्यतावाले व्यक्ति उधर अनेक निकल आएँगे। यह मैं बता चुका हूँ कि 'रत्नाकर' को अच्छी तरह समझ चुका हो, ऐसा एक भी पंडित मुझे उस तरफ नहीं दिखाई दिया। यह बात नहीं है कि उनके संगीत में 'रत्नाकर' का बोध होना आवश्यक ही हो, परन्तु मैंने वहाँ की स्थिति बताई है। खैर, उन्हीं पर क्यों हँसा जाए? क्या अपने यहाँ के एक विद्वान् ने कुछ दिन पूर्व सामयिक पत्रों में अपना यह मत प्रकाशित नहीं किया था कि श्रुति, मूर्च्छना और ग्रामों की चर्चा करनेवाले पागल लोग हैं? जिसका विषय पर जैसा अधिकार है, उसी प्रकार उसका मत भी होगा। ऐसा कहनेवालों पर हमें कभी भी कुपित नहीं होना चाहिए, बल्कि वे तो दया के पात्र हैं। अधिक अच्छा अभ्यास हो जाने के पश्चात् मैं तुमसे भी प्रवास करने की सिफारिश करूँगा।

प्रश्न—क्या आप हमें इस बात की रूप-रेखा समझा देंगे कि प्रवास में आप संगीत-सम्बन्धी जानकारी किस प्रकार पूछते थे? शायद आपका अनुभव हमें भी आगे-पीछे उपयोगी सिद्ध हो?

उत्तर—प्रवास पर जाते समय मैं कुछ निश्चित प्रश्न कागज पर लिख लिया करता था। और प्रत्येक संगीत-प्रसिद्ध नगर में जिन-जिन विद्वानों से भेंट होती, वे प्रश्न उनसे पूछता था। उनके दिए हुए उत्तर भी लिख लिया करता था। निश्चित प्रश्न पर भिन्न-भिन्न प्रकार के उत्तर प्राप्त होने से फिर हमें स्वतन्त्र विचार करने में सुविधा रहती है।

प्रश्न—तो फिर वे प्रश्न हमें भी सुना दीजिए?

उत्तर—ठीक है, सुन लो! परन्तु आरम्भ में इन प्रश्नों के सम्बन्ध में दो शब्द कहना आवश्यक है। इन प्रश्नों में से कुछ अब निरुपयोगी हैं, कुछ प्रश्नों के उत्तर अब तुम भी दे सकते हो, कुछ प्रश्न एक ही मुद्दे पर भिन्न-भिन्न शब्दों के हैं और कुछ खास तौर से टेढ़े रखे गए हैं। यद्यपि ये प्रथम दृष्टि में कहीं-कहीं कलहोत्पादक-से दिखाई दिए, परन्तु ईश्वर की कृपा से किसी भी विद्वान् से मेरा कभी भी झगड़ा नहीं हुआ। प्रवास में हमें जो जानकारी हो, उसे मुक्त हृदय से दूसरों को बताने को हमें तैयार रहना चाहिए, इतना काफी है। यह अच्छा ही हुआ कि पिछली चर्चा के समय इन प्रश्नों को जानने की प्रेरणा तुम्हें नहीं हुई, क्योंकि तब तुम इस विषय में बिलकुल नए थे, और भली प्रकार इन्हें पूछ भी नहीं सकते थे। प्रश्न पूछने के पूर्व सामनेवाले विद्वान् का अधिकार, उसका स्वभाव, उसकी प्रतिष्ठा, इन सभी बातों की ओर ध्यान दिया जाता है। साथ ही किसी समय इन प्रश्नों को देखकर और इस

सम्बन्ध में समाज की अज्ञानता एवं उदासीनता देखकर तुम्हारा विचार यह भी हो सकता है कि यह विषय बहुत जटिल और असाध्य है; किन्तु अब तुम्हारी स्थिति भिन्न है। मेरा यह दावा नहीं है कि इन सभी प्रश्नों के समाधानकारक उत्तर मुझे प्राप्त हो गए हैं। मैं यह नम्रतापूर्वक स्वीकार करूँगा कि अभी तक कुछ बातों पर मेरी खोज चालू है। ये प्रश्न तुम शुद्ध अंतःकरण से, नम्रतापूर्वक व दूसरे का अपमान न हो, इस रीति से पूछकर अपनी जानकारी प्राप्त कर सकते हो, परंतु अभी तुम्हें इन प्रश्नों को हल करने का कार्य अपने सिर पर लेना ही नहीं चाहिए, क्योंकि यह तुम्हारा विषय नहीं है।

प्रश्न

१. आपके प्रदेश में उत्तर की संगीत-पद्धति प्रचलित है, या दक्षिण की? इसमें भेद कौनसा है?

२. आपकी पद्धति का आधार-ग्रंथ कौनसा है और क्यों? क्या वह उपलब्ध है?

३. आपके यहाँ प्राचीन संगीत-शास्त्र पढ़े हुए पंडित कौन-कौन हैं?

४. क्या इस तरफ ग्रन्थोक्त नियमों का अनुसरण कर 'साम' गानेवाले लोग हैं? 'साम' इधर किस रीति से सिखाया जाता है?

५. क्या आपने 'साम'-गायन सुना है? उसमें कितने व कौन-कौनसे स्वर लिए जाते हैं? क्या आप उन स्वरों की तुलना हिंदुस्तानी स्वरों से कर सकते हैं, किस प्रकार?

६. क्या आपके यहाँ राग-रागिनी-पुत्र-पौत्रादिक कुटुम्ब स्वीकार करने की प्रथा है? यदि है, तो आप किस ग्रंथ का वर्गीकरण मानते हैं, और क्यों?

७. क्या आपने राग, रागिनी और पुत्र आदि को अलग-अलग पहचानने के उपाय किसी भी ग्रंथ में देखे हैं? क्या आपने कोई फारसी अथवा उर्दू-ग्रंथ भी देखे हैं? कौन-कौनसे? क्या उनके आधार संस्कृत-ग्रंथ ही हैं?

८. इस समय यह समझा जा रहा है कि प्राचीन संगीत परिवर्तित हो गया है, तो फिर क्या आज प्राचीन वर्गीकरण सुविधाजनक हो सकेगा? यदि आप नवीन रचना करना उचित समझते हों, तो उसे आप किन-किन सिद्धांतों पर और किन-किन साधनों से करना चाहेंगे। क्या भिन्न-भिन्न प्रदेशों में भिन्न-भिन्न प्रचार होने से अनेक प्रकार की रचना होना सम्भव है? इसमें क्या उपाय हो सकता है?

९. आप प्राचीन शुद्ध स्वरमेल किसे समझते हैं? शार्ङ्गदेव ने अपने 'रत्नाकर' के आरंभ में श्रुति वीणा रचकर दिखाई है, क्या वह उपयुक्त है? क्यों? उसके कथनानुसार श्रुतियों की रचना करने पर कौनसा शुद्ध ठाठ उत्पन्न होगा? क्या आप यह सिद्ध कर सकते हैं कि शार्ङ्गदेव आदि पंडितों को नाद के आंदोलन की जानकारी थी? यदि नहीं, तो वे अपने स्वर किस प्रकार कायम करते थे?

१०. आज हिन्दुस्तानी पद्धति का शुद्ध ठाठ 'बिलावल' माना जाता है, यह शार्ङ्गदेव का कौनसा ठाठ होगा? शार्ङ्गदेव का यह 'शुद्ध' क्यों नहीं हो सकेगा?

११. अपने यहाँ तीन प्रकार के स्वरांतर हैं और पश्चिम की ओर भी तीन ही हैं। क्या केवल इतने साम्य से पश्चिम के त्रिश्रुतिक, द्विश्रुतिक आदि स्वर अपने ग्रंथों पर लादे जा सकेंगे ? इस बात का प्रमाण किस ग्रन्थ से दिया जा सकेगा ?

१२. प्राचीन ग्रंथकार अंतर और काकली स्वरों को विकृत मानते हैं, इससे क्या बोध होता है ?

१३. प्राचीन ग्रंथकारों के पास 'श्रुति' नापने के कौनसे साधन होंगे ? यूरोप के प्राचीन संगीत का आदि-सप्तक कौनसा होगा और क्यों ? क्या उस संगीत का इतिहास हमारे लिए उपयोगी होगा ? क्या उधर का Doric ठाठ अपने 'तोड़ी' ठाठ के निकट आ जाता है ? अपना आदि-राग 'शुद्ध भैरव' ग्रंथोक्त तोड़ी ठाठ का ही कोई-कोई मानते हैं। इन सम्पूर्ण बातों में आपको क्या कोई सम्बन्ध दिखाई देता है ? इस प्रमाण का उपयोग कहाँ किया जा सकेगा ?

१४. 'श्रुति' और 'स्वर' में आप क्या भेद मानते हैं ? इस विषय पर आपको किस ग्रन्थ का मत पसन्द आता है ? आप 'अनुरणन' का क्या अर्थ समझते हैं ? क्या आपको मतंग और भरत का श्रुति-प्रमाण व्यवस्थित ज्ञात होता है ? क्यों ? शार्ङ्ग-देव ने चार 'सारणा' किस हेतु से बताई हैं ? 'द्वाविंशतिरेव श्रुतयः इति इयत्ता' इसे सिद्ध करने के लिए क्या श्रुतिस्वर-स्थानों को नियत स्थान पर स्वीकृत करना पड़ेगा ? क्या यह विभाग सन्तोषजनक हो जाएगा ?

१५. पहले ग्रामों की क्या आवश्यकता रही थी ? ये तीन क्यों माने गए ? मध्यम ग्राम से प्राचीन संगीत का क्या हित हुआ ? अब वह क्यों नहीं होता ? क्या हिंदुस्तानी पद्धति के प्राचीन व अर्वाचीन भेद किए जा सकते हैं ? नवीन पद्धति में आप किन-किन ग्रंथों को स्थान देंगे ? क्या आप यह समझते हैं कि शार्ङ्गदेव के समय देश में तीव्र, कोमल आदि संज्ञाएँ बिलकुल प्रचार में नहीं थीं ? ये संज्ञाएँ 'भुजवसुदशमितशाके' के समय 'तरंगिणी' में हैं, क्या इससे आपको आश्चर्य होगा ? क्या वास्तव में शार्ङ्गदेव के बहुतसे राग (रागों की बड़ी संख्या) दक्षिणी ग्रंथों में तथा प्रचार में हैं ? क्यों भला ? उसके किन-किन रागों को आप खास उत्तर के कहेंगे ?

१६. क्या शार्ङ्गदेव ने वादी-विवादी-स्वर-प्रकरण यथायोग्य लिखा है ? इसमें शार्ङ्गदेव ने 'निगौ अन्यविवादिनौ, रिधयोरेव वा स्यातां, तौ तयोर्वा रिधावपि' इस प्रकार कहा है। इसे आप उदाहरणों से समझा देंगे ? क्या विवादी की व्याख्या शार्ङ्गदेव की कुछ जातियों में प्रयुक्त कर दिखा सकेंगे ? क्या प्राचीन संगीत में विवादी का उपयोग हो सका था ? किस नियम से ? वह कहाँ किया हुआ दिखाई देता है ? क्या इन स्वरों का सम्बन्ध ठाठ-रचना से रहा था ? क्या इस प्रकरण पर सिंहभूपाल द्वारा की हुई टीका आपने देखी है ? क्या आप समझते हैं कि यह सब यथार्थ है; क्यों ?

ननु संवादित्वेन क उपयोगः ? ब्रूमः। यस्मिन् गीते अंशत्वेन परिकल्पितः षड्जः तत्स्थाने मध्यमः क्रियमाणो रागो न भवेत्। षड्ज-

पंचमयोः स्थाने पंचमषड्जौ प्रयुज्यमानौ जातिहानिकरौ भवतः। +। गांधारनिषादयोः स्थाने निषादगांधारौ प्रयुज्यमानौ जातिरागहानिं न कुरुतः।

इसे उदाहरणों से समझाइए। इसी प्रकार अनुवादी की स्पष्ट व्याख्या कीजिए। क्या अनुवादी के उपयोग के कुछ नियम थे? कौनसे?

१७. मतंग कहता है :—

मूर्च्छनाशब्दो निष्पन्नो मूर्च्छामोहसमुच्छ्रये। मूर्च्छ्यते येन रागोहि मूर्च्छनेत्यभिसंज्ञिता॥ स्वराणामेव मूर्च्छनात्वं न त्वारोहावरोहणरूपायाः क्रियायाः। आरोहणावरोहेण क्रमेण स्वरसप्तकं। मूर्च्छनाशब्दवाच्यं हि विज्ञेयं तद्विचक्षणैः॥

क्या मतंग का यह मत आपको मान्य है? तो फिर 'मूर्च्छना' शब्द-सम्बन्धी उलझन क्या शार्ङ्गदेव के पूर्व से चलती आ रही है? मतंग द्वादशस्वर-मूर्च्छना ही मानता है। क्या इस बात से कोई हित होगा? अहोबल की मूर्च्छना से क्या भला हुआ? भरत ने मूर्च्छना की व्याख्या कैसी की है? क्या उसके 'पूर्णः प्रक्रमयुक्ताः षाडवौडवितीकृताः' इस कथन से मूर्च्छना का सम्बन्ध अगले ग्रंथकारों के मूर्च्छना-प्रस्तार से लग जाएगा? किस तरह?

१८. शार्ङ्गदेव ने मूर्च्छना का उपयोग किस उद्देश्य से किया? 'शुद्धा, सांतरा, सकाकली, सकाकल्यंतरा' ये भेद उसने किसलिए किए? इनका उपयोग उसने कहाँ और किस प्रकार किया। क्या उसके भेद भरत के भेदों से मिल जाते हैं? क्या यह भाग उदाहरण से समझा देंगे? 'स्वराणामेव मूर्च्छनात्वम्' आदि विधान क्या भरत, शार्ङ्गदेव के मतों से विसंगत हो जाते हैं? किस प्रकार?

१९. भरत ने स्वयं मूर्च्छना का उपयोग कहाँ और किस प्रकार किया है। उसके ग्रंथों में राग नहीं हैं, परन्तु 'जाति' है। तो भी प्रत्येक जाति की मूर्च्छना जिस प्रकार शार्ङ्गदेव बताता है, उस तरह भरत नहीं बताता। ऐसा क्यों? शार्ङ्गदेव ने भला ऐसा क्यों किया होगा? ऐसा करने की आवश्यकता कैसे हुई?

२०. ग्रामराग' जाति से उत्पन्न कहा जाता है। क्या इनकी मूर्च्छनाएँ जाति को मूर्च्छनाओं से भिन्न होती हैं? क्यों? क्या आप पाँच व्यवस्थित रागों को लेकर उनकी मूर्च्छना और जनक जाति की मूर्च्छना बताकर उनका परस्पर सम्बन्ध दिखा सकेंगे? जाति के लक्षणों में ग्रह आदि स्वर होते हैं; इनका मूर्च्छना से कौनसा सम्बन्ध रहेगा? जाति के अंश स्वर अनेक, और मूर्च्छना का एक, भला ऐसा क्यों?

२१. जाति-लक्षण तेरह थे, उनमें से शार्ङ्गदेव ने कितने प्रयुक्त किए? शेष क्यों छोड़ दिए? शार्ङ्गदेव के समय राग थे, फिर उसने 'जाति' क्यों बताई होंगी? 'षाड्जी जाति' अर्थात् कौनसा मेल और इस मेल का कौनसा ग्रामराग हुआ? यदि नहीं, तो क्यों?

२२. 'षड्जादिक मूर्च्छना' कुछ ग्रामरागों में बताई गई है, परन्तु यह किसी भी जाति के लिए बताई हुई नहीं दिखाई पड़ती। इसका स्पष्टीकरण अथवा समाधान आप कैसे करेंगे?

२३. शार्ङ्गदेव अपने बारह विकृत स्वर बतलाता है। क्या ये एक ही सप्तक में प्रयुक्त करने के लिए उसने एकत्र बता दिए हैं ? यदि नहीं, तो इनका उपयोग करने का नियम कौनसा है ? क्या 'रत्नाकर' की परिभाषा आपको उत्तर के किसी भी ग्रन्थ में दिखाई दी ? यदि नहीं, तो क्यों ? 'रत्नाकर' की पद्धति उत्तर की ही है, इसे मानने के लिए आप कौनसा निर्विवाद आधार बता सकेंगे ? इसमें की परिभाषा दक्षिण-पद्धति में क्यों दिखाई देती है ? उत्तर की ओर वे क्यों और कब नष्ट हो गईं ?

२४. 'राग-तरंगिणी' क्या आप प्रत्यक्ष देख चुके हैं ? क्या इस ग्रन्थ के रागों का सम्बन्ध 'रत्नाकर' के रागों से किया जा सकता है ? 'संगीत-दर्पण' ग्रंथ के बहुत-से राग उत्तर-पद्धति में होने पर भी इसमें तीव्र, कोमल आदि संज्ञाएँ नहीं हैं, क्या इससे आपको आश्चर्य अनुभव नहीं होगा ? दक्षिण की ओर जाति-मूर्च्छना की व्यवस्था नहीं है। क्या इतने से ही 'रत्नाकर' उत्तर का ग्रंथ ठहराया जा सकेगा ? आप ऐसा कौनसा प्रमाण देंगे कि 'रत्नाकर' ग्रंथ दक्षिण-पद्धति का होना सम्भव ही नहीं है ?

२५. 'रत्नाकर' का 'साधारण प्रकरण' भरत के साधारण प्रकरण से क्या बिलकुल अच्छी तरह मिल जाता है ? भरत ने 'च्युत स्वर' किस प्रकार बताए हैं ? यदि नहीं, तो क्यों नहीं बताए ? वह सम्पूर्ण कितने स्वरों का उपयोग करता है ? किस आधार पर ? शार्ङ्गदेव ने नए नाम कहाँ से और क्यों ग्रहण किए ?

२६. 'ग्रामसाधारण' का अर्थ क्या ? इसकी आवश्यकता कैसे उत्पन्न होती है ? क्या मूर्च्छना के चार भेद और साधारण प्रकरण अलग-अलग खास तौर पर बताए गए हैं ? ऐसा क्यों ? 'अल्पप्रयोगः सर्वत्र काकली चान्तरस्वरः।' इस प्रकार शार्ङ्गदेव ने क्यों कहा ? उसकी अठारह जातियों में अन्तरगांधार व काकली निषाद आपको कितने स्थलों पर दिखाई देते हैं ? क्यों ? क्या उसके रागों में भी ये स्वर दिखाई देते हैं ? क्यों ? 'षड्जे षड्जसाधारणं', 'मध्यमे मध्यम-साधारणं' इस उक्ति का क्या स्पष्टीकरण किया जाएगा ? 'प्रयोज्यौ षड्ज-मुच्चार्य काकलीधैवतौ क्रमात्।' इत्यादि—यह नियम विशेष रूप से क्यों कहा गया ? भरत कहता है :—

अंतरस्वरसंयोगो नित्यमारोहिसंश्रयः। कार्यः स्वल्पविशेषेण नावरोही कदाचन। क्रियमाणोऽवरोही स्यादल्पो वा यदि वा बहुः। जातिरागं श्रुतिं चैव नयंते त्वंतरस्वराः।

इस श्लोक का अर्थ किस तरह किया जाएगा ? इसकी एकवाक्यता 'रत्नाकर' से किस प्रकार की जाएगी ? 'जातिराग' अर्थात् ? भरत ने 'अस्य तु प्रयोगसौक्ष्म्यात्कैशिकमिति नाम निष्पद्यते' इस प्रकार कहा है; क्या इसमें से त्रिश्रुतिक ग, नि स्वर निकालने ठीक होंगे ? कैसे ? ये उसने कैसे प्रयुक्त किए ?

२७. भरत के 'नाट्यशास्त्र' में इस प्रकार कहा गया है :—

द्विविधैकमूर्च्छनासिद्धिः। तत्र द्विश्रुतिप्रकर्षाद्धैवतीकृते गान्धारे मूर्च्छनाग्रामयोरन्यत्र षड्जग्रामे। मध्यमग्रामेऽपि धैवतमार्दवान्निषादोत्कर्षाद्वैविध्यं भवति। तुल्यश्रुत्यंतरत्वाच्च संज्ञान्यत्वम्।

इस युक्ति की स्पष्ट व्याख्या कीजिए। (पृ० ३०५ निर्णयसागर प्रति) इस भाग की तुलना 'रत्नाकर' के तत्सम्बन्धी भाग से की जाए। इस प्रकार करने पर क्या ४, ३, २ श्रुति के स्वर अर्थात् Major, Minor, Semi ही समझे जाएँगे ?

२८. 'रत्नाकर' में 'शुद्ध तानें' ८४ क्यों बताई गई हैं ? शार्ङ्गदेव ने क्या इनका कुछ प्रयोजन बताया है ? क्यों ? भरत ने इसी प्रकार ८४ तानें बताकर साथ ही दो प्रकार की 'तान-क्रिया' प्रवेश व निग्रह बताई है, ऐसा उसने क्यों किया होगा। वही आगे कहता है—'मध्यमस्वरास्पर्शः। मध्यमस्वरेण तु वैणेन मूर्च्छनानिर्देशो भवत्यनाशित्वात्।' इससे पाठक क्या तर्क कर सकता है। 'मूर्च्छनाप्रयोजनं स्थानप्राप्त्यर्थः। स्थानं त्रिविधं। त्रीणि स्थानानि—उरः कंठः शिरः इति।' इससे क्या बोध होगा ? षड्ज और मध्यम ग्राम के ठाठ क्या एकसे ही दिखाई देते हैं ? क्यों ? यदि ऐसा है, तो फिर अलग-अलग क्यों माने गए ? अब उसका कार्य किस प्रकार पूरा किया जाता है ? उदाहरण ?

२९. शार्ङ्गदेव ने पूर्वप्रसिद्ध एवं अधुनाप्रसिद्ध इस प्रकार संगीत के भेद किस आधार पर किए होंगे ? क्या इससे यह समझा जाए कि उसके समय में पूर्वप्रसिद्ध संगीत नष्ट हो गया था ? अधुनाप्रसिद्ध संगीत के राग तो आज भी अपने यहाँ एवं दक्षिणी पद्धति में दिखाई पड़ेंगे। फिर जाति और मूर्च्छना का प्रपंच उसने कहाँ से और क्यों प्राप्त किया होगा ? शार्ङ्गदेव ने अपना नाम 'निःशंक' क्यों ग्रहण किया था ? क्या आपने 'दंतिलकोहलीयम्' इस प्रकार का ग्रंथ-नाम सुना है ?

३०. 'रत्नाकर' के रागों में अति कोमल रे, ध ग्रहण करनेवाले राग हैं क्या ? कौनसे ? किस आधार से ? इन स्वरों को शार्ङ्गदेव क्या कहता है ? क्या इस समय अपने गायक अति कोमल रे, ध वाले राग गाते हैं ? क्या उनके गायन के लिए शास्त्राधार निकल आएगा ? हिंदू संगीत में Quarter Tones प्रयुक्त होता है, ऐसा किसी पाश्चात्य पंडित ने लिखा है, इसमें क्या कुछ तथ्य है ? यह खोज सर्वप्रथम किसने और कब की ? इसका सर्वप्रथम उल्लेख किस ग्रंथ में प्राप्त होता है ?

३१. 'रत्नाकर' के ग्रामरागों में भैरव, पूर्वी और मारवा ठाठों के राग अलग-अलग कागज पर लिखकर दिखाइए और राग-लक्षणों से सरल अर्थ करते हुए इन ठाठों को सिद्ध कीजिए। क्या इन ठाठों के जन्यराग अपने प्रचलित रागों से मिलते हैं ? यदि ये नहीं मिलते, तो क्या 'रत्नाकर' को उत्तर-पद्धति का ग्रंथ कहा जा सकता है ?

३२. 'रत्नाकर' के रागों के ठाठ योग्य हैं या नहीं, इन्हें उसके पश्चात् रचे हुए किसी भी ग्रंथ के राग-मेलों से मिलाकर दिखाइए ? कौन ग्रंथकार 'रत्नाकर' को समझ

पाया है ? यदि नहीं, तो आज के यावनिक संगीत से उनकी तुलना की जा सकती है ?

३३. उत्तर-पद्धति में जो राग-रागिनी की व्यवस्था थी, उसका उल्लेख क्या कहीं शार्ङ्गदेव ने किया है ? हनुमन्मत का ग्रंथ कौनसा है ? यदि यह मत 'दर्पण' में दिया हुआ हो, तो क्या उसकी समता ग्रामरागों से अथवा उसके जन्य रागों से हो सकेगी ? दर्पणकार 'रत्नाकर' का स्वराध्याय ग्रहण करता है और रागों में जाति न बताते हुए केवल मूर्च्छना बताता है। इसका क्या कारण हो सकता है ? 'दर्पण' ग्रंथ उत्तर का है या दक्षिण का ? क्यों ? उदाहरण देकर बताइए ?

३४. स्वरों के रंग और श्रुतियों की जाति बताने में शार्ङ्गदेव का क्या उद्देश्य रहा होगा ? आपके यहाँ गायक राग और रस में कैसा सम्बन्ध रखते हैं और वह किस आधार पर ? क्या यहाँ के गायक ग्रन्थोक्त गमकों को उनके नियमों के अनुरूप गाते हैं ? प्रचलित गमकों और शास्त्रीय गमकों की एकरूपता करके दिखाइए ?

३५. 'रत्नाकर' में वर्णित 'भाषा' आदि पन्द्रह जनक ग्रामरागों का एक कोष्ठक बनाकर उन रागों के ठाठ स्पष्ट लिखिए और उससे निकलनेवाले जन्य रागों की आज के प्रचलित स्वरूपों से कैसी और कितनी तुलना हो सकती है, यह बताइए ! यदि बिलकुल संक्षेप में भी यह बात समझाई जा सके, तो भी पर्याप्त होगी।

३६. सोमनाथ उत्तर का पंडित था या दक्षिण का ? यदि वह दक्षिण का था, तो 'रागविबोध' में तीव्र और तीव्रतर आदि संज्ञाएँ क्यों हैं ? यदि वह उत्तर-पद्धति का पंडित था, तो अंतर, काकली, साधारण और कैशिक नाम क्यों हैं ? क्या सोमनाथ 'रत्नाकर' को समझे हुए था ?

मित्रो ! अब और अधिक प्रश्न नहीं सुनाऊँगा। ये प्रश्न प्राचीन संगीत पर जानकारी एकत्र करने के उपयोग में आ सकेंगे। अन्य प्रश्न प्राचीन ग्रंथों पर और प्रचलित संगीत पर हैं, जो अभी तुम्हारे लिए आवश्यक नहीं हैं। हाँ, तो मैं 'शिवमत-भैरव' के आधारों के सम्बन्ध में बोल रहा था। ठीक है न ?

धैवतांशग्रहन्यासयुक्तः स्याच्छुद्धभैरवः ।
सकंपमंद्रगांधारो गेयो मध्याह्नतः पुरा ॥

मैं समझता हूँ कि अब हमें शुद्धभैरव के लक्षण ग्रंथों से खोज निकालने का परिश्रम ही नहीं करना चाहिए, क्योंकि उस राग को यदि कोई शिवमत-भैरव मानने को तैयार नहीं हुआ, तो यही समझा जाएगा कि हमने निरर्थक कार्य किया है। नादविनोदकार ने शिवमत-भैरव का स्वरूप स्वरों में इस प्रकार बताया है :—

नि॒नि॒ध॒पम॒ग॒म॒रे॒रे॒सा, नि॒साग॒मध॒ध॒पसांनि॒ध॒पमग॒रे॒सा। पपध॒ध॒सां, सांरे॒सां, नि॒ध॒पमग॒म, रे॒रे॒सा, गं॒रे॒सां, नि॒ध॒प, ग॒मरे॒रे॒सा।

मैं समझता हूँ कि इस स्वरूप में रे॒, ध॒ स्वरों पर आंदोलन लेकर और सम्पूर्ण रूप सावकाश एवं गंभीर रखकर इस राग को भैरवी अथवा आसावरी से अलग रखने

का प्रयत्न अवश्य किया जाता होगा। इस राग का वर्णन भी सम्भवतः उसने अपनी कल्पना के अनुसार लिखा होगा, जो कि इस प्रकार है :—

"शरीर में उज्वल भस्म लगाये, कानों में मुदरे पेहेने, सर्प हात में लपटे हुवे, लाल लंगोट बांधे, डमरु हात में लिये, त्रिशूल आगे रक्खा हुवा, बड़े बाल, धूनि रमाये, लाल नेत्र जिसके, ऐसा शिवमत-भैरव है।"

लक्षणों की दृष्टि से इसमें बिलकुल तथ्य नहीं दिखाई पड़ता, किन्तु गायकों के विनोद की दृष्टि से यह उपयुक्त है।

'संगीतकल्पद्रुम' में इस प्रकार कहा गया है :—

सचंद्रहासं फलकं दधानो
निलीमकंठः शशिबद्धचूडः ॥
व्याघ्रांबरावेष्टितगौरगात्रः
शिवस्वरूपः किल भैरवोऽयम् ॥
गांधारांशग्रहन्यासो गांधारादिकमूर्च्छना ॥
हनूमत मत प्रोक्तो भैरव प्रात गीयते ॥

अथोत्पत्तिः

रामकली गौडी टोडी च भैरवोत्पत्ति कथ्यते ।
क्वचिद्धैवतसंमुख्य धनिसरेगमपस्तथा ॥

गगमगरेसासामगपनिधपमपमगमगरेगरेसा । मपधसारेसानिनिसानिनिधसासा निधनिनिधपधपपमपपमगममगरेसा ॥

भाषा तो तुम्हारी पहचानी हुई ही है।

प्रश्न—अब हमें यह राग गाकर दिखा दीजिए, तो फिर यह पूरा हो जाएगा।

उत्तर—अच्छी बात है, सुनो :—

शिवमत-भैरव : सरगम

स्थायी (चौताल)

×						
ग	ग। म	रे। ग	प। म	ग। म	रे। सा	ऽ
×						
नि़	नि़। सा	ग। रे	सा। नि़	सा। ध़	नि़। प़	प़

×						
म़	प़ । ध़	ध़ । सा	ऽ । ग	प । म	ग । रे	सा

अंतरा

×						
म	प । ध	ध । नि	नि । सां	ऽ । नि	नि । सां	ऽ
×						
ध	ध । नि	नि । सां	गं । रें	सां । नि	सां । ध	प
×						
म	म । प	प । ध	ध । नि	सां । ध	नि । प	प
×						
म	ग । रे	रे । ग	प । म	ग । रे	रे । सा	ऽ

संचारी

×						
सा	सा । ध	ध । ध	ध । प	प । प	ध । नि	सां
×						
ध	ध । प	प । प	म । प	ग । ग	ग । म	रे
×						
रे	ग । रे	ग । म	प । म	ग । म	रे । सा	ऽ

आभोग

×						
म	म । प	प । ध	ध । सां	ऽ । नि	नि । सां	ऽ
×						
ध	ध । नि	सां । गं	रें । सां	नि । सां	ध । नि	प
×						
ध	ध । ध	ध । प	प । प	ध । नि	सां । ध	प
×						
नि	ध । प	ग । म	रे । ग	प । म	ग । रे	सा

सरगम : झप ताल

स्थायी

×						
ग	ग । रे	ग	प । म	ग । म	रे	सा
×						
नि़	सा । ग	रे	सा । नि़	सा । ध़	नि़	प़
×						
म़	प़ । ध़	नि़	सा । रे	रे । सा	नि़	सा

×							
ग	रे । ग	म	प । म	ग । रे	रे	सा	

अंतरा

×							
म	प । प	धु	धु । सां	ऽ । नि	सां	सां	
×							
धु	धु । नि	सां	गं । रें	सां । धु	नि	प	
×							
प	प । धु	नि	सां । धु	धु । धु	धु	प	
×							
म	ग । रे	ग	प । म	ग । रे	रे	सा	

यह देखते जा रहे हो न कि मैं इन सरगमों को गाते हुए किस-किस प्रकार ठहरता हूँ और रे धु स्वरों पर आंदोलन लेकर भैरव-अंग किस प्रकार आगे लाता हूँ। आभोग का तीसरा चरण, जहाँ मैंने 'प धु नि सां' स्वर गाए हैं, वहाँ कभी-कभी कोई तीव्र धैवत लेते हुए तुम्हें दिखाई पड़ेंगे। यह स्वर इस राग में चमत्कार के लिए किसी ने जान-बूझकर लगाया भी, तो हम उससे नहीं उलझेंगे। भैरवी ठाठ का प्रकार तुम्हें गाना हो, तो 'नि सा ग म, रे रे, सा, ग म, प ग म, रे रे सा। धु, धु, प, ग म रे, नि धु, प, ग म रे, सा' ये स्वर मैं जिस प्रकार गाता हूँ, उसी प्रकार गाने चाहिए। मध्यम-ऋषभ की संगति अच्छी तरह सँभालकर रखनी पड़ेगी। यहाँ थोड़ा भैरव का आभास उत्पन्न करने का प्रयत्न करना चाहिए। गांधार कोमल है, अतः यहाँ तोड़ी का भ्रम हो जाना संभव है, किंतु 'ग म रे, रे, सा' इस प्रकार स्वर लेने से तोड़ी की छाया कम हो जाएगी। 'ग म ग रे सा' यदि इस प्रकार लिया, तो भैरवी आगे आ जाएगी। इस राग-स्वरूप में द्रुत तानें ली गईं, तो यह राग भैरवी में मिश्रित हो जाएगा, अतः इसमें इस तरह की कोशिश ही नहीं करनी चाहिए।

प्रश्न—हम तो अपने ही मत से चलनेवाले हैं, अन्य मत तो केवल संगृहीत रखेंगे।

उत्तर—यही मार्ग उत्तम है। अपना स्वयं का कोई एक निश्चित मत होना ही चाहिए। ऐसा होने पर भी अन्य मतों का अनादर करने को बिलकुल आवश्यकता नहीं होती। ये सब बातें तुम समझ ही चुके हो।

प्रश्न—इस राग को हम समझ गए, अब दूसरा लीजिए?

उत्तर—हाँ, अब 'अहीर-भैरव' राग लेता हूँ। यहाँ तुम्हें एक बात ध्यान में रख लेनी चाहिए कि 'अहीर-भैरव' और 'अहीरी' अथवा 'आहीरी' ये भिन्न-भिन्न राग-रूप माने जाते हैं।

प्रश्न—जिस तरह 'बंगाल' और 'भैरव-बंगाल' अथवा 'बंगाल-भैरव' राग हमने भिन्न-भिन्न माने हैं, उसी तरह इसे भी मानेंगे। ठीक है न?

उत्तर—हाँ, ग्रंथों में 'आहीरी' अथवा 'आहेरी' नाम हैं, परन्तु अपना 'अहीर-भैरव' इनसे अलग है। 'अहीरभैरव' बहुत ही कम गायकों को आता है, अतः इसे दुर्मिल रागों में से ही एक समझा जाता है। इसके स्वर-स्वरूप के सम्बन्ध में भी मतभेद दिखाई पड़ना सम्भव है। मुझे प्राचीन संस्कृत-ग्रन्थों में 'अहीरभैरव' ऐसा संयुक्त नाम नहीं दिखाई दिया। यह रागस्वरूप अपने गायकों ने नवीन ही उत्पन्न किया होगा। मेरे गुरु ने यह मुझे जिस प्रकार सिखाया है, उसी प्रकार मैं तुम्हें बताऊँगा। यही स्वरूप तुम्हें 'लक्ष्यसंगीत' में प्राप्त होगा, क्योंकि यह ग्रन्थ आधुनिक पद्धति पर है। इसमें संदेह नहीं कि यह बहुत मधुर और स्वतन्त्र रागस्वरूप है।

प्रश्न—इस राग के कौन-कौनसे मुख्य लक्षण हमें ध्यान में रखने होंगे ?

उत्तर—यह एक भैरव-प्रकार है, अतः गायक मुख्य अंग भैरव का ही रखते हैं, परन्तु उत्तरांग में काफी ठाठ के स्वर सम्मिलित होते हैं, अतः श्रोताओं के कानों को कुछ विचित्र स्वरूप लगता है। कोई-कोई गायक अंतरे में तीव्र रे स्वर भी लेते हैं। मेरे गुरु ने भी ऐसा ही किया था।

प्रश्न—तो फिर हम इस प्रकार एक स्थूल नियम स्वीकार कर लेते हैं कि पूर्वाङ्ग में 'भैरव' और उत्तरांग में 'काफी' ठाठ के स्वर ग्रहण करने पर 'अहीरभैरव' उत्पन्न होगा। परन्तु अंतरे में यदि कहीं तीव्र रे ग्रहण किया जाता हो, तो कोई यह कहेगा कि इस राग में भैरव और खमाज ठाठ मिल जाते हैं ?

उत्तर—यह बात मैं समझनेवाले की सुविधा पर छोड़ दूँगा। इसमें तीव्र गांधार भैरव-अंग से है, खमाज-अंग से नहीं, यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए। मेरे कथन का तात्पर्य सहज ही तुम्हारी समझ में आ जाएगा।

प्रश्न—मुख्य राग भैरव रखने के कारण अधिकतर तानबाजी अथवा राग-विस्तार भैरव का ही किया जाता होगा ?

उत्तर—जबकि कुल प्रभाव भैरव का ही रखना है, तो अन्तिम भाग भैरव का दिखाना ही पड़ेगा, तथापि उत्तरांग में तानों में भी बिलकुल भिन्न स्वरूप अच्छी तरह स्पष्ट रखा जा सकता है। इस राग में भैरव का आंदोलित धैवत गृहीत न होने से, कुल मिलाकर स्वरूप बहुत-कुछ भिन्न हो जाता है। वह सब मैं अब तुम्हें स्वरों से प्रत्यक्ष समझानेवाला हूँ।

प्रश्न—जी हाँ, इससे हमें अच्छी तरह और शीघ्र ही समझ में आ जाएगा। इस राग में वादी स्वर कौनसा होता है ? धैवत तो होगा ही नहीं ?

उत्तर—वादी 'षड्ज' माना जाता है। कोई-कोई कहते हैं कि जगह-जगह मध्यम मुक्त रूप से प्रयुक्त होता है, अतः इसे वादी माना जाए। स्थायी का भाग भैरव-अंग से गाया जाता है, अतः गायक बड़ी युक्ति से आरम्भ में श्रोताओं के हृदय पर भैरव का प्रभाव उत्पन्न करते हैं। वह इस प्रकार—'ग, मरे॒, रे॒, सा, सारे॒ग, म,

रे॒, पगम, रे॒, रे॒, सा, सा, रे॒, सा, रे॒, गमपगम, रे॒, रे॒, सा।' ये स्वर अच्छे सावकाश रूप से गाए गए, तो भैरव का संकेत अवश्य हो जाएगा। अब देखें कि तुम मध्यम बढ़ाकर पंचम तक कैसा विस्तार करते हो।

प्रश्न—हम इस प्रकार करेंगे—सारे॒रे॒, सा, ग, म, रे॒गम, गमप, ग, म, रे॒गम, पमग, मरे॒, रे॒, सा; सारे॒सा, गमरे॒सा, गमनि॒सा, गम, पगम, सारे॒गम, रे॒पगमरे॒, सा, सारे॒सा।

उत्तर—यह अच्छा रहा। यह पूरा विस्तार इस 'अहीरभैरव' राग में निभ जाएगा। मेरे गुरु ने जो चीज गाई थी, उसका उठाव उन्होंने इस प्रकार रखा था, देखो—'गरे॒सा, नि॒सा, रे॒ग, रे॒ग, म'। अंतिम 'म' उन्होंने मजे से खुला छोड़ दिया।

प्रश्न—इतना करने के बाद, आगे?

उत्तर—आगे उन्होंने इस प्रकार भैरव-अंग लिया :—

'पमग, रे॒, सा, सारे॒सा, ग, म, रे॒, सा, गम, प, रे॒गमप, मपगम, रे॒, सा, गरे॒सा, रे॒गम'।

प्रश्न—इसमें बिलकुल सन्देह नहीं कि यह एक चामत्कारिक स्वरूप हो जाता है। इसमें वह खुला मध्यम आया कि तत्काल ही निराला प्रभाव हो जाता है। 'सा, रे॒गम', यह टुकड़ा भी हृदय को आकर्षित करता है।

उत्तर—यह सत्य है। यह मध्यम बार-बार आगे आने से कहीं-कहीं पर किसी को थोड़ा-सा 'ललित' का आभास हो सकता है, परंतु आगे पंचम आने से और ऋषभ का आन्दोलन देखकर वह भ्रम सहज में दूर हो जाएगा।

प्रश्न—हम सोचते हैं कि कुछ 'प्रभात' राग का आभास होगा, क्योंकि उसमें ललित-अंग का मध्यम है और भैरव-अंग मुख्य रहता है?

उत्तर—परन्तु यह ध्यान में होगा ही कि 'प्रभात' भैरव से किस प्रकार अलग हो जाता है।

प्रश्न—हां, हां, प्रभात का उत्तरांग भैरवी का होने पर भी इसमें दोनों मध्यमों का उपयोग होता है, ऐसा इस राग में बिलकुल नहीं होता। यहां कुछ और ही आनन्द है। यह 'सा रे॒ ग, रे॒ ग, म प, ग म, रे॒, सा' का टुकड़ा कुछ स्वतन्त्र ही प्रभाव उत्पन्न करता है। गुरु जी! थोड़ी देर के लिए तो यही सोच हो जाता है कि इसकी तुलना किस राग से की जाए!

उत्तर—यह खूबी तुम्हारे ध्यान में अच्छी तरह आ गई है। तुम मर्मज्ञ तो हो ही, तुम्हें इसे समझने में देर कैसे लगेगी? यह राग बहुत ही कम दिखाई पड़ने-योग्य है, अतः इसके सम्बन्ध में बहुतसी जानकारी तो मैं क्या दे सकता हूं? तो भी जितनी जानकारी मुझे प्राप्त है, उतनी तुम्हें प्रामाणिक रूप से बता देना मेरा

कर्तव्य है। अधिक जानकारी प्राप्त करने का प्रयत्न तुम आगे चलकर करोगे ही। मुझे मिली हुई जानकारी से मिलती-जुलती तुम्हें और बातें प्राप्त हो जाने पर तुम्हारे पास राग-नियम कायम करने का एक बड़ा भारी साधन हो जाएगा। इस समय तो तुम्हारे लिए 'लक्ष्यसंगीत' एक सुदृढ़ आधार है ही। मेरे एक मित्र ने मुझे सुझाया था कि 'अहीरभैरव' में आरोह तीव्र स्वरों से और अवरोह कोमल स्वरों से करने का नियम स्वीकार किया जाए। परन्तु इस मत को स्वीकार करने पर आरोह में 'सा रे ग, रे ग़ म' इस प्रकार स्वर नहीं लिए जा सकेंगे, अतः उत्तरांग में 'मिश्रमेलत्व' स्वीकार करना ही अधिक युक्तिसंगत दिखाई देता है।

प्रश्न—परन्तु आपने तीव्र ऋषभ ग्रहण करने की जो बात बताई थी, क्या वह भाग बताएँगे ?

उत्तर—हाँ, यह स्वर अन्तरे में ग्रहण किया जाता है, ऐसा ही मैंने कहा था। ठीक है न ? वह भाग इस तरह है, देखो—'म, म, रे, म, म, प, प.......'

प्रश्न—यह क्या! क्या इस तरह सोरठ का अंग मध्य में लिया जाएगा ?

उत्तर—तुम व्यर्थ ही जल्दी कर गए। अगला टुकड़ा तो सुनो—'ममरे, मम, प, प, मम, पधनि, धपधम, पमगरे, सा, पमग, सारेगरेगम।'

प्रश्न—वास्तव में यह बिलकुल निराला स्वरूप है। इसमें कहीं-कहीं उत्तरांग में हमें खम्बावती का मिश्रण ज्ञात होता है, परन्तु इस राग में दूसरे राग का आभास होने से राग-वैचित्र्य ही बढ़ेगा, बशर्ते कि उस भाग को नियमों के अनुसार और समझ कर ही लिया जाए।

उत्तर—हाँ, तुम्हारा यह कथन गलत नहीं है। नियमानुसार राग-मिश्रण करना बड़ी कुशलता मानी जाती है। अपनी पद्धति में भिन्न-भिन्न प्रकार से मिश्रण होते हैं। कहीं आरोह एक ठाठ का और अवरोह दूसरे ठाठ का होता है। कहीं उत्तरांग तो एक से आरोह-अवरोह का होता है, परन्तु पूर्वांग का आरोहावरोह अलग-अलग ठाठों का होता है। कहीं इसका उच्च स्वरूप होता है। कहीं दो रागों के स्वतन्त्र अंश, रागवैचित्र्य न बिगाड़ते हुए बड़ी खूबी से मिला दिए जाते हैं। कहीं प्रस्तुत राग में वादी स्वर लगाने का तरीका अन्य राग का ग्रहण किया जाता है। कहीं-कहीं तानबाजी के लिए आश्रय-रागों का सम्बन्धित भाग ग्रहण कर लिया जाता है। कहीं जान-बूझकर आवश्यकतानुसार, बिना मुख्य राग को बिगाड़ते हुए विवादी स्वर नियत मात्रा में सम्मिलित किया जाता है। कहीं-कहीं तो विवादी स्वरों की सहायता से प्रचार में रागों के उपांग ग्रहण कर लिए जाते हैं। थोड़ी देर के लिए हम देव-बिहाग, पटबिहाग आदि रागस्वरूप इसी प्रकार के मानेंगे। ये सभी तुम्हारे कानों तक पहुँच ही चुके हैं।

प्रश्न—गुरुजी, 'पटबिहाग' का नाम तो हमने अभी तक नहीं सुना!

उत्तर—सच है, इसके सम्बन्ध में मैंने तुम्हें कुछ नहीं बताया। उत्तर के एक उर्दू-ग्रन्थ में मैंने यह नाम देखा था। मैंने इस राग के नाम से एक प्रसिद्ध खयाल अपने गायकों द्वारा गाते हुए सुना है, परन्तु यही खयाल उत्तर के एक हिन्दी-ग्रन्थ में 'नटबिहाग' के नाम से बताया गया है।

प्रश्न—अब चाहे वह राग 'नट' हो अथवा 'पट' हो, हमें तो उसके नियम समझ में आने चाहिए।

उत्तर—ठीक कह रहे हो। यह तो तुम समझ ही गए होगे कि बिहाग के स्वरूप में परिवर्तन करने से नटबिहाग अथवा पटबिहाग उत्पन्न किया जाता होगा।

प्रश्न—जी हाँ, पर बिहाग का जीवभूत भाग इस प्रकार है—'गमपमगसानि़, प़नि़सागमप, निप'। भला, इसमें कहाँ पर मोड़-तोड़ की जाएगी ?

उत्तर—उस समय मैंने दो बातें देखी थीं। प्रथम, अवरोह में बीच-बीच में कोमल निषाद ग्रहण करना और द्वितीय, आरोह में कहीं-कहीं ऋषभ लेकर झिंझोटी का आभास उत्पन्न करना। 'गमनि॒धप, गमरेगमप, गमग, सानि़, प़नि़सा' इस रीति से गाए जाने पर बिहाग का एकाध नवीन स्वरूप दीखने ही लगता है। ऐसे मिश्रण में तुम्हें कहीं पर बिहाग की और कहीं पर झिंझोटी की तान ली जाती हुई दिखाई देगी।

प्रश्न—अच्छा, उस उर्दू-ग्रन्थ में 'पटबिहाग' का ठाठ कौनसा बताया है ?

उत्तर—उस ग्रन्थ में इसे बिलावल ठाठ का राग बताया है। इस राग के सम्बन्ध में कोई कहते हैं कि हम कोमल नि का प्रयोग विवादी स्वर के रूप में करते हैं और कोई कहते हैं कि हम इस राग को खमाज ठाठ के अन्तर्गत मानते हैं। किन्तु हम इस उलझन में व्यर्थ ही क्यों पड़ें ? हमारा सिद्धान्त यही है कि नियमबद्ध प्रचार में विरोध न किया जाए। मैंने तुम्हें पिछले किसी संभाषण में तिलककामोद राग बताया था। तुम्हें उसका स्मरण है न ?

प्रश्न—जी हाँ, आपने उसे खमाज ठाठ का राग बताया था।

उत्तर—ठीक है ! अपने यहाँ इस राग में दोनों निषाद ग्रहण किए जाते हैं। परन्तु लखनऊ आदि स्थानों के गायक कोमल निषाद बिलकुल नहीं लेते।

प्रश्न—तो फिर वे किस प्रकार गाते हैं ?

उत्तर— उस तरफ इस राग (तिलककामोद) को इस प्रकार गाया जाता है—प़नि़सारेगसा, रेपमग, सारेग, सानि़, प़नि़सारेगसा, रेमपधमप, सां, पधमग, सारेग, सानि़। एक प्रकार से यह स्वरूप भी अच्छा दिखाई पड़ता है; क्योंकि देस, सोरठ आदि समप्राकृतिक राग इस तरह से भिन्न दिखाए जा सकते हैं। वे लोग इस राग को

कहीं-कहीं 'बिहारी' नाम भी देते हैं। उत्तर की ओर एक और मतभेद इस प्रकार पाया जाता है कि वे गौड़मल्हार में कोमल निषाद वर्ज्य करते हैं!

प्रश्न—क्या हम भी इस राग में इस स्वर को अल्पप्राय नहीं रखते ?

उत्तर—हाँ रखते हैं; परन्तु उधर तो उसे बिलकुल ही वर्जित करने का प्रचार है। आगे चलकर तुम उधर के गायकों के गायन में, इस राग में यह अवश्य देखना कि अवरोह करते हुए कोमल निषाद का 'कण' धैवत में शामिल होता है, या नहीं ? अरे हाँ, अच्छी याद आई। पिछली बार मैंने तुम्हें उत्तर का 'सावनीकल्याण' राग भी शायद नहीं बताया था, ठीक है न।

प्रश्न—जी हाँ, यह राग भी नहीं बताया। कोई बात नहीं, इसे अब बता दीजिए।

उत्तर—'सावनीकल्याण' की रूप-रेखा का अनुमान इस प्रकार हो सकेगा — 'प़प़ध़प़, सा, सारेसा; सा, मग, पप, गमपगमरेसा; प़प़ध़प़, सा;' थोड़ी देर के लिए ये स्वर 'हेमकल्याण' के समझ लो और—

'गरेसा, नि़ध़नि़ध़प़, प़सा, रेगरेसा, सासामग, पपध, पधपग, रेसाध़, गरेसा।'

ये स्वर 'सावनीकल्याण' के समझो। देखते हो न, कि ये राग किस प्रकार निकट आ जाते हैं ? कुछ अंशों में यह राग तुम्हें शुद्धकल्याण-जैसा दिखाई देगा, परंतु शुद्धकल्याण में तीव्र मध्यम अवरोह में लिया जाता है, वैसा इसमें नहीं लिया जाता। सारांश यह है कि इस संगीत-विषय में प्रचार से जितना कम झगड़ने का प्रसंग आए, उतना ही अच्छा है। मैं तुम्हें वही बता रहा हूँ, जो मैंने सीखा है और सुन पाया है। आगे चलकर तुम्हें जैसा अनुभव प्राप्त हो, उसे तुम भी प्रसिद्ध करना और अपने शिष्यों तथा मित्रों को मुक्त हृदय से बताते रहना। तुम्हारी अगली पीढ़ी तुम्हारा अनुभव लेकर और अधिक आगे बढ़ जाएगी। अस्तु, अब हमें अपने प्रस्तुत विषय की ओर बढ़ना चाहिए।

मैं यह कह चुका हूँ कि 'अहीरभैरव' में षड्ज और मध्यम का संवादित्व है। संस्कृत-ग्रंथकार 'आहीरी' और 'आभीरी' इस प्रकार भिन्न-भिन्न राग मानते हैं। हम भी इसी प्रकार मानकर आगे बढ़ें। 'आभीरी' नामक राग दक्षिण की ओर प्रसिद्ध ही है।

प्रश्न—दक्षिण की ओर 'आभीरी' राग किस ठाठ में माना गया है और उसके आरोह-अवरोह किस प्रकार रखे गए हैं ?

उत्तर—उस तरफ के ग्रंथों में 'आभीरी', 'आहीरी', 'आभेरी'—इस तरह के नाम प्राप्त होते हैं। आभेरी राग अपने आसावरी ठाठ में है। उसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—'साग॒मपनि॒सां। सांनि॒ध॒पमग॒रेसा'। यह स्वरूप मैंने उत्तर के एक गायक से ही सुना है। रेल की सुविधा के कारण शायद उसने यह स्वरूप दक्षिण से ही प्राप्त किया हो, तो आश्चर्य नहीं। उसने यह राग अपने उत्तर के तरीके से सुन्दरतापूर्वक गाया था। कुछ ग्रंथों में 'आहीरी' राग दक्षिण के तोड़ी ठाठ में अर्थात् अपने भैरवी

ठाठ में बताया है। प्रदर्शिनीकार 'आहीरी' को नटभैरवी ठाठ (अपने आसावरी ठाठ) में बताता है। वह 'आभेरी' और 'आहीरी' को एक ही ठाठ में मानता है और उनके आरोह-अवरोह इस प्रकार बताता है :—

सामगमपनिसां। सांनिधपमगरेसा। (आभेरी)। सारेसा, गम, पधनिसां। सांनिध, पमग, रेसा। (आहीरी)।

यदि गायक चाहें, तो ये दोनों स्वरूप योग्य वादी-संवादी नियत कर अपनी पद्धति में भी गाए जा सकते हैं।

रागविबोधे :—

आभीरनाटमेले शुद्धसमपधाश्च तीव्रतरऋषभः ॥
साधारणमृदुसौ चेत्यतः स्युराभीरनाटाद्याः ।
आभीर्यपि प्रदोषे पूर्णा गांशग्रहा च सन्यासा ॥

स्वरमेलकलानिधौ :—

शुद्धाः समपधाश्चैव पंचश्रुत्यृषभस्तथा ।
साधारणोऽपि गांधारश्च्युतषड्जनिषादकः ॥
स्वरैरमीभिः संयुक्त आहरीमेलको भवेत् ।
सन्यास आहरीरागः सांशः षड्जग्रहोऽपि च ॥
संपूर्णश्चरमे यामे गातव्योऽसौ विचक्षणैः ॥

चतुर्दंडिप्रकाशिकायाम् :—

षड्जश्च पंचश्रुतिको ऋषभश्च तथापरः ।
साधारणाख्यगान्धारः शुद्धाश्च मपधास्तथा ॥
काकल्याख्यनिषादश्चेत्याहीरीमेलके स्वराः ॥

ये तीनों ग्रन्थकार एक ही मत के हैं। आजकल व्यंकटमखी का ग्रंथ ही दक्षिण का सर्वोच्च व अन्तिम आधार-ग्रन्थ है, यह मैं तुम्हें पहले भी बता चुका हूँ।

प्रश्न—जी हाँ, आपने यह भी कहा था कि पं० व्यंकटमखी ने रामामात्य की बड़ी कठोर टीका की है। हमें यह देखने की प्रबल अभिलाषा है कि उसने यह टीका किस तरह की है। इससे यदि कुछ विषयांतर होता हो, तो भी कोई हानि नहीं। क्या आप वह सुनाएँगे?

उत्तर—तुम चाहते हो, तो मैं संक्षेप में सुनाए देता हूँ। आरंभ में संदर्भ समझने के लिए एक-दो बातें अच्छी तरह समझ लो। 'स्वरमेल-कलानिधि' ग्रन्थ अब अनुवाद-सहित प्रकाशित हो गया है। यदि तुम उसे पढ़ लोगे, तो इस टीका का मर्म अधिक अच्छी तरह तुम्हारी समझ में आ जाएगा। रामामात्य ने आरम्भ में मुख्य बीस मेल बताए हैं। इन्हें बताकर फिर इनमें से पाँच मेल कम करने की सम्मति दी है।

प्रश्न—यह कैसे ?

उत्तर—वह कहता है कि अन्तरगान्धार और काकली निषाद स्वरों को च्युत-मध्यम गान्धार और च्युत-षड्ज निषाद में अन्तर्भूत मान लें, तो पन्द्रह मेल ही काफी होंगे। उसके इस विधान पर शंकराभरण, गौड़ी, पाड़ी आदि रागों के स्वर-स्वरूपों पर मुख्यतः व्यंकटमखी ने टीका की है। इस समय दक्षिण का प्रचार देखते हुए यह कहा जा सकता है कि इस टीका में कुछ सचाई भी है। अब यह टीका कैसी है इसे देखो :—

अथेदानीं विचार्यंते रामामात्येन लक्षिताः ।
मेलप्रकरणे मेलाः स्वरमेलकलानिधौ ॥
तथा हि विंशतिर्मेलानाह रामो विमूढधीः ।
युज्यते तत्कथं वेति तत्पृच्छामो वयं पुनः ॥
त्वदुक्तरीत्या सारंगनाटकेदारगौलयोः ।
संप्राप्तमेकमेलत्वं मेलाः स्युर्विंशतिः कथम् ॥
ननु विंशतिमेलानां मध्ये पंचदशस्वपि ।
मेलेषु पंचमेलानामंतर्भावस्त्वयेरितः ॥
अन्यस्य पुनरन्यस्मिनांतर्भावो भविष्यति ।
अन्तराख्यातगांधारकाकल्याख्यनिषादयोः ॥
स्थाने प्रतिनिधित्वेन संगृह्येते यदा स्वरौ ।
च्युतमध्यमगांधारच्युतषड्जनिषादकौ ॥
तदा विंशतिमेलानां मध्ये पंचदशस्वपि ।
मेलेषु पंचमेलानामंतर्भावस्त्वयेरितः ॥
सालंगनाटकेदारगौलमेलद्वयेऽपि च ।
अविशेषेण भवता संग्राह्यत्वे सकर्मकौ ॥
च्युतमध्यमगांधारच्युतषड्जनिषादकौ ।
अन्यस्य पुनरन्यस्मिन्नंतर्भावो भवेत्तदा ॥
ततो विंशतिमेलोक्तिर्व्याख्यातेयं दुरुत्तरा ॥
मेलानां विंशतेर्यानि लक्ष्माण्ययुक्तानि हि त्वया ।
तानि सर्वाणि दृश्यंते विरुद्धान्येव केवलम् ॥
तत्रस्थविपुलाख्यानन्यायेन कतिचित् पुनः ।
लक्षणानि प्रदर्श्यंते राम एष्वेव मोहितः ।
न हि तान्यत्र शक्यंते दूषणानि त्वयेरिते ॥

ग्रंथे गणयितुं दोषसहस्रग्रथने मया ॥
तथा हि भैरवीरागः शंकराभरणस्तथा ।
गौडीरागश्च कथितास्त्वया श्रीरागमेलजाः ॥
तत्कथं, भैरवीशुद्धधैवतेनान्विता खलु ।
शंकराभरणो रागोंतरगांधारवांस्तथा ॥
सकाकलीनिषादश्च गौडीरागस्त्वयं पुनः ।
जातो मालवगौलाख्यरागमेलादिसंस्थितः ॥
रागाणां पुनरेतेषां जन्म श्रीरागमेलकः ।
कथं विकत्थसे राम-राम-राम तव भ्रमः ॥
यच्चोक्तं भवता शुद्धरामक्रीरागमेलकः ।
पाडीरागार्द्रदेशाख्यरागजन्म भवेदिति ॥
तद्दोषजातये राम रामस्मरणमातनु ।
पाड्यार्द्रदेशीरागौ च प्रसिद्धौ गौलमेलजौ ॥
यद्प्यदेवता राम रामबुद्धिविरामता ।
देशाक्षीमेल एवैष कैशिक्याख्यनिषादकम् ॥
प्राप्य कन्नडगौलः स्याद्गौलस्यातिमृषावहा ।
कन्नडगौलः श्रीरागमेलनतो मतो न किम् ॥
यच्च कन्नडगौलस्य मेले समुपजायते ।
घंटारव इति प्रोक्तं पातकेनामुना पुनः ॥
सत्यं विमोक्ष्यस्ये राम रामसेतुं गतोऽपि न ।
भैरवीमेलसंभूतो रागो घंटारवः खलु ॥
यद्यप्युक्तं त्वया नादरामक्रीरागमेलके ।
साधारणाख्यगांधारः संग्राह्य इति तत्त्वतः ॥
अपूर्वयकारत्वमावेदयति राम ते ।
नादरामक्रियामेलगांधारोऽप्यंतराभिधः ॥
यच्चोक्तं रीतिगौलाख्यरागमेलस्य लक्षणम् ।
शुद्धाः सरिगमाः पश्च पंचश्रुतिकधैवतः ॥
कैशिक्याख्यनिषादश्चेत्यत्र रामक्रियस्तथा ।
भैरवीरागमेलोत्थो रीतिगौलः प्रकीर्त्यते ॥
यच्च केदारगौलाख्यरागमेलस्य लक्षणे ।

संग्राह्यश्च्युतषड्जाख्यनिषाद इति कल्पितम् ॥
तत्रस्थानैव शोचामि तव रामाभिधां पुनः ।
कैशिक्याख्यनिषादो हि मेले केदारगौलके ॥
यदप्युक्तंत्वया राम हेजज्जीरागमेलके ।
काकल्याख्यानिषादस्तु संग्राह्य इति तत्पुनः ॥
अतितुच्छं यतस्तस्मिन्मेले शुद्धनिषादकः ।
गृह्यते सकलैर्लोकैर्वादकैर्गायकैरपि ॥
यच्चोक्तं भवता राम कांभोजीमेललक्षणम् ।
गनी ह्यन्तरकाकल्यौ रिधौपंचश्रुती तथा ॥
शेषाः शुद्धाश्च समपाः कांभोजीमेलके त्विति ।
तत्त्वावत्त्वद्गीतज्ञबहिष्कार्यत्वसाधनम् ॥
कांभोजीरागमेलस्य कैशिक्याख्यनिषादकः ।
इति नो वेत्ति किं वीणावादिनां गृहदास्यपि ।
तस्माद्धैकाररामोक्तान्मेलान्विश्वस्य वैणिकैः ।
कांतारकूपे वेष्टव्या उद्धृत्य भुजमुच्यते ॥

प्रश्न—यह कैसी टीका है, गुरुजी ? क्या यह एक प्रकार का अन्याय नहीं है ? रामामात्य ने अपना स्वत: का अनुभव अपने ग्रंथ में लिखा, अब यदि वह व्यंकटमखी के मत से नहीं मिलता, तो क्या उसपर इस प्रकार टीका करनी चाहिए ? उसके आधार व्यंकटमखी से भिन्न रहे होंगे ?

उत्तर—यहाँ तुम यह भूल गए कि व्यंकटमखी, रामामात्य के सौ-डेढ़सौ वर्ष पश्चात् हुआ था। मालूम होता है कि इस टीका को देखकर तुम्हें रोष हो आया है। परन्तु इसमें रुष्ट होने का कोई भी कारण नहीं है। व्यंकटमखी के हृदय में पिछला संपूर्ण संगीत समाप्त कर अपना मत स्थापित करने की अभिलाषा रही होगी, इसी लिए उसने इस प्रकार कठोर टीका की होगी। उसकी वह अभिलाषा पूर्ण भी हो चुकी है, यह हम आज दक्षिण की संगीत-पद्धति को देखकर जान सकते हैं। व्यंकटमखी की पद्धति के मूल तत्त्व संपूर्ण देश के संगीत के लिए उपयुक्त थे। मैं तुम्हें अनेक बार यह समझा चुका हूँ कि हमें आलोचना से कभी भी कुपित या भयभीत नहीं होना चाहिए। यदि हमारा मत सचमुच टीका करने-योग्य हो, तो उसपर की हुई टीका से उपकार ही होगा, और यदि वह टीका अयोग्य या दूषित बुद्धि से भी की गई हो, तो अपना बचाव समाज के सत्पुरुषों को ही सौंप देना चाहिए। 'स्निह्यंति च निसर्गेण संतः सन्मार्गगामिनि ।' यह उक्ति सदैव ध्यान में रखनी चाहिए।

प्रश्न—क्या सोमनाथ के 'रागविबोध' के सम्बन्ध में व्यंकटमखी ने कहीं पर कुछ उल्लेख किया है ?

उत्तर—नहीं, मुझे इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में उसके द्वारा किया हुआ उल्लेख कहीं पर भी प्राप्त नहीं हुआ। अब यह कैसे कहा जा सकता है कि उसे सोमनाथ का ग्रन्थ ही नहीं दिखाई दिया था, अथवा उसे सोमनाथ का गंगाजमनी स्वरूप ही पसन्द नहीं आया।

प्रश्न—यह बात शायद आपने इसी लिए कही है कि सोमनाथ ने आधी परिभाषाएँ दक्षिण की और आधी उत्तर की ग्रहण कर विचित्र ढाँचा खड़ा कर दिया है। ठीक है न ?

उत्तर—यह तो मेरा अपना तर्क है। मैं यह नहीं कह सकता कि व्यंकटमखी ने 'रागविबोध' देखा था या नहीं। यह तो स्पष्ट ही है कि उसने तीव्रतर, तीव्रतम आदि शब्दों की गड़बड़ स्वीकार नहीं की है। शायद उसे सोमनाथ द्वारा किया हुआ घोटाला पसन्द नहीं आया हो। शायद उसने एक ही शुद्ध सप्तक में दक्षिण का शुद्ध रे और उत्तर का शुद्ध ध सम्मिलित करना पसन्द नहीं किया होगा। फिर सोमनाथ की सम्पूर्ण व्यवस्था में कोमल धैवत का स्थान न देखकर भी उसे निराशा हुई होगी। क्योंकि दक्षिण की ओर कोमल रे, ध ग्रहण करनेवाला 'मालवगौड़ मेल' सम्पूर्ण संगीत का मुख ही समझा जाता है। यदि सोमनाथ ने केवल उत्तर की परिभाषा एवं रचना यथार्थ रूप में स्वीकार की होती, तो व्यंकटमखी को इतनी कठिनाई नहीं होती।

प्रश्न—क्या सोमनाथ ने अपने आधार-ग्रन्थ का उल्लेख किया है ?

उत्तर—सोमनाथ अपने ग्रन्थ के आरम्भ में इस प्रकार कहता है:—

रागविबोधं विदधे विरोधरोधाय लक्ष्यलक्षणयोः।
प्राचां वाचां किंचित्सारं सारं समुद्धृत्य ॥

आगे चलकर टीका में इस प्रकार और खुलासा करता है:—

प्राचीनानां हनुमन्मतंगनिःशंकादीनां वा वाचो ग्रन्थरूपास्तासां किंचित्सारं मुख्यमुख्यांशं समुद्धृत्य।

भला, इससे व्यंकटमखी-जैसे पंडित को क्या सन्तोष हो सकता है ? प्रथम तो यही मुख्य प्रश्न पैदा होता है कि सोमनाथ ने ऐसा कौनसा ग्रन्थ देखा होगा, जिसमें तीव्र, तीव्रतर आदि संज्ञाएँ दी गई हों। और यदि उसने कोई ऐसा ग्रन्थ देखा हो, तो उसका नाम अथवा उसके प्रत्यक्ष उद्धरण 'रागविबोध' में क्यों नहीं दिखाई पड़ते ?

प्रश्न—पिछले समय आपने 'रागतरंगिणी' ग्रन्थ के सम्बन्ध में बताया था। उसमें तीव्र, तीव्रतर आदि संज्ञाएँ भी थीं। सोमनाथ ने कहीं उसी ग्रन्थ को तो नहीं देखा ?

उत्तर—अब यह विश्वासपूर्वक कैसे कहा जा सकता है ? सोमनाथ ने इस का कहीं पर भी स्पष्ट उल्लेख नहीं किया। उसके ग्रन्थ से यह अवश्य ही स्पष्ट रूप

से दिखाई देता है कि उसने उत्तर का संगीत सुना था। उत्तर के संगीत की उसकी जानकारी कोरी सुनी-सुनाई थी या प्रत्यक्ष थी, यह कौन बता सकता है? यह गलत नहीं है कि उत्तर की परिभाषाएँ दक्षिण की रचना में सम्मिलित करते हुए उसने बहुत-सा मैटर अपने पास से मिलाकर असम्बद्ध कार्य किया है।

प्रश्न—यह तो निर्विवाद है कि वह दक्षिण का ही पंडित था।

उत्तर—मैं समझता हूँ कि यह बात थोड़ी देर में ही सिद्ध की जा सकती है। दक्षिण की ओर अपने हिन्दुस्तानी कोमल ऋषभ की जगह शुद्ध ऋषभ मानने का प्राचीन व्यवहार है। सोमनाथ ने भी अपना ऋषभ वही माना है; क्योंकि उसकी व्यवस्था में कोमल रे शुद्ध रे से भिन्न नहीं है। भैरव, तोड़ी आदि रागों में वह इसी प्रकार का शुद्ध ऋषभ मानता है, जो ठीक ही है। अब एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त और देखो। दक्षिण के 'साधारण ग' और 'कैशिक नि' स्वरों को हिन्दुस्तानी 'कोमल ग' और 'कोमल नि' मानने का प्रचार किसी को अस्वीकार नहीं है। अपने विद्वान् इन स्वरों के आंदोलन क्रमशः २८८ और ४३२ बताते हैं। अहोबल का कथन 'षड्ज-पंचमयोर्मध्ये गांधारस्य स्थितिर्भवेत्।' तुम्हें याद ही होगा। अब उत्तर-पद्धति का शुद्ध ग 'पारिजात' के प्रमाण से २८८ आंदोलन का लेकर हमें सोमनाथ के किए हुए स्वर-वर्णन को परखना है। सोमनाथ कहता है:—

तीव्रश्चतुःश्रुतित्वे पंचश्रुतिकत्व एव तीव्रतरः।
षट्श्रुतिकत्वे तीव्रतम, इति, परं ता यथायोग्यम्॥

इससे यह जान पड़ता है कि सोमनाथ चार श्रुति पर तीव्रत्व मानता था। दक्षिण की ओर चतुःश्रुतिक रि, पंचश्रुतिक रि, षट्श्रुतिक रि, इस प्रकार की संज्ञाएँ हैं। इनके स्थान पर उसने उत्तर के नाम स्वीकार करना पसन्द किया।

प्रश्न—परन्तु उत्तर का शुद्ध रे २७० आंदोलन का होता है, फिर उसका उत्तर की संज्ञाओं को ग्रहण करना सुरक्षित कैसे कहा जा सकता है?

उत्तर—यह तथ्य तुम्हारे ध्यान में आ गया, बड़ा अच्छा हुआ। यह गड़बड़ तो होती ही है। सोमनाथ कहता है:—

पंचश्रुतिः रिः शुद्धाद्गांधारात् न पृथक्। षट्श्रुतिकश्च रिः साधारणाव्यविकृतगांधारात् न पृथक्।

इतना कहने के पश्चात् तत्काल वह कहता है:—

चतुःश्रुतित्वे एव तीव्र इति रिधादीनां संज्ञेत्यर्थात्। एवं पंचश्रुतिकत्व षट्श्रुतिकत्वयोरेव तीव्रतरस्तीव्रतम इति च संज्ञेयं॥

यदि सोमनाथ ने शुद्ध रे अहोबल की समता का माना हो, तो साधारण ग कभी भी तीव्रतम रे नहीं हो सकता।

प्रश्न—और अहोबल की दृष्टि से साधारण ग, तीव्र रे हो ही जाता है, क्योंकि उसका स्थान शुद्ध के आगे एक श्रुति पर होता है। यही बात है न ?

उत्तर—हाँ, यह तो स्पष्ट ही है। क्या अहोबल इस प्रकार नहीं कहता ?

साधारणो रिस्तीव्रः स्यादिति सूरिविनिश्चयः।
साधारणांतरौ गौ स्तस्तीव्रतीव्रतराविति ॥

मजा यह हुआ है कि अहोबल को दक्षिण के स्वर और सोमनाथ को उत्तर के स्वरूप पूर्णरूपेण समझ में नहीं आ सके। अहोबल ने अपने स्वरों की एकवाक्यता दक्षिण के स्वरों से कर दिखाने की असफल चेष्टा अवश्य की है, परन्तु साथ ही यह बुद्धिमानी भी की है कि अपने रागों में दक्षिण की परिभाषाओं का उपयोग नहीं किया। सोमनाथ ने व्यर्थ ही अपनी रचना में उत्तर की परिभाषाएँ उपस्थित कीं और इस तरह अपने सुन्दर ग्रन्थ का नाश कर डाला। कहीं-कहीं पर तो गलती की अपेक्षा दुराग्रह करने-जैसा प्रयास दिखाई पड़ता है। उसके शुद्ध गांधार के सम्बन्ध में अभी दो शब्द और कहने हैं। वह अपने ३२ वें श्लोक की टीका में कहता है :—

एवं सति गमयोरपि संज्ञात्रये प्राप्ते आह। परं ता इति परन्तु ताः संज्ञा यथायोग्यं यथार्हं गस्य मस्य च षट्श्रुतिकत्वपंचश्रुतिकत्वयोः अन्तरमृदुम संज्ञयोः प्रवृत्ते मस्य तु चतुःश्रुतिकत्वस्याव्यभिचारात् पंचश्रुतिकत्वस्य चासंभवादित्यर्थः।

इस उद्धरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सोमनाथ 'साधारण ग' को त्रिश्रुतिक और 'अन्तर ग' को चतु:श्रुतिक मानता था, अर्थात् उसने उत्तर के शुद्ध गांधार का स्थान दक्षिण की ओर का ही समझा था।

प्रश्न—अब ये समस्त बातें हमारी समझ में आ गईं। इसमें सन्देह नहीं कि सोमनाथ दक्षिण का पंडित सिद्ध हुआ, परन्तु उसने 'मृदु म' और 'तीव्रतम ग' ये नाम क्यों ग्रहण किए होंगे ?

उत्तर— 'मृदु म' तो 'च्युत म' के स्थान पर ग्रहण करना उसे आवश्यक ही हो गया था, परन्तु वह स्थान उत्तर के 'तीव्रतम ग' की जगह आता था, इसलिए उसने 'तीव्रतम ग' को खींचकर 'शुद्ध मध्यम' पर बैठा दिया ! उत्तर की ओर 'शुद्ध मध्यम' का दूसरा नाम 'अतितीव्रतम ग' भी था। उसने इसमें से 'अति' शब्द निकाल फेंका !

प्रश्न—परन्तु 'तीव्रतम म' नाम सोमनाथ ने किस प्रकार ग्रहण किया होगा ?

उत्तर—क्यों भला ? ३२-वें श्लोक में उसने नियम दे रखा है न ? 'षट्श्रुति॰ कत्वे तीव्रतम इति।' इस नियम से मध्यम स्वर दो श्रुति चढ़ने पर 'तीव्रतम म' हो ही जाएगा। उसके आगे 'मृदु प' आ जाएगा। मैं समझता हूँ कि सोमनाथ का यह कृत्य तुम्हें 'नाम तेरा और गाँव मेरा' जैसा दिखाई देता होगा ?

प्रश्न—जी हां, हम तो यही समझ रहे थे कि जब मध्यम स्वर पंचम की एक, दो और तीन श्रुतियां ग्रहण करे, तब क्रमशः तीव्र, तीव्रतर और तीव्रतम हो जाता है।

उत्तर—उत्तर-पद्धति के नियम से यह ठीक है। अहोबल भी सर्वप्रथम इसी प्रकार समझकर चला था :—

तथा तीव्रतमो गोऽपि मृदुर्म इति कीर्तितः।
साधारणांतरौ मौ स्वस्तीव्रतीव्रतराविति ॥
मश्च तीव्रतमोऽप्युक्तो मृदुप इति पंडितैः ॥ ७५–६ ॥

परन्तु आगे चलकर सोमनाथ का पांडित्य देखकर अहोबल घबरा गया। यह बात मैं तुम्हें पहले भी समझा चुका हूँ। सोमनाथ ने 'षट्श्रुतिक म' के आधार के लिए कल्लिनाथ को प्रस्तुत किया (श्लोक ३४)। 'सप्तश्रुतिक म' अथवा 'मृदु प' यह स्वर 'च्युत प' का प्रतिनिधि था। अहोबल यही समझा होगा कि कल्लिनाथ ने 'तीव्रतम म' नाम 'षट्श्रुतिक मध्यम' को दिया है। परन्तु अहोबल चतुर था, अतः उसने अपने रागों में 'तीव्रतर म' नाम ही पसन्द किया। यह मैं तुम्हें बता चुका हूँ।

प्रश्न—ठीक है, परन्तु सोमनाथ ने 'तीव्रतर म' की जगह 'तीव्रतम म' किस आधार से बताया होगा ?

उत्तर—इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन है। यह कहना भी ठीक नहीं दिखाई देता कि सोमनाथ एक श्रुति चढ़ने-उतरने का विधि-निषेध नहीं मानता था। पिछली बार 'तरंगिणी' के विकृत स्वर बताते हुए मैंने तुम्हें बतलाया ही था कि—

षड्जस्य च निषादश्चेद् गृह्णाति प्रथमां श्रुतिम्।
तदा संगीतविद्भिः स तीव्र इत्यभिधीयते ॥
द्वितीयामपि चेदेवं तदा तीव्रतमः स्मृतः।
षड्जस्य द्वे श्रुती गृह्णन्निषादः काकली मतः।
तीव्रतमे निषादे च गेया सैव विचक्षणैः ॥

शायद सोमनाथ इसी विचारधारा से प्रभावित रहा हो। उसकी विचारधारा कुछ भी क्यों न हो, पूर्वांग में उसकी परिभाषाओं से अधिक हानि नहीं होती। तमाम गड़बड़ उत्तरांग में हुई है, क्योंकि वहां उसने अपने दक्षिण के शुद्ध धैवत को बिलकुल दूर फेंककर उत्तर का धैवत (४०५ आन्दोलन का कहा जाए) शुद्ध कहकर स्वीकार कर लिया है। ऐसा कर डालने से उसकी पद्धति में कोमल धैवत अशक्य हो गया। दक्षिण के शुद्ध निषाद का स्थान शुद्ध धैवत द्वारा ग्रहण कर लिए जाने पर कैशिक निषाद की जगह 'शुद्ध नि' आया और:—

कैशिकिनः प्रादुर्भावाय अन्तरा निषादमृदुषड्जसार्योर्मध्ये धेरा अन्या सारी स्यात् सा तु निषादसार्योः समीपे स्थाप्या।

इस प्रकार वीणा-प्रकरण के २७-वें श्लोक की टीका में उसे कहने को विवश होना पड़ा। ऐसा करने का कारण वह चाहे जो कहता हो, परन्तु मर्मज्ञों को यह दिखाई दे जाता है कि यह अनर्थ शुद्ध धैवत का स्थान गलत मान लेने से हुआ है।

प्रश्न—परन्तु क्यों गुरुजी! काफी ठाठ का उत्तरांग हो जाने पर सोमनाथ के राग-स्वरूप कैसे हो जाएँगे? उसके अनुयायी लोगों ने उसके राग कैसे गाए होंगे?

उत्तर—मैं तो समझता हूँ कि उन लोगों ने शुद्ध धैवत को उचित जगह पर स्थापित कर उसके ग्रंथ का उपयोग कर लिया होगा। मैं तो लगभग ऐसा ही करूँगा। व्यर्थ ही 'कील के लिए नाल गँवा बैठना' के अनुसार एक उपयोगी ग्रन्थ क्यों छोड़ दिया जाए?

प्रश्न—जरा ठहरिए! सोमनाथ के शुद्ध ठाठ को शार्ङ्गदेव का काफी ठाठ मानकर यदि ग्रहण किया जाए, तो क्या कुछ उपयोग हो सकेगा?

उत्तर—मैं नहीं समझता कि कुछ उपयोग हो सकेगा। अपने विद्वानों को कोमल रे, ध चाहिए; ये कहाँ से आएंगे? सोमनाथ के मत में जाति, मूर्च्छना की कुछ भी व्यवस्था नहीं है। तुम कह सकते हो कि कोमल ऋषभ का कार्य शुद्ध रे (२६६$\frac{2}{3}$ आन्दोलन) से चल जाएगा, परन्तु शुद्ध ध सोमनाथ ने वीणा पर 'मृदु म' के परदे पर 'शुद्ध म' के तार के नीचे माना है; यह स्पष्ट तीव्र ध हो जाएगा। उस धैवत के नीचे उसकी व्यवस्था में स्वर ही नहीं है। अन्य स्वरों के सम्बन्ध में भी बड़ी गड़बड़ हो जाएगी। इसी लिए अहोबल के स्वरों के सम्बन्ध में बताते हुए मैंने तुम्हें पहले भी कुछ इशारा किया था कि सोमनाथ से भी उसी तरह की कुछ गड़बड़ हुई होगी। सोमनाथ एक दक्षिण का पंडित था। इसके सम्बन्ध में मुझे इस प्रकार कहनेवाले भी मिले हैं कि सोमनाथ ने व्यर्थ ही उत्तर-पद्धति का ज्ञाता होने का आडम्बर किया है। हमारे पंडित इस विद्वान् की आलोचना करने में प्राय: हिचकिचाया करते हैं, क्योंकि 'रागविबोध' ग्रन्थ की बहुत प्रशंसा सुनी जाती है। Sir William Jones कहते हैं:—

The most valuable work that I have seen, and perhaps the most valuable that exists on the subject of Indian Music is named Rag Vibodha or the Doctrine of Musical Modes; and it ought here to be mentioned very particularly, because none of the Pandits in our provinces, nor any of those from Kasi or Kashmere to whom I have shown it appear to have known that it was extant; and it may be considered as a treasure in the history of the art, which the zeal of Colonel Polier has brought in to light and perhaps has preserved from destruction. Rag Vibodha seems a very ancient composition but is less old unquestionably than the Ratnakar of Sarang Dewa which is more than once mentioned in it and a copy of which Mr. Burrows procured in his journey to Haridwar; the name of the author was Soma

and he appears to have been a practical musician as well as a great scholar and an elegant poet; for the whole book without excepting the strains noted in letters which fill the fifth and last chapter of it consists of masterly couplets in the melodious metre called Arya; the first, third and fourth chapters explain the doctrine of musical sounds, their division and succession, the variations of scales by temperament and the enumeration of modes on a system totally different from those which will presently be mentioned; and the second chapter contains a minute description of different Vinas with rules for playing tham. This book alone would enable me, were I master of my time, to compose a treatise on the Music of India with assistance in the practical part from an European professor and a native player on the Vina; but I have leisure only to present you with an essay, and even that, I am conscious, must be very superficial; it may be sometimes, but I trust, not often erroneous; and I have spared no pains to secure myself from error.

अस्तु. अब मैं 'आहीरी' राग के सम्बन्ध में अपनी चर्चा को आगे बढ़ाता हूँ। सुरेन्द्रमोहन टैगोर ने 'अहीरी' का जो स्वरूप बताया है, उसका ठाठ भैरव ही माना है। उनका बताया हुआ स्वरूप इस प्रकार है :—

'नि़सानि़सासासामधुधुमसागरे्गप, सागरे्, नि़सानि़सा, रे्गगमगरे्, पसानि़धु-नि़सासारे्गरे्सा। ममम, प, प, मपमप, धुसांनिसांनिधुप, धुधुमप, धुपमप, सामप, पधुधुप, धुनिनिधुमप, धुम, मपधुधुम, सागरे्गप, गरे्नि़सानि़सा, रे्रे्गगम, गरे्प, सानि़धुनि़सासारे्गरे्सा।'

प्रश्न—क्या इन्होंने अपने बताए हुए स्वरूप का कोई आधार भी दिया ?

उत्तर—इस सम्बन्ध में इन्होंने इस प्रकार कहा है :—

दामोदरमतेऽपि अस्याः जातिः संपूर्णा। आभीरी त्रिवणीतुल्या संपूर्णा कथिता बुधैः।

सम्भवत: ये स्वयं इस बात को स्वीकार कर लेंगे कि इतने-मात्र से पूर्ण संतोष-जनक बोध नहीं हो सकता। अस्तु,

तुम जानते हो कि पं० भावभट्ट के मेलों में भी एक 'अहीरी' नामक मेल है। इस 'अहीरी' मेल के स्वर इस प्रकार बताए गए हैं :—

एकतृतीयगतिकौ गनीस्वरौ यथाक्रमम्।
द्वितीयगतिको रिश्च त्वाहेरीमेल एष हि॥
सत्रिका सायमाहेरी संपूर्णादिरसाश्रिता ।

—अनूपरत्नाकरे

यहाँ पर 'एकगतिक ग' अर्थात् 'कोमल ग' और 'तृतीयगतिक नि' अर्थात् 'तीव्र नि' स्वर होंगे। 'द्वितीयगतिक रे' अपने स्वरों में 'तीव्र रे' होगा।

संगीतपारिजाते :—

धकोमला नितीव्राद्या षड्जपूर्वकमूर्च्छना।
धगयोः कंपसंयुक्ता सपांशाभीरिका मता ॥
आरोहणेऽवरोहेऽपि क्वचिन्मध्यमवर्जिता ॥

यह वर्णन भावभट्ट के वर्णन से मिलाकर देखो, तो यह स्पष्ट दिखाई देगा कि इन संस्कृत-ग्रंथकारों ने 'आभीरी', 'आहीरी' आदि नामों के प्रयोग में प्रायः गड़बड़ी की है।

चन्द्रोदये :—

शुद्धौ सपौ शुद्धमधैवतौ च
साधारणो गोऽपि च शुद्धगश्च।
षड्जाभिधानो लघुशब्दपूर्व
आभीरिकाया गदितः स मेलः ॥

मैं आरम्भ में ही तुम्हें बता चुका हूँ कि हमारा प्रस्तुत राग 'अहीरभैरव' है, 'अहीरी' नहीं है। तुम्हारे राग-स्वरूप का समर्थन करनेवाले इन प्रमाणों को ध्यान में रखना :—

भैरवस्यैव संस्थाने जाताऽऽहीरी सुनामिका।
संपूर्णा भैरवांगाऽपि षड्जांशा व्यस्तमध्यमा ॥
पूर्वांगे भैरवो मेलो उत्तरांगे हरप्रियः।
रागेऽस्मिल्लक्षितो लोके सर्ववैचित्र्यकारणम् ॥
ग्रन्थेषु केषुचित्प्रोक्ता भैरवीमेलनोत्थिता।
आभीरीनामिकाऽप्यन्या नटभैरविकाश्रया ॥

—लक्ष्यसंगीते

पूर्वांगे किल भैरवः स्फुटतरं यत्रोत्तरांगे पुनः।
स्पष्टं भाति हरप्रिया भवति तद्रूपं विचित्रं ततः ॥
वादित्वं त्विह षड्ज एव निहितं संवादिता पंचमे।
द्वैरूप्येण हि गीयते सुमतिभिः रागिण्यहीरी प्रगे ॥

—कल्पद्रुमांकुरे

भैरव पूरब अंग में, काफी उत्तर भाग।
अति विचित्र द्वै रूप सें, होत अहीरी राग ॥

—चन्द्रिकासार।

रागमालायाम् :—

> चन्द्रद्विस्त्रिर्गताः स्युर्गरिनय इह हि स्निग्धनेत्रा प्रगल्भा ।
> श्यामाभीरी त्रिषड्जा मृदुवचनपरा मूर्द्धि्न वेणीं दधाना ॥
> मृद्वङ्गी नीलवस्त्रा मृदुगलविलसद्विद्रुमालिश्च कर्णे ।
> ताटंकाढ्या हि सायं रसपतिनिनदैः रासदंडै रमंती ॥

अब हमें इससे अधिक ग्रन्थ-मतों की आवश्यकता नहीं है ।

प्रश्न—अब यह राग गाकर सुना दीजिए ?

उत्तर—ठीक है, सुनो :—

सरगम : रूपक

स्थायी

		×				×		
ग	रे । सा	रे । ग	म	म । ग	रे । ग	म । रे	रे	सा
		×				×		
सा	रे । सा	रे । ग	म	म । म	म । प	ग । प	म	ग
		×						
रे	ग । ग	प । म	रे	सा ।				

अंतरा

		×				×		
म	म । रे	म । प	प	प । म	म । प	ध । नि	नि	ध
		×				×		
प	ध । मप	ध । ग	रे	सा । रे	ग । गम	प । गम	रे	सा

विस्तार

गगरेसा, सासारेसा, निसारेसा, निसागरे, गगम, गमरेप, गमरेसा; रेरेसासा, गरेगम, ममपग, मरेरेसा, सारेसाम, गरेसाप, गमपग मगरेसा ।

ममरेम, पपमप, पमपध, निधपध, मपगम, रेरेगम, पगरेसा ।

इस तरह धीरे-धीरे राग-विस्तार किया जाना चाहिए । बीच-बीच में अच्छे प्रमाण में भैरव-अंग ग्रहण किया जाए, जिससे श्रोताओं को यह दिखाई देता रहे कि यह एक भैरव-प्रकार है । उत्तरांग में अधिक तानें लेकर 'भैरव-बहार' नामक प्रसिद्ध राग का आभास कराने की भूल नहीं करनी चाहिए । इस राग को मैं आगे चलकर बताऊँगा ।

प्रश्न—अब आप हमें कौनसा राग बताएँगे ?

उत्तर—अब हम 'सौराष्ट्र' राग को लेंगे। 'सौराष्ट्र' नाम कानों में पड़ते ही हमें एकदम यह ध्यान आ जाता है कि यह राग सम्भवतः इसी नाम के प्रदेश से प्रचलित होकर आया होगा। इस प्रकार का अनुमान बिलकुल गलत भी नहीं कहा जा सकता। तुम्हें याद होगा, पिछली बार मैंने तुम्हें खमाज ठाठ का 'सोरठ' नामक राग बताया था, उस समय भी मैंने 'सौराष्ट्र' के सम्बन्ध में सूचना दी थी। सम्भवतः ये दोनों राग सौराष्ट्र नामक पाठ से संगृहीत किए गए होंगे। रागों के नामों का इतिहास खोजने का श्रम करना हमें स्वीकार नहीं है। हम तो आज जो नाम प्रचलित हैं, उन्हें स्वीकार करके चल रहे हैं। इस सौराष्ट्र राग को पंडितगण 'सौराष्ट्रटंक' कहते हैं और गायक लोग 'चौर्यायशी टंक' या 'चौरासी टंक' कहते हैं। सोरठ राग से इसे अलग रखने के लिए यह युक्ति ठीक भी है। संस्कृत-ग्रन्थकार अर्थात् प्राचीन ग्रन्थकार 'सौराष्ट्रटंक' ऐसा संयुक्त नाम प्रयुक्त नहीं करते।

प्रश्न—फिर यह संयुक्तीकरण कैसे हुआ ?

उत्तर—हम इसी पर विचार करेंगे। 'टंक' नाम राजपूताने का कहा जाता है। यह तर्क किया जाता है कि 'टंक' रागनाम प्राचीन नाम 'टक्क' से उत्पन्न हुआ होगा। 'टोंक' नामक एक छोटा-सा राज्य अभी भी मालव प्रांत में है। मालवा और राजपूताना पास-पास के प्रदेश हैं। 'मालव' नामक एक प्रसिद्ध राग भी है। मालवा, मालवगौड़, टक्क, इन सभी रागों का एक ही ठाठ में माने जाने का आधार भी हमें प्राप्त हो सकता है। 'सौराष्ट्र' राग भी तुम्हें उसी ठाठ में प्राप्त होगा। टक्क और सौराष्ट्र में जन्य-जनक सम्बन्ध मानने के ग्रंथाधार भी मिलते हैं। सुविधा के लिए हम सौराष्ट्र और सौराष्ट्री भिन्न-भिन्न राग-स्वरूप मानेंगे। थोड़ी देर के लिए सोरठ को ही 'सौराष्ट्री' नाम देने पर 'सौराष्ट्र' अथवा भैरव ठाठ का 'सौराष्ट्रटंक' ही समझ लो। अपने गायक 'टंकी' नामक एक प्रकार का राग सायंकाल के समय गाते हैं। इसे वे एक संधिप्रकाश राग मानते हैं। कदाचित् इसकी उत्पत्ति प्राचीन 'टक्क' से हुई होगी।

प्रश्न—सायंकालीन राग होने से 'टंकी' किस ठाठ में माना जाता है ?

उत्तर—यह राग पूर्वी ठाठ के अन्तर्गत माना जाता है। इसके विषय में मैं आगे तुम्हें बताऊँगा। एक मजेदार बात देखो कि शार्ङ्गदेव ने अपने 'रत्नाकर' में 'टक्क' नामक ग्रामराग की जो भाषा (जन्यराग) बताई है, उसमें एक 'सौराष्ट्री' भी दिखाई पड़ती है। टक्क की व्याख्या में 'काकल्यन्तरराजितः' पद होने के कारण दक्षिण के कुछ पंडित उसका ठाठ 'भैरव' मानते हैं। अपने गायक 'सौराष्ट्रटंक' संयुक्त नाम स्वीकार कर उसे एक मिश्र मेलजन्य रूप मानते हैं। पूर्वाङ्ग में वे भैरव-अंग स्वीकार करते हैं और उत्तरांग में बड़ी खूबी से दोनों धैवतों का प्रयोग करते हैं। अब यह नहीं कहा जा सकता कि यह मिश्रण कबसे होने लगा है। संगीतप्रदर्शिनी-कार ने सौराष्ट्र राग को प्रथम मालवगौड़ ठाठ में बताकर आगे इस प्रकार कहा है:—

सौराष्ट्रराग: संपूर्ण: सग्रह: सार्वकालिक: ।
पंचश्रुतिर्धैवस्तु क्वचित्स्थाये प्रयुज्यते ॥

इस श्लोक में 'क्वचित्स्थाये' पद बड़ी विशेषता से दिया हुआ है। एक पंडित ने इसका अर्थ 'कभी-कभी' किया है। दूसरे पंडित ने इसका अर्थ 'बीच-बीच' में किया है। इन द्वितीय पंडित का कथन है कि—'स्थाय' गीत का एक छोटा भाग समझा जाता है। सौराष्ट्र की व्याख्या में इसलिए यह सूचना दी गई है कि यदि गायक ने राग का मुख्य अंग मालवगौड़ का रखा और किसी-किसी भाग में तीव्र धैवत का उपयोग भी किया, तो अनुचित नहीं होगा। यह सत्य है कि अपने हिन्दुस्तानी गायक इस राग को इसी प्रकार गाते हैं। इन गायकों को नियम आदि का बिलकुल ज्ञान नहीं होता। यह भी ठीक है कि यह राग अप्रसिद्ध रागों में से माना जाता है। मैंने तुमसे सदैव यह कहा है कि दुर्मिल राग समाज में भिन्न-भिन्न तरीकों से गाए जाते हुए हमें दिखाई पड़ सकते हैं। आश्चर्य नहीं कि सौराष्ट्र और सौराष्ट्रटंक को भिन्न-भिन्न माननेवाले लोग भी निकल आएँ। यह सत्य है कि ग्रन्थों में मुझे कहीं भी संयुक्त नाम 'सौराष्ट्रटंक' नहीं दीख पड़ा।

प्रश्न—'सौराष्ट्रटंक' में मुख्य अंग तो भैरव का ही ग्रहण किया जाता होगा?

उत्तर—हाँ, यह राग प्रातर्गेय माना जाता है। प्रचार में जो सायंकालीन स्वरूप है, उसे हिंदुस्तानी गायक 'श्रीटंक' के नाम से सम्बोधित करते हैं। यह युक्ति भी बड़ी अच्छी है। ध्रुवपद-गायक भी कभी-कभी सौराष्ट्रटंक गाते हैं। ये लोग इस राग का एक प्रसिद्ध गीत इस प्रकार गाते हैं :—

'मग, मग, <u>रेरे</u>, सा, सा<u>रे</u>सा, गम<u>रे</u>, <u>रे</u>, सा; पगमग<u>रेरे</u>, सा, सासा<u>रे</u>सा, <u>धध</u>सा, मम, धनिसां, निसां, निधम, गग, पमग<u>रेरे</u>, सा।'

कहीं-कहीं 'सा, गमध, सांधम, ध, निसांधमग, पमग<u>रे</u>, सा' इस प्रकार का टुकड़ा ले लेते हैं। इस स्वरसमूह के प्रयोग से यह प्रकार कुछ विलक्षण दिखाई देने लगता है। बीच-बीच में मध्यम को मुक्त रखकर थोड़ासा ललित-अंग भी प्रस्तुत कर दिया करते हैं।

प्रश्न—यह किस प्रकार करते हैं?

उत्तर—देखो—'सा<u>ध</u>निसा, म, म, धनिसांनिध, मगमग<u>रे</u>सा' इस टुकड़े से श्रोताओं को थोड़ासा ललित का संकेत हो सकेगा। अन्तरे में भैरव और कालिंगड़ा का मिश्रण-जैसा दिखाई देगा।

प्रश्न—यह तो एक विचित्र राग-स्वरूप दिखाई देता है। यही कहिए न, कि इस राग में भिन्न-भिन्न रागों के टुकड़े सम्मिलित किए गए हैं। न जाने इस राग में तानें कैसी ली जाती होंगी?

उत्तर—मुख्य भाग तो भैरव का ही रहेगा। बीच-बीच में 'मध, निसां, सांनिधम', इन दोनों टुकड़ों से रागप्रभेदक अनेक छोटी-छोटी तानें उत्पन्न की जाएँगी।

देखें, तुम स्वयं इस राग का थोड़ा-बहुत विस्तार कैसे करते हो ?

प्रश्न—अच्छी बात है, हम प्रयत्न करते हैं।

'सा, ध़नि़सा, गरे, सा, मगरेसा, गमपगमरे, सा, सागम, रेगम, पगमरेसा, ध़नि़सा, ग, म, ग, म, पगम, धग, गमध, म, निसांम, गम, पगमरे, सा।'

क्या इस प्रकार की तानें इस राग में गृहीत हो सकेंगी ?

उत्तर—मैं समझता हूँ ये तानें ली जा सकती हैं। अब मैं कहीं-कहीं किस तरह से ठहरते हुए रागविस्तार करता हूँ, इसे ध्यान से देखते जाना।

गम, धध, मधनिसां, धनिसां, गमगसा, म, धनिसां, गमग, रे, सा, नि़सागम, पगमगरे, सा; सा, रेसा, गमग, रेसा।

यहाँ मैं तुम्हारे मन में भिन्न-भिन्न रागों की छाया उत्पन्न कर रहा हूँ, परन्तु तुम यह भी देख रहे हो कि अन्त में भैरव-अंग लाने का प्रयत्न भी मैं अवश्य कर रहा हूँ। अब अन्तरे में स्वल्प रूप में कालिंगड़ा का अंग दिखाता हूँ। देखो :—

'मम, गम, पप, धध, प, निधप, म, गम, धप, गम, रेगम, पगम, ग, रेसा सांरेंसां, धप, गमपगमरे, सा।

तुम्हारे-जैसे बुद्धिमानों को इतना इशारा मिलते ही तुम स्वयं इसमें सैकड़ों सुन्दर-सुन्दर तानें उत्पन्न कर सकोगे। जैसे-जैसे तुम्हारा गला तैयार होता जाएगा, वैसे-वैसे तुम्हें अपने-आप स्फूर्ति उत्पन्न होती जाएगी। राग-नियमों को अच्छी तरह जान लेने के कारण तुम्हारी तानबाजी असंगत एवं उकतानेवाली नहीं हो सकती। धीरे-धीरे तानों के स्वर और उनका वेग बढ़ते जाने से श्रोतागण भी गायक के साथ आनन्द-सागर में निमग्न हो जाया करते हैं। मेरे गुरु ने मुझे गला तैयार करने की एक सरल युक्ति बताई थी, उसे यदि तुम चाहो तो आगे अपने शिष्यों को भी बता सकते हो।

प्रश्न—वह कौनसी युक्ति है ?

उत्तर—मेरे गुरु ने मुझे बताया कि जब नवीन विद्यार्थीगण अनुकरण करते हुए 'सा, रे, ग, म, प, ध, नि, सां' स्वर गाना सीख जाएँ, तब उन्हें भिन्न-भिन्न ठाठों के स्वर गाने का अभ्यास कराना चाहिए। अकेले 'बिलावल' ठाठ के स्वरों का अभ्यास उनसे प्रतिदिन एक-दो घन्टे कराना चाहिए। प्रथम सावकाश रीति से स्वर गवाए जाएँ और फिर सामर्थ्यानुसार क्रमशः लय बढ़ाई जाए। बार-बार इसी कार्य को करने में विद्यार्थियों का उकताना स्वाभाविक है, परन्तु उन्हें बीच-बीच में विश्रांति देकर और इस प्रकार स्वर-गायन का महत्त्व अच्छी तरह समझाकर दूसरी और कोई चीज गाने न देना चाहिए और केवल शुद्ध स्वर-सप्तक ही उत्तम रूप से सिद्ध कराया जाए। अब तो 'मेट्रोनम' (ताल-यन्त्र) का साधन ऐसे कामों में बहुत उपयोगी होगा। प्रथम यह यन्त्र मध्य लय में लगाया जाए और उसके साथ स्वर गाए जाएँ, फिर क्रमशः लय बढ़ाई जाए। तैयारी इस कोटि की होनी चाहिए कि केवल

शुद्ध स्वरों का आरोह-अवरोह श्रोताओं को मधुर लगने लगे। मेरे गुरु ने बताया था कि उनके उस्ताद ने आरम्भ के छह महीनों में उन्हें शुद्ध स्वर-सप्तक के सिवाय कुछ भी नहीं गाने दिया। यह सुनकर तुम्हें आश्चर्य अवश्य होगा, परन्तु उनके कथन में बहुत-कुछ तथ्य है। उन्होंने अपनी भाषा में कहा :—

"पंडित जी ! पहले-पहले में बहुत नाराज हुआ, मगर छह महीनों के बाद मेरा गला सात सुरों पर ऐसा दौड़ने-भागने लगा कि उसको कुछ अटक ही न रही। मुझको खुद भी मजा आने लगा। मेरे सुर ऐसे चलने लगे कि जैसा पानी का रेला। फिर मेरे उस्ताद मेरे साथ-साथ सा रे ग म प ध नि सां। सां नि ध प म ग रे सा। तेज लय पर गाने लगे। उनके साथ गाने से मेरे गले में तरह-तरह के कन और तरह-तरह की हरकतें पैदा होने लगीं। फिर उन्होंने मुझको जगह-जगह रोकना शुरू किया। कभी धैवत पर तो कभी निखाद पर मुझको ठेहेराया, और वहीं से लौटाया। मतलब ये है कि एक सम्पूरन तान में से मेरे मूँह से हजारों तानें उनोनें निकलवाईं। ये मैं नहीं जानता था कि राग क्या चीज है, मगर गला किसी जगे बन्द नहीं था। उस्ताद सिरफ हाथ से लय का इशारा करते और मैं उनके इशारे पर अपना गला फेंकता था। पंडित जी ! ऐसी मेहनत करने से गवैया होता है। आजकल के शागिरद आठ दिन में गवैए होने चाहते हैं। आज भटियार, कल भंखार, परसों पटमंजरी माँगने लग जाते हैं और केहेते हैं क्या हम गवैए होने चाहते हैं ? गाना तो सब गले पर ही रहेगा। गले में कुत्ते भौंक रहे हैं और राग पटमंजरी केह रहे हैं। पेहेले दसों ठाठ के सम्पूरन सुरों की लड़ी की लड़ी बन जाए, फिर अपने रागों के नेम धरम देखले। मैं सच केहेता हूँ, कई गवैयों के गले आप ऐसे बुरे देखेंगे कि आप उनका गाना कभी पसन्द न करेंगे। हम अपने शागीरदों को एक-एक दो-दो बरस तक सुर भरवाते हैं, मगर उनके गले भी तो ऐसे हो जाते हैं कि जैसी रेशम की डोर। तैयार गले में आप चाहे सो रंग डाल दीजिए।"

यह कैसे कहा जा सकता है कि मेरे गुरु के उपर्युक्त कथन का कोई तथ्य नहीं है। मेरा भी यही मत है कि अपने आश्रयरागों के स्वर उत्तम रूप से तैयार कर लेने से संगीत-विद्यार्थी को बहुत लाभ होता है।

प्रश्न—यह सम्पूर्ण चर्चा हमारे ध्यान में अच्छी प्रकार आ गई है। अस्तु, 'प्रदर्शिनीकार' ने अपने 'सौराष्ट्र' के स्वर बताए हैं।

उत्तर—हाँ, उसने इस राग का आरोह-अवरोह इस प्रकार बताया है :—

'सा रे॒ ग म प ध॒ नि सां। सां नि ध॒ प म ग रे॒ सा'। केवल इतना बता देने से विशेष बोध होना संभव नहीं है। उसके मत से यह एक सम्पूर्ण भाषांग राग है। इसका ग्रहस्वर उसने षड्ज माना है।

प्रश्न—तो फिर उसने इसी स्वर को वादी भी माना होगा ? अपने गायक राग का वादी स्वर कौनसा मानते हैं ?

उत्तर—बहुमत प्राय: मध्यम स्वर को वादी मानने के पक्ष में है। अब हम कुछ संस्कृत-ग्रन्थों में सौराष्ट्र के लक्षण और देख लें।

रत्नाकरे :—

पंचमादेव सौराष्ट्री भाषा षड्ज ग्रहांशिका।
रिहीना समधैस्तारा ममंद्रा समभूयसी ॥
नियुक्ता सर्वभावेषु मुनिभिर्गमकान्विता।
सांशग्रहांता सौराष्ट्री टक्करागेतिभूरिनिः ॥
भूरितारा ममंद्रा च पहीना करुणे रसे ॥

सारामृते :—

मेलो मालवगौलस्य स्यात्सौराष्ट्र्याः स एव हि।
षड्जन्यासग्रहांशेयं सर्वकालेषु गीयते ॥

अस्य रागस्यारोहावरोहयोः स्वरगतिः समविषमतया आगच्छति।

चतुर्दंडिप्रकाशिकायाम् :—

सौराष्ट्ररागो मेलस्य गौलस्याभ्युदयः पुरा।
संपूर्णश्चैष वादी च षड्जः संवादिनौ मपौ॥
सर्ववेलासु गातव्यं ख्यातं संगीतवेदिभिः।

'सद्रागचन्द्रोदय' में जो 'सौराष्ट्री' बताई गई है, वह 'केदार मेल' की है। अपना राग भैरव ठाठ में है। 'रागमंजरी' में भी केदार मेल को सौराष्ट्री बताई गई है।

रागमालायाम् :—

सावेरीमेलरक्ता स्वरसकलयुता सत्रिका स्वैरिणी या।
चित्रं वस्त्रं दधाना कठिनकुचतटे कंचुकी मेचकी च॥
गौराङ्गी पंकजाक्षी हिमकरवदना दाडिमीबीजदन्ता।
सायं श्रृङ्गारपूर्णा मदनसहचरी याति सौराष्ट्रिका सा॥

पुण्डरीक ने सावेरी का ठाठ इस प्रकार बताया है :—

'धाद्यंतांशाऽसपा या नयनगुणगती चात्र धांत्यौ रिगौ स्तः।

यहाँ पुंडरीक ने इसे 'असपा' बताया है। इसे देखकर पाठकों को अवश्य ही आश्चर्य होगा।

रागलक्षणे :—

मायामालवगौलाच्च रागः सौराष्ट्रनामकः ॥
सन्यासं सांशकं चैत्र सषड्जग्रहमुच्यते ।

लक्ष्यसंगीते :—

भैरवे मेलके यत्र सौराष्ट्रो वर्ण्यते बुधैः ।
संपूर्णो मध्यमांशश्च प्रातर्गेयो निदुर्बलः ॥
प्रयोगः संमतो ह्यत्र द्वयोर्धैवतयोर्मतः ।
अनुलोमे भवेत्तीव्रो विलोमे कोमलस्तथा ॥
कलिंगाख्योऽथ बंगालस्तृतीयः पंचमाह्वयः ।
सम्मिलंति स्वरूपेऽस्मिन्निति लोकेक्वचिन्मतम् ॥
सुसंगतिर्बिलावल्याः समर्थयन्ति केचन ।
उत्तरांगे पुनस्तत्र बुधः कुर्याद्यथोचितम् ॥

चतुर पण्डित ने अपना निजी मत बताते हुए निर्णय का कार्य पाठकों को सौंप दिया है। उसे यह ज्ञात ही होगा कि अपने कुछ गायक आरोह-अवरोह में तीव्र धैवत ग्रहण करते हैं। उसकी दी हुई सूचना को केवल सिफारिश के रूप में समझकर ग्रहण करना चाहिए।

कल्पद्रुमांकुरे :—

सौराष्ट्रोऽयं भैरवस्यैव मेले
मांशः पूर्णो धैवतद्वन्द्वयोगी ।
आरोहे स्यात्तीव्रधोऽन्योऽवरोहे
प्रातर्गेयो दुर्बलोऽस्मिन्निषादः ॥

चन्द्रिकायाम् :—

भैरवस्यैव संस्थाने धैवतद्वयसंयुतः ।
समसंवादसम्पूर्णः सौराष्ट्रो गीयते बुधैः ॥

प्रश्न—अब हमें इस राग का प्रचलित रूप स्वरों में सुना दीजिए !

उत्तर—अच्छा, एक प्रसिद्ध गीत के आधार पर तुम्हें इस राग की एक सरगम ही बताए देता हूँ।

सरगम : तीव्रा

×
सा सा । ध़ नि़ । सा ऽ सा

सा	सा । म	म । ग	म	म
म	ग । म	ध । म	ध	ध
म	ध । सां	ऽ । रें	सां	ऽ
सां	सां । ग	म । रे	रे	सा

अन्तरा

× मं	म । ग	म । प	ऽ	प
ध	ध । प	प । ध	ध	प
प	ध । प	म । ग	ग	रे
ग	म । प	ग । म	रे	सा
सां	रें । सां	ऽ । रें	सां	सां
ग	म । प	म । रे	रे	सा

इस राग का विस्तार प्राय: भैरव और ललित के मिश्रण-जैसा ही थोड़ा-बहुत करना पड़ता है; जैसे :—

सारेरे, सा, ध, सा, सा, रेसा, गमगरे, सा, पगमरेसानिसा, गम, गम, धम, गमध, मधनिसां, रेंरेंसां, निसां, धम, मधनिसां, रेंसां, ग, मपगमरे, सा; सासागमप, गमरेसा, रेंरें, सां, गमपगमरे, सा।

गमगम, पप, गमप, धधप, गमधप, रेगम, पमरे, पगम, रेसा, सारेसा, ध, सा, गमधधप, गमपगम, रे, सा रेंरेंसां, गमपगम, रे, सा।

मुख्य अंग भैरव का लिया जाए। बीच-बीच में तीव्र धैवत के टुकड़े उपस्थित किए जाएँ। तुम्हें यह प्रत्यक्ष दिखाई देगा कि जिस ठाठ में कोमल ऋषभ और तीव्र धैवत का उपयोग होता हो, उसमें प्राय: पंचम स्वर को गौणता प्राप्त हो जाती है। इसी नियम के आधार पर तीव्र धैवत की तानें योजित की जाएँ। मैं इसके अवरोह में कहीं-कहीं तीव्र धैवत का प्रयोग प्रचार को देखते हुए कर रहा हूँ। यदि यहाँ किसी ने कुशलतापूर्वक कोमल धैवत का प्रयोग किया, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी। इस राग को नियमबद्ध करना ही अभीष्ट है।

प्रश्न—अब आप कौनसा राग बताएँगे ?

उत्तर—अब मैं 'हिजाज' अथवा 'हिजेज' नामक राग के विषय में दो शब्द बताऊँगा। यह बिलकुल अप्रसिद्ध रागों में से एक है। मुझे इस राग के दो गीत भिन्न-भिन्न दो गायकों ने बताए हैं। उनके स्वरूप मुझे बहुत-कुछ मिलते-जुलते प्रतीत हुए। तुम्हें यह राग शायद ही कहीं दिखाई पड़े। मैंने इस राग के सम्बन्ध में कई

नगरों में खोज की, तो यही पाया कि कई लोगों ने तो इसका नाम तक नहीं सुना है। मैं स्पष्ट रूप से स्वीकार करता हूँ कि ऐसे अप्रसिद्ध राग के सम्बन्ध में पूर्ण सन्तोष-जनक जानकारी दे सकना मेरे लिए सम्भव नहीं है। यद्यपि यह राग अप्रसिद्ध है, फिर भी कुछ संस्कृत-ग्रन्थकारों ने इसका वर्णन अपनी-अपनी रीति से अपनी रचनाओं में किया है। सर्वप्रथम प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि 'हिजाज' का ठाठ कौनसा है?

प्रश्न—क्यों भला, यह तो भैरव ठाठ का ही एक राग है न?

उत्तर—'लक्ष्यसंगीत' में इसे भैरव ठाठ में बताया गया है और मैं भी यही ठाठ पसन्द करता हूँ। कठिनाई यह है कि कोई-कोई इस राग को मिश्र मेल का राग मानने को तैयार हो जाएँगे।

प्रश्न—अर्थात् इसमें पूर्वाङ्ग एक ठाठ का और उत्तरांग दूसरे ठाठ का लिया गया होगा?

उत्तर—हाँ, इस राग के पूर्वाङ्ग में भैरव ठाठ और उत्तरांग में भैरवी ठाठ का मिश्रण है।

प्रश्न—इसे दक्षिण की ओर कौनसा नाम दिया गया होगा?

उत्तर—मैं समझता हूँ कि दक्षिण में इस ठाठ को 'बकुलाभरण' कहेंगे। इस ठाठ का नम्बर १४-वाँ है। यह एक मजेदार ठाठ है और इसमें हमें दो-चार नवीन राग भी मिल सकते हैं। जैसे :—

बकुलाभरणान्मेलाद्रागो वासंतभैरवी।
धन्यासं धांशकं चैव धैवतग्रहमुच्यते॥
आरोहे तु पवर्जं च पूर्णवक्रावरोहकम्॥१॥
बकुलाभरणान्मेलात्संजातः सोमनामकः।
सन्यासं सांशकं चैव सषड्जग्रहमुच्यते॥
आरोहे तु गवर्जं चाप्यवरोहे पवर्जितम्॥२॥
बकुलाभरणान्मेलाद्वासंताख्यमुखारिका।
सन्यासं सांशकं चैव सषड्जग्रहमुच्यते॥
रिवर्जं वक्रमारोहेऽप्यवरोहे समग्रकम्॥३।

दक्षिण के तेलगू-ग्रंथों में उन रागों का आरोह-अवरोह इस प्रकार दिया गया है :—

वसंतभैरवी—सा रे॒ ग म ध॒ नि॒ सां। सां नि॒ ध॒ म प म ग रे॒ सा॥

सोमराग—सा रे॒ म प म ध॒ नि॒ सां। सां नि॒ ध॒ म ग रे॒ सा॥

वसंतमुखारी—सा म ग म प ध॒ नि॒ सां। सां नि॒ ध॒ प म ग रे॒ सा॥

ऐसे रागस्वरूप हम लोग सहज ही प्रचलित कर सकते हैं। केवल उच्च स्तर का स्वरज्ञान एवं रागज्ञान होना आवश्यक है। इस ठाठ के अधिकांश राग प्रातः-कालीन ही हो सकते हैं, यह तुम देख सकते हो। वादी, संवादी की स्थापना का कार्य विशेष कठिन नहीं होगा। रामामात्य कहता है :—

देशीरागाश्च सकलाः षड्जग्रामसमुद्भवाः ।
ग्रहांशन्यासमंद्रादिषाडवौडुवपूर्णताः ।
देशीत्वात्सर्वरागेषु भवंति न भवंति वा ॥

व्यंकटमखी कहता है :—

चतुर्विधस्वरेष्वेषु वादी राजा प्रकीर्त्यते ।
संवादी त्वनुसारित्वादस्यामात्यो विधीयते ॥
विवादी विपरीतत्वाद्धीरैरुक्तो रिपूपमः ।
स्वरूपमर्दनं तेन प्रयोगे स्याद्विवादिना ॥
स्वरूपमर्दनाभावे गीतरक्तिर्न लक्ष्यते ।
शत्रूपमर्दने हि स्याद्राज्ञां लोके प्रकाशनम् ॥

प्रायः ये सब बातें अधिकांश रूप में मैं तुम्हें बता ही चुका हूँ। अस्तु, 'हिजाज' को हम ठाठ 'बकुलाभरण' में मान लेते हैं। यह नहीं बताया जा सकता कि इस राग को मिश्र मेल जन्यत्व कैसे और क्यों प्राप्त हुआ ? संस्कृत-ग्रन्थकार इसे भैरव ठाठ का ही रागस्वरूप मानते हैं, परन्तु हमें तो प्रचार के अनुरूप चलना ही उचित है। इसके उत्तरांग में भैरवी के अनुसार ही 'प <u>ध</u> <u>नि</u> सां' स्वर गाए जाते हैं। आरोह में निषाद ग्रहण करने से आसावरी से यह भिन्न हो जाता है। आगे चलकर तुम्हें दिखाई देगा कि 'प <u>ध</u> <u>नि</u> सां' स्वरों से जैसा 'समत्व' भैरवी में होता है, वैसा 'जौनपुरी' में नहीं होता। 'देशी' राग के आरोह में ध, ग वर्ज्य होते हैं और देव-गान्धार के आरोह में रे, ध वर्ज्य किए जाते हैं; इसलिए ये सभी राग इस राग से अलग हो जाते हैं। प्रथम तो इस राग के पूर्वांग में भैरव है, यह एक लक्षण ही इसे सभी रागों से अलग कर देता है। 'हिजाज' 'झीलफ' 'जंगूला' ये सभी मुसलमानी राग-प्रकार माने जाते हैं। इनके सम्बन्ध में सदैव मतभेद दिखाई पड़ेगा। कोई-कोई कहते हैं कि 'झीलफ' में पूर्वांग भैरव का और उत्तरांग आसावरी का रखा जाए, तो इससे हिजाज और झीलफ अलग-अलग हो जाएंगे। ऐसे स्थलों पर तुम्हें अच्छी तरह विचार और उत्तम घरानेदार गायकों का अनुसरण करना ही अच्छा है। सम्पूर्ण झगड़ा उत्तरांग का ही है। यहाँ भैरवी, काफी, बिलावल और भैरव इनमें से कौनसा भेद स्वीकार किया जाए, यह प्रश्न सदैव उत्पन्न होता है। जहाँ दोनों धैवत अथवा दोनों निषाद नियम से लगाने हों, वहाँ वे स्वर कैसे लगाए जाएँ; यह भी ध्यान में जमा लेना आवश्यक है। अच्छा तो अब इस राग के स्वर कैसे रचोगे

देखें बताओ ? आरम्भ में भैरव-अंग रखना है, क्योंकि श्रोताओं को अन्य किसी राग का आभास होने का अवसर नहीं देना चाहिए।

प्रश्न—अच्छी बात है। हम भैरव-अंग इस प्रकार रखेंगे :—

'मगरेसा, सारेसा, धसा, मगरे, गमपमगरे, सा; मगमप, धप, सांधप, मगरे, पमगरेसा।'

उत्तर—यह ठीक है, परन्तु उत्तरांग में भैरवी के स्वर आनेवाले हैं, अतः उनसे बिलकुल विसंगति रखनेवाला भैरव का भाग इस राग में स्वीकार नहीं हो सकेगा।

प्रश्न—तो फिर पूर्वांग में स्वल्प रूप में गान्धार दिखाकर 'सा रे रे, सा, म म, प, म रे सा, ध ध, प म प' इस प्रकार किया जाएगा और अन्त में 'ध ध प, म प म ग, रे ग म प, ग म रे, रे, सा' रखा जाएगा।

उत्तर—अच्छा, उत्तरांग में कैसा विस्तार करोगे ?

प्रश्न—'सा, म म, प ध प, नि ध प, प ध नि सां, ध नि ध प, सां ध प, रें सां ध नि ध प, ऐसी तानें लेकर आगे 'ध ध प, ध म प, ग म, नि ध प, ग म, रे ग म, प म ग, म रे, सा।' इस प्रकार का अन्त हमारी समझ से अनुचित नहीं कहा जा सकेगा।

उत्तर—मैं समझता हूँ कि यह विस्तार ग्रहण किया जा सकता है। इस राग में वादी स्वर कोई मध्यम और कोई पंचम मानते हैं। यदि तुमने मध्यम स्वीकार किया, तो कोई हानि नहीं।

प्रश्न—अब हम आपको इस राग का थोड़ा-सा विस्तार करके दिखाते हैं :—

'सा, रेसाध, सा, गमगरे, सा। निसागम, रेगम, पम, गमप, मपगम, रेगमग, गमरेसा, निध, प, गमपगमरेसा, निसा, म, मप, प, धनिधप, मप, सांनिधप, गमपधमप, निधमप, गमधधप, मप, गमरे, गमपगमरे, रे, सा।' ऐसी तानें चलेंगी क्या ?

उत्तर—शास्त्र-नियम के अनुसार तो इनके प्रयोग में कोई आपत्ति नहीं दिखाई देती, किन्तु बड़े गायकों को ये तानें सिलसिलेवार (सुव्यवस्थित) नहीं जान पड़ेंगी। फिर भी ऐसे अप्रसिद्ध राग में किया हुआ तुम्हारा यह प्रयत्न बिलकुल गलत नहीं ज्ञात होगा। मैंने एक बार एक गायक को इस राग के तारसप्तक के अवरोह में कोमल गान्धार और तीव्र ऋषभ का प्रयोग करते हुए भी देखा है। उसने इसका कारण यह बताया कि 'मैं यहाँ पर आसावरी का मिश्रण कर रहा था।'

प्रश्न—आपने जो गीत इस राग में सीखे हैं, उनके आधार से हमें एक छोटी-सी सरगम बनाकर दे दीजिए। इससे यह राग हमारे ध्यान में अच्छी तरह जम जाएगा।

उत्तर—बहुत अच्छा ! मैं एक सरगम बनाए देता हूँ।—

सरगम : झप ताल, राग हिजाज

सा	सा। म	ग	म। प	प। ध॒	ध॒	प
ध॒	प। ध॒	नि	सां। ध॒	प। नि	ध॒	प
रें॒	रें॒। सां	रें॒	सां। ध॒	ध॒। नि	ध॒	प
म	ग। म	ध॒	प। म	ग। रे॒	रे॒	सा

अन्तरा

म	प। प	ध॒	ध॒। नि	सां। ध॒	नि	सां
ध॒	ध॒। नि	सां	सां। रें॒	रें॒। सां	ध॒	प
मं	मं। रें॒	रें॒	सां। रें॒	सां। नि	ध॒	प
म	ग। रे॒	ग	प। म	ग। रे॒	रे॒	सा

मुझे स्मरण है कि इस राग को सुनकर प्रथम दृष्टि में दक्षिण के पंडितों ने इसे 'वसन्तमुखारी' नाम दे दिया था।

प्रश्न—परन्तु शायद यह बात उनके ध्यान में नहीं आ सकी होगी कि अपने इस राग में ऋषभ स्वर प्रयुक्त होता है। सम्भवतः उन्होंने समझा होगा कि अवरोह में यह स्वर चल सकता है। आपके बताए हुए तेलगू-प्रकार में यह अवरोह में बताया भी है, ठीक है न ?

उत्तर—हाँ, ठीक है ! अब हम एक-दो संस्कृत-आधार देख लें :—

रागविबोधे :—

शुद्धा वसंतमेले सरिमपधा अन्तरश्च काकलिका।
अस्माद्वसंतटक्कहिजेजा हिंदोलमुख्याश्च ॥
मांशग्रहसन्यासोऽखिलो हिजेजस्तु सायाह्ने ।

यह तुम सहज में समझ जाओगे कि इस मत से हिजाज का ठाठ भैरव होगा।

स्वरमेलकलानिधौ :—

शुद्धौ च षड्जऋषभौ शुद्धाश्च मपधास्तथा ।
गान्धारोऽन्तरसंज्ञश्च काकल्याख्यनिषादकः ।
एतावत्स्वरसंयुक्तो हिजूजीमेलको भवेत् ।
हिजूज्याद्या भवंत्यत्र ग्रामरागाश्च केचन ॥
इत्येव शार्ङ्गदेवस्य संमतो मार्गवेदिनः ॥

अन्तिम श्लोक में रामामात्य ने शार्ङ्गदेव के सम्बन्ध में जो मत प्रदर्शित किया है, वह उसे यदि उत्तम प्रमाणों के द्वारा सिद्ध करके प्रस्तुत करता, तो वह हमारे लिए कुछ न कुछ उपयोगी होता। 'हिजूजी' के राग-लक्षण उसने इस प्रकार बताए हैं :—

हिजूजीरागः सम्पूर्णो मन्यासो मग्रहांशकः।
गेयोऽह्नः पश्चिमे यामे काकल्यंतरभूषितः॥

दक्षिण के एक ग्रन्थ में 'हिजूजी' राग का ठाठ 'गायकप्रिय' कहा गया है। हिन्दुस्तानी पद्धति से उस ठाठ के स्वर 'सा रे॒ ग म प ध॒ ध सां' होंगे। यह तुम जानते ही हो कि दक्षिण की ओर तीव्र धैवत को शुद्ध निषाद कहा जाता है। उत्तर के ग्रन्थों का शुद्ध निषाद, हिन्दुस्तानी कोमल निषाद स्वर होता है। इससे यह माना जा सकता है कि 'हिजाज' राग उत्तर का ही होगा।

चतुर्दंडिप्रकाशिकायाम् :—

गांधारोऽन्तरनामान्ये स्वराः शुद्धाः प्रकीर्तिताः।
एतावत्स्वरसंभूतो हेजज्जीमेल ईरितः॥
अयं त्रयोदशो भेदो मेलप्रस्तारके भवेत्॥

यह भी 'गायकप्रिय' ठाठ हुआ, इसके स्वर मैं तुम्हें ऊपर बता चुका हूँ। राग का प्रत्यक्ष लक्षण व्यंकटमखी ने इस प्रकार बताया है :—

हेजज्जीरागः सम्पूर्णो यामेऽह्न गीयतेऽन्तिमे।

अपने गायक इस राग को सायंकालीन मानने को हरगिज तैयार नहीं होंगे।

लक्ष्यसंगीते :—

भैरवाभिधमेले तु हिजेजो गीयते बुधैः॥
यावनीकमिदं रूपं स्वीकृतं चातिरक्तिदम्॥
संपूर्णो मग्रहांशश्च सायंगेयस्तथैव हि।
द्विधैवतो विहीनोऽपि केषांचित्कथ्यते मते॥
धैवतो मृदुरारोहे ह्यवरोहे तु तीव्रकः।
आदिशंति क्रमं भद्रं लक्ष्यमार्गविचक्षणाः॥
भैरवे मेलनं चात्र भैरव्याः संगिरंत्युत।
ग्रंथेषु तूपरिख्यातं वर्णनं दृश्यते ध्रुवम्॥
सायंगेयेषु रूपेषु मांशत्वमपवादकम्।
इति मन्ये सुरागोऽयं प्रथमप्रहरे दिने॥

इस राग के विषय में अधिक जानकारी मिलना कठिन है। इसलिए यहीं पर रुक जाना पड़ेगा।

प्रश्न—अब आप कौनसा राग बता रहे हैं ?

उत्तर—अब 'आनन्दभैरव' पर चर्चा करेंगे। आगे बढ़ने के पूर्व एक बात याद रखना आवश्यक है। बात यह है कि हम 'आनन्दभैरव' और 'आनन्दभैरवी' इस प्रकार दो भिन्न-भिन्न राग माननेवाले हैं, किन्तु इस बात पर आश्चर्य करने की आवश्यकता नहीं है। क्या भैरव और भैरवी के भिन्न-भिन्न प्रकार प्रचार में नहीं माने जाते ? उनका मिश्रण भैरव से होने पर यदि दो भिन्न राग बन जाते हों, तो इसमें आश्चर्य करने की कोई बात नहीं है। 'राधागोविंदसंगीतसार' में भी तुम्हें आनन्दभैरव और आनन्दभैरवी अलग-अलग राग दिखाई पड़ेंगे।

प्रश्न—इस ग्रन्थ में इन रागों के ठाठ कौनसे बताए हैं ?

उत्तर—इस ग्रन्थ में इन दोनों रागों का वर्णन इस प्रकार किया गया है :—

"आनन्दभैरवी की उत्पत्ति लिख्यते। शिवजी ने उन रागनमें सों विभाग करिबेको। अपने मुखसों राग गाईके वाको आनन्दभैरवी नाम करिके कीनो। अब आनन्दभैरवी को स्वरूप लिख्यते। भैरवी की मेल में जाकी उत्पत्ति होई जाको ग्रहस्वर निषाद में होय, गान्धार में उत्तर होय। ऐसी जो रागिनी तांही आनन्दभैरवी जानिए। शास्त्र में तो सात सुरन सों गाई है। स रि ग म प ध नि स यातें सम्पूर्ण है। याको चाहो जब गावो। यह राग मांगलिक है। याकी आलापचारी सात सुरनमें किए राग बरते।"

रागों का प्रत्यक्ष स्वरूप इस प्रकार बताया है। देखो :—

आनन्दभैरवी (सम्पूर्ण)

ऩि॒ सा रे॒ ग॒ म ग॒ रे॒ ग॒ म ग॒ रे॒ सा। रे॒ ग॒ म प नि॒ ध॒ प म म। ग॒ रे॒ ग॒ रे॒ सा।

मैंने इस राग के स्वरों को उस ग्रन्थ से उद्धृत किया है।

प्रश्न—यहाँ तो 'आनन्दभैरवी' भैरवी ठाठ में बताई गई है। इन स्वरों को गाने पर श्रोताओं को भैरवी-जैसा ही रागस्वरूप जान पड़ेगा। यह तो ठीक है, परन्तु 'आनन्दभैरव' का इस ग्रन्थ में कैसा स्वरूप बताया गया है ?

उत्तर—उसकी भाषा भी इसी प्रकार है :—

"अथ आनन्दभैरव को स्वरूप लिख्यते। जामें निषाद सुर उतर्यो होई। गान्धार में जाको ग्रह स्वर होई। बहुली गुजरीको जामें लछन होई। आनन्दभैरव जानिये। शास्त्र में तो सात स्वरन सों गायो है। ग म प ध नि स रि ग। याको प्रभात समैं गावनो।"

इसके स्वर उस ग्रन्थ में मुझे इस तरह प्राप्त हुए :—

आनन्दभैरव (संपूर्ण)

'नि सा रे ग म ग रे ग म ग रे सा रे ग म प। नि ध प म ग रे ग रे सा।'

सम्भव है, उसके स्वर क्रमानुसार उद्धृत करने में मुझसे भूल हो गई हो, किन्तु अभी तो तुम्हें यही देखना है कि इस राग का ठाठ कौनसा है।

प्रश्न—भला, इस राग में भैरव का अंग कहाँ दिखाई पड़ना सम्भव है? हम तो यही कहेंगे कि दोनों ऋषभों के प्रयोग से तो भैरव-अंग बिलकुल नष्ट ही हो जाएगा।

उत्तर—हमें 'संगीतसार' के इस मत का करना ही क्या है? चलते-चलते मैं एक बात की ओर तुम्हारा ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। ग्रन्थकार ने अपने लक्षणों में यह कहा है कि आनन्दभैरव में बहुली और गुजरी, इन दो रागों का योग होता है। प्राचीन ग्रन्थों के प्रमाण से ये दोनों राग भैरव ठाठ के ही हैं। फिर भी संगीतसारकर्ता ने यह नवीन ठाठ कहाँ से उत्पन्न कर लिया, यह कैसे बताया जा सकता है। अस्तु,

दक्षिणी ग्रन्थों में 'आनन्दभैरवी' राग आसावरी ठाठ में माना गया है और उसके आरोह-अवरोह इस प्रकार बताए गए हैं:—

'सा ग रे ग म प ध सां। सां नि ध प म ग रे सा।'

कदाचित् संगीतसारकर्ता ने भावभट्ट का आधार ग्रहण किया होगा।

प्रदर्शिनीकार कहता है:—

आरोहे ऋषभस्त्यक्तो धवक्रं च समाचरेत्।

जबकि हम अभी आनन्दभैरवी पर विचार नहीं कर रहे हैं, तो हम उस राग के वर्णन पर विचार करना भी स्थगित ही रखेंगे। अपना 'आनन्दभैरव' एक भैरव का प्रकार है और जबकि यह भैरव-प्रकार है, तो इसमें भैरव-अंग प्रधान रहेगा ही। मेरे गुरु ने मुझे बार-बार बताया है कि भैरव के प्रत्येक प्रकार में भैरव-अंग अच्छी तरह दिखाने का प्रयत्न किया जाए। यहाँ एक प्रश्न यह भी उत्पन्न होता है कि अपने गायक लोग कभी-कभी जिस 'नन्दभैरव' राग की बातें किया करते हैं, वह राग यही 'आनन्दभैरव' तो नहीं है? मुझे एक गायक ने 'नन्दभैरव' के जो लक्षण बताए, उसमें धैवत कोमल था; अतः वह अपना आनन्दभैरव नहीं हुआ। यदि कोई थोड़ी देर के लिए दोनों धैवतों का प्रयोग स्वीकार करे, तो हम उसे भी सुन लेंगे। अपने आनन्द-भैरव में भैरव और शंकराभरण का मेल उत्तरांग में होता है। यदि हो सके, तो वहाँ हम तीव्र धैवत का ही प्रयोग करें। इसमें सन्देह नहीं कि ऐसा करने पर यह राग स्पष्ट रूप से निराला हो जाएगा।

प्रश्न—उत्तरांग में तीव्र धैवत ग्रहण करनेवाला कोई ठाठ दक्षिण-पद्धति में तो होगा ही?

उत्तर—हाँ, है न? उस ठाठ को वहाँ 'सूर्यकान्त मेल' या 'वेगवाहिनी मेल' कहते हैं। इस ठाठ से हमें भी कुछ सुन्दर राग-स्वरूप प्राप्त हो सकते हैं; जैसे:—

सेनामणि—सा रे ग म प ध सां । सां नि ध प म ग रे सा ॥
ललित—सा रे ग म ध नि सां । सां नि ध म ग रे सा ॥
सुप्रदीप—सा रे म प ध नि सां । सां नि ध प म ग म रे सा ॥
नागचूड़ामणि—सा ग म प ध नि सां । सां नि ध प म ग सा ।

इनमें ललित-प्रकार के अवरोह में पंचम लगाने पर ललितभैरव-जैसा स्वरूप निकल सकता है। 'चूड़ामणि' के अवरोह में ऋषभ स्वर अल्प रूप में ग्रहण किया जाए।

प्रश्न—परन्तु, क्यों गुरुजी ! जबकि 'आनन्दभैरव' में भी भैरव की प्रधानता है, तो उसका कुछ भाग 'हिजाज' के कुछ भाग से मिलता हुआ नहीं होता क्या ?

उत्तर—वह तो निस्सन्देह मिलेगा। अच्छा बताओ, कौन-से स्वरसमुदाय दोनों में साधारण होंगे।

प्रश्न—यह भाग देखिए :—

'सा, रेरे, सागगम, गरे, गमगरेसा; पमगरे, गमपगमरे, सा'। यह स्वर-समुदाय तो भैरव के प्रत्येक भेद में आना ही चाहिए न ?

उत्तर—तुम यथार्थ कह रहे हो। यह स्वर-समूह तो दोनों में आएगा ही। सारी खूबी उत्तरांग को अलग-अलग सँभालने की है। उसमें भैरव-अंग जोड़ देने में भी बड़ी चतुराई चाहिए। 'सांनिधपमगरेसा' इस प्रकार की सरल तान द्रुत रूप से ली गई तो शोभनीय नहीं होगी। इसी लिए उचित स्थलों पर रुकते हुए, कहीं पर कुछ वक्रता दिखाते हुए गायक भैरव-अंग में प्रवेश करते हैं। बार-बार अभ्यास करने से तुम्हें भी यह काम सध जाएगा। तार-षड्ज से चलकर हम धैवत पर आकर ठहरें, और फिर वहाँ से पंचम की ओर झुकें, तो अपने-आप इस जगह कोमल निषाद का स्पर्श हो जाता है और वह बहुत सुन्दर दिखाई देता है। यह स्वर इस प्रकार 'आनन्दभैरव' में आ जाए, तो रंजकता को हानि नहीं पहुँचाता। अब देखो, यह अवरोह की तान कैसी दिखाई देती है :—

'सांधनिप, मग, रेगपमग, रेसा।'

प्रश्न—ठीक है। इसमें तीव्र धैवत है और अवरोह में कोमल निषाद का कण भी है, फिर भी भैरव-अंग से यह असंगत ज्ञात नहीं होती।

उत्तर—ठीक है। ऐसी तान 'आनन्दभैरव' में लगाई गई, तो राग स्वतन्त्र हो जाएगा। मैं तुम्हें 'आनन्दभैरव' की एक सरगम दे रहा हूँ :—

आनन्दभैरव : झप ताल

स्थायी

म	ग । रे	ग	प । म	ग । म	रे	सा
नि़	सा । रे	रे	सा । रे	ग । ग	म	म

म	म । ग	म	म । प	प । म	प	प
प	सां । ध	नि	प । म	ग । ग	रे	सा

अंतरा

म	प । प	ध	प । सां	ऽ । सां	रें	सां
रें	गं । गं	मं	पं । मं	गं । रें	रें	सां
सां	सां । रें	रें	सां । ध	ध । ध	नि	प
ग	रे । ग	म	प । म	ग । रे	रे	सा

अब देखें तुम इसका स्वरविस्तार कैसा करोगे ?

प्रश्न—'सा, रेरेसा, निधप, सा, गरेगमपमगरे, रे, सा; सारेसा, गरेसा, गमपगमरे, पगमरेसा, निसागमप, गमपगमरे, सा; पपगमप, धध, प, गमपगमरेसा, निनिध, प, गमरे, पपगमरे, गरेसा; पपधधप, सां, सां, गंमंगंरेंसांनिसां, धध, प, गमरे, पगमरेसा; निसागम, रेगम, पम, धपम, पम, रेग, निसाग, पमगरे, गमपगमरे, रे, सा।'

उत्तर—मैं समझता हूँ कि अब तुम इस राग को गा सकते हो। प्रायः ऐसे राग गाए नहीं जाते, परन्तु जब-कभी इसे सुनने का अवसर प्राप्त हो, तब सावधानी से देखते जाना चाहिए कि गायक इन दोनों अंगों को किस युक्ति से सुसंगत करते हैं। इस कृत्य को गायक लोग 'जोड़ मिलाना' कहते हैं। मिश्र रागों की सारी विशेषता इस जोड़ मिलाने में ही है। अच्छा, अब यह कह देने में कोई हानि नहीं कि तुम 'आनन्दभैरव' को समझ चुके हो। जो सरगम मैंने तुम्हें बताई है, उसे केवल संकेत-मात्र समझना चाहिए। तुमने देखा होगा कि मैं जहाँ-तहाँ किस प्रकार से ठहरता गया हूँ और उचित रागांग लाने का प्रयत्न कैसे किया है। मैंने सुना है कि बंगाल प्रान्त की ओर कुछ गायक एक 'मंगलभैरव' राग भी गाते हैं। राजा साहेब टैगोर ने 'संगीतसार' में 'मंगल' नामक एक राग बताया है। इन्होंने इस राग को भैरव ठाठ में माना है और उसका स्वरूप इस प्रकार बताया है :—

'गमगममनिधपम, सागरेगमगरे, सागमगम, प, धसांनिसांनिसांनिरेंसां, निधप, मपनिध, प, म, सागरेगमगरे, सा। मपनिधनिसां, सां, गंरेंसां, पनिसांनिध, सांनिसां, निध, निसां, पसांनिरेंसांनिध, प, गमगम, निधपम, सागरेगम, गरेसा।'

प्रश्न—यह प्रकार भी सम्पूर्ण जाति का दिखाई देता है। क्या इन्होंने 'मंगल' के कुछ विशेष लक्षण भी बताए हैं ?

उत्तर—नहीं, इन्होंने इसके सम्बन्ध में और कुछ नहीं बताया। अस्तु, अब यह कहा जा सकता है कि हम भैरव ठाठ के अधिकांश प्रचलित रागों को देख चुके हैं।

मैंने एक राग 'ललितपंचम' अवश्य छोड़ दिया है। 'ललित' और 'पंचम' दोनों भिन्न-भिन्न स्वतन्त्र राग-स्वरूप हैं, अतः प्रथम इन्हें अलग-अलग बताकर फिर मैं 'ललितपंचम' बताऊँगा, जिससे इसे समझना अधिक सरल हो जाएगा। भैरव ठाठ के राग बहुत ही मनोरंजक हैं, अतः इन्हें रियाज करके तैयार रखना चाहिए। इन सभी रागों के नियमादि तो तुम्हें अच्छी तरह याद हो ही गए होंगे ?

प्रश्न—यदि आपकी आज्ञा हो, तो हम आपको सुना दें कि इन रागों को हम किस प्रकार ध्यान में जमाए हुए हैं।

उत्तर—तुम्हारे द्वारा यह विवरण सुनकर मुझे अत्यधिक संतोष प्राप्त होगा।

प्रश्न—बहुत अच्छी बात है। सुनिए ! सर्वप्रथम हम भैरव आश्रयराग के मुख्य अंग ध्यान में रखेंगे। इसका आन्दोलनयुक्त ऋषभ और धैवत सैकड़ों बार गा-गा कर तैयार कर लेना है। भैरव की सारी खूबी इन्हीं दोनों स्वरों पर निर्भर है। यद्यपि भैरव एक सम्पूर्ण राग है, तथापि इसके आरोह में ऋषभ स्वर कुछ अल्प रूप में ग्रहण करने का प्रचार है। भैरव का वादी स्वर धैवत अच्छी तरह साध लेने की चीज है। आपने यह भी कहा था कि भैरव में कोई तीव्र ध, कोई-कोई कोमल नी, कोइ रि प वर्ज्य माननेवाले लोग मिलने सम्भव हैं। एक याद रखने-योग्य बात यह भी है कि भैरव के उत्तरांग में भिन्न-भिन्न ठाठों का मिश्रण कर भिन्न-भिन्न राग-प्रकारों की रचना गायकगण कर लिया करते हैं। उदाहरण के लिए अहीरभैरव शिवमतभैरव, आनन्दभैरव आदि राग इसी प्रकार उत्पन्न हुए कहे जा सकते हैं। रामकली नामक जो मधुर राग प्रचलित है, उसमें भी भैरव-अंग दिखाना आवश्यक है। आपके कथनानुसार, रामकली के अनेक प्रकार प्रचार में प्राप्त हो सकते हैं। एक प्रकार में आरोह में म नि वर्ज्य माने जाते हैं। यह स्वरूप बिलकुल स्वतन्त्र किन्तु दुष्प्राप्य है। यदि इस राग का अवरोह 'सां ध प ग रे सा' होता, तो इस औडव स्वरूप को विभास से अलग करना कठिन हो जाता। रामकली का सामान्य स्वरूप जो प्राय: देखने को मिलता है, कुछ विलक्षण ही है। इस स्वरूप में दोनों मध्यम और दोनों निषादों का प्रयोग किया जाता है। यह स्वरूप प्रात:कालीन राग का है, यह बात उसके भैरव-अंग से तत्काल प्रकट हो जाती है। इस राग की तीव्र मध्यमयुक्त तान 'मं प ध नि ध प, ग म रे सा' जो उत्तम रूप से याद कर लेगा, वह रामकली राग कुशलता से गा सकेगा। इस राग में पंचम को अच्छा चमकता हुआ रखना चाहिए, मन्द्र-स्थान में अधिक तानें लेने की आवश्यकता नहीं है, आदि-आदि बातें, जो आपने हमें बताई हैं, हमें अच्छी तरह याद हैं। 'प, प, मं प, ध प, ध नि ध प ग म रे सा' यह स्वर-समूह जितना अधिक आगे रखा जाएगा, उतनी ही मात्रा में राग रामकली जमता जाएगा। साव-काश रीति से इन स्वरों का गायन करने पर कुछ विलक्षण ही परिणाम होता है। कुछ लोग तो यह भी कह सकते हैं कि जहाँ यह तान नहीं, वहाँ रामकली भी नहीं। आपने रामकली का तृतीय प्रकार दोनों गान्धारवाला बताया है। आपने यह भी कहा था कि इस राग में सावधानी रखनी चाहिए, ताकि इसका मिश्रण तोड़ी से न हो सके। इस रागस्वरूप में आपने 'म, ग प रे सा' स्वर बड़ी युक्ति से गाकर सुनाए थे।

भैरव सम्पूर्ण है और कालिंगड़ा भी सम्पूर्ण ही है, परन्तु ये दोनों राग बिलकुल भिन्न प्रकार के हैं। यह अन्तर हम एक क्षण में दिखा सकते हैं। 'ग म प ध म प, म ग, नि़ सा रे ग' इन स्वरों को हम इस प्रकार गा सकते हैं कि उसमें कोई भैरव का स्वप्न में भी अनुमान नहीं कर सकता। सर्वप्रथम तो कालिंगड़ा में भैरव का गांभीर्य ही कहाँ है? भैरव में आन्दोलित रे, ध स्वर; 'म ग रे, सा' स्वरों की विलम्बित मींड़, मन्द्रस्थान का वैचित्र्य आदि बातें इस क्षुद्र गीतों के योग्य राग में कहाँ से आ सकती हैं? कहाँ कालिंगड़ा की 'ग म प ध म प' तान, कहाँ भैरव की 'ग, म प, ध, प, म प' तान! आपने बताया है कि भैरव-अंग अनेक रागों में ग्रहण किया जाता है और कुछ रागों में अलग कर दिया जाता है। भैरव-अंग का एक राग 'प्रभात' है। इसका कुछ भाग कालिंगड़ा-जैसा दिखाई दे सकता है, परन्तु अन्तरा भैरव-अंग से गाने पर तत्काल कालिंगड़ा अदृश्य हो जाता है। यह भैरव भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इसमें एक छोटा-सा टुकड़ा 'ग म मं, ग म ग, रे सा' ललित-अंग का भी ग्रहण किया जाता है। इसे रामकली कहना भी गलत होगा, क्योंकि रामकली की तीव्र मध्यमवाली विशिष्ट तान 'प्रभात' में ग्रहण नहीं की जाती। 'बंगाल भैरव' में निषाद बिलकुल वर्ज्य होता है और सा, ध' की स्वर-संगति तथा गान्धार की वक्रता भी ग्रहण की जाती है। यद्यपि भैरव में 'रे, ध' प्रबल होने के कारण ग, नि का दुर्बल होना स्वाभाविक है, परन्तु 'बंगाल भैरव' तो स्वतन्त्र राग ही माना जाएगा।

हम अच्छी तरह जानते हैं कि 'शुद्धबंगाल' और 'बंगाली' ये बंगाल भैरव से बिलकुल अलग राग-स्वरूप हैं। 'गुणक्री' 'जोगिया' और 'सावेरी' रागों में बहुत कुछ लक्षण-साम्य प्रथम दृष्टि में दिखाई पड़ेगा, परन्तु इन रागों को प्रत्यक्ष सुन लेने पर कभी भी यह संदेह नहीं रह सकेगा। 'गुणक्री' को तो भैरव-अंग ही सबसे अलग कर देगा। केवल 'म रे सा' इन तीन स्वरों से ही हम गुणक्री और जोगिया को अलग-अलग दिखा सकते हैं। 'म, रे सा' और 'म, रे, सा' इन स्वरों में भिन्न-भिन्न स्थानों पर विश्रांति लेने में ही विशेषता है। 'गुणक्री' में ग, नि स्वर बिलकुल वर्ज्य हैं, परन्तु जोगिया के अवरोह में निषाद ग्रहण किया जाता है। 'जोगिया' में 'ध, म, रेसा' तान अच्छी तरह तैयार करनी पड़ेगी, क्योंकि यही जोगिया की पकड़ है। 'सावेरी' और 'जोगिया' अवश्य ही बहुत निकट आ जाते हैं, परन्तु जोगिया के अवरोह में वर्जित गान्धार सावेरी में वर्जित नहीं है; यह एक भेद है, जिसे स्वीकार करना पड़ेगा। सावेरी राग का प्रचार दक्षिण की ओर अधिक है, परन्तु उस तरफ जोगिया राग नहीं होता, यह तथ्य भी स्मरण रखने-योग्य है।

'विभास' भैरव ठाठ का एक औडव राग-स्वरूप है। इसके आरोह-अवरोह में म, नि स्वर बिलकुल नहीं लिए जाते, अत: यह बिलकुल स्वतन्त्र स्वरूप हो जाता है। 'विभास' गाने में 'ध, प गप, धप, गरेसा' तान उत्तम रूप से व्यक्त करना ही राग-परिचायक है। आपने बताया था कि इस राग के अवरोह में कुछ गायक निषाद स्वर ग्रहण करना स्वीकार करते हैं। हमें यह भी याद है कि आपने विभास और देशकार का चलन एकसा बताया था।

यदि कोई संगीताभ्यासी भैरव ठाठ के 'मेघरंजनी' और 'देशगौड़' रागों को भूल जाए, तो उसके लिए यही उचित है कि वह संगीत का अभ्यास ही छोड़ दे।

'मेघरंजनी' में पंचम और धैवत दोनों स्वरों के वर्ज्य होने के कारण गायक को जो कठिनाई होती है, वह एक बार देखकर आजीवन स्मरण रखने की वस्तु है। 'देश-गौड़' में गान्धार और मध्यम वर्ज्य होने के कारण कुछ देर तक यही समझ में नहीं आ पाता कि चीज (गीत) कहाँ से शुरू की जाए। 'शिवमतभैरव' की याद तो हमें जीवन-भर रहेगी, क्योंकि उस 'संगीतमहेश' और 'ग्रन्थाभिमानी'—पंडित की मजेदार कथा हम कैसे भूल सकते हैं ? 'शिवमतभैरव' में दोनों गांधार और दोनों निषाद युक्तिपूर्वक लिए जाने चाहिए। यह सावधानी भी रखनी है कि कोमल गान्धार के प्रयोग से 'तोड़ी' और कोमल निषाद के प्रयोग से 'आसावरी' अथवा भैरवी आदि का स्वरूप उत्पन्न न हो जाए। आप हमें यह भी बता चुके हैं कि कुछ विद्वान् शुद्ध भैरव को ही शिवमतभैरव समझते हैं और उसका ठाठ भैरवी मानते हैं। 'आनन्दभैरव' के सम्बन्ध में आपने जो मतभेद बताया है, वह हम अच्छी तरह समझ गए हैं। 'आनन्दभैरवी' राग 'आनन्दभैरव' से निराला है, जिसका ठाठ आसावरी सिद्ध होता है। 'आनन्दभैरव' के उत्तरांग में शंकराभरण ठाठ का मिश्रण हो जाता है। हमें ध्यान है कि इसमें कोमल निषाद का कण किस खूबी से लगता है। संगीतसारकर्त्ता ने इस राग के सम्बन्ध में जो वर्णन किया है, उस तरह का आज प्रचार नहीं है, ऐसा मानकर हम चल रहे हैं।

'अहीरभैरव' के उत्तरांग में काफी ठाठ का मिश्रण होने के कारण इसका स्वरूप बिलकुल स्वतन्त्र हो गया है। इस राग में एक जगह तीव्र ऋषभ इस प्रकार चामत्कारिक रूप से आता है कि कुछ देर के लिए गायक को यह भी भ्रम हो जाता है कि हम भैरव का कोई प्रकार नहीं गा रहे हैं। 'मरेमप, प, म, पधनि, धप' तान भैरव की कौन कह सकता है ? परन्तु इस तान में जहाँ 'ममपधम, गरे, पमगरे, सा' स्वर योजित किए कि अद्भुत परिणाम उत्पन्न हो जाता है। 'सौराष्ट्र' का पूर्वांग भैरव का है और उत्तरांग में दोनों धैवत दो भिन्न-भिन्न टुकड़ों में दिखाए जाते हैं। एक टुकड़ा प्रायः बिलावल-जैसा और दूसरा 'कालिंगड़ा' का दिखाई पड़ेगा। प्रचार में गायक इस राग को 'चौरासीटंक' नाम देते हैं। आपने कहा था कि एक अलग सायंकालीन रागस्वरूप 'श्रीटंक' भी है। भैरव के और भी कुछ प्रकार हैं, परन्तु उनके लिए हम यही मानकर चल रहे हैं कि वे इस समय प्रचलित नहीं हैं। आपने हमें कुछ ग्रन्थोक्त प्रकार बताए भी हैं। हम उनके आधार पर नवीन रूप रचकर आगे देखनेवाले हैं।

'हिजाज' एक यावनिक राग-स्वरूप है, किन्तु वह संस्कृत-ग्रन्थों में भी प्राप्त होता है। ग्रन्थों में यह राग भैरव ठाठ में ही बताया गया है। इस समय प्रचार में इस राग के उत्तरांग में भैरवी के स्वर सम्मिलित किए जाते हैं। ऐसे राग-स्वरूपों में सदैव बड़े-बड़े प्रसिद्ध गायकों के मतानुसार चलना उचित है। आपके बताए हुए उपर्युक्त उत्तम सिद्धान्तों के अनुसार ही हमने भी भविष्य में चलने का निश्चय किया है। चूँकि संगीत परिवर्तनशील है, इसलिए समाज की रुचि-अरुचि को देखते हुए चलना ही आवश्यक है।

उत्तर—शाबास ! शाबास !! मैं समझता हूँ कि अब तुम इस ठाठ के राग अच्छी तरह समझ गए हो ! मित्रो, अब समय समाप्त हो गया, अतः हम आज यहीं पर विश्राम लेंगे।

क्रमिक पुस्तक-मालिका [लेखक । वि० ना० भातखंडे]

प्रथम भाग (हिंदी) : दस ठाठों के १० आश्रय रागों की स्वरलिपियाँ इसमें दी गई हैं तथा आरंभ में प्रथम वर्ष के विद्यार्थियों के लिए बहुत-से अलंकार और पलटे दिए हैं।

आकार १८"×२२" अठपेजी, पृष्ठ-संख्या ६४, मूल्य ५), डाक-व्यय पृथक्।

दूसरा भाग (हिंदी) : यमन, यमनकल्याण, बिलावल, अल्हैयाबिलावल, खमाज, भैरव, पूर्वी, मारवा, काफी, आसावरी, भैरवी तथा तोड़ी—इन १२ रागों की थ्योरी तथा आलाप-सहित ३१९ चीजों की स्वरलिपियाँ दी गई हैं।

आकार १८"×२२" अठपेजी, पृष्ठ-संख्या ५०८, सजिल्द मूल्य २५), डाक-व्यय पृथक्।

तीसरा भाग (हिंदी) : भूपाली, हमीर, केदार, बिहाग, देस, तिलककामोद, कालिंगड़ा, श्री, सोहनी, बागेश्री, वृंदाबनीसारंग, भीमपलासी, पीलू, जौनपुरी और मालकौंस—इन १५ रागों की थ्योरी व आलाप-सहित ५१२ चीजों की स्वरलिपियाँ दी गई हैं।

आकार १८"×२२" अठपेजी, पृष्ठ-संख्या ७६४, सजिल्द मूल्य ३८), डाक-व्यय पृथक्।

चौथा भाग (हिंदी) : शुद्धकल्याण, कामोद, छायानट, गौड़सारंग, हिंडोल, शंकरा, देशकार, जयजयवंती, रामकली, पूरियाधनाश्री, वसंत परज, पूरिया, ललित, गौड़मल्लार, मियाँमल्लार, बहार, दरबारीकान्हड़ा, अडाणा, मुलतानी—इन २० रागों की ५३२ चीजों की स्वरलिपियों के अतिरिक्त शास्त्रीय विवरण और आलाप भी दिए गए हैं।

आकार १८"×२२" अठपेजी, पृष्ठ-संख्या ८६६, सजिल्द मूल्य ४०), डाक-व्यय पृथक्।

पाँचवाँ भाग (हिंदी) : चंद्रकांत, सावनीकल्याण, जैतकल्याण, श्यामकल्याण, मालश्री, हेमकल्याण, यमनीबिलावल, देवगिरीबिलावल, औडुवदेवगिरी, सरपरदा, लच्छासाख, शुक्लबिलावल, ककुभ, नट, नटनारायण, नटबिलावल, नटबिहाग, कामोदनाट, बिहागड़ा, पटबिहाग, सावनी, मलुहाकेदार, जलधरकेदार, दुर्गा, छाया, छायातिलक, गुणकली, पहाड़ी, माँड, मेवाड़ा, पटमंजरी, हंसध्वनि, दीपक, झिंझोटी, खंबावती, तिलंग, दुर्गा, रागेश्वरी, गारा, सोरठ, नारायणी, सावन, बंगालभैरव, सौराष्ट्रटंक, अहीरभैरव, प्रभात, ललितपंचम, मेघरंजनी, गुणकरी, जोगिया, देवरंजनी, विभास, झीलफ, गौरी, जंगूला, त्रिवेणी, श्रीटंक, मालवी, रेवा, जैतश्री, दीपक, हंसनारायणी तथा मनोहर आदि ७० रागों की २५१ चीजों की स्वरलिपियाँ रागों के शास्त्रोक्त विवरण-सहित दी गई हैं। आकार १८"×२२" अठपेजी, पृष्ठ-संख्या ५३६, सजिल्द मूल्य ४२), डाक-व्यय पृथक्।

छठा भाग (हिंदी) : पूर्व्या, पूर्वकल्याण, मालीगौरा, जैत, वराटी, विभास, पंचम, भटियार, भंखार, साजगिरी, ललितगौरी, सैंधवी, सिंध, बरवा, पंजाबी-बरवा, धनाश्री, धानी, प्रदीपकी, हंसकिंकणी, पलासी, मध्यमादिसारंग, शुद्धसारंग, बड़हंससारंग, सामंतसारंग, मियाँ की सारंग, लंकदहनसारंग, पटमंजरी, सूहासुघराई, सूहा, सुघराई, शहाना, नायकीकान्हरा, देवसाख, कौशिककान्हरा, मेघमल्लार, सूरमल्लार, रामदासी मल्लार, नटमल्लार, मीराबाई की मल्लार, चरजू की मल्लार, चंचलससमल्लार, रूपमंजरीमल्लार, श्रीरंजनी, आभोग, चंद्रकौंस, गौड़, मालगुंजी, देसी, कोमलदेसी, गांधार देवगांधार, खट, खटतोड़ी, जंगला, झीलफ, गोपिकावसंत, सिंधभैरवी, बिलासखानीतोड़ी, मोटकी, भूपालतोड़ी, उत्तरी गुणकली, बसंतमुखारी, लाचारीतोड़ी, बहादुरी तोड़ी, अंजनीतोड़ी—इन ६८ रागों की २३७ चीजें स्वरलिपि, आलाप तथा शास्त्रीय विवरण-सहित दी गई हैं।

आकार १८"×२२" अठपेजी, पृष्ठ-संख्या ५४८, सजिल्द मूल्य ४५), डाक-व्यय पृथक्।

प्राप्ति-स्थान : संगीत कार्यालय, हाथरस २०४ १०१ (उ० प्र०)

'संगीत' कार्यालय के प्रकाशन

● **कंठ-संगीत (Vocal Music)**

बाल-संगीत-शिक्षा (भाग १, २ व ३)— कक्षा ६, ७ व ८ के लिए; मूल्य क्रमशः २)५० ३) व ४)
संगीत-किशोर—कक्षा ९-१० के लिए; मू० ५)
गांधर्व संगीत-प्रवेशिका—'प्रवेशिका' परीक्षा के लिए शास्त्रीय व क्रियात्मक शिक्षा; मू० ६)
हि० सं० प० क्रमिक पुस्तक-मालिका (भाग १ से ६ तक)—भातखंडे-पाठ्यक्रमानुसार; मूल्य क्रमशः ३), २५), ३८), ४०), ३२) व ३२)
स्वर-मालिका—पं० विष्णुनारायण भातखंडे द्वारा संकलित ६२ रागों में १२३ सरगमें; मू० ५)
संगीत-अर्चना—क्रमिक पुस्तक-मालिका, भाग ३ की तान-आलाप-सहित गायकी; मूल्य १२)५०
संगीत-कादंबिनी—क्रमिक पुस्तक - मालिका, भाग ४ की तान-आलाप-गायकी; मूल्य १७)५०
मारिफुन्नग़मात (भाग १) थ्योरी व १० ठाठों के राग; मूल्य २५)
मारिफुन्नग़मात (भाग २) २३२ प्राचीन चीजें मूल्य १२)
मारिफुन्नग़मात (भाग ३) प्राचीन होरी और ध्रुपद; मूल्य ५)
अप्रकाशित राग—(भाग १, २ व ३)— २०९ चीजें; मूल्य क्रमशः ५), ७)५० व ७)५०
मधुर चीजें—१११ राग-बंदिशें; मूल्य ६)
लक्षण-गीत अंक—१२९ लक्षण-गीत; मू० १०)
राग-रागिनी अंक—५ शोध-निबंध व ७० से अधिक रागों में लगभग १०० बंदिशें; मू० १२)
बिलावल ठाठ अंक—६४ राग-रचनाएँ; १०)
कल्याण ठाठ अंक—७७ राग-रचनाएँ; १०)
भैरव ठाठ अंक—८४ राग-रचनाएँ; मू० १०)
खमाज ठाठ अंक—८८ राग-रचनाएँ; १०)
काफी ठाठ अंक—७९ राग-रचनाएँ; १०)
मारवा ठाठ अंक—८८ राग-रचनाएँ; १०)
आसावरी ठाठ अंक—४८ राग-रचनाएँ; १०)
तोड़ी ठाठ अंक—४८ राग-रचनाएँ; मू० १०)
भैरवी ठाठ अंक—६६ राग-रचनाएँ; १०)
पूर्वी ठाठ अंक—२३ राग-रचनाएँ; मूल्य १०)
ध्रुपद-धमार अंक—६० राग-रचनाएँ; १०)
तराना अंक— १२३ राग-रचनाएँ; मू० १०)
ठुमरी-गायकी—४५ स्वरबद्ध ठुमरियाँ; मू० ६)
संगीत-सागर—गायन, वादन व नृत्य; मू० १५)
कर्नाटक-संगीत अंक—शास्त्र व शिक्षा; मू० १०)
संगीत-अष्टछाप—७३ स्वरबद्ध प्रबंध; १२)५०
वंदना-संगीत—५० स्वरबद्ध प्रार्थनाएं; मू० ५)
सूर-संगीत—(भाग १ व २)—भावार्थ व स्वर-लिपि सहित १२० पद; मूल्य क्रमशः ७) व ६)
काव्य-संगीत अंक—५० स्वरबद्ध काव्य; १०)
गजल अंक—स्वरलिपि-सहित ८० ग़जलें; १२)५०
राष्ट्रीय संगीत—५३ स्वरबद्ध गीत; मू० १०)
लोक-संगीत अंक—१३७ सस्वर गीत; १२)५०
फिल्मी शास्त्रीय गीत अंक—लोकप्रिय फिल्मों के ५० स्वरबद्ध शास्त्रीय गीत; मूल्य १२)५०
ख़याल अंक—१९ लेख, ५१ बंदिशें; १२)५०
आलाप-तान अंक—(एम० ए० स्तर); १२)५०
मीरा-संगीत अंक—१० लेख व १३१ स्वर-रचनाएँ; मूल्य १२)५०
कव्वाली अंक—(लेख व बंदिशें); मू० १२)५०
फिल्मी गजल अंक—मशहूर फिल्मों की ३५ स्वरबद्ध गजलें; मूल्य १०)
फिल्मी प्रेम-गीत अंक—नया परिवर्धित संस्करण : ४० स्वरबद्ध प्रेम-गीत; मू० १२)
फिल्मी उल्लास-गीत अंक—प्रसिद्ध फिल्मों के ३५ स्वरबद्ध उल्लासपूर्ण गीत; मूल्य ८)
फिल्मी विरह-गीत अंक—प्रसिद्ध फिल्मों के ३५ स्वरबद्ध विरह-गीत; मूल्य ८)
फिल्मी युगल-गान अंक—प्रसिद्ध फिल्मों के ३५ स्वरबद्ध युगल-गान; मूल्य ८)
फिल्मी प्रणय-गीत अंक— ३५ स्वरबद्ध प्रणय-गीत; मूल्य ८)
फिल्मी भजन अंक—प्रसिद्ध फिल्मों के ३५ स्वरबद्ध भक्ति-गीत; मूल्य ८)
फिल्मी सांस्कृतिक गीत अंक— ३५ स्वरबद्ध गीत; मूल्य ८)
फिल्मी विविध गीत अंक—भाग १; मूल्य १०)
फिल्मी विविध गीत अंक, भाग ३—फिल्मों के ३५ स्वरबद्ध विविध गीत; मूल्य ८)
फिल्म-संगीत १९७७—लोकप्रिय फिल्मों के ४० स्वरबद्ध गीत; मूल्य १२)

● **शास्त्र व इतिहास (Theory & History)**

संगीत-रत्नाकर—भाग १ (हिन्दी); मू० २५)
संगीत-शास्त्र—कक्षा १२ तक; (प्रेस में)
हाईस्कूल संगीत-शास्त्र—कक्षा १०; मूल्य ६)
संगीत-विशारद—वर्ष १ से ६ तक; मू० १६)
राग-कोष—१४३८ रागों का विवरण; मू० ५)
भातखंडे संगीत-पाठमाला—प्रथम वर्ष; ४)
भातखंडे संगीत-शास्त्र (भाग १ व ३ तक)— मूल्य २३) व २५)
संगीत-पद्धतियों का तुलनात्मक अध्ययन— प्राचीन १० संगीत-ग्रंथों के सार-सहित; मू० ६)


संगीत